Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DHANVAN TARI

1961 G. K. U.

a Samaj Foundation Chennai

kul Kangri Collec

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113418

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
COMPILED

Stock Verification-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILE

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

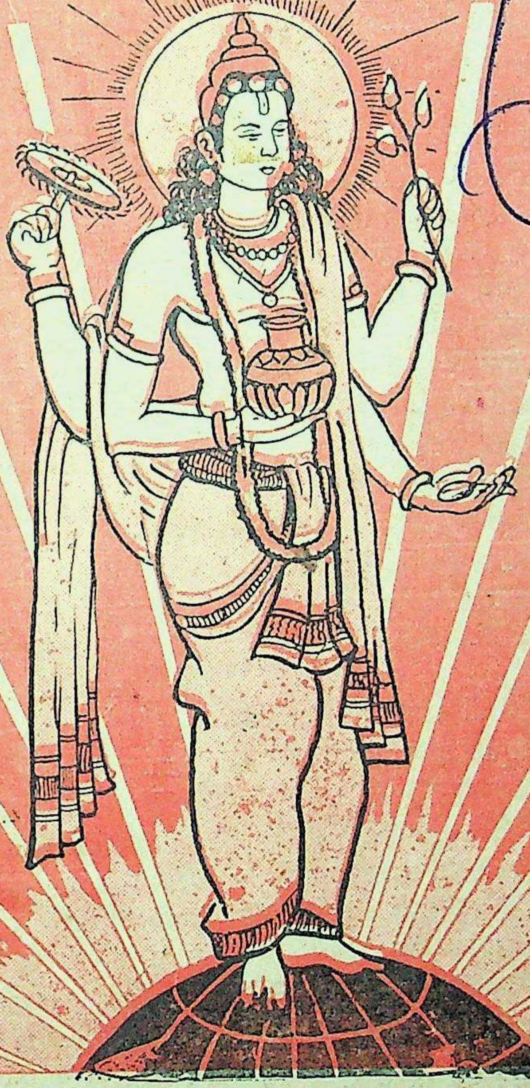

वर्ष ३५ अङ्क १० अक्टूबर १९६१

धन्व… य विजयगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्जेक्शन—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा—अपने विषय की हिन्दी में सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोड़े समय में ही पांच संस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसमें प्रारम्भ में सिरिंजों के प्रकार, इन्जेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि रङ्गीन एवं सादे चित्रों सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद में प्रत्येक इन्जेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने में क्या सावधानी बर्तनी चाहिए, आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई हैं। अन्त में अकारादि क्रम से समस्त इन्जेक्शनों की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सकों के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मूल्य १०.००

सचित्र इन्जेक्शन—डा० शिवनाथ खन्ना—प्रस्तुत पुस्तक इन्जेक्शन अर्थात् सूचीवेध नामक विषय पर विस्तारपूर्वक, सरल, जनप्रचलित भाषा में समझाकर लिखी गई हैं। चार खण्ड हैं जिसमें प्रथम खण्ड में इन्जेक्शन की विधियां तथा इन्जेक्शन के भेद, द्वितीय खण्ड में विभिन्न इन्जेक्शनों के गुण कर्मादि, तृतीय खण्ड में प्रधान रोगों में लक्षण तथा उनमें दिये जाने वाले इन्जेक्शन और चतुर्थ खण्ड में अन्य आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है। मूल्य १०.००

इन्जेक्शन तत्वप्रदीप—ले० डा० गणपति सिंह वर्मा। सभी इन्जेक्शनों का वर्णन है तथा उनके भेद और लगाने की विधि सरलतया दी है। मूल्य ५.००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा० रमेशचन्द्र वर्मा डी० आई० एम० एस०। यह पुस्तक भी एलोपैथिक इन्जेक्शनों की उपयोगी विस्तृत सामिग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन, विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्के कपड़े की जिल्द मूल्य ७.५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तक से आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर में सागर भर दिया है। मूल्य १.५०

होमियो इन्जेक्शन चिकित्सा—प्रारम्भ में इन्जेक्शन के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन किया है। तत्पश्चात् होम्योपैथिक औषधियों के गुणादि का वर्णन किया है। मूल्य १.७५

आयुर्वेद इन्जेक्शन चिकित्सा—लेखक डा० श्यामसुन्दर शर्मा। पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में इन्जेक्शन लगाने की विधि आदि का सामान्य वर्णन किया गया है। द्वितीय खण्ड में औषधियों का वर्णन किया गया है। मूल्य २.५०

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—ले० हरि... स्वरूप कुल-श्रेष्ठ-नवीन मतानुसार शवच्छेद (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान करा... के लिये अनेक चित्र साथ में दिये गये हैं। मूल्य १५.००

एलोपैथिक पेटेंट चिकित्सा—लेखक डा० ... नाथ पांडेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग ... पर प्रयोग की जाने वाली पेटेन्ट औषधियां दी हैं। तथा प्रत्येक पेटेंट औषधि किस किस रोग पर प्रयुक्त हो सकती है यह दिया है। मूल्य २.००

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक ... विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री बी० ए०, आयुर्वेदाचार्य। ... एवं पाश्चात्य दोनों का समन्वय करते हुए नेत्र चि... विषय पर हिन्दी में विशाल ग्रन्थ है। मूल्य १०.००

शल्य प्रदीपिका—लेखक डा० मुकुन्दस्वरूप ... शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी में लिखी हुई है। ... प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है। अनेक ... दिये गए हैं। मूल्य १२.५०

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—यह वर्मा जी ... द्वितीय कृति है। इसमें दो हजार से अधिक पेटेण्ट ... साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सेकड़ों ... तथा अन्य उपयोगी बातों पर प्रकाश डाला गया है। मू... १२.६०

जन्म निरोध—लेखक ए० ए० खां एम. एस-सी ... आज के युग में देश में जन्म संख्या का बढ़ना एक वि... समस्या है। प्रस्तुत पुस्तक में जन्म निरोध के लिए अने... प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एवं शस्त्र कर्म ... विधियां दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू. ६...

सामान्य शल्य विज्ञान (सचित्र)—ले० डा० शि... दयाल गुप्त ए० एम० एस०। शल्य (सर्जरी) ... हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आव... चित्रों द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, ... थियों एवं चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपादेय है। १...

आदर्श एलोपैथी मेटेरिया मैडिका—एलो... विज्ञान के अनुसार प्रत्येक शरीर विभाग पर काम क... वाली विशेष औषधियों की प्रकृति, गुण ध... प्रयोग ... म, उप... मात्रा, रोग निदान के अनुसार इसमें वर्णित हैं। ११.०...

हिन्दी मार्डन मेडीकल ट्रीटमेंट—(आधुनिक चिकित्सा) लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एल० गुजराल M. B., M. R. C. P. (लन्दन) लिखित एलोपैथी चिकित्सा का हिन्दी में सर्वा... ङ्गीणक ग्रन्थ है। चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी है। २०.०...

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़, (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि का आगामी विशाल विशेषांक

धन्वन्तरि
शिशुरोगाङ्क

की विशेषतायें

* इसके लिए भारतवर्ष के चोटी के विद्वानों एवं अनुभवी चिकित्सकों ने हमको दिल खोलकर सहयोग दिया है।

* इस विशेषांक में लगभग ५५० पृष्ठ का ठोस साहित्य होगा। विषय को सुस्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के लिए सैकड़ों ही चित्रों का निर्माण कराया जा रहा है।

* इसकी भाषा सरल हो, वर्णन सुस्पष्ट हो तथा चिकित्सा सरल हो, इसका भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

* 'नारीरोगांक' के समान इसमें सभी शिशुओं के रोगों का क्रमशः वर्णन एवं चिकित्सा विधि देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

* इस विशेषांक से चिकित्सक समाज तो अपने चिकित्सा व्यवसाय में लाभ उठा ही सकेगा, साथ ही पठित सामान्य व्यक्ति भी इसे पढ़कर अपने बच्चों एवं पड़ौसियों के बच्चों की चिकित्सा कर सकें तथा उनके स्वास्थ्य सुधार के विषय में आवश्यक बातें जान सकें, ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है।

जिसने 'धन्वन्तरि' के पिछले विशेषांकों को देखा पढ़ा है वे इस शिशुरोगांक की उपयोगिता एवं महानता में संदेह नहीं करेंगे। जिन्होंने उनको नहीं देखा है उनको हम विश्वास दिलाते हैं कि 'शिशुरोगांक' भी धन्वन्तरि की महान परम्परानुकूल उत्तम साहित्य होगा और इतना उपयोगी एवं सस्ता साहित्य आपको अन्यत्र नहीं मिलेगा। अतएव शीघ्र ही वार्षिक मूल्य मनियार्डर से भेजकर वर्ष १९६२ के ग्राहक बनें और अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

–प्रकाशक -

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंक में

अक्टूबर १९६१ भाग ३५ अंक १०

धन्वन्तरि आओ (कविता)	श्री जगदम्बा	३
टहलना और उसके लाभ	श्री सुदेवचन्द्र पराशरी	४
तैल मालिश	श्री धर्मदत्त चौधरी	१४
मेरी सफल चिकित्सा विधि		१८-२४
सन्निपात चिकित्सा अनुभव		१८
योगराज गूगल का चमत्कार		२०
वातज उदर रोग		२१
जलोदर चिकित्सा		२३
गर्भपात पर अनुभव		२३
स्वनशोथ चिकित्सा		२४
अति प्रवित चिकित्सा		२४
प्रश्नों के उत्तर		२५-३२
लघुइन्द्रिय जन्य नपुंसकता २५, धनुर्वात २५, पायरिया		२६
मोतियाबिंद की होमियोपैथिक चिकित्सा २८, अरुंषिका		२९
रक्तविकार ३०, वृश्चिक दंश ३१		
ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा	श्री सत्यदेव शर्मा	३२
आधुनिक रुदन्ती	श्री जगन्नाथ वै. वा.	३३
कूट प्रश्नाः	श्री दौलतराम र. शा.	३७
पहेलियों के उत्तर	श्री उद्धव सखाराम पंत निलेकर	३७
कफज कास में निशा का प्रयोग	श्री शिवचरण ध्यानी	३८
पांच उपयोगी बनस्पतियां	श्री एस. एन. खरे	४१
गुप्तसिद्ध प्रयोग	... ...	४३
साहित्यालोचन	श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी	४६
समाचार एवं सूचनाऐं		४८

सम्पादकः- आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग.
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B.Sc. दाऊदयाल गर्ग A.,M.B.S.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113418

113418

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० १-४०

अक्टूबर १९६१ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | भाग ३५ अङ्क १०

धन्वन्तरि ! आओ !!

आओ धन्वन्तरि युग युग के धूमिल अंकुर उकसा जाओ।
जो कालगाल में समा गया वह आयुर्वेद पुनः लाओ ॥

आओ जनतान्त्रिक भारत में
अपनी महिमा दिखला जाओ ।
अब भी जो परोपजीवी हों
उनको दुलरा समझा जाओ ॥

आओ नवरूप धरो निर्मल
सम्बल रोगी का बन जाओ ।
दुर्लभ मानव जीवन विकसे
ऐसा सुस्वास्थ्य तुम दे जाओ ॥

विज्ञान-ज्ञान उर-उर में भर
नवयुग को नव पथ बतलाओ ।
निज ज्योति किरण को चतुर्दिशा–
में छिटका भव-तम बिनसाओ ॥

आकर्षक बन ऐसे उज्ज्वल
जनमन तुम मोहित कर जाओ ।
जो दीन-हीन गर्हित निन्दित
दुख दुरित द्रवित को अपनाओ ॥

—जगदम्बा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टहलना और उसके लाभ

वैद्यराज आचार्य श्री सुदेवचन्द पारासरी शास्त्री, D. I. M. S

वाचक महोदय प्रस्तुत लेख को अवश्य पढ़ने का कष्ट करें, क्योंकि यह अति साधारण विषय पर लिखा गया है। यदि आप इसे पढ़ना नहीं चाहते, तो निश्चितरूप से आपको ही सबसे अधिक आवश्यकता इसके पढ़ने की है। जिन महानुभावों ने इस विषय का मनन किया है एवं जो टहलने और शुद्ध वायुसेवन के लाभों को न्यूनाधिक समझते हैं, वे इस निबन्ध को बिना पढ़े नहीं छोड़ सकते, भले ही इसमें वर्णित तथ्यों की जानकारी उन्हें पहले से हो, क्योंकि शुभ सूचनायें बार बार प्राप्त होने पर भी मांगलिक और प्रमोदप्रद ही होती हैं। परन्तु यदि आप इस विषय से अरुचि रखते हैं तो वस्तुतः आपको इसके अध्ययन और तदनुसार आचरण की आवश्यकता है।

परिचय–

टहलना सुपरिचित शब्द है जिसे संस्कृत में में भ्रमण, चंक्रमण या अध्वा और अंग्रेजी में *Walking* कहते हैं। सबेरे उठकर शौचादि से निबटकर सूर्योदय से कुछ पूर्व शुद्ध वायु वाले किसी स्थान उपवन, बाटिका, बन प्रान्त, नदी नहर या सरोवर के तट अथवा पथवीथी पर ही टहलने को जाया जाता है। जिन्हें सुबह जल्दी उठने की आदत नहीं होती, वे सूर्यास्त के आसपास टहला करते हैं। कुछ बिरले मनस्वी सुबह शाम दोनों वक्त भी टहलने का समय निकाल लेते हैं। अपनी अपनी सुविधा और अवकाश के अनुसार प्रातः या सायं अथवा दोनों समय घण्टा, डेढ़ घंटा या न्यूनतम आधा घण्टा–पन्द्रह मिनट का ही समय टहलने को निकाला जा सकता है।

टहलने का प्रयोजन–

टहलने में दो प्रयोजन एक साथ सिद्ध होते हैं १–व्यायाम, और २–शुद्ध वायु सेवन। शरीर को नीरोग रखने के लिए इन दोनों की ही नितान्त आवश्यकता है। जिन्होंने अनुभव किया है उन आप्तजनों ने इसकी उपयोगिता को सराहा है। शास्त्रकारों ने इसकी दाद दी है। इस व्यस्त जटिल और संघर्षग्रस्त जीवन में कुछ क्षण जीवन के आनन्द आरोग्य लाभ के लिए, शरीर और मन की शुद्धि और ओजस्विता के लिए आत्मोन्मुख होने के लिए निकालना व्यक्तिगत आवश्यकता है सामाजिक और राष्ट्रयी अपेक्षा है। हमारे शिष्ट विशिष्ट नागरिक तन छीन और मन मलीन रहे, यह कभी वाञ्छनीय नहीं। आपको सुखी, स्वस्थ और सब तरह प्रसन्न बनाने में टहलने का भी अपना प्रमुख भाग है अतः इसका प्रयोजन निर्विवाद है।

टहलना बनाम व्यायाम–

देह का वह काम जिसमें आयास हो, और जो शरीर की स्थिरता एवं बलवृद्धि के लिये अभिप्रेत हो, व्यायाम (*Physical Exercis*) कहलाता है यह आयास (*Exertion*) मात्रा में ही किया जाता है। आचार्य सुश्रुत और चरक ने व्यायाम की यही परिभाषा लिखी है। उनके शब्द ये हैं—

> शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम् ॥ ३६ ॥
> —सु० चि० अ० २४
>
> शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
> देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत् ॥ ३१ ॥
> —च० सू० अ० ७

टहलने में भी शरीर का आयास होता है, शरीर को स्थिर और बलवान बनाने के लिए ही इसका उपयोग होता है, अतः यह भी एक प्रकार का व्यायाम है। सुतरां, इसकी सेव्यता, बर्जनीयता, मात्रा, अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग, तथा सहयोग के लिए वही नियम लागू होते हैं जो व्यायाय के लिए हैं। अस्तु, उनका अतिदेशात्मक उल्लेख करना यहां अपेक्षित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम के योग्य व्यक्ति—

बलवान और स्निग्ध भोजन करने वाले व्यक्तियों को सभी व्यायाम हितकर होते हैं, विशेषकर शीत और बसन्त ऋतु में स्थूल और कफ प्रकृति व्यक्तियों को मेदोनाश के लिए व्यायाम अति उपादेय है। महर्षि सुश्रुत ने लिखा है—

व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम्।
स च शीते बसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥

व्यायाम के अयोग्य व्यक्ति—

रक्तपित्त के रोगी, कृश, शोष (*Consumption*) के रोगी, श्वासकास और क्षयपीड़ित, भोजन किए हुए, स्त्री प्रसङ्ग से क्षीण और भ्रमरोगियों के लिए व्यायाम नहीं करना चाहिए। यह महर्षि सुश्रुत की मान्यता है यथा—

रक्तपित्ती कृशः शोषी श्वास कासक्षयातुरः।
भुक्तवान् स्त्रीषु च क्षीणो भ्रमार्त्तश्च विवर्जयेत् ॥
—सु. चि. अ. २४

महर्षि चरक ने अतिव्यवाय-भार मार्गगमन जैसे कर्मों से अतिकृश, क्रोध-शोक-भय और आयास से आक्रान्त मनुष्यों एवं बच्चों, बूढ़ों, तेज हवा में रहने या काम करने वालों, बहुत जोर से अधिक समय तक भाषण देने वालों और भूखे प्यासे लोगों को भी व्यायाम का निषेध किया है। देखिए—

अतिव्यवाय भाराध्व कर्मभिश्चातिकर्शिताः।
क्रोधशोकभयायासैः क्रान्ता ये चापि मानवा ॥
बालवृद्धप्रवाताश्च ये चोच्चैर्बहुभाषकाः।
ते वर्जयेयुर्व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्च ये ॥
—चरक सू० अ० ७

व्यायाम की मात्रा—

सुश्रुत के मतानुसार—

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुम्भिरात्महितैषिभिः।
बलस्यार्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा ॥
हृदिस्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद् बलार्धस्य लक्षणम् ॥
—सु० चि० अ० २४

अर्थात् अपना हित चाहने वाले पुरुषों को सभी ऋतुओं में प्रतिदिन अपने बल से आधी शक्ति द्वारा व्यायाम करना चाहिए, अन्यथा किया हुआ व्यायाम घातक होता है। बलार्ध की पहिचान यह है कि हृदय स्थान में स्थित वायु व्यायाम करने वाले व्यक्ति के मुख में आने लगता है अर्थात् श्वासवृद्धि हो जाती है।

महर्षि चरक का मत है—

स्वेदागमः श्वासवृद्धिर्गात्राणां लाघवं तथा।
हृदयाद्युपरोधश्च इति व्यायाम लक्षणम् ॥
—च० सू० अ० ७

अर्थात् पसीना आना, श्वास बढ़ना, शरीर के अंगों का हलका मालूम होना और हृदयादि का दम फूलने से उपरोध होना व्यायाम की उचित मात्रा के ज्ञापक हैं।

व्यायाम के अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग से हानियां

अतिव्यायाम—किसी भी व्यायाम का अतिप्रयोग (उक्त मात्रा से अधिक) क्षय, तृषा, अरुचि, वमन, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम, कास, शोष, ज्वर और श्वास उत्पन्न करता है' यह सुश्रुत का मत है। यथा—

क्षयतृष्णारुचिच्छर्दि रक्तपित्तभ्रमक्लमाः।
कास शोषज्वर श्वासा अतिव्यायाम सम्भवाः ॥
—सु० चि० अ० २४

महर्षि चरक ने भी मात्रा से अधिक व्यायाम करने के दोष यों बताये हैं—

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्चछर्दिश्च जायते ॥
—च० सू० अ० ७

अर्थात् अतिव्यायाम से श्रम, क्लम, धातुक्षय, तृषा, रक्तपित्त, प्रतमक श्वास, कास, ज्वर और वमन उत्पन्न होते हैं। और भी कहा है—

व्यायामहास्य भाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥
एतानेवंविधाश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजं सिंह इवाकर्षन् सहसा स विपद्यते ॥
—च. सू. अ. ७

अर्थात् अभ्यास होने पर भी व्यायाम, हास्य, भाषण, पैदल चलना, मैथुन और प्रजागरण का अतिमात्रा में सेवन बुद्धिमान व्यक्ति को नहीं करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। जो व्यक्ति इनका तथा ऐसे ही अन्य कर्मों का अतिमात्रा में सेवन करता है उसका शरीर उसी तरह नष्ट हो जाता है जिस तरह सिंह हाथी जैसे बड़े जानवर को खींचने के अनुचित श्रम से हुए बात क्षोभ से कुछ समय बाद विनष्ट हो जाता है।

अयोग-

बिल्कुल ही किसी प्रकार का शारीरिक श्रम न करने से शरीर में कफ व मेद का सञ्चय होता है, अतिशय्या, अतिस्वप्न व अत्यासन के कारण ये दोष व दूष्य कुपित होते ही हैं जिससे मन्दाग्नि, पाचन विकृति, आमसञ्चय, धात्वग्निमान्द्य, रस रक्तादिसंवहनमन्दता उत्पन्न होते हैं। शुद्ध वायु का सम्यक् आहरण न होने से इन विकृतियों में और सहायता मिलती है। सम्यक् मलशुद्धि-मल, मूत्र, स्वेद की सम्यक् प्रवृत्ति नहीं होती, न निःश्वास द्वारा ही मलों का यथावत् बहिष्करण हो पाता है। सुतरां शरीर में मलिन द्रव्यों-सामविषों का सञ्चय बढ़ता रहता है प्रतिक्रियास्वरूप विबन्ध, कफरोग, आमदोष, आमवात, प्रमेह, मधुमेह, हृद्रोग, मेदोरोग, स्थूलता, श्वास, कास, बलक्षय, क्लीवताप्रभृति अनेक रोग घेर लेते हैं। मनुष्य उत्साहहीन दैहिक मानसिक कर्त्तव्य कर्मों के सम्पादन में असमर्थ हो जाता है।

मिथ्यायोग

कभी व्यायाम का अतिसेवन और कभी असेवन तथा वय (बाल, युवा, वृद्ध), बल (प्रवर, अवर, मध्य), शरीर (स्थूल, कृश, सम), देश (आनूप, जांगल, साधारण), काल (शीत, उष्ण, वर्षा एवं प्रातः मध्यान्ह, सायं, रात्रि और भोजन से पूर्व व पश्चात् आदि) और भोजन (स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु आदि) का विचार न करके व्यायाम करना, न्यूनाधिक मात्रा में अकाल और अस्थान पर करना मिथ्यायोग कहता है। इससे तीनों दोषों का प्रकोप, जठराग्नि और धात्वाग्नि सम्बन्धी विकार-वातव्याधि, संग्रहणी, आम दोष, रक्तरोग, कुष्ठादि कष्टसाध्य रोग उत्पन्न होते हैं।

समयोग

पूर्वोक्त व्यायाम योग्य व्यक्तियों का उचित मात्रा में सेवन ही व्यायाम का समयोग है। इससे आरोग्य लाभ होता है यथा—

व्यायामो हि सदा पथ्यं बलिनां स्निग्ध भोजनाम्।
स च शीते बसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥
—सू० चि० अ० २४

व्यायाम समयोग के लाभ-

लाघवं कर्म सामर्थ्यं स्थैर्यं दुःख सहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥
—च० सू० अ० ७

अर्थात् व्यायाम से लघुता, कर्म करने की शक्ति, स्थिरता, दुःख सहने की शक्ति, तीनों दोषों का क्षय और अग्नि की वृद्धि प्राप्त होती है।

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा॥
श्रमक्लमपिपासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यञ्चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥
न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात् ॥
न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधिरोहति।
स्थिरीभवति मांसञ्च व्यायामाभिरतस्य च ॥
व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥
वयोरूप गुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम्।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम्।
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ॥
—सु० चि० अ० २४

अर्थात् व्यायाम से शरीर का उपचय होता है, कान्ति बढ़ती है, शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुविभक्त होते हैं, अग्निदीप्त होती है, आलस्य दूर होता है, स्थिरता आती है, शरीर में हल्कापन आता है, शरीर शुद्ध होता है, श्रम और थकान, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि सहने की शक्ति उत्पन्न होती है। स्थूलता दूर करने के लिये व्यायाम के समान और कोई साधन नहीं है, शत्रु लोग भी भय के कारण व्यायाम करने वाले के पास नहीं फटकते, कसरती आदमी पर बुढ़ापा भी सहसा आक्रमण करके सवार नहीं हो पाता। व्यायाम सेवी व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मांस दृढ़ होता है, व्यायाम द्वारा दृढ़ शरीर वाले और पैरों की ओर से उद्वर्तन करने वाले व्यक्ति के पास रोग उसी तरह नहीं आते जिस प्रकार शेर के पास छोटे जानवर नहीं जाया करते। वय, रूप और गुणों से हीन व्यक्ति भी व्यायाम के द्वारा देखने में सुन्दर बन जाता है। एवं नित्य व्यायाम करने वाले का विरुद्ध, विदग्ध या अविदग्ध भोजन भी बिना कोई दोष उत्पन्न किये पच जाता है।

अध्वा और चंक्रमण

अध्वा और चंक्रमण दोनों में पदातिचर्या (पैदल चलना) होती है। परन्तु १०-५ कोस निरन्तर पैदल चलना अध्वा कहलाता है जबकि चंक्रमण (टहलना) एक डेढ़ मील से लेकर २-४ मील ही किया जाता है। यद्यपि चंक्रमण भी अध्वा का ही प्रकार है तथापि व्यवहार में उपरिनिर्दिष्ट तात्पर्य के अनुसार इनका तारतम्य समझा जा सकता है। अध्वा में शरीर को जितनी थकावट होती है उतनी चंक्रमण में नहीं होती, एतदनुसार इन दोनों के शरीर पर होने वाले प्रभाव में भी अन्तर होता है जैसाकि सुश्रुत ने बताया है--

अध्वा—वर्णकफस्थौल्य सौकुमार्य विनाशनः।
यत्तु चक्रमणं नाति देह पीड़ाकरं भवेत्।
तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥
—सु० चि० अ० २४

अर्थात् अध्वा (मार्गगमन) से स्वाभाविक वर्ण स्थूलता और सुकुमारता का नाश होता है। जिस चंक्रमण से देह में अधिक पीड़ा उत्पन्न नहीं होती, वही आयु, बल, मेधा और अग्नि (जठराग्नि और धात्वग्नि) को बढ़ाता और इन्द्रियों को जाग्रत करता है। स्पष्ट है कि अध्वा की अपेक्षा चंक्रमण (टहलना) अधिक उपयोगी और स्वास्थ्यप्रद है।

टहलने की मात्रा-

प्रत्येक व्यक्ति को शरीर बल के अनुपात से न्यूनाधिक दूरी तक, न्यूनाधिक चाल से न्यूनाधिक काल पर्यन्त टहलना उचित और हितावह होता है, नियमित सेवन से ही लाभ होता है।

अत्यध्वा की हानियां-

आचार्य सुश्रुत ने लिखा है--

अत्यध्वा विपरीतोऽस्माज्जरादौर्बल्यकृच्च सः।
—सु० चि० अ० २४

अतिमार्ग गमन से सामान्य अध्व सेवन के लाभ नहीं होते, उलटा परिणाम होता है अर्थात वर्ण विकृत और रूक्ष होता, कफनाश के साथ उग्र वात प्रकोप तथा स्थूलता नष्ट होने के साथ साथ अतिकृशता हो जाती है, सुकुमारता नष्ट होकर देह दृढ़ता के स्थान पर देह धातुओं का शैथिल्य उत्पन्न हो जाता है, फलतः अकाल में बुढ़ापा आ घेरता और दुर्बलता हो जाती है।

आचार्य चरक ने अतिव्यायाम के साथ ही अत्यध्व सेवन का निषेध कर दिया है। इसके अतियोग में व्यायाम के अतियोग के सब दुर्गुण निहित हैं। अस्तु।

अधिक समय तक अति लम्बा चंक्रमण अति वेगपूर्वक करना भी निषिद्ध है। सुतरां वातपित्त प्रधान रोगों में क्लान्तक्षीण आदि व्यक्तियों को जिन्हें व्यायाम का निषेध किया है सोच समझ कर ही अति न्यून मृदु चंक्रमण करना चाहिये या बिल्कुल न करना चाहिये।

अन्य व्यायामों की अपेक्षा टहलने की विशेषताएँ—

वैसे तो सभी व्यायामों की अपनी अपनी विशेषताएँ होती हैं किन्तु टहलना सब व्यायामों की अपेक्षा अपनी कई विशिष्ट उपयोगिताएँ रखता है जो उल्लेखनीय हैं।

डण्ड, बैठक, मल्लखम्भ, कुश्ती, फरीगदका, लाठी, जमनास्टिक, ड्रिल, अनेक प्रकार के खेल-- हॉकी, फुटबाल, वालीबाल, बास्केट बाल, आसन, मुद्गर फिराना, घुड़सवारी, पोलो आदि बहुत तरह के व्यायाम हैं। जिनमें कतिपय घर में करने के (In door) और कई बाहर मैदान में करने के (Out door) हैं।

घर में किये जाने वालों में समय तो अवश्य कम लगता है। परन्तु नगर या ग्राम का सघन-निवास एवं गन्दगी वातावरण को शुद्ध वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण और स्वाभाविक नहीं रहने देते, इस कारण फुफ्फुसों के द्वारा शरीर को प्राणवायु के रूप में वाञ्छनीय लाभकर तत्व उपयुक्त मात्रा में नहीं मिल पाता। बाहर के व्यायामों (outdoor exercises) में दूसरे साथियों या कुछ न कुछ साधन सामग्री की दरकार अवश्य होती है। दूसरी बात यह है कि ये सभी व्यायाम अनभ्यास, संकोच, भय या दुष्करता आदि कारणों से सब के लिए सर्वत्र सुकर भी नहीं होते।

दण्ड बैठक यात्रा या परदेश में छूट जाते हैं हर कोई सङ्कोचवश सब के सामने हर जगह नहीं कर पाता। इन परिस्थितियों में खेलों आदि का भी नियमित उपयोग सम्भव नहीं होता। अस्तु;

टहलना ही एक ऐसा व्यायाम है कि किसी साधन सामग्री और साथियों के बिना, कोई कहीं भी इसका उपयोग कर सकता है। इसमें न किसी प्रशिक्षण की जरूरत होती और न विशेष अभ्यास की। बच्चे, बूढ़े, स्त्रीपुरुष, सभी सरलतापूर्वक इसका सेवन कर सकते हैं। गर्भिणी स्त्रियों को भी यह मृदु और निरापद होने के साथ साथ विशेष लाभकर है। प्रत्येक व्यक्ति को चलना फिरना सहज सात्म्य होता है क्यों यह सर्वथा प्राकृतिक शारीरिक कर्म है। इन सब हेतुओं से दूसरे व्यायामों की अपेक्षा टहलने की उपयोगिता सर्वोपरि सिद्ध होती है।

टहलना बनाम शुद्ध वायु सेवन-

श्वासकर्म–

उच्छ्वास और निःश्वास का महत्व समझने के साथ शुद्धवायु सेवन का महत्व भी समझा जा सकता है। उच्छ्वास के द्वारा शुद्ध (आक्सीजन प्रधान वायु फुफ्फुसों के द्वारा हृदय में जाकर हृदय से समग्र शरीर परमाणुओं तक रक्त के माध्यम से पहुंचता है। हृदय वह पम्पिङ्ग स्टेशन है जहां से सारे शरीर को रक्त के साथ साथ प्राणवायु का वितरण होता है। इसीलिए 'हृदि प्राणः' हृदय प्राण वायु का स्थान माना गया है।

इस प्राणवायु को विष्णुपदामृत (विष्णुपद आकाश का अमृत) कहा गया है। शार्ङ्गधर ने लिखा है–

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्।
कोष्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥
पीत्वाचाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः।
प्रीणयन्देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम् ॥

प्राण शब्द 'प्र' पूर्वक 'अन' धातु से बनता है जिसका अर्थ श्वसन या श्वास लेना निकालना है। इससे उच्छ्वास निःश्वास (Inspiration expiration) दोनों का बोध होता है। इस भांति श्वास प्राण का अर्थ Respiration or respiratory air career होता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने सुस्पष्ट कहा है कि यह नाभिस्थ प्राण वायु हृत्कमल में होकर कण्ठ से बाहर "विष्णुपदामृत" शुद्ध प्राण पद वायु (oxygen) पीने के लिए निकलता है और इस अम्बर पीयूष (oxygen) को पी कर वेगपूर्वक वापिस उसी रास्ते शरीर में पहुँचता है तथा अखिल देह का प्रीणन (पोषण और शक्ति देना) करता है और जठराग्नि (Digestion and oxidation) को जीवन प्रदान करता है।

टहलने, वेगपूर्वक टहलने में श्वास वृद्धि (उच्छ्वास निःश्वास की खूब वृद्धि) होती है जिससे उच्छ्वास के समय पूरा गहरा श्वास लेने से फेफड़े पूरे भर जाते हैं और शुद्ध वायु के रूप में खींचा गया अम्बर पीयूष (oxygen) हृदय में होकर धमनियों तथा उनकी शाखाप्रशाखाओं द्वारा समग्र शरीर धातुओं के परमाणुओं तक पहुँच कर उनको ऊर्जा और दहन शक्ति प्रदान करके बल का जनक बनता है; इस बल या ओज की उत्पत्ति सम्यक् पाचन और रस से लेकर शुक्र पर्यन्त धातुओं के उत्तरोत्तर धात्वग्निपाक द्वारा परिवर्तन एवं स्थाई धातुओं के भीतर भी दहन व्यापार द्वारा तापसंजन तथा देह शक्ति, मनो व्यापार आदि के रूप में प्रतिफलित होकर समस्त शारीरिक और मानसिक क्रियाओं का आधार बनती है।

जहां एक ओर विष्णुपदामृत जैसा अमृत हमको प्रचुर मात्रा में टहलने के व्यायाम में अनायास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध होता है वहां उक्त निःश्वास निर्गत प्राण-पवन के साथ मलिन वायव्यां अपान द्रव्यों (Carbon di oxide) का निर्गमन भी प्रचुर मात्रा में होता है। ये दूषित मल द्रव्य फुफ्फुसों की धौंकनी द्वारा टहलने की क्रिया द्वारा तीव्रता पूर्वक कार्य करके बाहर निकाले जाते हैं। इन द्रव्यां का सम्यक् निःसरण न हो पाने से शरीर घटकों पर इनके कुपरिणाम होते और शरीर व्याधि मन्दिर बनता है। शुद्ध वायु का प्रचुर मात्रा में सेवन आरोग्य का मूल आधार है। इसकी थोड़ी सी झांकी आपको इस कथन से प्रतीत हो सकती है—

जो लोग निबिड़ निवास घनी और गन्दी बस्तियों में रहते हैं तथा बन्द और संकीर्ण घरों में निवास करते हैं उनको हर समय मलिन वायु ग्रहण करने के लिये विवश होना पड़ता है। अतः यदि उन्होंने इसके प्रतिकार का साधन नहीं किया तो निश्चित रूप से इसके कुपरिणाम रक्तदुष्टि, मन्दाग्नि, पाण्डु, श्वास, कास, क्षय, भ्रम, मूर्छा, अनिद्रा, मनोवसाद, तथा ग्रहणी, वातरोग प्रभृति जीर्ण रोगों के रूप में भुगतना ही पड़ता है। आज कल बड़े शहरों में जो भयङ्कर रोगों की लहर दिखाई देती है। उसका एक प्रमुख कारण नागरिकों को शुद्ध वायु का पर्याप्त मात्रा में न मिल पाना है। इन लोगों को किसी पार्क, नदीतट, सरोवर, बाग आदि में जाकर टहलने की अनिवार्य आवश्यकता है ताकि वे अपनी शुद्ध वायु की कमी को कम से कम इस साधन द्वारा पर्याप्त मात्रा में पूरा कर सकें।

श्वास--प्रश्वास की गहराई—

अनियमित और उथले श्वास लेने से पर्याप्त मात्रा में शुद्धवायु में रहने पर भी, शुद्ध वायु फेफड़ों में नहीं पहुंच पाता। अतः शरीर की अपेक्षित आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। परिणामतः शरीर के रस रक्त व अन्य धातु वायु के आहार से तृप्त नहीं हो पाते। प्राण-वायु की उपस्थिति में होने वाले दहनकर्म या धात्वग्निव्यापार में कमी होने से शरीर का पोषण घट जाता है। पूर्व-पूर्व धातुओं का उत्तर उत्तर धातुओं में परिवर्तन होना, धात्वाग्निव्यापार के सुचारु होने पर ही निर्भर है। एक ओर तो इससे धातुपोषण की कमी होने से कृशता और दुर्बलता आती है दूसरी ओर उन धातुओं के भीतर सम्यक पाक न होने के कारण आमांश का सञ्चय होता है जो शनैः शनैः विषालु होता जाता है। इसमें प्रकृत्या विकृत परिवर्तन तीव्रतर होते जाते हैं; इस आम विषता के अतिरिक्त आक्सीजन का सञ्चार देह के प्रति परमाणु तक यथोचित न होने से शरीर में उत्पन्न मल कार्बोनिक एसिड गैस और अमोनियां आदि गैसें विकृत मल द्रव्य-विनिमय क्रिया द्वारा पूरी तरह से घुल नहीं पाते। सुतरां, निःश्वास द्वारा उपयुक्त मात्रा में उनका निर्हरण नहीं हो पाता। फलतः शरीर में ही क्रमशः संचित होते रह कर ये अपद्रव्य, उस आमविष को प्रगुणित करके शरीर स्रोतसों में संचार करते हैं। इस तरह देह परमाणुओं की व्याधिक्षमता का अपहरण तो होता है उसके साथ साथ किसी भाग में स्रोतसों का अभिष्यन्द या अवरोध होने पर, उन विषों की उस स्थान पर व्याप्ति होकर स्थान संशय (Localization) हो जाता है। अस्तु, वहां के धातु उस विष से शनैः शनैः आक्रांत होकर विषदग्ध और रुग्ण हो जाते हैं।

अनेक प्रकार के त्वग् रोग —पामा, रकसा, दद्रु, विचर्चिका, अरूंषिका सिध्म, सुराइसिस आदि व अन्य कुष्ठ भेद उक्त विकृति सम्प्राप्ति का ही परिणाम बहुधा होते हैं। विबन्ध, शिरोरोग, प्रतिश्याय, भ्रम, मनोविकार, अनिद्रा, न्यूरेस्थेनिया, आम वात और प्रमेह, हृद्रोग आदि भी इन विषों की प्रतिक्रिया का परिणाम बनते हैं।

यदि निबिड निवास और गन्दे नगरों में बसने वालों को फेफड़ों के कार्य व्यापारों का थोड़ा भी ज्ञान होता, तो वे इन परिस्थितियों का अवश्य कुछ प्रतिकार करते। शुद्धवायु में टहलने से तीव्र श्वास-प्रश्वास की नियमित वृद्धि होती है, पूर्ण मात्रा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धवायु प्राप्त होकर शरीर की क्षतिपूर्ति होती है तथा उक्त भीषण आतङ्कों एवं अकाल मृत्यु से त्राण मिलता है।

प्रायः सब ही जानते हैं कि फुफ्फुस शरीर के मलद्रव्यों को बाहर फेंकते हैं इस प्रकार श्वासवायु शरीर को मलों से स्वच्छ करने में मेहतरों का काम करता है। समस्त अवयवों से मलीभूत अपद्रव्यों को बाहर कर देना उसका काम है।

निःश्वास द्वारा निर्गत मल उतने ही दुर्गन्धित और दूषित होते हैं जितने त्वचा, वृक्कों और वृहदन्त्र से निर्गत मल द्रव्य। यदि शरीर को पर्याप्त मात्रा में जल न मिले तो, वृक्कों अर्थात् मूत्रवह स्रोतसों का काम भी फेफड़ों को करना पड़ता है तथा शरीर में प्रतिक्षण उत्पन्न विषालु मलों को वे ही बाहर निकालते हैं। इसी भांति वृहदन्त्र और पुरीषवह स्रोतस् से पुरीष का उचित निर्हरण नहीं होता तो, पुरीष वह स्रोतसों में पड़े मल बाहर निकलने का मार्ग खोजते हैं, फलतः फेफड़ों द्वारा ही पुरीष का विष भी निःश्वसित होकर बाहर निकलता है। अब आप सोचिये यदि आप निर्वात कोठरी में किवाड़ बन्द करके रहते हैं तो प्रतिघण्टे आठ गैलन कार्बोनिक एसिड गैस एवं अन्य दूषित वायव्य उस कमरे में सञ्चित कर रहे होते हैं, रात्रि के आठ घण्टों में चौंसठ गैलन मात्रा इन विषालु वायव्यों की हो जाती है। अब यदि दो व्यक्ति उस कमरे में साथ साथ सो रहे हैं तो यह मात्रा दो गुनी हो जावेगी। यह उत्तरोत्तर दूषित वायु उच्छ्वास द्वारा आपके शरीर में जाकर उसे उत्तरोत्तर दूषित कर रही होती है। प्रातः काल आपके कमरे में सहसा कोई व्यक्ति किवाड़ खोलते ही घुस कर दुर्गंध और घुटन महसूस करे तो कोई विस्मय की बात नहीं है। इसमें भी कोई अचरज नहीं है यदि आपको अच्छी नींद न आई हो, और आप क्लांत, सुस्त, तन्द्रित, उद्भ्रान्त या खिन्न हों।

क्या आपने कभी सोचा है कि नींद क्यों आती है। दिन भर की चेष्टाओं में जो देह का अपचय (टूट फूट) होता है उसकी पूर्ति या चय के वास्ते, अवसर देने के लिए ही मन क्लान्त होने पर समस्त अन्य थकी हुई इन्द्रियां भी विषयों से निवृत होकर निद्रा को उत्पन्न करती हैं यथा —

> यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
> विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

इसीलिए चय द्वारा क्षतिपूर्त्ति हो जाने पर आप प्रातःकाल उठकर स्फूर्ति और स्वास्थ्य का अनुभव करते हैं। देह द्वारा यह निर्माण-कार्य निर्विघ्न पूरा होने के लिए कम से कम प्राकृतिक परिस्थितियों की दरकार है। उपयुक्त आक्सीजन की मात्रा से युक्त शुद्धवायु जिसमें होकर दिवाकर की रश्मियों का उन्मुक्त सञ्चार हुआ हो, प्रचुर मात्रा में मिलना उचित है। सूर्य रश्मियों द्वारा ही वायु में प्राण का आधान होता है। ओज़ोन नामक वायव्य इस प्राणशक्ति से सम्पन्न होने के कारण ही राजयक्ष्मा के रोगियों को प्राणदायक होता है। यदि यह वायु मिलने में बाधा है तो आप ऐसी परिमित वायु में श्वास लेते हैं जो आप और आप सरीखे दूसरों के शरीर से निर्गत और निःश्वसित मलों के मिश्रण से अर्धविषाक्त हो चुकी है। यह वायु आपके देह परमाणुओं की टूट-फूट में ज्यों त्यों करके पैबन्द और टिप्पे लगाने का काम कर सकती है।

इस गन्दी हवा के प्रभाव को दूर करने के लिये उपयुक्त शुद्ध वायु वाले स्थान पर टहलने से श्वास वृद्धि द्वारा वाञ्छित समय में वायु विनिमय द्वारा ही देह शुद्धि एवं प्राण का आधान अपेक्षित है।

सोने के कमरे की तरह रहने और काम करने के निर्वात कमरे भी व्यायाम के लिये तो सर्वथा अनुपयुक्त हैं। वायु के यातायात की व्यवस्था के बिना वहां के प्रचुर व्यायाम से भी अपेक्षित शुद्ध वायु नहीं मिल सकती, उल्टा क्रम क्रम से अशुद्ध होता हुआ वायु ही अन्तः प्रवेश करता है। अतः फेफड़ों का शोधन कर्म वाञ्छित रूप से सफल नहीं हो पाता। शुद्ध वायु के प्रभूत उपयोग के लिये टहलना ही सर्वोत्तम साधन है। इसका अभ्यास शुरू करते ही कुछ दिन के भीतर आप अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य में सुधार पावेंगे। शायद अधिक गम्भीरतापूर्वक सोचने का अवसर आपके पास न हो तो यत्किञ्चित् समझकर कार्य शुरू कीजिये। शेष कार्य आप की सहज बुद्धि स्वतः सम्पन्न कर लेगी।

टहलना वस्तुतः शुद्ध प्राणप्रद वायु में स्नान करना है। इसमें जीवन और आरोग्य को प्रदान करने वाले सब गुण मौजूद हैं। हरेक की सहज बुद्धि इस प्राकृतिक सत्य को समझती है, किन्तु इसका अनुभव आप अपने जीवन को इकाई को भी दें। प्रकृति के नियमों के विपरीत क्या अब भी आप हरदम सड़े गले गन्दे वातावरण में ही रहना पसंद करेंगे? तो फिर आप रोगी रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? प्रकृति अपने नियम भंग करने वाले को दण्ड देने में कभी चूक नहीं करती। प्रकृति का सुरम्य शुद्ध वायु मण्डल आपके उपयोग के लिये है, यह आपकी प्रवृत्ति आवश्यकताओं के अनुकूल अर्थात् सहज सात्म्य है। अतः इससे भयभीत न हों, बल्कि प्रेम करना सीखें। शुद्ध वायु में चंक्रमण के समय आप अपने से कहें "मैं प्रकृति का ही पुत्र हूँ वही मुझे मेरे सेवन के लिए शुद्ध वायु प्रदान करती है ताकि मैं बलवान और नीरोग रह सकूं, मैं श्वास के साथ आरोग्य, तेज और ओज का ग्रहण कर रहा हुं। शुद्ध वायु द्वारा होने वाले प्रभाव का मैं देह में अनुभव कर रहा हूं और इसके लाभदायक परिणाम सुव्यक्त हो रहे हैं। मैं प्रकृति का पुत्र हूं और उसके उपहारों का आनन्द भोग रहा हूं।" यह स्वयंकृत अभिसंस्कार (Auto suggestion) है। शुद्ध वायु का उपभोग करना सीखिये, आपको अवश्य ही कल्याणमय आशीर्लाभ होगा।

टहलने में दौड़ना

टहलते समय यदि हल्की रफ्तार से पञ्जों के बल दौड़ा जावे तो अल्पकाल में ही अपार लाभ होता है। टहलते समय नंगे पैर न रहकर कपड़े के जूते पहन कर पञ्जों के बल दौड़ें। दौड़ना पहले केवल आधे मिनट से ही आरम्भ करें और शनैः शनैः १०-१० या १५-१५ सेकण्ड प्रतिदिन के हिसाब से दौड़ने की मात्रा बढ़ावें, क्रमशः तीन मिनट प्रतिदिन तक कर लेवें। यह तीन मिनट का दौड़ना तीन मील धीरे धीरे टहलने से अधिक लाभकर होगा। खासकर स्थूलकाय व्यक्तियों के लिए यह अत्युपयोगी है। उनका मेद (fat) छंटता है और तोंद सहज ही कम हो जाती है, बक्ष का घेरा पेट के घेरे से अधिक हो जाता है और शरीर चुस्त, फुर्तीला और हलका होकर चित्त प्रसन्न एवं उत्साहयुक्त होता है। भूख खुलती और पाचन दुरुस्त होता है। किन्तु शर्त पंजों के बल दौड़ने की है। इससे सीधा तोंद पर दबाव पड़ता है। दौड़ना शुरू करते ही श्वासगति बढ़ने लगती है मुंह और नासा के पार्श्वों से सञ्चित कफ पिघल कर मुख में व नाक में आकर उत्कसन (खकारने) द्वारा निकाल दिया जाता है, शुद्धि के बाद स्वच्छता हो जाती है, पूरा समय होते होते कुछ स्वेद छिटक आते हैं श्वास गम्भीर होता है, समय पूरा होते ही धीरे धीरे टहलते हुए स्थान पर वापस आ जावें। इस श्वास वृद्धि से फेफड़ों का उपयुक्त व्यायाम हो जाता है इनके तथा त्वचा के द्वारा शरीर को पर्याप्त शुद्ध वायु अल्पकाल में ही मिल जाती है तथा मलीभूत उपद्रव शरीर से अनायास बाहर हो जाते हैं। पुनः सावधान किया जाता है कि दौड़ना शनैः शनैः आरम्भ करें और अधिक न दौड़ें, इससे शरीर में रत्ती भर भी थकावट या पीड़ा न होगी और आपको क्लान्ति या खेद का कोई एहसास कभी न होगा। यह भी टहलने का ही एक लाभप्रद भेद है जिसका उपयोग शरीर और परिस्थिति के अनुसार अवश्य ही करना उचित है। अनुभव के आधार पर लाभ की निश्चित गारण्टी दी जाती है।

टहलने के लिये उपयुक्त समय व स्थान

ऋतु की दृष्टि से शीत और वसंत में इसकी उपयोगिता का निर्देश ऊपर किया गया है। 'बसंते भ्रमणं पथ्यम्' प्रसिद्ध शास्त्र वचन कहावत बन गया है। अहोरात्रि में प्रातः सायं का समय टहलने के लिए सर्वाधिक प्रशस्त है, उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषकर प्रातःकाल वायुमण्डल, धूल, धुआँ, गंदी हवा और दुर्गन्धित परमाणुओं से अत्यधिक मुक्त रहता है। उस समय सूर्य की धूप तेज नहीं होती, अतः नेत्रों पर उसकी भास्वर प्रतिक्रिया नहीं हो पाती। हरियाली आदि के दर्शन से नेत्रों को सुख-लाभ होता और ज्योति बढ़ती है। आतप में घूमने से प्रकाश किरणों की क्रिया द्वारा दृष्टि-पटल पर आघात पहुँचता है, अतः नेत्रों की ज्योति हीन होती है। प्रातः और सायंकाल की समीर भी सौम्य, शीतल, शुद्ध, आरोग्यवर्धक और आह्लादोत्पादक होती है। अतः यही समय भ्रमण के लिए सब तरह से उपयुक्त है। आचार्य सुश्रुत ने भी धूप और तेज हवा में घूमने से हानि होना बताया है यथा—

आतपः पित्ततृष्णाग्निस्वेदमूर्च्छाभ्रमास्त्रकृत्।
दाहवैवर्ण्यकारी च छाया चैतानपोहति॥
प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद्दाहपक्तिनुत्।
स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा॥

अर्थात्—धूप में घूमने से पित्त कुपित होता, तृष्णा उत्पन्न होती, अग्नि बढ़ती, पसीना आता, मूर्छा, भ्रम उत्पन्न होते तथा रक्त कुपित होता एवं दाह और विवर्णता उत्पन्न होती है छाया इन दोषों को दूर करती है।

तेज हवा में घूमने से रूक्षता, विवर्णता, जकड़ाहट उत्पन्न होती है, दाह और अग्नि नष्ट होती है, स्वेद, मूर्छा और प्यास का नाश होता है—अप्रवात अर्थात् ईषत् प्रवात या साधारण हवा में इसके दोष नहीं होते। अस्तु, नित्य प्रातः सायं का समय ही टहलने के लिए हितकर है।

घूमने फिरने के स्थान और प्रकार के प्रसङ्ग में महर्षि सुश्रुत का निम्नोक्त कथन व्यवहार योग्य है। यथा—

"तत्रादित एव नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा लघूष्णीषछत्रोपानत्केन दण्डपाणिना काले हितमितमधुरपूर्वाभिभाषिणा बन्धुभूतेन भूतानान्तु, गुरुवृद्धानुमतेन सुसहायेनानन्यमनसा खलू पचरितव्यं, तदपि न रात्रौ, न केशास्थिकण्टकाश्मतुषभस्मोत्करकपालाङ्गारामेध्यस्थान बलिभूमिषु न विषमेन्द्रकीलचतुष्पथश्वभ्राणामपरिष्टात्॥
—सु० चि० अ० २४।

अर्थात्—नाखून और बाल कटाये रख कर, शुद्ध होकर, स्वच्छ वस्त्र धारण करके, हल्का उष्णीष पहन कर, छत्र और उपानह धारण करके, दण्डा हाथ में लेकर, समय पर हितपरिमित मधुर और पूर्वभाषण के लिए उद्यत रह कर, सब प्राणियों के प्रति बन्धुत्व-भावना रखते हुए, अच्छे सहायक या साथी को साथ लेकर, अनन्य चित्त होकर घूमना चाहिये। रात्रि को न घूमना चाहिए। केश, अस्थि, कण्टक, पत्थर, भूसी, राख, अनाज के लांक या घास के ढेर, खपड़े, अङ्गार, अपवित्र स्थान, और बलिभूमि पर न घूमे। न ही विषम स्थान ऊंचे टीले आदि, चौराहे या गड्ढे के ऊपर से ही जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि इन स्थानों पर घूमने से अपवित्रता, दुर्गन्धि, बाल, भूसी, आदि का श्वास द्वारा अन्तः प्रवेश हो सकता है; टीले व गड्ढे आदि पर घूमने से गिर पड़ कर चोट लगने का डर है। चौराहे पर घूमने से अधिक यातायात से उत्पन्न धूलिकणों से वायु भरी रहती है जो भीतर जाती है तथा दुर्घटना का भी भय रहता है अतः इन एवं ऐसे ही अन्य धूल, धुएं, कचरे से भरे स्थानों पर न घूमें। शुद्ध वायु वाले, सुरम्य, हरियाली फूलों आदि से युक्त, स्वच्छ, पवित्र और समतल स्थान में ही भ्रमण करना चाहिए। तभी आरोग्य की प्राप्ति हो सकती है।

टहलने के समय किसी अनुकूल साथी के साथ होने पर अच्छा वार्तालाप भी होता रहता है मनोरञ्जन होता एवं समय का पता ही नहीं चलता। एवं साथी से सुरक्षा की भावना भी अधिक रहती है। किन्तु यदि कोई साथी न मिले, तो अकेले टहलने से अन्य कई लाभ हैं। मैं तो टहलने के एकान्त समय को ही पूरी तौर से अपना समय मानता हूँ, क्योंकि उसमें किसी का हिस्सा नहीं होता, और वह पूर्णतया मेरे लाभ के लिए और मेरी इच्छानुसार उपयोग में आता है। टहलते समय मन एकाग्र हो सकता है। किसी गम्भीर समस्या के सुलझाने के लिए, किसी प्रश्न का हल सोचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए, किसी निबन्ध, पत्र या आवेदन, जवाब दावा आदि का मसविदा सोचकर स्थिर करने के लिए टहलने का समय सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होता है। इस समय की विचारधारा और चिन्तन परम्परा, चलने के पदक्रम की भांति संयत, सुनिश्चित, तर्क पूर्ण और सुफलवती होती है। घर, बाजार, दुकान या कार्यालय के व्यस्त या उद्‌भ्रान्त वातावरण में वैसे विचार या निर्णय कभी नहीं लिए जा सकते।

प्रकृति निरीक्षण और आत्मविभोर होने का आनन्द टहलने के समय ही मिलता है। आत्मरत हो जाने पर इसी समय समाधि सुख की कल्पना की झलक साकार रूप में अनुभूत होती है। बड़े बड़े कवियों और महा कवियों के काव्यों के कथानक, कविताओं के ग्रन्थन् और परिष्कार, वैज्ञानिकों और गणितज्ञों की समस्यायों और प्रश्नों के सुलझाव बहुधा इसी समय में हुए व होते हैं। यह कोरी कल्पना नहीं खरे अनुभव का विषय है। आप भी कसौटी पर कस सकते हैं।

–उपसंहार–

सारांश यह है कि भ्रमण नैसर्गिक क्रिया है जिसका नियमित सेवन जीवनवर्धक है। शरीर की शुद्धि, प्राणशक्ति तथा तेज और ओज की प्राप्ति का साधन है। इसमें व्यायाम और प्राणायाम दोनों क्रियायें साथ साथ होती हैं जिससे मन का संयम होकर सदाचरण की प्रवृत्ति बनती है। शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं, प्रकृति से सान्निध्य होता है। दुश्चिन्तायें, आलस्य, प्रमाद और मलिनता दूर होते हैं। आहार पाचन, सम्यक् निद्रा और ब्रह्मचर्य में पूर्ण सहयोग मिलता है। अतः टहलना नित्य सेवनीय हितविहार है। समस्त ब्रह्माण्ड और उसका प्रत्येक स्थूलतम अवयव ग्रह, नक्षत्र आदि गतिशील है, ठोस और जड़ प्रतीत होने वाली वस्तुओं में भी परमाणु और परमाणुओं के घटक विद्युदणु निरन्तर गतिशील हैं। चैतन्य का नाम ही जीवन है। जो वस्तु जितनी अधिक गतिशील है वह उतनी ही अधिक जीवन्त है। गतिशील होने से ही विश्व को जगत् या संसार कहते हैं। जहां गति है वहीं जीवन है। जड़ता की प्रवृत्ति, मृत्यु की ओर उन्मुख होना है। शरीर के परमाणुओं को भी गतिशील, स्फूर्तिमय और सचेत रखने के लिये गतिमयता, भ्रमण का सहयोग परमावश्यक है।

"भ्रमण से तनु होता गतिशील,
फुफ्फुसों का होता व्यायाम।
देह के अणु अणु में हो व्याप्त,
प्राण[1] करता शोधन का काम ॥१॥
रक्त का होता है सञ्चार,
संवहन रस का होता शुद्ध।
पचन के साथ धातु निर्माण,
उत्तरोत्तर होता अविरुद्ध ॥२॥
देह, इन्द्रिय, मन पाते स्फूर्ति,
प्राप्त कर शुद्ध समीर स्नान।
मलिनता, आलस होते दूर,
प्राण का पाते ही आधान ॥३॥
चित्त-संयम नियमित अभ्यास
भ्रमण का करता बुद्धि विकास।
प्रकृतिरत होते हैं मन, प्राण
उदित होता है आत्म प्रकाश ॥४॥
धृति, स्मृति, प्रज्ञा का परिवेश,
उठा करती उत्साह उमंग।
तेज तन में भरता भरपूर,
तरल होती सन्तोष तरंग ॥५॥
मुदित मन होता, गतिमय गात,
बुद्धि करती है अध्यवसाय[2]।
कर्मरत जीवन बनता धन्य,
भ्रमण से होता कर्मठ काय[3] ॥६॥
चंक्रमण है जीवन का चिह्न,
अलसता है जड़ता का नाम।
प्रगति करते होकर गतिशील,
टहलना जिनका दैनिक काम ॥७॥
स्वास्थ्य पाने का सीधा योग[4],
टहलने का नियमित संयोग।
चाहते यदि रहना नीरोग,
टहलिए करके मनोनियोग[5] ॥८॥"

—श्री वैद्य सुरेशचन्द्र पाराशरी
गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर।

[1]प्राणवायु (Oxygen), [2]निश्चय, [3]शरीर, [4]नुस्खा, [5]मन लगाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृश मनुष्यों के लिये परमौषधि–

तैल--मालिश

कविराज श्री धर्मदत्त चौधरी

शरीर को नीरोग एवं स्वस्थ और पुरुषत्व एवं सौंदर्य को कायम रखने के लिए पूर्वजों ने जो उपचार बताए हैं, उनमें तैलाभ्यंग को सर्वश्रेष्ठ कहा जाये, तो ठीक ही है।

रोगोपशमन के लिए पुरातन चिकित्सा पद्धति में वमन विरेचन, आदि पञ्चकर्म कहे गए हैं। उनमें तैलाभ्यंग को हम सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। विश्व के अधिक सभ्य कहे जाने वाले देश भी तैलाभ्यंग को किसी-न-किसी रूप में अवश्य अपनाते हैं, यह हम आगे कहेंगे।

साधारण भाषा में तैलाभ्यंग को तैल मालिश के नाम से पुकारते हैं।

'मालिश' चार प्रकार की कही जाती है—

(१) 'नरम-स्पर्श' अर्थात् हाथ की दो उंगलियों से धीरे-धीरे दबाना ताकि शरीर के उस अंग के भीतर तैल अपना प्रभाव डाल सके।

(२) 'थपकना' अर्थात् हाथ की हथेली से धीरे-धीरे तैल लगाना, ताकि त्वचा नरम हो सके।

(३) 'गूंधना' अर्थात् तैल लगाकर विशेष अंगों (स्नायु आदि) को उसी तरह मुट्ठियों से गूंधना, जिस तरह रोटी पकाने के लिए आटा गूंधा जाता है। इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि गूंधना उतना ही चाहिए कि शरीर को कष्ट न हो।

(४) 'दबाना' अर्थात् शरीर पर तैल लगा कर अंगों को दबाना, ताकि रोमकूपों के मार्ग से तैल शरीर के भीतर गहराई तक पहुँच सके।

तैलाभ्यंग से हमारा तात्पर्य तिलतैल आदि किसी भी औषध साधित तैल, घृत अथवा वसा से शरीर पर मालिश करना है।

आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भी मनुष्य तैलाभ्यंग को जानते थे और स्वास्थ्य तथा सौंदर्य के लिए यथायोग्य लाभ उठाते थे।

> न चाभिघाताभिहतं गात्रमभ्यङ्गसेविनः।
> विकारं भजतेऽत्यर्थं बलकर्मणि वा क्वचित् ॥
> सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
> भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पजर एव च ॥
>
> —चरक

तैल मालिश कृश मनुष्यों के लिए परम औषधि है, क्योंकि कृशता के कारण संकुचित हुई त्वचा में सूक्ष्म गुण के कारण रोममार्ग से शीघ्र प्रवेश करके बृंहण अर्थात् शरीर को पुष्ट करने वाली क्रिया कर देता है। इसलिए स्रोत शुद्ध होकर रस धातुओं में बृंहण क्रिया होने से बल, वर्ण और पुष्टि होती है। इसी प्रकार स्थूल मनुष्यों के शरीर में सूक्ष्म स्रोतों द्वारा प्रवेश करके अपने तीक्ष्ण और उष्ण गुण योग से मेद चर्बी के संचय को क्षीण करके कृश और बलवान् शरीर कर देता है। इसलिए तैल कृशों को पुष्ट और स्थूलों को कृश करके साम्यावस्था में लाने के लिए परम औषधि है। तैल मल को बांधने वाला, कृमियों को नष्ट करने वाला और औषधियों के संस्कार से सम्पूर्ण रोगों के नाश करने वाला हो जाता है।

> कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च।
> बद्धविट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वदोषजित् ॥
>
> —वाग्भट

भारतवर्ष में छः ऋतु एक वर्ष में होती हैं। तैलाभ्यंग हेमन्त अथवा शिशिर और वसन्त में लाभप्रद है। परन्तु प्रतिदिन अभ्यास करने वालों अथवा मल्लयुद्ध (कुश्ती) लड़ने वालों के लिए कभी तैल मालिश बर्जित नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन वैज्ञानिक तथा अन्य देश भारत की इस पद्धति को किस प्रकार अपनाए हुए हैं, हम यह स्पष्ट करते हैं।

विश्व स्वास्थ्य परिषद् के प्रधान डा० रिचमान ने अपनी रिपोर्ट सन् १६३२ में लिखा है कि "चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास बतलाता है कि आर्य सभ्यता के पूर्व भी भारतवर्ष के आदि निवासी तैलाभ्यङ्ग के लाभ को जानते थे जिसके अनुमोदन में आयुर्वेद शास्त्रों के कई सबूत मिलते हैं।,,

यूनान और रोम का इतिहास भी इस बात को स्पष्ट कर रहा है कि वहां के लोग भी इस बात को जानते थे। वहां की स्त्रियां तैलाभ्यंग से अपने शरीर को स्वस्थ और पुष्ट बनाती थीं। कहा जाता है कि पुराने समय में विवाह के समय स्त्री वालों की ओर से जो परिचारिकाएँ जाती थीं उन्हें तैलाभ्यंग का ढंग अच्छा आता था। (भारतवर्ष में उबटन आदि मलने की प्रथा विवाह से पूर्व अब भी है।) यूनानी स्त्रियों का विश्वास है कि मुख, कान, हाथ और कमर पर तैलाभ्यंग से युवावस्था बनी रहती है। वहां अब भी धनी घरानों में तैलाभ्यङ्ग के लिए परिचारिकाएँ रहती हैं।

अनेक देशों में तैलाभ्याङ्ग 'हमामों' के रूप में चल पड़ा है। वहां हमाम में जाते ही परिचारक-परिचारिकाएँ सब शरीर पर प्रथम तैलाभ्यङ्ग करते हैं, तब स्नानादि होता है। इटली, फ्रांस, टर्की, अरब आदि देशों में हमाम-प्रथा सर्वश्रेष्ठ है। वहां यात्रा में भी हमाम में ही तैलाभ्यङ्ग स्नानादि होता है। जिस तरह अब भारत में खेती का काम, यूरोप में कारखानों का काम और अमरीका में होटलों को अपनाया जा रहा है, उसी तरह इन प्रदेशों में हमामों की प्रशंसा सुनी जाती है। कई रोगों की चिकित्सा भी वहीं हो जाती है।

यूरोप, इटली और जर्मनी में रणभूमि से लौटा हुआ सिपाही हमामों में जाकर अपने श्रम को तैलाभ्यंगादि से दूर करता था। अफ्रीका के यवन भी आज से ३००० वर्ष पूर्व तैलाभ्यङ्ग के लाभ को जानते थे। विवाह के एक मास पूर्व पुरुष तया स्त्री को तैलाभ्यङ्ग किया जाता था। उनका निश्चय था कि हेना (मालिश) करने से सौंदर्य तथा पुरुषत्व बढ़ता है। मैडागास्कर टापू में अशिक्षित लोग भी आज से १००० वर्ष पूर्व रोगी को रक्तवृद्धि के लिये तैलाभ्यङ्ग ही करते थे।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस कार्य के लिये कैप्टन कुक का नाम सर्व प्रथम लिया है। तैलाभ्यङ्ग के विज्ञान की गवेषणा कै. कुक ने फिर से की है। एक बार कैप्टन साहब किसी टापू में थे कि वहां आपको अर्दित रोग हो गया। वहां आपके पास यूनानी मल्लाह था जिसने तैलाभ्यङ्ग से आपको स्वस्थ बना दिया तब से आप की श्रद्धा इस ओर हो गई।

कै. कुक के पश्चात् इसी तरह सन् १८६० में श्री स्कार ने पेरिस में इसी विषय पर एक व्याख्यान दिया जिससे डाक्टरों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। तत्पश्चात् सन् १८७२ में जर्मनी के वैज्ञानिक डा० सी० जी० ने एक पत्र तैलाभ्यङ्ग विषय पर पढ़ा जिसमें बताया कि प्राकृतिक चादर (त्वचा) को स्वच्छ तथा सुन्दर बनाने के लिये तैलाभ्यंग रूपी धोबी की आवश्यकता है। आपका कहना है कि ४५ प्रतिशत रोग तो केवल मलिन त्वचा के कारण होते हैं। तैलाभ्यंग करते रहने से पहले तो कोई रोग नहीं होता और यदि कोई पहले का हुआ हो तो वह दूर हो जाता है।

सन् १६२६ के विश्व-मैडीकल-अधिवेशन के प्रधान डा० सर औलसर ने अपने भाषण में कहा था कि तैलाभ्यंग चिकित्सा का भिन्न विभाग है। यह चिकित्सा प्राकृतिक है इसलिये अन्य चिकित्साओं की भांति इसमें हानि नहीं होती। इससे स्वस्थ मनुष्य को सौंदर्य और रोगी को स्वस्थता मिलती है।

गत वर्ष इंगेबर्ग नीमांड एण्डर्सन नामक ४५ वर्षीय जर्मन महिला डाक्टर ने नखराग (नेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालिश) अधर-राग (लिपस्टिक) आंखों की पलकों को रंगने की काली पेंसिल तथा अन्य सौंदर्य प्रसाधनों के हानिकारक प्रभाव के विरुद्ध जर्मन महिलाओं तथा युवतियों को कड़ी चेतावनी दी है। उस महिला डाक्टर ने बताया है कि आधुनिक फैसन कितने ही अच्छे क्यों न लगते हों, किन्तु उनसे काफी हानि हो सकती है। अनेक महिलाओं और लड़कियों को अपने मूल आकर्षण का मूल्य बाद में भद्दी और खुरदरी चमड़ी से तथा विविध रोगों से चुकाना पड़ता है। साधारणतया सौंदर्य प्रसाधनों से होने वाली बीमारियों के उन्होंने नाम गिनाये हैं— एक्जीमा, चर्मरोग पलकों के रोग, दृष्टि का धुंधलापन, श्लेष्मिक झिल्ली का प्रदाह और दमा। आगे चल कर आपने कहा है कि बरमोगट तैल वाली सुगन्धियां, जिन्हें महिलाएं प्रायः अपना चेहरा साफ करने के लिये प्रयुक्त करती हैं उनसे केवल त्वचा के रोग ही नहीं होते, किन्तु उनकी गंध वाली श्वास भीतर जाने से दमा (श्वास रोग) भी हो जाता है। बहुत लोग यह नहीं जानते कि 'चिलोसिसे' नामक एक अन्य त्वचा रोग लिपिस्टिक से ही होता है। पाउडरों की त्वचा पर होने वाली बुरी प्रतिक्रिया का कारण उनकी सुगन्धि होती है।

डा० नीमांड महोदया ने आधुनिक हारों कंगनों झुमकों आदि आभूषणों तथा छातों, छड़ियों के हैंडिलों, कमर की पेटियों, घड़ी के फीते आदि को जिनमें प्लास्टिक अदि का प्रयोग होता है, हानिकर बताया है। आपका अभिप्राय है कि शरीर और विशेषकर त्वचा में ऐसी वस्तुओं के अधिक सम्पर्क को सहन करने की शक्ति नहीं है। यदि तैलाभ्यंग द्वारा त्वचा में बल हो अथवा दृढ़ता हो तो इन नुमायसी वस्तुओं का प्रभाव शरीर पर नहीं होता।

प्लास्टिक सर्जरी के प्रसिद्ध विद्वान डा० लैक्सर म्यूनिच विश्वविद्यालय के इसी विभाग के प्रधान हैं। उन्होंने सन् १९३३ में एक व्याख्यान बर्लिन विश्वविद्यालय के वार्षिक अधिवेशन में दिया था कि संसार में कुरूप होकर जीवित रहना व्यर्थ है। जहां प्रकृति भूल करती है, वहां इस भूल सुधार का काम विज्ञान करता है। विज्ञान और प्रकृति को भिन्न भिन्न मानना भूल है। हिन्दू तो अपना विज्ञान अर्थात् वेद प्राकृतिक ही मानते हैं। परन्तु डा० महोदय का विश्वास है कि अंग की प्राकृतिक क्षति अथवा कुरूपता भी तैलाभ्यंग से ठीक हो जाती है, जिसे हम असाध्य नहीं तो याप्य जरूर कहते हैं। आप कहते हैं कि प्लास्टिक सर्जरी से मनुष्य के शरीर की त्रुटियां पूरी होती हैं। यदि यह कहा जाय कि प्लास्टिक सर्जरी और तैलाभ्यंग परस्पर बहनें हैं तो मिथ्या न होगा।

अब भारत में भी, ऐलोपैथी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भी तैलाभ्यंग के क्रम को मानने लगे हैं। निखिल भारतीय नवम् ओरियंटल कांफ्रेंस में प्रधान पद से भाषण देते हुए डा० रविवर्मा ने कहा "स्नेह क्रिया के विषय में किराला (भारत का एक जिला) को यह गर्व है कि वह इस क्रिया में सर्वाग्रगण्य है। यह क्रम यहां बहुत प्रचलित है। कायाकल्प, रसायन और नाड़ियों की शिथिलता में विशेषकर इसका महत्व है। औषधि सिद्ध स्नेह से सर्व शरीर पर तथा शिथिल अङ्ग पर वैज्ञानिक ढंग से मालिश की जाती है और उसकी पुष्टि होती है। मैंने इस कार्य का रक्तभार (ब्लडप्रैसर) पर भी बहुत प्रभाव देखा है। आदि

आयुर्वेद मतानुसार महर्षि चरक तथा कुछ अन्य अनुभवी लोगों के मत हम ऊपर लिख आये हैं। महर्षि वाग्भट्ट ने लिखा है कि स्निग्ध पुरुष तैल लगे हुए चिकने और स्वेदित अङ्ग को यदि वे टेढ़े, अकड़े हुए, पीड़ायुक्त भी हों उनको सुखपूर्वक नवा कर सीधे कर सकते हैं। क्योंकि सूखे हुए काष्ठ को चिकना कर स्वेदित किया जावे तब वह काष्ठ भी जैसे चाहें मोड़ा जा सकता है तो जीवितपुरुष के अङ्गों का तो कहना ही क्या है।

इसी प्रकार लिखा है कि तैल कण्डूनाशक, कान्तिवर्धक, मलवृद्धिकारक, व्रणरोपक है। बालकों तथा वृद्धों के लिये भी तैलाभ्यङ्ग पथ्य है। प्रतिदिन तैलाभ्यङ्ग से पुरुष को शिरःशूल नहीं होता, खालित्य और न पालित्य ही होता है। शिर के कपालों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यङ्ग से बल की विशेष अभिवृद्धि होती है, सिर पर तैल की मालिस से बाल काले तथा लम्बे होते हैं और इन्द्रियां प्रसन्न होती हैं। प्रतिदिन कानों में तैल लगाने से वातज कर्ण रोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ प्रभृति रोग नहीं होते और उच्चैः श्रुति तथा वधिरता भी नहीं होती।

पैरों पर तैलाभ्यङ्ग करने से पैरों का खरत्व, स्तब्धता, रूक्षता, श्रम तथा पैरों का सो जाना(सुप्तावस्था) शीघ्र ही शान्त होते हैं। इससे गृध्रसी प्रभृति वातरोग नहीं होते।

स्पर्श ज्ञान अथवा स्पर्शेन्द्रिय त्वचा में आश्रित है और अभ्यंग त्वचा के लिए हितकर है अतः तैलाभ्यङ्ग करना हितकर है।

आयुर्वेद में तैलाभ्यङ्ग करने के लिए विशेष रोगों के लिए विशेष-विशेष स्नेह अथवा तैल हैं। फिर देश कालानुसार उनके अनेक भेद हैं। विशेष अंगों के लिए विशेष औषधि सिद्ध तैल बताये गए हैं यथा—

सर्व प्रकार के ज्वर के लिये अंगार तैल, लाक्षादि तथा जात्यादि तेल। कर्णनाद, कर्णबाधिर्य आदि के लिए अपामार्गक्षार, बिल्व तथा क्षार तेल। इन्द्र लुप्त के लिए करञ्जतैल, लोमशातन के लिए करवीर तैल। शिरोरोग पर अभ्यङ्गार्थ भृंगराज, आमला, केशराज अथवा लक्ष्मीविलास तैल। वातरोगों के लिए महानारायण, रसोन अथवा विषगर्भ तैल। शोथ के लिये पुनर्नवादि, शोथशार्दूल तैल। यक्ष्मा रोग में चन्दनादि तैल उत्तम हैं। कुष्ठ के लिये गुंजामूलादि, मरिचादि तथा सिन्दूरादि तैल अच्छे हैं। सूखा रोग के लिये इरिमेदादि तैल श्रेष्ठ है। अर्श पर कासीसादि तैल और कृमिरोग में विडङ्गादि तेल लाभप्रद हैं। स्थूलीकरण के लिये त्रिफलादि तथा अश्मरी रोग में वरुणादि तेल उत्तम कार्य करते हैं। गंडमाला रोग पर लांगली, इरिमेद और अजमोदादि काम आते हैं। इसी प्रकार मनुष्य शरीर के सभी रोगों के लिये शास्त्रों में तेलों के प्रयोग लिखे हैं। अर्दित रोग, हनुस्तम्भ तथा पक्षाघातपर बातहरस्नेह अथवा अर्धांगहर तेल जगत में प्रसिद्ध हैं। हमने संक्षेप में कुछ तैलों पर प्रकाश डाल दिया है।

सारांश यह है कि नित्य अभ्यङ्ग करने वाला पुरुष कोमल, स्पर्श तथा परिनष्ट अंगों से युक्त बलवान और प्रिय आकृति वाला हो जाता है। इसके शरीर पर वृद्धावस्था के लक्षण प्रायः प्रकट नहीं होते और सौंदर्य बना रहता है।

—श्री कविराज धर्मदत्त चौधरी वै० शा०
आयुर्वेदाचार्य
१२ बी.। १८ सी., चंडीगढ़।

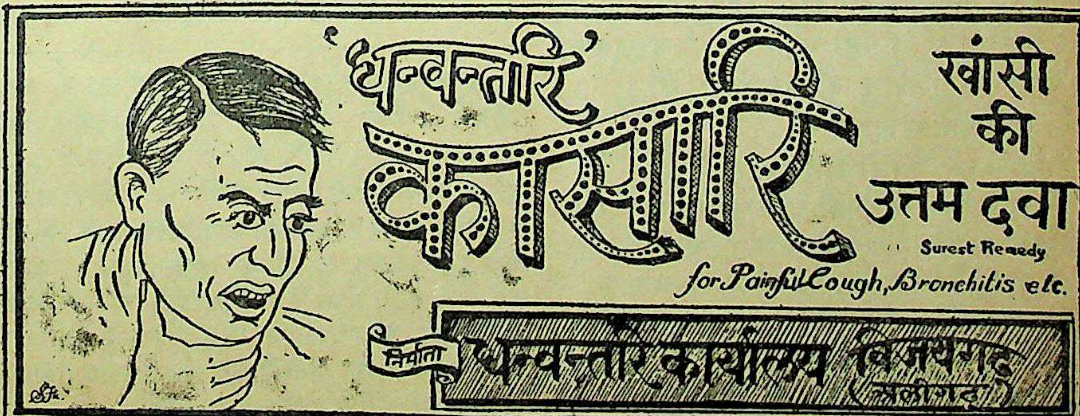

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी सफल चिकित्सा-विधि

[१]

सन्निपात चिकित्सानुभव

वैद्य रामभरोस रामावतार गुप्ता
फालेगांव (यवतमाल)

(१) रुग्णा का नाम—सरीफा बाई, पति नुरा भाई मुसलमान, आयु ३५ साल, निवास स्थान फालेगांव (यवतमाल), दिनांक १६-४-६१ ।

रुग्णा को बसंत ऋतु में एक सप्ताह से प्रतिश्याय ज्वर, खांसी का विकार था । उसे वातपित्त प्रकोपित कफज्वर रहा, जिसका इलाज आधुनिक डाक्टरों ने ऐलोपथिक पेटेंट औषधि, इन्जेक्शन तथा टेबलेट्स द्वारा किया था । परन्तु परिणाम में व्याधि भयङ्कर घोर रूप से उपस्थित हुई । रुग्णा का पति शे० नुरा भाई, शे० फरीद भाई के साथ हमारे पास आया । उन्होंने कहा हमारे यहां रुग्णा की हालत खराब है । आप जल्दी चलिये । उन्हीं के साथ में घर गया और रुग्णा को देखा, हालत यह थी—

डाक्टर ने इन्जेक्शनादि लगाए, टेबलेट सेवन कराए थे । तदुपरांत रुग्णा को जोरों से अत्यन्त वमन (कै) हुए । २-३ दस्त भी हुए थे और स्वेदाधिक्य होते हुए सर्व शरीर हिम (बर्फ) तुल्य ठण्डा पड़कर निस्तेज बेहोश पड़ा था, नेत्रों में डबडबाता हुआ पानी बहता था । शीतांगावस्था थी ।

सीतांग सन्निपात के लक्षण—

हिम सदृश शरीरो वेपथु श्वास हिक्का-
शिथिलित सकलाङ्गों खिन्ननादोम्रतापः ।
क्लमथु दवथु कासच्छर्द्य तीसार युक्त-
स्त्वरित मरण हेतुः शीतगात्रः प्रभावात् ॥

—मा० नि० १४

चिकित्सा में—रुग्णा के वमन, दस्त और स्वेदाधिक्य शीतांगावस्था निवारणार्थ और आमाशयस्थ दोषों के पाचनार्थ जठराग्नि प्रदीपक प्रयोग किया ।

चिकित्सा प्रयोग—

(१) संजीवनी वटी (शा. ध.) १+१+१ तीन मात्रा मधु के साथ १५ मिनट के अन्तर से ।

(२) स्वर्ण सूतशेखर+अभ्रक भस्म–२ मात्रा मधु से आधा आधा घण्टे के अन्तर से ।

(३) कायाग्नि (त्वचा की गर्मी) स्थापनार्थ सक (बालुका स्वेद) किया ।

(४) कल्पतरु रस का नस्य दिया ।

परिणाम—एक घण्टे में वमन नहीं हुए तथा दस्त भी नहीं आया, प्रकृति ठीक रही, कुछ गर्मी प्राप्त हुई ।

मात्रा प्रयोग—(१) वृहत कस्तूरी भैरव (भै. र.) आधे आधे घण्टे से १-१ मात्रा मधु, अद्रक रस

(२) रससिंदूर, अभ्रक भस्म, पिप्पली चूर्ण (मिश्रण) १-१ मात्रा मधु, अर्द्रक रस ।

(३) म. वातविध्वंस रस १ मात्रा मधु के साथ ।

(४) सेक--ईंटों का दरदरा चूर्ण गरम कर पोटली बांध पुनः गरम कर सेक किया ❀

परिणाम—इस प्रयोग से रात को तीन बजे शरीर की गरमी ९८ प्राप्त हुई । स्वेदस्राव काफी तादाद में कम हुआ, परन्तु स्वेद चालू रहा था । हालत ठीक देख कुछ संतोष हुआ ।

❀ स्वेदस्राव रोकने के लिये उध्वू्लन का व्यवहार होता है । किंतु उध्वू्लन प्रयोग अनुकूल नहीं जंचता जो हमने किया नहीं । उध्वू्लन से रोमछिद्र अवरुद्ध होकर स्वेदस्राव (पसीना) रोकने का कार्य होता है । सो स्वेदस्राव शरीर के क्लेदन कार्याधिक्य बढ़ने से होती है और वह क्लेदक कार्याधिक्य (कफदोषका) कार्य जब तक कम नहीं होता है तो रोमछिद्रों को अवरुद्ध कर देने से वह क्षुब्ध प्रकोपित स्वेद अवरुद्ध रहके अनेक रोगोत्पादक कारण होता है, इस कारण ठीक नहीं । जैसे शास्त्र में कहा भी है—'स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम्' इत्यादि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दिन प्रातः सूर्यनारायण के दर्शन हुये, रुग्णा का पति प्रफुल्लित होता आया और जाकर रुग्णा को देखा तो तापमान ९९-९९।। मिला। स्वेद-स्राव होता था। प्रमाण कम रहा (वमन, दस्त नहीं थे) रुग्णा निस्तेज सुस्त बेहोश पड़ी थी परन्तु उसे दर्द, पीड़ा का अनुभव होता था। सिर भारी, शरीर ठण्डा बतलाया था।

औषधि प्रयोग—

(१) कस्तूरी भैरव (बृहत) प्रातः सायं और रात्रि में एक एक मात्रा मधु से।

(२) रससिंदूर, अभ्रक भस्म (श. पु.) बीच के समय में १-१ मात्रा मधु से।

(३) महावात विध्वंस रस प्रातः और सायं १-१ मात्रा मधु के साथ।

(४) दशमूलारिष्ट १।। तोला समभाग उष्णोदक के साथ ३-४ बार पिलाया। तीसरे दिन उपरोक्त प्रयोग ही रखा (क्रमशः अनुकूल लाभ हुआ) चौथे दिन प्रकृति समाधानकारक देखा, तापांश ९७-९७।। मिला और रुग्णा होश में थी परन्तु (भूख) क्षुधा का अभाव होने से अन्न नहीं दिया गया।

औषधि प्रयोग—

(१) सुवर्ण मालती वसंत (बृहत) नं. १।।। माशा, अभ्रक भस्म (श. पु.) १।। माशा, पिपरी चूर्ण १।।-२ माशे, सब मिलाकर मिश्रण करके ६ पुड़ियां बनाई और तीन दिन में प्रातः सायं १-१ पुड़िया मधु से दीं।

(२) वातविध्वंस रस १-१ मात्रा मधु के साथ बीच के समय और रात को दिया।

(३) दशमूलारिष्ट समभाग (जल) उष्णोदक के साथ २-३ बार पीने को कहा।

परिणाम–इतने प्रयोग से प्रकृति समाधानकारक होकर क्षुधा प्राप्त होती गई। भगवान की दया से रुग्णा स्वस्थ हुई। और स्वस्थता के विचार से शक्तिवर्धक, धात्वाग्नि स्थापक धातुपोषण के लिये–

(१) सुवर्ण मालती वसंत (बृहत) १।। माशा, अभ्रक भस्म (श. पु.) १।। माशा, पिपरी चूर्ण १।। माशा, सर्व मिश्रण की ७ पुड़िया बना दीं। प्रातःसायं ७ पुड़िया मधु से देने को कहा।

(२) द्राक्षारिष्ट मात्रा १।।–२ तोला समभाग जल से दो बार लेने को कहा।

नोट—पूर्ण क्षुधा प्राप्ति पर्यंत भूख लगने तक याने ६-७ दिन अन्न नहीं दिया, बाद में भूख लगने पर अन्न चालू किया गया। लंघन समय में सिर्फ चाय, काफी, उष्णपेय दिया था। यह रुग्णा अब भी स्वस्थ (तन्दुरुस्त) है। भगवान की दया से आरोग्य प्राप्त हुआ।

एक शीतगात्र का रोगी

(कुछ वर्ष पूर्व)

शीतांग के और भी रोगी हैं। उन रोगियों का प्रसङ्ग प्रस्तुत करने योग्य है किंतु विस्तार भय से पूर्ण वर्णन न कर संक्षेप में दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है।

यह रोगी पहिले ग्रहणी विकार ग्रस्त था। उसको कुपथ्य सेवन से वर्षाकाल में आमदोष से ज्वरोत्पत्ति हुई और आमदोषों का विबन्ध अफारा होकर आध्मानयुक्त दशा में कफदोष प्रबल बढ़कर बोलना (बाक) बन्द होते हुए सर्व शरीर हिम तुल्य ठण्डा पड़ गया, कण्ठ से कफ की घरघराहट थी, परन्तु स्वेद थोड़ा था। शरीर ठण्डा पड़ा था, नाड़ी अतिक्षीण थी, कठिनता से ज्ञात होती थी।

चिकित्सा प्रयोग–

रोगी को आमदोष पाचनार्थ, अग्नि दीपनार्थ और वायु अनुलोमनार्थ, वातनाड़ी प्रसारक—

(१) अग्निकुमार रस २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, एकत्र मिला के अद्रक के रस के साथ दिया।

उपयोग—आमदोष, पाचक, वायु अनुलोमक।

(२) कालकूट रस १।। रत्ती की एक मात्रा, मधु और अद्रक रस के साथ दी (इस एक मात्रा से आधः एक घण्टे में वातनाड़ी का प्रसार होकर बोलने का कार्य हुआ)।

(३) रस सिंदूर, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, पिपरी का चूर्ण सब मिलाकर १-१ मात्रा मधु से दिया गया था। हर रोज जरूरत के अनुसार १-२-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ मात्रा सेवन करायी गईं।

उपयोग—कण्ठस्थ कफदोष हटाकर श्वासयन्त्र, हृदय को बलकारक एवं वायुशोधक प्रयोग होता है।

परिणाम—कालकूट रस की एक मात्रा से आधा एक घण्टे में रोगी बोलने लग गया। अतः फल प्राप्ति होने से वह बन्द कर दिया।

अग्निकुमार रस, शंखभस्म यह ४-६ मात्रा आधा एक घण्टे में सेवन कराने से आमदोषों का विबन्ध नष्ट होकर वायु अनुलोम हुआ, परन्तु शीतगात्रता, नाड़ीलुप्तता एवं कफदोष नष्ट होना बाकी रहा। इसलिए रससिंदूर, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, पिप्पली चूर्ण, यह मधु से उचित मात्रा में २-३ बार ३-४ दिन सेवन कराया। भगवान की दया से आरोग्य लाभ हुआ।

वक्तव्य—आमदोषों के विबन्ध में भूलकर भी संशोधनार्थ विरेचन (वमन) नहीं देना। आमदोषों में विरेचनादि संशोधन से भयङ्कर घोर रूप आमदोषोपद्रव उपस्थित होकर भयानक हानि होने का मौका आता है, घातक है, आमदोष में विरेचन नहीं देना। यथोक्तं वागभट्टाचार्य—

पाययेद्दोष हरणं मोहादाम ज्वरे तु यः।
प्रसुप्तं कृष्ण सर्पं स्तु कराग्रेण परामृशेत्॥१॥
—वाग्भट चि. १-१०३

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम्।
—वाग्भट चि. १-१०४

श्री धन्वन्तरि भगवान की कृपा से आयुर्वेद चिकित्सा के अनेक प्रसंग पर यथोचित अनुभव चमत्कार दिखाई देते हैं। परन्तु आयुर्वेद के गम्भीर सिद्धांतों का विवेकपूर्ण पालन करना आवश्यक होता है।

—श्री वैद्य रामभरोसे रामावतार गुप्त आयु. वि.
फालेगांव (यवतमाल) विदर्भ।

[२]

योगराज गूगल का चमत्कार

श्री डा० श्यामदास प्रपन्नाश्रमी दौगवां

योगराज गुग्गुल की वायु-वात रोगों के क्षेत्रों में जो कार्यकारिता है उसके विषय में प्रत्येक चिकित्सक को तो मालूम है ही परन्तु आज मैं एक ऐसा अनुभव आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं—जिससे इस साधारण प्रभाव दिखाने वाले प्रयोग पर आपका ध्यान सदैव जागरूक रहे।

रोगिनी—नाम जैसन्ती आयु ३० वर्ष की, तारीख २१ नवम्बर १९ ६० ई० को मेरे औषधालय में लाई गई। मालूम हुआ करीब १५/१६ दिन पहले एक रात्रि को इसके पेट में अचानक ही असहनीय यन्त्रणा और उससे बेहोशी होगई जो पसीना व घबराहट के साथ शुरू हुई थी। नजदीक के एक चिकित्सक को बुला उसे दिखलाया तो उस चिकित्सक ने बतलाया कि इस रोगिनी की आंतें खराब हैं। यानी आंतों की टी० बी० हो गई है। यह कह कर उसने रोगिनी के पेट पर एक पलास्तर जो लम्बाई-चौड़ाई में आठ दस इंच होगा चढ़ाया और कुछ दवाइयां खाने पीने को दीं। लगातार आठ-दस रोज उसका ही इलाज चलता रहा पर मर्ज बढ़ता ही गया। इसके बाद दूसरे एक वैद्य जी का भी इलाज कई दिनों से चलने के बाद जब उससे कोई लाभ नजर नहीं आया तो आपके पास आया हूं। इसके बाद मैंने रोगिनी को अच्छी तरह जांच करके बताया कि यह न तो टी० बी० है और न आंतों की खराबी। यह है "अन्त्र पुच्छप्रदाह" यानी एपेंडिसाइटिस। मैंने योगराज की गोलियां गर्म जल के साथ खाने को दीं और धतूरे के पत्रों का स्वरस १ तोला, अदरख का स्वरस १ तोला, एलुआ आधा तोला और गौमूत्र १ तोला इन सबको मिट्टी के बर्तन में गरम करके सुहाता लेप कई बार लगाने को आदेश दिया। रोगिनी को बिदा करते समय एक खुराक एरन्ड तैल कोष्ठ साफ होने के लिए सेवन कराया गया।

दूसरे रोज रोगिनी की हालत पूर्वापेक्षा सन्तोषजनक मालूम हुई। यन्त्रणा और घबराहट बन्द होगई थी। पीड़ित स्थान पर दर्द और सूजन अवश्य थी। आज भी तीन गोलियां योगराज की दी गईं। अनुपान जल के स्थान पर पुनर्नवारिष्ट दिया। प्रलेप पूर्ववत् रहा। लगातार पांच दिन इसी क्रम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113418

योगराज का प्रयोग चलता रहा। सातवें दिन रोग के सारे उपसर्ग गायब हो चुकने से वह बन्द कर दी गई और निर्बलता व रक्ताल्पता के लिए लोहासव व पिप्पल्यासव भोजन के बाद एक खुराक तथा पुनर्नवा मंडूर सुबह शाम मधु के साथ कम से कम दो सप्ताह के लिए इस्तेमाल करने का आदेश दिया गया।

—श्री. डा० श्यामदास प्रपन्नाश्रमी आयुर्वेदाचार्य
सर्वोदय सेवा आश्रम, औषधालय, दोगवां
पोस्ट— कसेर कलां (बुलन्दशहर)

[३]

वातज उदररोग एवं उदरशूल

श्री पं० रामकुमार मिश्र G. A. M. S.

अनतिकाल में अपच की शिकायत दैनिक चर्या जैसा विषय बन चुकी है। इसका मूल कारण है दूषित भोजन मिथ्या आहार-विहार शोक चिन्ता, अधिक मानसिक कार्य, मल आदि वेगों का धारण, अति मैथुन, अधिक भोजन, रात्रि जागरण, अधिक ठण्डा भोजन, वातवर्धक पदार्थों का अधिक सेवन, अंकुरित अन्न का सेवन इत्यादि।

उपर्युक्त कारणों में से अधिक चिंता एवं अधिक मानसिक कार्य अंशिक रूप से अपरिहार्य हो सकते हैं। किन्तु अन्य कारण तो हमारे द्वारा निर्मित शरीर में व्याधियों के आगमन के लिए अशुभ आमंत्रण हैं। चिकित्सा करने के पूर्व यह भी विचारणीय है कि जब तक अमृततुल्य लाभकारी नियमों का पालन नहीं होता तब तक चिकित्सा में पूर्ण सफलता पाना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। मैं इस रोग से पीड़ित एक रोगी की सफल चिकित्सा कर चुका हूँ जो सांघातिक रूप से वातज उदररोग एवं उदर शूल से पीड़ित था। उसका विवरण प्रस्तुत है—

आज से लगभग पांच छः वर्ष पहले उक्त रोगी आया। उसकी आयु ३७ वर्ष के लगभग थी। उसने बहुत दिनों तक होमियोपैथी एलोपैथी आदि की चिकित्साएं कराई थीं किन्तु इनसे उसे भला नहीं हुआ। उसका पेट बराबर कठोर रहता था और पेट में गुड़गुड़ाहट रहती थी। नाभि कुक्षि में वायु का अधिक संचार होता था। मल शुष्क हो कर अपान वायु का अवरोध हो जाता था। पेट में बराबर मीठा-मीठा और कभी कभी बहुत तेज दर्द हो जाता था। पेट कभी फूल जाता था तथा कभी कम हो जाता था। भूख नहीं लगती थी। पेट फूलने पर ठोकने से मशक पर ठोकने जैसा शब्द होता था। वह बहुत दुर्बल हो गया था और चलने फिरने में कमजोरी का अनुभव करता था।

मैंने उसे अनेक दवाएं दीं किंतु उसका कुछ संतोषजनक परिणाम नहीं निकला। अतः निम्नांकित चिकित्सा से उसे लाभ हुआ—

पहले दिन मैंने उसे रात में सोते समय आधा औंस नारायण तैल गाय के दूध में डाल कर पिलाया लेकिन इससे विशेष लाभ नहीं हुआ, अर्थात्—पूर्णतः मल साफ नहीं हुआ। तब एक रोज ठहरकर तीसरे दिन एक औंस नारायण तैल का उपर्युक्त विधि से पान कराया फिर भी जितना चाहिए था उतना लाभ नहीं हुआ। तब मैं चिन्तित हुआ कि वायुशामक स्निग्ध औषध-प्रयोग से विरेचन पूर्णतः नहीं हो रहा है और रूक्ष औषधि प्रयोग से वायु कुपित होगी। अंततः दूसरे दिन एक पाव गाय के दूध में एक पाव जल एवं आधा तोला अमलतास की गुद्दी डालकर दूध को सिद्ध कराया। पानी के पूर्णतः जल जाने के बाद जब केवल दूध बच गया तो उसे छानकर उसमें आधा औंस नारायण तैल मिलाकर रात में सोने के समय पीने को दिया। इस बार सुबह चार-पांच बार कुछ काला, कुछ सफेद एवं मटमैले रंग और गुठलीदार तथा रेशायुक्त मल हुआ जिसमें अत्यंत दुर्गंध थी। इस क्रिया से रोगी को कुछ आराम मिला किंतु पेट का दर्द वैसे ही बना रहा। अनेक शूलनाशक दवाओं का प्रयोग किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ और कोष्ठबद्धता बराबर बनी रही। तब मैंने उसे चार-चार रत्ती शंख भस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दो-दो गोली अग्नितुण्डी वटी देकर ऊपर से आधा औंस कुमार्यासव और आधा औंस दशमूलारिष्ट मिलाकर समभाग जल देकर पिला दिया। ऐसे ही दिन रात में आरंभ में चार बार और आगे चलकर तीन बार दवा देता रहा। कोष्ठबद्धता होने पर सप्ताह में दो या तीन बार दूध, पानी, अमलतास और नारायण तैल का उपर्युक्त योग का सेवन कराता रहा। उक्त प्रयोगों से आशातीत सफलता मिली और दो सप्ताह में रोगी बिल्कुल अच्छा हो गया लेकिन मैंने दवा कुछ दिन बाद तक भी चलाई। इस दवा (शंख भस्म और अग्नितुण्डी आदि) ने पांच छः खुराक पड़ते ही अपना गुण दिखाया। पथ्य में वातवर्द्धक पदार्थों का परहेज रखा और रोगी को यथाशक्ति सुबह शाम टहलने को बताया। रोगी को इस बात की भी चेतावनी दे दी कि वह जहां तक हो सके, शुद्ध वायु का सेवन करे।

रोगी को ब्रह्मचर्य से रहने को कहा तथा दाल, लाल मिर्च, तेल, गरम मसाला आदि से परहेज रखने को कहा। पथ्य में पुराने चावल का भात, साबूदाना, बार्ली, परवल, पपीता, शलजम, मूली आदि खाने को कहा। मसाले में काली मिर्च, धनियां और जीरा अल्प मात्रा में डालने को बताया। कागजी नीबू का भी सेवन करता रहा।

उक्त व्याधि से पीड़ित मुझे कई रोगी मिले और उपरोक्त विधि से चिकित्सा करने पर मुझे बराबर पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इसी प्रसंग में मैं अचानक होने वाले वातज उदर शूल की अनुभूत सफल चिकित्सा का भी उल्लेख कर देना चाहता हूं। उदरशूल से पीड़ित छटपटाते हुए ऐसे रोगियों को जिनकी पीड़ा और कराहट से पत्थर-हृदय भी पिघल जाय, मैंने निश्चयात्मक रूप से अविलम्ब आराम पहुंचाया है। ऐसे रोगियों को चार रत्ती शंख भस्म में दो गोली अग्नितुण्डी वटी डालकर आधा आधा औंस कुमार्यासव और दशमूलारिष्ट मिलाकर समभाग जल के साथ पुड़िया मिलाकर अनुपान कराया। इस दवा के एक या दो खुराक पड़ते ही रोगी के कठिन से कठिन वातज उदरशूल का निवारण होजाता है। अग्नितुण्डीवटी की मात्रा कभी कभी बढ़ाकर ३ गोली भी करदी जाती है। इस दवा का मैंने अब तक इस प्रकार के बीसियों रोगियों पर प्रयोग किया है और मुझे सफलता मिली है। कुछ रोगियों को दवा देते ही कै हो जाती है। ऐसी स्थिति में कै होने के बाद तुरन्त दवा की दूसरी खुराक दे देनी चाहिए। यदि कै दवा खिलाने के १०-१५ मिनट बाद हो तो दूसरी खुराक नियत समय पर ही दी जानी चाहिए। दवा आवश्यकतानुसार आधा घन्टे से एक घन्टे के अन्तर पर दी जानी चाहिए। वैद्य समाज से मेरा निवेदन है कि वातज उदर शूल में इस दवा का अवश्य प्रयोग करें जिससे आयुर्वेद के इस चमत्कार का प्रभाव जनता पर पड़े और आयुर्वेद की यश वृद्धि हो।

वैद्य समाज के ध्यान में यह बात ला देना आवश्यक समझता हूं कि शंख भस्म और अग्नितुण्डी वटी का निर्माण मैंने निम्नांकित विधि से किया है, जो आंशिक रूप से शास्त्रोक्त विधि से निर्मित औषध की अपेक्षा अधिक गुणकारी है—

शंख भस्म—शंख के टुकड़ों को लेकर कागजी नीबू के रस में तीन घंटे तक स्वेदन करके शुद्ध करें। इसके बाद टुकड़ों को निकाल कर फिर दूसरे कागजी नीबू के रस में डालकर पट दें। इसके बाद उन टुकडों को श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर कागजी नींबू के रस की तीन भावना दें। अब प्रयोग के निमित्त शंख भस्म प्रस्तुत हो गया।

अग्नितुण्डी वटी—शास्त्रोक्त विधि से अग्नितुण्डी के सभी औषधों को लेकर जम्बीरी नींबू की सात भावना दें और इसके उपरांत दशमूल-क्वाथ की सात भावना देकर वटी बनावें।

उपरोक्त विधि से निर्मित शंख भस्म और अग्नितुण्डी वटी मेरे औषधालय में प्रयुक्त होते हैं।

—श्री रामकुमार मिश्र *G.A.M.S.*
श्री सतानन्द आयुर्वेदिक औषधालय
चौक, डुमराँव (शाहाबाद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

जलोदर की सफल चिकित्सा

श्री. वैद्य मुरारीलाल शर्मा

नाम रोगी श्रीमती अमरसिंह जी धाकड़ ग्राम छोड़ी तहसील पचपाहड़ उम्र २४ वर्ष

उपरोक्त औरत के पेट में जलोदर की बीमारी होगई थी। इस रोगी का इलाज कोटा जैसे शहर के बड़े डाक्टरों से करवाया गया परन्तु रोगी का इस रोग से छुटकारा न हो सका। जिस समय रुग्णा मेरे पास लायी गई उसकी हालत बड़ी नाजुक थी। केवल हड्डियों का पिंजर थी। ज्वर बना रहता था। पेट में शूल था। मैंने रोगी को देखकर उसके रोग का निदान किया। मैंने विश्वास के साथ इस रोगी को निम्न औषधि दी व चिकित्सा चालू की —

स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती, शंख भस्म ४ रत्ती, बराटिका भस्म ३ रत्ती, गिलोय सत्व ६ रत्ती, शहद के साथ देकर ऊपर से काला जीरा १ तोला, त्रिफला चूर्ण १ तोला इसको पाव भर गौमूत्र में औटाकर आधापाव शेष रहने पर उतार छान ४ रत्ती यवक्षार मिलाकर दिया। भोजन के पश्चात् कुमार्यासव १॥ तोला, शीतल पर्पटी १॥ माशा व गरम जल १॥ तोला मिलाकर दिया। पेट पर इन्डोली का गौमूत्र के साथ पीस कर लेप करवाया गया। सात रोज बाद रोगी को पुनः मैंने देखा तो काफी संतोषजनक फायदा हुआ व रोगी के मर्ज लक्षण नष्ट हो गये। अब दवाई में निम्न परिवर्तन किया–

मंडूर भस्म, शंख भस्म, गिलोय सत्व, प्रातः व सायंकाल शहद के साथ देकर उपरोक्त क्वाथ दिया जिससे रोगी को पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया। पथ्य में केवल गेहूँ की रूखी रोटी व पत्तेदार सब्जी दी गई।

—श्री. पं० मुरारी लाल शर्मा वैभव,
भवानीमंडी (राजस्थान)

[५]

गर्भपात पर अनुभव

वैद्य आचार्य श्री हुकमचन्द प्रेमी

इसी वर्ष की घटना है २५ फरवरी को लगभग १० बजे मैं चिकित्सालय में रोगियों को औषध विवरण कर रहा था कि यकायक एक आगन्तुक ने घबड़ाते हुए कहा कि आपको ओवरशियर साहब बुला रहे हैं। कारण पूंछने पर बताया कि रात से उनकी श्रीमती जी बहुत ही बीमार हैं। शीघ्रता से कार्य से निवृत्त होकर मैं आवश्यक सामग्री से वहां पहुंचा।

रोगी की दशा–रोगिणी बेहोश थी, कुछ बता नहीं सकती थी, परिचारकों से पूंछने पर मालूम हुआ कि रोगिणी को करीब २॥-३ पाव खून निकल चुका है और ७ माह की सगर्भा है। खून अभी भी उग्र गति से जारी था, नाड़ी क्षीण होती जा रही थी। गर्भ यथास्थान टिका हुआ था। पेड़ू, उदर, कमर में दर्द का नामोनिशान नहीं था। मैंने चिकित्सा प्रारम्भ करदी।

चिकित्सा —

रक्त रोगामृत ३ माशा, गर्भपाल रस ४ गोली, मौक्तिक भस्म ४ रत्ती, सिद्ध मकरध्वज २ रत्ती मिलाकर शहद में दिया गया। ऊपर से केले की जड़ का रस ५ तोला पिलाया गया। २ घण्टे बाद रोगिणी कुछ बोलने लगी और खून भी कम प्रमाण में हो गया।

दूसरी मात्रा में–बोलवद्ध रस (लाल) ४ गोली, कामदुधा ४ रत्ती, गर्भपाल रस २ गोली शहद के साथ देकर ऊपर से उशीरासव २ तोला, चन्दनासव २ तोला सम जल के साथ दिया गया।

शाम को जब मैं रोगिणी को देखने गया तो रक्त की शिकायत बन्द हो गई थी किंतु वमन ने उग्ररूप धारण कर लिया था। विविध उपाय करने पर भी वमन शान्त नहीं हुई। आखिर मुझे एलोपैथी की शरण लेनी पड़ी। अतः एवोमीन २ टेबलेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने के बाद कोरामीन २ c. c. ग्लूकोज सेल्यूटोन विथ विटामिन :सी २५ c. c. शिरागत देने से आशातीत लाभ मिला।

रक्तरोगामृत प्रयोग--यह निम्न प्रयोग कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य जी का है और धन्वन्तरि के नारीरोगांक के १६७ पृष्ठ से लिया गया है-

गोदन्ती भस्म १ तोला, शुद्ध स्वर्ण गेरू ३ तोले, कच्ची फिटकरी २॥ तोले, गुडूची सत्व ५ तोले। सब को मिलाकर केले की जड़ के रस की ७ भावनायें दें। प्रयोग तैयार है। आचार्य जी ने नाम तो नहीं दिया किंतु मैंने अपने चिकित्सालय में इसका नाम रक्त रोगामृत रख दिया है।

-श्री. वैद्य आचार्य हुकम चन्द प्रेमी,
पठा-टीकमगढ़ (म० प्र०)

[६]

स्तन शोथ की सफल चिकित्सा

कबिराज श्री रामपदार्थसिंह G.A.M.S.

नाम रोगी-श्रीमती सुराज देवी, आयु २५ वर्ष

उपरोक्त रोगिणी की लगभग २ वर्ष की बच्ची का स्वर्गवास हो गया, दूध का उपभोगकर्त्ता न रहने से उसके स्तनों में दूध जमा होने लगा और जमा होते होते उसमें काफी कठोरता और सूजन आ गयी। साथ ही उसमें काफी जोर से पीड़ा होने लगी। रोगिणी को काफी बैचेनी आ गयी। स्पर्श किया तो वह काफी कठोर और तापयुक्त था। वह स्पर्श सह नहीं सकती थी। उसमें भारीपन काफी आ गया था जिससे वह खड़ा रहने में विशेष कष्ट अनुभव करती थी। मैं सोच रहा था कि यह विद्रधि का रूप लेकर ही रहेगा। अन्त में मुझे रोगिणी को डाक्टर के पास ले जाना ही होगा तब तक मैं गुप्तसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग के किसी योग का प्रयोग कर देख लूं। इस हेतु मैं इस विशेषांक को उलट मारा और पृष्ठ १२६ का प्रलेप चुना जो निम्न है--

योग -मूंग, जौ, गेहूं २॥-२॥ तोला जल के साथ पीसकर और जरा गर्मकर उस पीड़ित स्थान पर प्रलेप कर दिया। उससे लाभ नजर न आया। पुनः लेप पर विश्वास करते हुए वैद्य हरिदास कृत 'चिकित्सा चन्द्रोदय' पंचम भाग के श्लोक 'स्तन पाक हरं निम्ब तैल चुल्यं न चापरम्' का मनन कर पहले नीम तैल चुपड़ दिया। बाद में पूर्वोक्त लेप को ही जरा सा गर्म कर आधी अंगुल मोटा प्रलेप चढ़ाया। इस लेप से रोगिणी को काफी आराम मालूम पड़ा। आशा की विशेष झलक होने पर तीसरा लेप चढ़ाने का आदेश दिया।

इस लेप के चढ़ाने मात्र से ही रोगिणी के स्तन से दूध अपने आप बहने लगा। जो कार्य दुग्ध निकालने के यन्त्र द्वारा कठिनाई से होता था वह इस लेप से बड़ी सुगमता और अल्प व्यय से हो गया। उक्त श्लोक के आधार पर नीम तैल चुपड़ने को कहा तो इससे देखा कि इस तैल ने दूध को भी सुखा डाला।

—कविराज श्री रामपदारथ सिंह G.A.M.S
सु. पो. तेतरी (लखमनियां)

(७)

अति आर्तव की सफल चिकित्सा

श्री. द० रा० डायलकर

रोगी का नाम—सौ० कुंसुम डायलकर। मेरी पत्नी, गांव धानोरा गुरव, जिला अमरावती।

पूर्ववृत्त-रोगिणी को ३ दिन पहिले मासिक धर्म हुआ था। चौथे दिन से रक्तस्राव में अधिक वृद्धि हुई। रक्तस्राव इतना बढ़ गया कि साड़ी बदलना ही कठिन हो गया। मूर्च्छा भी आने लगी।

चिकित्सा—

प्रति मात्रा अडूसा के हरे पत्ते का स्वरस २ तोले, शहद १ माशा और इसी में १ रत्ती चंद्रकला रस मिलाकर देने लगा। (अडूसा को पत्ती नहीं मिले तो वांसावलेह लेना चाहिए)।

—शेषांश पृष्ठ ३७ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नों के उत्तर

लघु-इन्द्रिय जन्य नपुंसकता—

(भाग ३५ अंक ४ पृष्ठ ३२)

१—प्रयोग-अशुद्ध संखिया ३० तोला, दूध, पान का पत्ता।

निर्माण विधि—प्रथम संखिया का बारीक चूर्ण करके दूध (१ सेर) में मिला दें। दूध को जमा दें। जब दूध जम जाय उसका मक्खन (नवनीत) निकाल लें। तक्र को किसी गड्ढे में दबा दें।

प्रयोग विधि—उस नवनीत (मक्खन) को पान के पत्ते पर लगाकर पान को बीचों बीच दो हिस्से करदें। रोगी के लिंग के दायें बांयें चिपका दें। ध्यान रहे कि रोगी के लिंग के ऊपर नीचे की तरफ पान का पत्ता न लगे।

२१ दिन तक ब्रह्मचर्य रहे। २१ दिन बाद पट्टी को निकालें। अगर लिंग पर दाने-दाने दिखाई दें तो इलायची (छोटी) का चूर्ण बुरक दें।

यह योग उपरोक्त रोगी के लिए उत्तम है जिससे कि उसकी मैथुन शक्ति बढ़ेगी, लिंग में दृढ़ता रहेगी। —श्री श्रीकृष्ण बडोनी कम्पाउन्डर
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
गणाई गंगोली (पिथौरागढ़)

२–इन्द्रियपुष्टि तेल—सफेद कन्नेर की छाल, कुचला, धतूरा, मालकांगनी, अकरकरा, लोभान, बीर बहूटी, सूखे केंचुवे प्रत्येक ५-५ तोले लें। जव-कुट कर डालें और बादाम के तेल में घोटकर लुगदी बनालें और पाताल यंत्र से तेल बनाकर शीशी में रखलें।

सेवन विधि—४-६ बूंद तेल लेकर १ कटोरी में रखलें। पुनः रात को उंगली से लेकर सीवन सुपारी छोड़ गुप्तेन्द्रिय में १५ मिनट तक मालिश करें पुनः एरंड या धत्तूर पत्र उसमें बांध दें सुबह खोल दें। स्नान करते समय गुप्तेन्द्रिय में ठंडा जल नहीं लगना चाहिए। इस प्रकार १५ दिन तक करने से आपकी इन्द्री पूर्ववत् सख्त तथा दृढ़ हो जायगी।

—वैद्यराज श्री भण्डारीलाल बरही (जबलपुर)

धनुर्वातनाशक चिकित्सा—

(भाग ३५ अंक ४ पृष्ठ ६२ तथा अंक ७ पृष्ठ ५२)

१–मयूर अण्डत्वक पिष्टि—मयूर (मोर) के अण्डे में से बच्चा निकल जाने के बाद जो छिलके बचते हैं उन्हें लाकर साफ कर अच्छी प्रकार से पीस कर कपड़छन चूर्ण बना लें। यही मयूर अण्डत्वक पिष्टी हुई।

मात्रा—इसे ४ रत्ती से १॥ माशा तक की मात्रा रोगी के बलानुसार रसोनादि स्वरस १सेर॥ तोले के साथ रोगी को १ से ३ घंटे पर देते रहें। रोगी की हालत १-२ खुराक बाद ही सुधार पर आ जायगी।

रसोनादि स्वरस–छिलकारहित लहसुन ५ तो., अदरख ५ तोले, प्याज ५ तोले—तीनों को खरल में पीस छान कर स्वरस निकाल लें।

नोट—इस रसोनादिस्वरस को रोगी को देते समय १-२ तोला देशी घृत अथवा गौघृत पहले और बाद में अवश्य देना चाहिए। यह बात तीनों योगों में ध्यान रखनी चाहिये।

मात्रा १ से ३ तोला उक्त स्वरस घृत पान के बाद $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ रत्ती अफीम देवें तुरन्त लाभ होगा।

समीरगज केशरी रस—शुद्ध कुचला, शुद्ध अहिफेन। (अफीम में अद्रके स्वरस की ७ भावना देने से शुद्ध हो जाती है) काली मिर्च—

तीनों समान भाग लेकर पीस कपड़छनकर तीन दिन तक पान के स्वरस से पीसें और १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

गुण–यह अनेक प्रकार की वात व्याधियों को एवं स्नायु दौर्बल्य, रोग के बाद की कमजोरी को दोनों प्रकार के धनुर्वात को अनुपान भेद से नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। यहां पर धनुर्वात के लिए–१ से ४ गोली (१ से ४ रत्ती तक) बलाबल देख प्रथम घृतपान कराकर दें। गोली के ऊपर रसोनादि स्वरस १ से ३ तोला तक देवें और बाद में फिर १-२ तोला घृत पिलावें। १-२ घंटे बाद इसी प्रकार पुनः देवें। रोगी की हालत सुधार पर आते ही समीर गज केशरी रस की मात्रा हल्की करें, एवं रसोनादि स्वरस की मात्रा भी हल्की करें, परन्तु घृत, दूध एव हल्का भोजन देते रहें।

–श्री कान्तिलाल जैन वैद्य विशारद
धानमंडी, मंदसौर।

२–प्रात काल एक गोली महायोगराज गूगल लहसुन के रस और शहद में चटा कर ऊपर से दो तोला अर्कमूल और २ तोला अर्क दशमूल २ तोला अर्क रास्नादि मिलाकर पिला देवें। दो बजे मध्याह्न पश्चात् और शाम को सात बजे एकाङ्गवीर रस १ रत्ती, श्री योगेन्द्र रस १ रत्ती लहसुन के रस और शहद में देकर उपरोक्त अर्क मिला देवें। महानारायण तेल १ छटांक जुन्देदस्तर ३ माशा, सतलोबान ६ माशा, लहुसन का रस १ तोला मिलाकर मालिश करें। भोजन के बाद दशमूलारिष्ट कस्तूरी युक्त आधा तोला से एक तोला तक बराबर जल मिलाकर पिला देवें। और लहसुन का इन्जेक्शन प्रातः सायं काल में १ सी. सी. मांस में लगावें।

–श्री. हकीम गुरचरन लाल वैद्य
सफीपुर (उन्नाव)

पायरिया नाशक प्रयोग एवं चिकित्सा–
(भाग ३५ अंक ६ पृष्ठ ५२)

१–आजकल पायरिया एवं दन्तवेष्टक रोग अधिक देखे जाते हैं। इसके प्रतिकारार्थ मंजनादि की जिज्ञासा धन्वन्तरि भाग ३५ अङ्क ६ पृष्ठ ५२ में की गई है।

केवल मञ्जन के प्रयोग से पायरिया दन्तवेष्टक रोगों में स्थायी लाभ असम्भव है। स्थायी लाभ के लिए रोग का कारणों सहित विचार करना आवश्यक होता है। रोगोत्पादक प्रकोपक कारण ज्ञात होने से रोग का (निवारण) प्रतिकार सुगमता से किया जा सकता है।

आयुर्वेद शास्त्र में मुख रोगों की संख्या ६५ का वर्णन है तथा दन्तों की जड़ में होने वाले दन्तमूल रोग १५ प्रकार के बतलाये हैं।

मुख रोगाश्च पञ्चषष्ठि भवन्ति।
दन्तमूल गतान् पंचदश व्याकरोति।
दन्तमूल गतास्तु शीतादो दन्तपुप्पुटको।
दन्तवेष्टकः शौषिरो, महा-
शौषिरः परिदरउपकुशो ॥ १ ॥
दन्त वैदर्भो, वर्धनोऽधिमांसो नाड्यः पञ्चेति।

—सुश्रुत।

भावार्थ—दन्तमूल में १५ प्रकार के रोग होते हैं–(१) शीताद (२) दन्तपुप्पुटक (३) दन्तवेष्टक (४) शौषिर (५) महाशौषिर (६) परिदर (७) उपकुश (८) दन्तवैदर्भ (९) वर्धन (१०) अधिमांसक और पांच प्रकार के दन्तनाड़ी (दन्त नाड्या विकार) इत्यादि १५ प्रकार के दन्तमूल रोग होते हैं। जिसमें से दन्तवेष्टक रोग आजकल 'पायरिया' कहलाता है जिसका प्रकोप कारणों सहित वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में देखिये–

स्रवन्ति पूय रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्ट शोणित संभवा। १।

—सुश्रुत नि. १६–१७

भावार्थ—दांतों की जड़ (मूल) मसूढ़ों से पूय, रक्त निकलते हुए दन्त चलनादि (पीड़ा होना) यह दन्तवेष्टक नामक व्याधि रक्त प्रकोप से होने का वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में है।

वक्तव्य–यह दन्तवेष्टक आजकल पायरिया कहलाता है। इसमें प्रथम रक्त प्रकुपित होता है जो दुष्ट प्रकुपित रक्त दांत की जड़ मसूढ़ों को सड़ाकर पूय निर्माण कर व्रण रूप धारण कर दुःखदायक पायरिया करता है। पायरिया में प्रथम रक्त विकृति होकर रक्त में अम्लता बढ़ती है जोकि पित्त उग्रता का लक्षण अम्लता प्रतीत होती है। इसलिये पित्तकारक, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, अम्ल पदार्थ, चाय, काफी, ताम्बूल आदि का सेवन सर्वथा हानिकारक होता है अतएव त्यागना श्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा--

प्रथम पायरिया रोगोत्पत्तिकारक कारणों का परित्याग कर शुद्ध सात्विक, सुपाच्य भोज्याहार का सेवन करना चाहिये तथा तीक्ष्ण, उष्ण, चरपरे, अम्ल (खट्टे) पदार्थ, चाय, काफी, मद्यपान, अत्यधिक ताम्बूलादि का सेवन और रक्त प्रकोपकारक द्रव्यों के परित्याग से पायरिया रोग का बचाव होता है।

(१) दन्तवेष्टक के रोगी को कब्जियत होवे तो शौच शुद्धि का उपाय किया जाय। पायरिया वाले को नित्य शौच शुद्ध होना ही चहिये। शौच शुद्ध के लिये पंचसकार चूर्ण २-३ माशे खाकर जल पीना चाहिये। अथवा छोटी हरड़ का चूर्ण २-३ माशे खाकर जल पीने से शौच शुद्ध होगा।

(२) पाचन क्रिया की खराबी होवे तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

(३) दन्तवेष्टक पायरिया रोग निवारणार्थ–रक्तगत दोषों की विवेचना कर चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तशामक, रक्तप्रकोप निवारक द्रव्यों के उपयोग से रक्तगत दोष अम्लता मिट जाने से इस रोग में काफी लाभ होते देखा गया है।

प्रयोग–(१) स्वर्ण माक्षिक भस्म १ भाग, प्रवाल (चं० पु०) १ भाग, गुडुचि सत्व २ भाग, सितोपलादि चूर्ण ४ भाग मिश्रण कर आंवला मुरब्बा के साथ तथा गुलकन्द के साथ सेवन कर ऊपर से गौदुग्ध पीने से पित्त प्रकोप रक्तानुगत शांत होकर रक्त की अम्लता मिटती है तथा पूय, रक्त आना बन्द होता है। नेत्र, मस्तिष्क और दन्तमूल (मसूढ़े) बलवान होते हैं।

(२) श्वेत पुनर्नवा की जड़ ताजी लाकर पत्थर पर पीस कल्क कर मिश्री के साथ जल मिला पीने से रक्त प्रकोप शांत होकर दन्तमूल शोथ मसूढ़े ठीक होकर पूय, रक्त बहना बन्द होता है।

(३) चन्द्रप्रभावटी प्रातः सायं दूध के साथ अथवा जल से सेवन करना और आरोग्यवर्धिनी १ मात्रा सोते समय रात में लेना लाभ करता है।

नोट—उपरोक्त तीनों प्रयोग लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से स्थायी लाभ होता है।

दन्तमूल शोथ, पीड़ा निवारणार्थ

गण्डूषादि धारण--

(१) गूलर की कोमल कोमल पत्तियां साफ करके ५ तोला दरदरी कूटकर १ सेर पानी में उबाल कर क्वाथ कर छान लेवें और फिटकरी भूनकर बारीक चूर्ण १।। माशा मिलाकर गण्डूष धारण करने से छाले सहित व्रणयुक्त दन्तवेष्टक, दांत के मसूढ़ों का शोथ, रक्त, पूय, व्रण, पाक, पीड़ा में लाभदायक है।

(२) बबूल वृक्ष की छाल (अन्दर की) और पत्ती ५-५ तोले को १ सेर पानी में औटाकर गंडूष धारण कर कुल्ली करने से मसूढ़ों के शोथ, पीड़ा में फायदा होकर मसूढ़े दृढ़ होते हैं।

(३) हरड़, बहेड़ा, आंवला (त्रिफला), वायविडङ्ग, मुलहठी, मुनक्का, गुरूच, नीम की अन्तरछाल, हल्दी, चमेली के पत्ते।

– इनको दरदरा कूट पानी में उबाल कर गण्डूष धारण करना विशेष फायदा करता है।

नोट–प्रकृति के अनुसार इस काढ़े में शहद तथा मिश्री मिलाकर प्रयोग करने से अधिक फायदा (गुण) होता है। मुख के छाले शीघ्र मिटाकर व्रण ठीक करने में सर्वोपार है।

(४) अरिमेदादि तैल का गण्डूष धारण करना शोथ, दन्तचलनादि, पीड़ा व्रण, पूय, रक्तस्राव को यथाशीघ्र मिटाता है।

(५) जात्यादि तैल का उपयोग–कृमिनाशक होता है।

(६) केवल शुद्ध तिल तैल का गण्डूष धारण करने से दन्तमूल (मसूढ़े) दृढ़ होकर दन्तवेष्टक रोग में लाभदायक होता है।

मंजन प्रयोग —

(१) हरड़, बहेड़ा, वायविडङ्ग, मुलहठी, सफेद अनार का छिलका, सेंधानमक।

--सब १-१ तोला और सबके बराबर नीम की लकड़ी का कोयला तथा कपूर ३ माशा।

इन सबका एकत्र कर बारीक सूक्ष्म चूर्ण कर दांतों पर मलना लाभदायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) सेंधानमक सरसों के तैल (कड़वा तैल) के साथ मलने से दन्तपीड़ा में लाभ होता है।

(३) मौलसिरी (बकुल पुष्प) वृक्ष की छाल का चूर्ण मंजन करने से दांत मजबूत होते हैं।

सावधानी—दांत मलने के लिए ब्रुश का उपयोग नहीं करना चाहिये। ब्रुश के उपयोग से मसूढ़े कमजोर होते हैं। दांतों की जड़ें खुरच जाती हैं। अतः अंगुलियों के सहारे मंजनादि का प्रयोग करें।

–श्री वैद्य रामभरोस रामावतार गुप्त आयु. वि.
फालेगाँव (यवतमाल)

२—श्वेत फिटकरी १० तोला, धतूरा बीज काले ३ माशा, लवंग ६ माशा, छोटी इलायची १ तोला, मिश्री २॥ तोला।

निर्माण विधि—पहिले तवा चूल्हे पर रख कर उस पर फिटकरी पिघला लें। उसमें धतूरा बीज व लवङ्ग डाल दें। अच्छी तरह फूला हो जाने पर उतार कर खरल करें। बारीक होने पर मिश्री और इलायची बीज बारीक करके मिलाकर मंजन बनालें। गुण—पायरिया नाशक अत्युपयोगी मंजन है।

—वैद्य श्री प्रतापसिंह सांखला
श्री भोमिया संजीवन औषधालय
मु. पो. गुढा गौड़ जी का (झुंझुनूं)

३—तुवरक दाल २० तोले, भल्लातक बीज सुपरिपक्व) १० तोले। मिट्टी के वर्तन में १० तोले दाल रख भिलावा रखें। पुनः ऊपर से १० तोले दाल रख शराब सम्पुट कर सुखालें। अन्तर्धूम पाक कर स्वांग शीतल होने पर खरल कर बारीक कर लेवें। कपूर देशी, अकरकरा असली, बच, प्रत्येक १-१/२ तोला, कूठ आधा तोला सबको कपड़छन कर ऊपर की भस्म में मिलाकर रखलें। हमेशा दन्त मञ्जन करें। बीमारी का जोर हो तो दिन भर में ३ बार भी लगावें।

विशेष गुण के लिये–

फिटकरी फूली हुई, इलायची, लौंग, कवाब चीनी १।-१। तोला, माजूफल, पठानी लोध २॥-२॥ तोला। कूटने की चीजों को कूट कपड़छन करें।

एसिड कार्बोलिक १। तोला, एसिड बोरिक २॥ तोला, कपूर देशी १। तोला।

कपूर और एसिड कार्बोलिक मिलाकर रख देने से गल जाता है। पहिले कपूर को गलाकर फिर सब दवाई मिला लेवें।

१। तोले तेल पिपरमेंट भी मिलाना चाहिए।

यदि एसिड कार्बोलिक अधिक मालूम पड़े तो संगजराहत (सेलखड़ी) या धुला चाक पाउडर मिलावें। दांतों की बीमारी के लिए यह अवश्य लाभ करता है।

–श्री रामपाल मिश्र वैद्य,
खलारी (रायपुर)

४—बज्रदन्ती २० तोला, कालीमिर्च ५ तोला, सोंठ २। तोला, अकरकरा २॥ तोला, भुनीफिटकरी ५ तोला, सेंधा नमक ५ तोला, हींग भुनी १ तोला —इनको कूट पीस मंजन बनावें। नित्य मंजन करें। पायरिया के रोगी को मंजन करने के एक घंटे बाद कुल्ला करना चाहिए।

–श्री वैद्य अमरचन्द अग्रवाल वैद्य विशारद
ग्राम-मुहामी पो० गेगल आरवरी (अजमेर)

५—हल्दी २॥ तोला, सैंधानमक १० तोला, देशी कपूर ६ माशा।

इस मञ्जन को कूटपीसकर महीन कपड़े से छानकर शीशी में रखलें। सुबह चुटकी भर शुद्ध कड़ुवा तेल मिलाकर मञ्जन करें। यह मञ्जन दांतों की समस्त खराबियों पर सफल प्रमाणित हुआ है।

—श्री शारदा बख्शसिंह वैद्य
कुछही पो. कछौना, (हरदोई)

मोतिया विंद की होम्योपैथिक चिकित्सा

(भाग ३५ अंक ६ पृष्ठ ५२)

(१) सायनेरिया मारीटीना सल्फस १-१ बूंद शाम सवेरे आंखों में डालें (१ से ६ मास तक)।

(२) कल्केरिया फ्लुअर १२×चूर्ण ४ ग्रेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रा में सवेरे और शाम गरम पानी के साथ
वें। १ से ६ माह तक उपरिलिखित इलाज करने से
तियाबिन्दु निश्चित आराम होता है।

--श्री डॉ० ए० एम० अडसोड
नन्दगांव खण्डेश्वर (अमरावती)

र में फुंसियों (अरुंषिका) की चिकित्सा-
(भाग ३५ अङ्क ६ पृष्ठ ५२)

१-अरुंसिका फुन्सियों के लिये निम्न वस्तुओं तेल बनाया जाता है-

नीम का तेल ५ तोला, केले का तेल १॥ तोले, मेली का तेल २ तोला, आंवला का तेल २ तोला, रसों का तेल ५ तोला, खोपरे का तेल ५ तोला, शी शराब शुद्ध ३ तोला, कपूर ६ माशा।

इन वस्तुओं को मिलाकर यह तेल तैयार कर ना चाहिये।

गुण—हर चर्म रोग, दाद, खाज, फोड़ा, फुंसी, ंज आदि पर यह तेल लगाना चाहिए। इसको गाने से पूर्व स्थान को लाल दवा (पोटास पर-ग्नेट) डाले हुये गुनगुने पानी से धो लेना चाहिए। इसके पश्चात् उस स्थान पर उपरोक्त तैयार किया हुआ तेल लगा लेना चाहिये।

बिशाली, विषकण्ठा आदि रोगों में पहले लेप या नीम के पत्ते बांधकर उस स्थान को पका लेना चाहिये। इसके बाद चीरा लगाकर उसका सारा बलगम निकाल कर इस तेल को लगाकर फोआ बांध देना चाहिए और फिर हमेशा प्रातः यह तेल लगाकर फोआ बदल देना चाहिए। इससे शीघ्र आराम हो जाता है। यह तेल मैंने हर चर्मरोग पर आजमाया है।

—वैद्य श्री अमरचन्द्र अग्रवाल वैद्य विशारद
मुहासी, पो. गेगल आखरी (अजमेर)

२—मेहंदी के सूखे पत्ते, रसौत।

दोनों समभाग लें, ठण्डे पानी के साथ पीस सिर पर लेह करें। १२ घण्टा बाद गरम पानी में नीम के पत्ते डालकर धो डालें। केवल ३-४ दिन में सिर की पीली पीली फुंसी व फोड़े नष्ट होंगे।

--वैद्य श्री प्रतापसिंह सांखला,
गुढ़ा गौड़ जी का (झुंझुनू)

३—अरुंषिका के रोगी को प्रथम मृदुविरेचक देकर कोष्ठ साफ कराना चाहिए, कोष्ठ साफ करने के लिये मृदुविरेचनार्थ—

सनाय १ तोले, मुनक्का आधा तोले, गुलाब के फूल ४ नग, छोटी हरड़ आधा तोले, सौंफ आधा तोले।

सबको दरदरा कूटकर २-२ भाग कर लेना, एक भाग को (सायं समय) एक पाव पानी में औटाकर आधा पाव शेष रहते, उतार छान लेना और १ तोले मिश्री मिलाकर सायं भोजन के बाद सोते समय पीने से कोष्ठ शुद्धि होती है।

अरूंषिका के रोगी का सिर—फुन्सियों के स्थान को न्यग्रोधादि काथ से परिसिंचन कर धोना चाहिए।

न्यग्रोधादि (गण) क्वाथ—

बड़, पीपल वृक्ष, गूलर, पाकड़ वृक्ष इनकी अन्तरछाल लाकर साफकर पानी में उबालकर छान लेना चाहिये और इसी काढ़े से अरूंषिका पीड़ित स्थान का सिंचन कर धोने से दाह, पीड़ा, शोथ, रक्तप्रकोप पूय आदि शांत होते हैं।

अरूंपिका स्थान को न्यग्रोधादि काढ़े से धोके कपड़े से शुष्क करके त्रिफलादि तेल लगाना चाहिए।

त्रिफलादि तेल—

हरड़, बहेड़ा, आंबला, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता और लाल चन्दन समभाग लेकर कल्क बनाकर कल्क से चौगुना तिल का तैल तथा पाकार्थ चौगुना जल मिलाकर मन्द मन्द अग्नि से पकाके तैल अवशेष रहने पर छान लेवें। सिद्ध तेल का परिसिंचन करने से अरूंषिका-फुन्सियां नष्ट होती हैं।

यह त्रिफला तेल अरूंषिका के लिये अनेक बार रोगियों पर सफल प्रमाणित है।

—श्री वैद्य रामभरोस रामावतार जी गुप्त आ.वि.
फालेगांव (यवतमाल) विदर्भ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त विकार पर

(भाग ३९, अंक ७ पृ. ९२)

१—रक्त विकार पर रक्त शोधक वटी—

नीम के बीज की गूदी १॥ तोला, बकायन के बीज की गूदी १॥ तोला, नींबू के बीज छिले हुए १॥ तोला, शुद्ध चाकसू बीज २॥ तोला, पवांर के बीज २॥ तोला, बाबची १ तोला, गंधक आवलासार शुद्ध ६ माशा, नीला थोथा शुद्ध ६ माशा, चन्दन सफेद ६ माशा, नीम की पत्ती के स्वरस में एक दिन खरल कर ३-३ माशे की टिकिया बना लें। एक टिकिया प्रातः एवं सायंकाल रक्तशोधक अर्क अथवा अर्क उसवा या अर्क मुण्डी अथवा मंजिष्टादि क्वाथ के साथ देने से हर प्रकार का रक्त विकार फोड़ा, फुंसी, दाद के चकत्ता, दांतों से रक्त आना इत्यादि रक्त विकार एवं चर्म रोग दूर होते हैं। ददोड़ों पर बृ० मिरिच्यादि तैल की मालिश करें। —हकीम श्री गुरूचरण लाल सफ़ीपुर (उन्नाव)

२—रक्त विकार होने पर—मरहम, बावची, तुत्थ, फिटकरी, पारा, गंधक आमलासार समभाग, गेरू दो भाग। वस्त्रपूत चूर्ण कर नित्य कड़वे तैल में मिला लगावें तथा एक या दो घड़ी पश्चात् साबुन से धो दें या नहा लें। खुजली, पामा, ददौड़े, सबका नाश चार दिन में होगा।

३—रक्तशुद्धी वटी—ब्राह्मी, पित्तपापड़ा, कूट गिलोय, अनन्तमूल, छिलका हरड़ सूखा दो दो तोला अथवा गीला एक एक छटांक का विधिपूर्वक स्वरस निकालें। पश्चात् शुद्ध रसौत २३ तोला मिला मंद मंद आंच पर पकावें। गाढ़ा होने पर उतार लें तथा शुद्ध गंधक आमलासार एक छटांक, सत्व गिलोय दो तोला मिला कर इतना घोटें कि वटी बन सके; तीन रत्ती प्रमाण बटी बना लें। प्रातः सायं एक या दो वटी नित्य ताजे पानी से दें। यह कई दिन प्रयोग करें। रक्त विकार नहीं रहेगा❀

पथ्यापथ्य—अचार चटनी खट्टा कटु कच्चा मीठा न खायें। घी दूध हितकर हैं।

—वैद्य श्री ब्रजरोहन शर्मा, फतेहाबाद (हि

३—आयुर्वेद शास्त्र में रक्त विकार की परिभाषा—

आयूर्वेद शास्त्र में व्याधियों का वर्णन वि रूप से बतलाया है। और वह सदैव मार्ग कराने में सर्वोपरि सिद्धान्त है। इसलिए जि पाठकगण चरक संहिता सूत्र स्थान चौबी अध्याय, और सुश्रुत संहिता को ध्यान से दे विशेष वर्णन कर लेख का कलेवर बढ़ा ठीक नहीं

यहां प्रसंगोचित रक्त विकार के ददौड़े फै वाले शुष्क एवं रसिकायुक्त खुजलाने वाले जो द उठते हैं उभार के साथ शोथ लालिमा के दाह सहित ददौरे जो विर्सप के समान फैलते उसीका अनुभव सरल उपाय प्रस्तुत किया जाता

रक्त विकार के प्रकोप से उठाने वाले मंड कार फैलते हुए ददोड़ों से आक्रान्त फोड़े फुं खुजली एवं रसीला स्रावयुक्त लालवर्ण ददौडों रोगी हमने केवल कटुकी का चूर्ण मात्रा ४-६ आधा तोला मिश्री के साथ सेवन कराया जल पिलाया। ५—६ दिन में उसने आरोग्य किया है।

परिसेचनार्थ (धोने का) प्रयोग—

(१) बड़, पीपल, गूलर, पिलखन आदि (न्य धादि गण) वृक्ष की अंतर्छाल को पानी में उब क्वाथ कर छानें। परिसेचन कर धोने से दाह, (रक्तमंडल) में फायदा होता है।

(२) नीम की कोमल पत्तियां पानी में उब कर स्वेदन करते हुए परिसेचन करने से दद का शोथ रसीका स्राव में यथोचित लाभ होता है

(३) त्रिफला का क्वाथ कर स्वेदन करते परिसेचन करना लाभदायक है। तथा प्रकृति अनुरूप त्रिफला के क्वाथ में गौमूत्र मिला परिसेचन करना लाभदायक है।

लगाने के लिये उपयोगी—

(१) चालमोंगरा तैल लगाना—दाह, शो खुजली स्राव में लाभदायक होता है।

❀ हर सप्ताह विरेचन दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) महामरिच्यादि तैल-लगाना-शोथ-कण्डु ली स्राव में लाभदायक होता है।

(३) महामरिच्यादि और चालमोंगरा तैल ला के लगाना भी लाभदायक है।

(४) विसर्पनाशक लेप-कदली (केला) वृक्ष गूदा १ तोला, नागरमोथा १ तोला, बड (बरगद) की बारीक जटा १ तोला इन सबको खूब न पीस लेवें और मक्खन (घृत-नव-) १०० बार धोके ५ तोला के साथ खूब घोटकर लेवें। उपयोग—दाह, शोथ, रक्तविकार के लाकार ददोड़े खुजलीयुक्त स्रावरहित नष्ट ा है। दाह, ज्वर उपद्रव सहित विसर्प विकार ाभदायक हैं। (अनुभव किया है।) (चरक ता नूतनामृत सागर विशेष चि.)।

—श्री वैद्य रामभरोस रामअवतार गुप्त
फालेगांव (यवतमाल)

वृश्चिक (बिच्छू) काटे पर-

[भाग ३५ अङ्क ७ पृष्ठ ५२]

१-वैसे तो इस वृश्चिक दंश पर बहुत ही प्रयोग लित हैं जिनसे फायदा होता है यथा १-पोटा-म परमैंगनेट को दंश स्थान पर कुरेद कर रख था २-३ दाने मल कर सुंघा दें जिससे छींक र विष दूर हो जाता है।

२-नवसादर तथा चूना दोनों समभाग पानी में एक शीशी भर कर सुंघाने से भी सब प्रकार र्द व विष दूर हो जाते हैं। तथा अपामार्ग की ी की लुगदी बनाकर बांधने से भी विष दूर जाता है। पर जिस सर्व सुलभ औषधि चम-र शत प्रतिशत सफल हुआ वह है 'बबूल की ी'— प्रायः बबूल की पत्ती को सभी पहचानते तः उसकी विशेष जानकारी न देकर केवल य ही बतला रहे हैं। कहीं कहीं इसे कीकर भी े हैं।

विधि— बबूल की पत्ती १ तोला लेकर अच्छी से मुख में चबा लें। और एक छिद्रवाली नली जैसे अरण्ड की पोंगी (एरण्ड पत्ते के नीचे का भाग या अन्य कोई ऐसी ही छिद्र वाली नलिका ले लें जिससे कान के छिद्र में पूरी मुख की वायु चली जाय। अब आप काटे हुए व्यक्ति के कान में (जिस तरफ काटा हो उसके विपरीत कर्ण में) पोंगी (नली) से फूकें: केवल २-३ बार ही फूकने पर दर्द दूर हो जायगा तथा दंशित व्यक्ति से अवश्य पूछ लें अन्यथा पुनः वायु प्रविष्ट करें यद्यपि पुनः करना नहीं पड़ता है। इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वायु संपूर्ण प्रविष्ट हो जाय।

—श्री डा० कृष्ण बिहारी दीक्षित
श्री कृष्ण आयुर्वेदिक फार्मेसी. रूरा (कानपुर)

३-बिच्छू के डङ्क पर मयूर (मोर) के अण्डे का छिलका जल से पीसकर लेप करदें एवं हल्का सेक करें। बात की बात में बिच्छू का विष गायब हो जायगा

—श्री कान्तिलाल जैन वैद्य विशारद
धानमण्डी (मन्दसौर)

४-बिच्छू दंश पर चमत्कारिक प्रयोग—

माघ माह में आम्र वृक्ष के फूलों को ऊपर न देखते हुए तोडिये और दोनों हाथों से मलिये और हाथों को तालियां बजाकर झाड़ डालिये। ऐसा २-३ बार उसी समय करिये। हाथ किंचित गरम होते हैं। डरें नहीं फिर हाथ धो डालिये। जब कभी बिच्छू उतारने का काम पड़े तो हाथों को मलते जांय और तालियां बजाते जांय तथा रोगी से कहां तक बिच्छू का दर्द बाकी है? पूछते जांय। अगर वह बोले कि अमुक स्थान पर है तो आप कहिये 'हट! आप झूंठ बोलते हैं। सच बताओ।' तब वह रोती सूरत रोगी कहता है। नहीं जी मैं झूंठ नहीं बोल रहा। फिर वैसे ही कीजिये जब तक दर्द गायब न हो तब तक वैसे ही मजाक जैसा करते रहें। पांच दस मिनट में दर्द गायब हो जाता है।

यह प्रयोग हाथ या पांव में बिच्छू काटले तो काम देता है। क्योंकि दंशित स्थान को जमीन पर पटकना पड़ता है। —श्री डा० रा० कृ० देशमुख
प्रजावैद्य, नागपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

दाह

दाह–जलन ज्वरों विशेषतया पैत्तिक प्रधानता-युक्त त्रिदोष ज्वरों में होने वाला बड़ा दुःखदायी उपद्रव है। रोगी अपने सारे शरीर में दाह अनुभव करता है, जलन के मारे बेचैन मछली की तरह तड़फता है, घर वाले भी उसकी तड़फन और जलन से बेचैन होते हैं। ऐसी दशा में प्रायः संताप (टेम्परेचर) बढ़ा हुआ होता है, कभी ताप तो अधिक नहीं होता किंतु शरीर में जलन होती है। ऐसी दशा में पित्तज्वर के प्रकरण में जो क्रियायें और औषधियां बताई हैं उनका विचारपूर्वक प्रयोग करें।

(१) वंशलोचनादि चूर्ण ब्राह्मी शर्बत के साथ देने से सन्निपात ज्वर में दाह और ज्वर की तीव्रता शमन होती है।

(२) पीने के लिये षडङ्ग जल दें।

(३) आंवले का चूर्ण ३ माशा, शर्करा ३ माशा जल के साथ फंका देने से दाह नष्ट होती है।

कर्णमूल शोथ

प्रायः सन्निपात ज्वर की अवस्था में रोगी के मुंह दांतादि के साफ करने के लिये दांतौन, मंजन, ष्ठीवन करने की ओर विशेष ध्यान न देने से मुंख का मल लालाग्रन्थियों द्वारा शोषित हो जाने से कर्णमूल शोथ, (कान की जड़ में सूजन) हो जाती है। इसलिये ज्वरों में रोगी को नित्य मुंह साफ करते रहना चाहिए।

चिकित्सा—

मैनफल को पानी में घिसकर उसमें थोड़ा सा कुदरू गोंद (ढाक का गोंद) डालकर गरम करें और एक कपड़े का फाहा बना उस पर उक्त लेप लगाकर शोथ पर चिपका दें। ऊपर से सेक करें। इससे शोथ बैठ जाता है, यदि उसमें पूय पड़ गई है तो इससे वह जल्द पक जायगा। पकने पर शोथ को शस्त्र से चीर कर उसकी व्रणवत् चिकित्सा (घाव की तरह इलाज) करें या भेदक लेप से फोड़ें।

रूमी मस्तंगी असली, गूग्गल भैंसा दो[…] समान भाग लेकर कूटें। जब वे पिघल कर[…] यम हो जांय तब कपड़े पर लगाकर गरम कर[…] पर चिपका दें। इसके बाद ऊपर से सेक[…] इससे भी शोथ और गांठें बैठ जाती हैं य[…] कर फूट जाती हैं।

भेदक लेप–करंज के पत्ते, चित्रक, जमालगो[…] जड़,कनेर की जड़,कबूतर की बीट,गुड़ की[…] वस्तुयें अथवा इनमें से समय पर जो भी मि[…] चटनी की तरह पीसकर पके स्थान गांठ प[…] कर दीजिए। सूखने पर जब यह लेप चटके[…] साथ ही पकी खाल चटककर व्रण बन जाय[…] चारों तरफ दाब कर पीव और पीव की[…] निकाल दीजिए। फिर पानी में खौलाई हु[…] निचोड़ कर पीव खूब साफ कर दीजिए। लिखी शोधक-रोधक लूपड़ी लगा दीजिए—

करंजुए (कंजा) के पत्ते, सम्भालू के पत्ते, […] पत्ते बराबर लेकर चटनी की तरह पीस लें औ[…] कटोरी में थोड़ासा घी डालकर पका लें और […] (पुल्टिस) की टिकिया बनाकर गुनगुनी बां[…]

पिचु [फाहा]—इनका पिचु भी बना सकते हैं[…] इस तरह कि इनको पीसकर कपड़े में रख […] रस निचोड़ लें। एक रूई का फाहा बना इ[…] में डोबकर तर करलें। एक कटोरी में […] घी डालकर अङ्गारों पर रखें। जब घी […] जाय तब उसमें यह तर फाहा डाल दें और[…] का पानी जल जाने पर उतार लें। इसे घ[…] गुनगुना बांधें। इससे घाव शुद्ध भी होता है[…] भर भी जाता है। इसी प्रकार भांगरा, चमे[…] पत्ते, गेंदे के पत्तों के फाहे भी घाव को भरते[…]

—श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्[…]
जैन धर्मार्थ औषधालय, […]
पो० रैपुराजाट ([…]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक रुदन्ती

श्री कविराज जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति

[गतांक से आगे]

अतिविशेष प्रयोग —

श्री डा. जी कृष्णमूर्ति जो डा. बाला भाई नानावती हासपिटल वाईल पारले बम्बई में देशी औषधियों के क्लीनीकल रिसर्च सेन्टर के प्रधान हैं और जिनको चौथाई शताब्दी से भी अधिक काल से फुफ्फुसीय क्षय की चिकित्सा करने में विशेष रुचि है उन्होंने २८ सितम्बर १९५७ को नानावती अस्पताल बम्बई में चिकित्सा सभा में ट्रीटमेंट आफ पलमोनरी ट्यूबरक्युलोसिस विद रुदन्ती एण्ड इन्डिजएनस इण्डियन ड्रग (Treatment of pulmonary tuberculosis with Rudanti and Indigenous Indian drug) अर्थात् फुफ्फुसीय क्षय का रुदन्ती तथा स्वदेशी भारतीय औषधियों द्वारा चिकित्सा नाम का एक लेख पढ़ा था जो कि मार्च १९५८ के करेन्ट मेडीकल प्रेक्टिस (Current Medical Practice) में प्रकाशित हो चुका है। इसमें लिखा है-

जुलाई १९५३ में एक दो वर्ष का बालक मेरे पास लाया गया। वह टाक्सीमियां (रक्तविषाक्तता) और असाधारण क्षीण परिस्थिति में था। इसकी परीक्षा करने पर इसकी मुखाकृति फुफ्फुसीय पाई गई और ग्रीवा के दोनों ओर की लसीका ग्रन्थियां सूजी हुई थीं। ग्रन्थियों का टोसपन गठीला था और इनमें पूय पड़ रहा था। कक्षा का तापमान १०१ दर्जा फारेन्हाइट था। जबकि बालक तीन माह का ही था। स्ट्रेप्टोमाइसीन (Streptomycin) आई. एन. एस. (I. N. S.) (अर्थात् आई. जी. नैक्स) और पी. ए. एस. (PAS अथात् पास) की आवश्यकतानुसार मात्रा से इसकी चिकित्स[ा] पहिले की जा चुकी थी परन्तु उसकी दशा में को[ई] समुचित सुधार न हुआ था प्रत्युत रोगी की दश[ा] बराबर बिगड़ती जा रही थी।

यह प्रथम अवसर था जब मैंने रुदन्ती [का] चूर्ण प्रयोग किया जो कि मुझे एक जानकार ने प्रद[ान] किया था और पूय पड़ रही विकृत रचना के लि[ए] प्रभावकारी स्वीकार किया जाता था। इस रो[गी] को चूर्ण इस आशा में दिया गया था कि केव[ल] अमुख्य छूत दूर हो जायगी तो भी एक हफ्ता [के] पश्चात् पूय पड़ रही। विकृत रचना आरोग्य हो[नी] प्रारम्भ हो गई थीं और पूय का स्रवित हो[ना] समाप्त हो गया था। रोगी बहुत अच्छी अवस[्था] में था और उसकी क्षुधा बढ़ गई थी। मैंने औ[र] छः हफ्ता के लिए चिकित्सा जारी रखी। इस[से] ग्रन्थियों के आकार में अनुभव योग्य न्यूनता [हो] गई थी। लगभग ३ माह में ग्रन्थियों का आक[ार] बहुत न्यून हो गया था और एक माह की चिकित्[सा] से कोई भी लसीका ग्रन्थि बढ़ी हुई न थी औ[र] बालक का भार पांच पौंड बढ़ गया था।

इन निरीक्षणों ने मुझे यह सोचने की प्रेर[णा] दी कि रुदन्ती जोकि स्ट्रेप्टोकोकाई (Strept[o]cocci अर्थात् बिन्दुकाकार पंक्तिबद्ध कीटा[णु]) और स्टेफिलोकोकाई (Staphylococci अथ[ार्त्] बिन्दुकाकार समूह रूप कीटाणु) की छूत से हो[ने] वाले रोगों के लिये प्रभावकारी विचार की ज[ाती] है। इसमें कुछ क्षयघ्न क्रियाशील शक्ति भी [पाई] जाती है। मैंने तदन्तर ३२ वर्ष के एक रोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२० डी० को छांटा जो एक क्षय के आतुरालय से मुक्त किया जा चुका था। इसके दाहिनी फुफ्फुस के ऊपर के भाग में दो क्षयज कोटर (Cavaties-कैविटीज अर्थात् रिक्त स्थान या गारें) थे। बायां फुफ्फुस बिलकुल स्वस्थ था। रोगी को रुदन्ती का चूर्ण प्रतिदिन १२ ग्रेन (६ रत्ती) की मात्रा में ४ समान मात्राओं में विभक्त करके दिया गया था। चूंकि मैं इस औषधि की प्रयोग योग्य मात्रा और इसकी विषैली प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में अधिक अनुभव और ज्ञान न रखता था इसलिये मैंने रोगी की देखभाल बहुत सावधानी से की। प्रत्येक हफ्ता इसकी छाती की स्क्रीन (Screen) हो जाती थी। तीसरे हफ्ता में रोगी की साधारण अवस्था में सुधार दिखाई दिया और पांचवें हफ्ता में एक्सरे से मालूम हुआ कि इन दो कोटरों में से एक अब तक भर चुका था। इस रोगी के परिणाम ने मुझे रुदन्ती के सम्बन्ध में अपने अनुसंधान को जारी रखने पर विवश कर दिया और मैंने फुफ्फुसीय क्षय के कुछ और अधिक रोगियों को इसके द्वारा चिकित्सा करने के निमित्त चुना। वर्तमान वर्णन बहुत से रोगियों पर रुदन्ती द्वारा की गई क्लीनीकल परीक्षाओं का परिणाम है।

चिकित्सा विधि–

रुदन्ती द्वारा चिकित्सा करने के लिये प्रधानतया रोगी डा० बालाभाई नानावती हास्पिटल से लिये गये थे। सब रोगियों की अस्पताल से बाहर रखकर उनकी चिकित्सा की गई थी और उनमें से किसी एक को भी अस्पताल में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। इनमें से कुछ रोगियों को पन्द्रह से ३० दिन के अवसर के लिये शय्या पर लेटे रहने की सिफारिश की गई थी और बाद में इनको लघु कार्य करने की आज्ञा दे दी गई थी। इस अनुसंधान की प्रारम्भिक अवस्था में थूक की परीक्षा और ई. एस. आर. (E. S. R. अर्थात् Erythrocyte Sedimentation Rate) की किये गये थे परन्तु बाद में इन अनुसंधानों के ये प्रमाण रखे गये थे।

वर्णित रोगी तीन श्रेणियों में विभक्त करने योग्य हैं–

(१) एक वह जिनकी चिकित्सा पूर्व में एन्टीबायोटिक (Antibiotic) और कीमोथैराप्यूटिक (Chemotherapeutic) औषधियों (जीवाणुओं को नाश करने वाली रसायनिक औषधियां) यथा स्ट्रेप्टोमाइसीन) आई.एन.एच. और पी. ए. एस. के द्वारा संकोचपूर्वक की जा चुकी थी। मैंने विशेष करके वह रोगी चुने जो २०० ग्राम से अधिक स्ट्रेप्टोमाइसीन ले चुके थे।

(२) रोगी जिनमें क्षयज कोटर थे या जिनका विकृत स्थान विस्तृत रूप में रेशेदार पनीरी अवस्था (Fibrocaseous फिबरो केजिअस) में था।

(३) जीर्ण रोगी जो एक वर्ष से अधिक काल से बीमार थे।

चूंकि कुछ रोगियों में कफ का निकास न होता था इसलिये कफ की परीक्षा सब रोगियों में क्रियात्मक रूप में नहीं लाई जा सकी। सुधार की निर्धारिता भार के बढ़ने, भूख की वृद्धि और एक्स रे पर आश्रित थी।

इस अनुसंधान के आरम्भ में रुदन्ती की दो टिकियाँ (हर एक छः ग्रेन चूर्ण निर्मित) दिन में दो बार दी जाती थीं परन्तु अधिक अनुभव करने पर मैंने प्रतिदिन ३६ ग्रेन की तीन समान मात्रायें बहुत अच्छी प्रभावकारी पाईं तो भी बाद में मैंने प्रतिदिन ४८ ग्रेन की चार समान मात्रायें (२-२ टिकियों की ४ मात्रायें) बहुत अधिक प्रभावकारी पाई थीं। यह वर्णन कर देना उचित है कि कुछ रोगी जो प्रतिदिन ६६ ग्रेन रुदन्ती चूर्ण चार दिन लेते रहे उन्होंने किसी कष्ट को प्रकट नहीं किया।

शय्या पर विश्राम करने की केवल तब अनुमति दी जाती थी जब तीव्र ज्वर और टाक्सीमिया (रक्तविषाक्तता)होता था। तो भी यह विश्राम सम्पूर्ण नहीं होता था क्योंकि रोगियों को अपने घरों में प्रतिदिन थोड़ा हिलने की आज्ञा थी। ज्यादा प्रोटीन वाला आहार तजबीज किया जाता था परन्तु बहुत से रोगी अत्यन्त दरिद्र थे जिससे कि वह इस तजबीज का दृढ़ता से अनुकरण नहीं कर सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां तक सम्भव था रुदन्ती के अतिरिक्त कोई अन्य औषधि नहीं दी गई थी। कुछ रोगियों को अत्यन्त गम्भीर रक्त न्यूनता की चिकित्सा के निमित्त रुदन्ती एक मौखिक लोह योग के सहित दी गई थी।

अब तक कुल ६७ रोगियों की चिकित्सा रुदन्ती द्वारा की जा चुकी है। ५५ नर और ४२ नारियां। रोगियों की आयु समुदाय निम्न प्रकार थी—

बीस वर्ष से कम के ११
बीस और तीस वर्ष के मध्य के ५२
तीस और चालीस वर्ष के मध्य के २५
चालीस वर्ष से अधिक के १

इस समुदाय में सबसे कम आयु का रोगी ६ वर्ष का था और सबसे बड़ी आयु का रोगी ६५ वर्ष का था। रोगी विभिन्न व्यवसायों के अनुसायी थे परन्तु अधिकतर समाज की बहुत दरिद्र श्रेणी में से थे (उच्च श्रेणी के ७, मध्यम श्रेणी २३, कनिष्ट श्रेणी के ६७)।

६७ रोगियों में से ८१ रोगियों का कीमोथैरा-प्यूटिक् या एन्टीबायोटिक औषधियों यथा स्ट्रेप्टोमाईसीन, आई० एन० एच० और पी० ए० एस० के द्वारा पहिले कोई चिकित्सा नहीं की गई थी। १६ रोगियों की चिकित्सा पहिले की जा चुकी थी। ७ रोगी २०० ग्राम से अधिक स्ट्रेप्टोमाईसीन और प्रर्याप्त मात्रा में आई० एन० एच० और पी० ए० एस० प्रयोग कर चुके थे। ६ रोगी १०० ग्राम से कम स्ट्रेप्टोमाईसीन ले चुके थे। एक रोगी थोरै-कोप्लास्टी (*Thoracoplasty*) अर्थात् सीना का प्लास्टिक आपरेशन) करा चुका था और दो रोगी न्यूमोपैरीटोनियम् (*Pneumoperitoneum* अर्थात् पेट में हवा भरना) करा चुके थे।

मेरे इस चिकित्सा क्रम की औसत अवधि चार मास थी। चिकित्सा की कम से कम अवधि एक मास थी और अधिक से अधिक चिकित्सा अवधि बारह मास थी।

परिणाम-

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। परिणाम का निर्णय वजन के बढ़ने, क्षुधा में सुधार और एक्सरे में सुधार होने से किया जाता था। सुधार की श्रेणियां ठहराई गई थी यथा 'बहुत अच्छी' 'मध्यम अच्छी', 'अल्प' और निरप्रभाव'।

बहुत अच्छी	३७	मध्य अच्छी	४१
अल्प	१३	निरप्रभाव	७

(इनमें से दो की मृत्यु होगई)

निरीक्षण--

इन रोगियों की अवस्था के अध्ययन के बाद प्राप्त किये निरीक्षण निम्न प्रकार हैं—

(१) प्रायः दो सप्ताहों के अन्दर ही अन्दर क्षुधा में वृद्धि हो गई थी। जिसका परिणाम यह था कि रोगी अधिक आहार के लिये कहते थे। कई रोगी तो अति अधिक खाने वाले हो गये थे परन्तु तो भी अजीर्णता से पीडित नहीं होने पाये थे।

(२) यदि ताप बढ़ा हुआ होता था तो दो सप्ताह के अन्दर अन्दर नार्मल (*Normal* प्राकृतिक) हो जाता था।

(३) [1]वजन में निश्चत रूप से बढ़ोत्तरी होती थी। औसतन अधिक से अधिक चौदह से पन्द्रह पौंड।

---

[1]डा० जी कृष्णमूर्ति ने अपने ६७ रोगियों में से जिन दस रोगियों के विषय में चित्रसहित प्रकाश डाला है, इसके अध्ययन से विदित होता है कि इसके प्रयोग से विशेष कर भार बढ़ जाता है चुनाचे दूसरे रोगी का भार चार सप्ताह में ७१ पौंड से ६४ पौंड हो गया था अर्थात् २३ पौंड बढ़ गया था। तीसरे रोगी का भार चार मास में ११५ पौंड से १५० पौंड होगया था अर्थात् ३५ पौंड बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य भ्रंश के चार वर्ष पश्चात् जब इसका एक्स-रे लिया गया जबकि इसने रुदन्ती का प्रयोग करना छोड़ दिया था तो भी इसका विकृत फुफ्फुस क्षय के प्रभाव से बिलकुल वंचित था। पांचवां रोगी २४ वर्ष का एक लड़का था जिसका दो मास में बारह पौंड भार घट गया था। रुदन्ती के प्रयोग से दो सप्ताह में ही इसका ज्वर जाता रहा, तेजी से इसकी भूख बढ़ गई और इसका सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य बहुत शीघ्र अच्छा हो गया, साढ़े चार मास में वह बिलकुल ठीक हो गया और इसका बजन ११० पौंड से १२३ पौंड हो गया था यानी १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) द्रव्य के स्रवित होने की क्रिया बहुत शीघ्र नियन्त्रण में आजाती जान पड़ती थी, साथ ही टाक्सीमिया में भी सुधार हो जाता था। इसकी प्रमाणिकता रोगी की सामान्य अवस्था की उन्नति और एक्स-रे द्वारा प्राप्त जानकारी से की गई थी।

(५) स्रवित हुआ द्रव्य दो या तीन मास में सोख हो जाता मालूम पड़ता है जैसा कि रोगियों के विषय में चित्र सहित प्रकाशित जानकारी से जान पड़ता है।

(६) यह औषधि कोटरों के तनाव को बन्द करने के लिए प्रभावकारी मालूम हो चुकी है। यह बिलक्षण अवस्था सम्भवतः दो स्थितियों में होती है। प्रथम स्थिति में श्वास की नलियों में ट्यूबरक्युलोसिस ग्रेन्युलेशन टिशू (*Tuberculosis Granulation Tissue*-अर्थात् क्षयज व्रणों में दानेदार मांस बनाने वाला द्रव्य) की कमी हो जाती है जिसका परिणाम होता है कि कोटर में वायु के अन्दर और बाहर जाने का मार्ग खुल जाता है। कोटर में वायु का तनाव वायुमण्डल के दबाव तक कम हो जाता है। अतः कोटर की जीविका और फैलाव जो कि बिल्कुल दबाव में विभिन्नता होने के कारण थे समाप्त हो जाते हैं।

दूसरी स्थिति में श्वास की नलियों और विकृत श्वास की नलियों के चारों ओर रेशे उत्पन्न हो जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि श्वास की नलियां पूर्णतया और दृढ़ता से बन्द हो जाती हैं। इस स्थिति में कोटर के भीतर की वायु का पूर्णतया सोख हो जाता है और इसका क्षय के होने को प्रेरणा देने वाले आधारभूत हेतु के साथ सम्बन्ध हो जाता है जिसके कि परिणामस्वरूप कोटर बन्द हो जाता है।

दोनों स्थितियों में इस औषधि का स्पष्ट रूप से क्षयघ्न प्रभाव ही इन कोटरों को बन्द करने का जिम्मेदार होता है जो कि अब तक सम्पूर्णतया (सरजरी) शल्यक्रिया के अधिकार सीमा में आते थे। जब एक बार कोटर का तनाव बन जाता था तो अब तक कोई ऐसी औषधि मालूम न थी कि जो इसे बन्द करने का प्रभाव रखती हो; इसका कारण यह है कि अब तक जो औषधियां प्रयोग की जाती हैं वह क्षयघ्न होने के सम्बन्ध में मन्दगति की हैं इसीलिये वह इस प्रकार के क्षयज कोटरों के परिमाण शीघ्रता से बढ़ने के साथ समानता से चल नहीं सकती हैं। कोटरों के तनाव के बन्द होने की यह विलक्षण अवस्था उन रोगियों में अधिक स्पष्ट रूप से थी जिन्हें कि स्ट्रेप्टोमाईसीन और अन्य क्षयघ्न औषधियों की बृहत मात्रा के उपरान्त भी अब तक फुफ्फुस विकृत थे और कोटर थे।

इन निरीक्षणों से मैंने यह परिणाम निकाला है कि यह औषधि या तो बैसीलाई (Bacilli-शलाकार कीटाणु) के छूत फैलाने की क्रिया शक्ति को निर्बल कर देती है और इस प्रकार टाक्सिन्स (Toxins)अर्थात एक विशेष प्रकार के विषैले मवाद जो कीटाणुओं के शरीर में उत्पन्न होकर किसी विशेष रोग का कारण बन जाते हैं कम से कम हो जाते हैं या यह डीटाक्सीकेशन (Detoxication-टाक्सिन्ज का उत्पन्न न होना) में सहायता करती है या दोनों कार्य करती है। (करेंट मैडीकल प्रैकटिस)

एक अमरीकी डाक्टर की सम्मति

एक प्रसिद्ध अमरीकी डाक्टर ने भारत पर्यटन करते हुए रुदन्ती के नमूने प्राप्त किये। इस औषधि के विषय में कांच की नलिका में विस्तृत परीक्षणों के करने के उपरांत उसने प्रकट किया कि यह औषधि परम कीटाणुघ्न है। इसने हाल ही में डा० कृष्णमूर्ति को लिखा है कि उसने इसे क्षय को आरोग्य प्रदान करने का एक निश्चित रूप का आविष्कार पाया है (टाइम्स आफ इण्डिया२७ जुलाई १९५८)

आधुनिक रुदन्ती के लाभदायक गुणों से प्रेरित होकर पोद्दार आयुर्वेदिक कालिज और अस्पताल बम्बई के आयुर्वेदिक क्लिनीकल रिसर्च वार्ड में भी इसके सम्बन्ध में बिल्कुल हाल ही में परीक्षण प्रारंभ

पौंड भार में वृद्धि हो गई थी। छटे रोगी का भार ८६ पौंड से ९६ पौंड हो गया अर्थात् १० पौंड बढ़ गया था। सातवे रोगी का वजन ८२ पौंड से ११० पौंड हो गया था यानी २८ पौंड बढ़ गया था और दसवे रोगी का वजन ९८ पौंड से ११८ पौंड होगया था अर्थात् २० पौंड की वृद्धि हो गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये गये हैं और क्षय के निरोध करने में इससे निश्चिततापूर्वक सफलता प्राप्त होने की बड़ी प्रबल आशा लगी हुई है।

जबकि भारत में प्रतिबर्ष सात लाख लोग क्षय से मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं और लगभग तीस लाख लोग क्षय से ग्रसित रहते हैं तो इस पर काबू पाने के लिए वास्तव में ही आधुनिक रुदन्ती प्रकृति का एक अनमोल और आश्चर्यजनक उपहार है। इस से हमें पूरी २ तरह लाभ उठाना चाहिए।

—कविराज श्री जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति,
चन्दौसी (मुरादाबाद)

पृष्ठ २४ का शेषांश

परिणाम—दवा सवेरे से प्रारम्भ कर शाम तक चार मात्रा दीं। इस समय तक रक्तस्राव एकदम से कम हो गया। बाद में ऊपर लिखी दवा दिन में ३ मात्रा में देने लगा। दो दिन में रक्तस्राव बन्द हो गया। तीसरे दिन से चंद्रकला रस बन्द करके अडूसा रस २ तोले और १ माशा मधु के साथ देने लगा। दवा आरम्भ से ७ दिन तक दी गई। इस रक्तस्राव में रुग्णा को कमजोरी बहुत आ गई। कमजोरी के लिये नीचे लिखा टॉनिक दिया—

विटामिन बी कम्पलेक्स लिक्विड और मैक्राबिन लिक्विड इसका मिक्श्चर बनाकर दिन में दो बार दिया। एक सप्ताह में उसका स्वास्थ्य पूर्णतः जैसा था वैसा होगया। अभी तक मासिकस्राव नियमित चालू है।

—श्री द० रा० डायलकर (शिक्षक)
धानोरा गुरव, ता. जिला अमरावती।

धन्वन्तरि में
विज्ञापन देकर
अपने व्यापार की
वृद्धि कीजिये।

कूट प्रश्नाः

यदाऽऽहारविहाराणां ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानञ्च दोषाणां तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
दुष्टानां देहनाशाय वैद्यानां पालनाय च ।
चर्यासंस्थापनार्थाय संभवामि यदा कदा ॥१॥

कथं रोगमहं मन्ये त्वां च गदसूदन ।
त्रिदोषशामकं पथ्यं भोजनान्ते पिबाम्यहम् ॥२॥

येन मुग्धो सूतराजः शिवपुत्रो महाबलः ।
तेन कण्डूं च पामां च नित्यं नाशयाम्यहम् ॥३॥

त्रिनेत्रो जटाधारी जलदो देववल्लभः ।
तज्जटाभस्म तोयेन पीतं तृषावान्तिनुत् ॥४॥

निवसति तडागे नैव मत्स्यो न नक्रो ।
न च भवति भूभुजंगो पंकमध्येपि जातः ॥
अरुणकिरणवर्णो दृश्यते नैव सूर्यो ।
सकलजनप्रसिद्धो शोणपित्तं जहाति ॥५॥

मोहिनी नैव बाला स्याच्छिवप्रिया न च पार्वती।
मादिनी नैव हालास्यात् स्तंभिनी नाहिफेनमपि ॥
दीपनी नैवअरुणीस्यान्निद्राकारिणि निशा न च।
बुद्धिदा नैवब्राह्मी स्यात्तयाऽऽक्षेपो विनश्यति॥६॥

—आचार्य श्री दौलतराम रसशास्त्री
जबलपुर म० प्र०

भाग ३५ अंक ८ में प्रकाशित पहेलियों के उत्तर—

(१) दुरालभा(जवासा-धमासा) (२) कांचनार (युग्मपत्रक) (३) श्योनाकः (अरलू-सोनापाठा) (४) पेरुक (जाम्बा-अमरूद) (५) बड़ (न्यग्रोध, वट)

—श्री उद्धव सखाराम पंत निलेकर
सिद्ध नागार्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय
नागपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफजकास में निशा का प्रयोग

(The use of Nisha in Eosinaphelia)

श्री शिवचरण ध्यानी बी. आई. एम., एस. आयुर्वेदाचार्य

कफज कास (*Eosinophelia*) के निदान, सम्प्राप्ति और चिकित्सा के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित सिद्धान्त स्थापित नहीं किया जा सका है। यद्यपि 'एलर्जी' इसका कारण और सोमल के योग इसकी चिकित्सा है, तथापि इनके सम्बन्ध में भी अभी तक मतमतान्तर विद्यमान हैं। मुझे हरिद्रा के प्रयोग करने का अवसर मिला और मुझे यह कहते हुए संतोष एवं प्रसन्नता है कि निशा के प्रयोग से इयोसिनोफीलिया में बहुत लाभ होता है। इसी सम्बन्ध में मैंने एक लेख नागार्जुन, मार्च १९६१ में प्रकाशित कराया था। उस लेख में व्यक्त किये गये अनुभवों तथा विवरणों से कई चिकित्सकों ने इसे अपने रोगियों को देना प्रारम्भ कर दिया है और मुझे भी इसके परिणामों की सूचना देने का आश्वासन दिया है।

हरिद्रा चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में कई व्याधियों की चिकित्सा में प्रयुक्त है, निघण्टुओं में भी इसका पर्याप्त विवरण मिलता है।

सिद्ध सम्प्रदाय के अनुसार हरिद्रा वर्ण्य, व्रणघ्न प्रतिश्यायघ्न तथा कासघ्न है।

यूनानी मतानुसार हरिद्रा कफनिस्सारक व्रण-शोधक एवं रोपक, कृमिघ्न, वर्ण्य, श्वासघ्न, कासघ्न एवं त्वग्विकारों में प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेद मतानुसार हरिद्रा लेखनीय, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, विषघ्न महा कषायों में गिना गई है। इसका परिगणन तिक्त स्कंध में भी किया गया है (चरक) यह शिरो विरेचन द्रव्यों में भी परिगणित है (चरक सू० २) सुश्रुत ने इसे मुस्तादिगण, हरिद्रादिगण तथा श्लेष्म संशमन वर्ग में गिना है। (सु० सू० ३९)

धन्वन्तरि निघण्टु के मतानुसार हरिद्रा तिक्त, रूक्ष, उष्ण, कुष्ठघ्न, विषघ्न, प्रमेहघ्न, कण्डूघ्न, व्रणघ्न, कृमिघ्न, वर्ण्य, अरुचिघ्न एवं पीनसघ्न है।

कैयदेव निघण्टु के मतानुसार हरिद्रा तिक्त, कटु, उष्ण, रूक्ष, कफ पित्तघ्न, पाण्डुघ्न, व्रणरोपक, प्रमेहघ्न, शोथघ्न एवं वर्ण्य है।

चरक सुश्रुतादि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हरिद्रा का सफल प्रयोग श्वास, कास, शीतपित्त एवं नेत्र रोगों में भी बतलाया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हरिद्रा का प्रयोग नवीन नहीं है। इसका प्रयोग चिकित्सक किसी न किसी रूप में करते ही थे। जिन व्याधियों में हरिद्रा का उपयोग बतलाया गया है, उन सब व्याधियों को अपने समझने की सुविधा के लिए हम दो भागों में बांट सकते हैं ताकि उनके दोष दूष्यादि का विमर्श सरलता से किया जासके। ये दो भाग समान दोष-दूष्य-अधिष्ठान के आधार पर किये गए हैं।

वर्ग १—१. कुष्ठ, २. कण्डू, ३. विष, ४. व्रण, ५. क्रिमि, ६. अपची।

वर्ग २—१. श्वास, २. कास, ३. शीतपित्त, ४. पीनस, ५. अरुचि, ६. प्रमेह, ७. पाण्डु, ८. शोथ, ९. नेत्र रोग।

यदि किसी औषध का प्रयोग विभिन्न व्याधियों में होता है तो इसका यह अर्थ होता है कि उन रोगों में कहीं कुछ समानता है। प्रथम वर्ग की व्याधियों में से कुष्ठ, कण्डू, व्रण, अपची में त्वक् समान अधिष्ठान है। अपची में रस दूष्य और बाकी सब में रक्त दुष्टि होती है। क्रिमि और विष पर कैसे कार्य करती है? सम्भवतः ये दोनों व्रण की अवस्था विशेष के द्योतक हैं। यदि व्रण में क्रिमि उत्पन्न हो जांय और उससे शरीर में विष के लक्षण उत्पन्न हो जांय तब हरिद्रा के आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रयोग से लाभ हो सकता है। द्वितीय वर्ग की व्याधियों में प्रायः समान दोष-दूष्य-अधिष्ठान हैं। जिनमें कुछ असमानता है, उनके सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक होगा। इनमें दोष-दूष्य समानता द्योतक कोष्ठक नीचे दिया जारहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याधि नाम	दोष	दूष्य	समुत्थान	पाश्चात्य नाम	पाश्चात्य कारण	विकृति सूचक
१. श्वास तमक	कफ + वात	रस	आमाशय	Asthma	Allergy	Eosinophelia
२. शीतपित्त	कफ + पित्त	रस	आमाशय	Urticarica	Allergy	Esinophenia
३. नेत्ररोग (विशेष)	कफ + पित्त	रस	आमाशय	Spring catarrh	Allergy	Eosinophil in lacrimal fluid
४. पीनस	कफ + वात	रस	आमाशय	Coryza	—	Eosinophil may increase
५. अरुचि	कफ + —	रस	आमाशय			
६. शोथ	त्रिदोषज	रस	आमाशय पक्वाशय			
७. पांडु	पित्त	रस + रक्त	आमाशय			
८. प्रमेह	कफ	रस, मेद, मूत्र आदि	आमाशय पक्वाशय			

इन सब रोगों में रस दूष्य और समुत्थान-आमाशय समान हैं। दोषों में पाण्डु को छोड़कर सब में कफ की प्रधानता बतलाई जा सकती है। पाश्चात्य दृष्टि से जो समानता थी वही दिखाई गई है। सभी नेत्र रोगों में हरिद्रा कार्य नहीं कर सकती। पाश्चात्य विज्ञानानुसार जिसका निदान Spring catarrh हो, उसमें हरिद्रा अच्छा कार्य कर सकती है।

पूर्व दर्शित कोष्ठक से ज्ञात होता है कि हरिद्रा कफ का शान्त करने, रस को शुद्ध करने और आमाशय की शुद्धि के लिए आवश्यक है। कास, शीतपित्त, नेत्र रोग, पीनस और अरुचि कफ प्रधान व्याधियां हैं। और सबमें रस दूष्य है। परन्तु पाण्डु, प्रमेह और शोथ में कुछ भिन्नता है।

यदि हरिद्रा कफ-रस आमाशय पर कार्य करती है तो स्वभावतः यह क्लेदक कफ होना चाहिए। यह क्लेदक कफ विकृत होकर प्रमेह भी उत्पन्न करता है। शोथ में भी क्लेदक कफ की ही विकृति मिलती है। प्रमेह में क्लेद को दूष्यों में गिना है। और कफ को प्रधान दोष माना है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि हरिद्रा प्रमेह और शोथ पर भी कार्य कर सकती है। पाण्डु पित्त प्रधान व्याधि है। अतः यदि हरिद्रा का प्रयोग पाण्डु पर हो तो केवल कफज पाण्डु पर ही होना चाहिए। यह मेरा तथा अन्य चिकित्सकों का भी अनुभव है कि कुछ श्वास एवं कास के रोगियों में हरिद्रा का कोई प्रभाव नहीं देखा जाता। इसका कारण मैं यह समझता हूं कि हरिद्रा कटु एवं तिक्त है तथा कफ पित्तघ्न बतलाई गई है। गुणों में रूक्ष एवं उष्ण है। यदि श्वास कफ प्रधान लक्षणों को व्यक्त करता हो तो हरिद्रा से अवश्य लाभ होना चाहिए। यदि वात प्रधान लक्षण वाला हो तो हरिद्रा से कोई लाभ नहीं होगा। कारण कि रूक्ष और उष्ण गुण तथा कटु और तिक्त रस वात को शान्त नहीं कर सकते। यही वात कास के साथ भी समझनी चाहिए।

गत तीन वर्षों में गुलाब कुंवरबा आयुर्वेद महाविद्यालय में मैंने ६० रोगियों पर हरिद्रा का प्रयोग किया है। इन सब रोगियों का निदान पाश्चात्य चिकित्सकों द्वारा ट्रौपिकल इयोसिनोफिलिया किया गया था। सभी आवश्यक परीक्षण यथासमय किए गए और निदान पक्का हो जाने के बाद केवल घृतभ्रष्ट निशा या केवल निशा का प्रयोग ४-५ माशे की मात्रा में दिन में तीन बार किया गया। प्रति सप्ताह रक्त परीक्षण होता था और रोगी की व्यथाओं में कमी या वृद्धि को लिखा जाता था। इन ६० रोगियों में से २५ रोगी आतुरालय में प्रविष्ट हुए और शेष बहिरंग विभाग से औषध लेते रहे। बहिरंग विभाग के रोगियों में विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु अन्तरंग विभाग के रोगियों के सम्बन्ध में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने औषधि का प्रयोग उचित मात्रा में और समय पर किया। इस अन्वेषणात्मक कार्य से बहुत संतोषजनक परिणाम निकले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिद्रा का प्रयोग ३ सप्ताह से लेकर २ मास तक किया गया। कुछ रोगियों में इससे कुछ लाभ नहीं हुआ और उसका क्या कारण हो सकता है वह पीछे दिया जा चुका है। ट्रोपिकल इयोसिनोफीलिया के रोगियों का निदान आयुर्वेदिक मत से श्वास या कास होता था।

प्रति सप्ताह के रक्तपरीक्षण के परिणामों को देख कर पता लगता है कि प्रथम सप्ताह में रोगी के इयोसिनोफिल ६-७ घट जाते हैं और रोगी को कुछ आराम मिलता है। दूसरे सप्ताह में रोगी के लक्षण भी बढ़ जाते हैं और इयोसिनोफिल भी बढ़ जाते हैं। इस बढ़ने को मैं 'प्रतिक्रियात्मक वृद्धि' कहता हूं। निशा के प्रयोग के दर्मियान रोगी को सबसे ज्यादा कष्ट दूसरे सप्ताह में होता है। तीसरे सप्ताह से लक्षणों में भी कमी और इयोसिनोफिल भी कम होने लगते हैं। नीचे कुछ रोगियों का साप्ताहिक रक्तपरीक्षण का परिणाम दिया जा रहा है—

रोगी	प्रवेश के समय प्रतिशत संख्या	प्रतिशत संख्या विभिन्न सप्ताहों में 1	2	3	4	5	6	7	8
1. S. M. V.	75	70	80	60	40	35	25	10	6
2. D. D. R.	80	69	81	57	38	27	16	9	4
3. M. D J.	67	60	70	40	35	20	10	7	5
4. P. D. S.	60	57	65	47	30	14	4	—	—
5. V. B. S.	55	40	57	40	25	20	9	7	3
6. S. S. D.	40	30	41	28	19	10	3	—	—
7. C. S. S.	38	35	40	25	15	7	4	—	—
8. R. B. J.	35	27	42	24	10	2	—	—	—
9. P. H. R.	35	30	37	14	4	—	—	—	—
10. I. S. D.	30	20	6	—	—	—	—	—	—

नागार्जुन में प्रकाशित लेख से प्रभावित होकर मेरे पास कई प्रश्न भी आये हैं जिनका मैं उत्तर दे भी चुका हूं, प्रसन्नता है कि 'फार्म प्रोडक्ट्स, थान्जावूर (Pharm products LTD Thanjavur)' ने उक्त लेख की प्रतिलिपि छापने तथा बांटने की अनुमति मुझसे मांगी है। मैंने सुझाव दिया है कि वे प्रथम अपने 'अन्वेषण विभाग' से इस पर अन्वेषण करवालें और पश्चात कोई पुस्तक छापें। वहां भी यह काम चल रहा है और उनके पत्र के अनुसार ६ मास के अन्दर उक्त अन्वेषण के परिणाम सामने आसकेंगे।

आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र, जामनगर में भी एक बन्धु ने इस पर कार्य आरम्भ कर दिया है। इसके परिणाम उनकी थीसिस पूर्ण होने पर ज्ञात हो सकेंगे।

इससे प्रेरणा मिलनी चाहिए और अन्य विद्वज्जनों को भी निशा के प्रयोग से लाभ-हानि के सम्बन्ध में अपने अनुभव व्यक्त करने चाहिए इसी प्रार्थना के साथ यह लेख समाप्त करते हैं।

—श्री शिवचरण ध्यानी बी. आई. एम. एस.
आयुर्वेदाचार्य, एच. पी. ए
आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर

★ ★ ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच उपयोगी वनस्पतियां

आयुर्वेदाचार्य श्री डा० एस० एन० खरे

अर्क-

१—आक के पत्ते का अर्क गर्म करके कान में टपकाने से अथवा आक की जड़ को गर्म करके दांतों के बीच दबाने से शीघ्र ही दांत का दर्द शान्त हो जाता है।

२-आक की जड़ की छाल को बकरी के दूध में पीस कर गर्म करके कंठमाला पर लेप करने से कंठमाला बैठ जाती है। यदि पुरानी हो तो पक-कर फूट जाती है।

३-आक की जड़ दूध में औटा कर दही जमा-कर घी निकालें। उसी घी को चावलों के साथ खायें। इससे नहरवा (नारुआ) कभी नहीं निकलते हैं।

४-आक का दूध लगाने से पुराना दाद ठीक हो जाता है लेकिन पहले कष्ट काफी होता है।

५-जहां पर कांटा लगा हो वहां आक का दूध लगाने से कांटा ऊपर आ जाता है।

६-जहां सांप ने काटा हो उस घाव पर आक का दूध उस समय तक डालते रहें जब तक घाव स्वयं दूध चूसना बन्द न कर दे। इस प्रयोग से शीघ्र ही लाभ होता है।

७-यदि किसी के पेट में दर्द हो तो आक के पत्तों पर एरण्डतैल अथवा तिल का तेल लेप करके फिर उनको गर्म करके पेट को सेकना चाहिए। इससे पेट मुलायम हो जाता है और दर्द भी ठीक हो जाता है।

८-बिच्छू काटने पर आक की जड़ या पत्तों को पीस कर उसी जगह लेप कर देने से तुरन्त लाभ होता है।

९-लकवा (पक्षाघात) लगने पर आक के पत्तों को तेल में चुपड़ कर गर्म करके बांधना चाहिए। इससे लाभ होता है।

१०-पार्श्व शूल और अन्य स्थान के दर्द में आक के पत्तों पर तेल चुपड़ कर गर्म करके दर्द वाले स्थान की सैंक करना चाहिए। इससे शीघ्र ही दर्द शान्त हो जाता है।

अड़ूसा--

१-अड़ूसा (रुसा) का रस(पत्तों एवं फूलों दोनों का) दो तोला लेकर इसमें शहद और शक्कर चार चार माशे लेकर मिला कर पीना चाहिए। इससे अम्लपित्त एवं कामलायुक्त पित्त कफ ज्वर ठीक हो जाता है।

२-अड़ूसे के पत्तों के स्वरस में शहद तथा मिश्री मिला कर पिलाने से अत्यन्त दारुण रक्त-पित्त शान्त हो जाता है और उदर की जलन भी नष्ट हो जाती है।

३—वासा स्वरस दो तोले में ६ माशे शहद मिला कर पीने से क्षतज कास ठीक हो जाती है। अनुपान में बकरी का दूध पीना चाहिए।

४—अड़ूसा के पञ्चाग को उखाड़ कर इसका क्वाथ तैयार कर लेवें। फिर दिन में ३-४ बार ३ तोला काथ लेकर ६ माशे शहद मिलाकर पीने से श्वास का दौरा ठीक हो जाता है।

५-श्वासकुठार रस १ रत्ती को २ तोला वासा स्वरस में मिलाकर फिर उसी में ६ माशा शहद मिलाकर सेवन करने से श्वास रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यह इञ्जेक्शन के समान योग है।

६—श्वास, खांसी, रक्तपित्त एवं राजयक्ष्मा की सबसे बड़ी चिकित्सा अड़ूसा है। कुछ भी उपलब्ध न हो सके तो इसके इसके पत्तों के स्वरस को शहद में मिलाकर सेवन करने से उपरोक्त रोग स्वतः शान्त हो जाते हैं।

७—अड़ूसे के फूल और गुड़ को मिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन करने से शिर:शूल शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

८—अडूसे के छोटे पौधे को जड़सहित उखाड़ कर छाया में सुखावें। फिर उसका चूर्ण बनाकर नित्य छै आना भर शहद के साथ खाने से हर रोग नष्ट हो जाता है।

इमली —

१—इमली की छाल जला कर और गाय के घी में मिला कर जलने के घाव पर लगाने से जलन में उसी समय ठन्डक पड़ जाती है।

२—इमली के बीजों को भून कर उनका छिलका उतार कर बारीक पीस लेना चाहिए। फिर उसके बराबर शक्कर या मिश्री मिला कर २ तोला प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल में सेवन करना चाहिए। अनुपान में ऊपर से गाय का ताजा दूध पीना चाहिए। इससे स्त्रियों में सफेद पानी (धातु) गिरना बन्द हो जाता है।

३—इमली का बीज भिगोकर उसके ऊपर का काला छिलका उतार डाल जावे। फिर उस सफेद बीज को घिस कर बिच्छू काटने की जगह पर लगा देना चाहिए। बीज फौरन चिपट जायगा और बिच्छू का पूरा जहर खींच लेगा। इसके बाद बीज स्वतः अलग हो जाता है।

४—इमली का बीज घिस कर लगाने से आंख की गुहेरी शीघ्र ही ठीक हो जाती है।

अदरख —

१—असगंध को पत्थर पर बारीक पीसकर नाभि के चारों ओर दीवार सी बना देवें जिसके किनारे ऊंचे हों। फिर इसके अन्दर अदरख का रस भर देना चाहिए। इससे भयंकर दस्तों का प्रवाह बन्द हो जाता है।

२—अदरख के स्वरस को पुराने गुड़ में मिला कर सेवन करने से शीतपित्त नष्ट हो जाता है। तथा मन्दाग्नि दूर हो जाती है।

३—अदरख का रस शहद में मिला कर चटाने से श्वास, कास और प्रतिश्याय में लाभ होता है।

४—अदरख और तुलसी के पत्तों की चाय बनाकर पीने से वातश्लेष्म ज्वर और प्रतिश्याय में ज्यादा लाभ होता है। विशेष रूप से शीत ऋतु में इसका प्रयोग किया जाता है।

अमलतास—

१—२ तोले अमलतास का क्वाथ बनाकर इसमें ६ माशे तुरंजवीन मिलाकर पीने से पित्त प्रकोपजन्य कास नष्ट हो जाती है। और गले का कव्वा (देहात में लोग उसे कौआ कहते हैं) ठीक हो जाता है। यहां पर अमलतास का गूदा प्रयोग में लाना चाहिए।

२—अमलतास का गूदा ६ माशा और मिश्री ६ माशा दोनों मिलाकर गुनगुने जल के साथ इसे प्रातः एवं सायं काल में सेवन करने से कोष्ठबद्धता और कफवृद्धि नष्ट हो जाती है।

३—अमलतास के फल का गूदा २ तोला और आंवले का चूर्ण २ तोला लेकर दोनों का क्वाथ बनाकर मिश्री और शहद एक-एक तोला मिलाकर पीने से कोष्ठशुद्धि हो जाती है। और ऊर्ध्वग रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

४—अमलतास का गूदा और आंवले दोनों बराबर लेकर सायंकाल में एक बर्तन में पानी डाल कर भिगो देना चाहिए। प्रातः काल में इसके गूदे को मसलकर पानी छान कर पीने से कोष्ठबद्धता नष्ट होकर कामला रोग ठीक होजाता है।

—श्री डा० एस० एन० खरे ए०, एम० बी० एस
सेवक औषधालय, ककवारा (झांसी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसिद्ध प्रयोग

सूखारोग पर—

पीपल वृक्ष की जटा १ भाग, हरड़ २ भाग विधि—इनको कूट पीस कर कपड़छन करके शीशी में सुरक्षित रखलें। मात्रा १–२ रत्ती माता के दूध से प्रातः सायं देवें।

(२) मुक्ताशुक्ति २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती २ मात्रा प्रतिदिन दही के पानी से दें। साथ में दधि का खूब प्रयोग करावें।

—वैद्य श्री पं. नथमल शर्मा निम्बीजोधां निवासी
श्री महावीर दातव्य औषधालय
सेनसर (राजस्थान)

रिकेट्स रोग (Rickets)—

१–यदि रोगी बलवान हो तो साधारण वमन विरेचन देवें।

२–प्रवालपष्टी, शृंगभस्म, मण्डूर इन तीनों को १–१ रत्ती की मात्रा बनाकर ३ समय प्रातः सायं, मध्याह्न बकरी के दूध के साथ देवें।

(३) इसके २ घंटे बाद तीनों समय अरविंदासव ½ तोला समभाग जल मिलाकर दें।

(४) प्रातः प्रतिदिन एक मुर्गी का अंडा दूध में फोड़कर पिलावें।

(५) प्रातः मध्याह्न सूर्य की ज्योति में लाक्षादि तैल से अंगमर्दन करें।

पथ्य—पौष्टिक पदार्थ, घी, दूध, रस, गेहूं, मूंग, अरहर आदि।

—श्री उत्तमचंद नायक, जनपद डिस्पैंसरी
लालपूर (पेन्ड्रारोड)

जलोदर पर—

छोटी हरड़ १ पाव, कुटकी १ पाव, दोनों का बारीक चूर्ण कर लें। ४-४ माशा की पुड़िया ३ टाईम गौमूत्र के साथ दें। इससे कष्टसाध्य जलोदर नष्ट हो जाता है। आहार के लिए सिर्फ दूध दें अन्न तथा पानी बंद। इससे शोथोदर भी नष्ट हो जायगा। ताकत के लिए स्वर्ण माक्षिक ३ समय दूध के साथ दें।

—श्री भगवानदास वैद्य, शेगांव

मसूड़ों पर —

रैक्टीफाइड स्प्रिट १ तोला, कास्टिक सोडा २ माशा मिला कर रखलें। मसूड़ों के दर्द पर लगावें, शीघ्र लाभ होगा।

वृश्चिक दंश—

रैक्टीफाइट स्प्रिट २ बूंद, डिस्टल वाटर १६ बूंद मिलाकर दंश स्थान के पास सूचीवेध करें। फौरन लाभ होगा।

दुखती आंखों को —

बनतुलसी का स्वरस २ बूंद डालें। एक बार में ही लाभ होगा।

पसीना अधिक आना—

दुद्धी एक तोला मिश्री ५ तोला ठंडाई तैयार कर पीने से ५-६ दिन में ही किसी भी भाग में पसीना अधिक आने की शिकायत नष्ट होती है।

—श्री वैद्य बत्तूलाल जी शर्मा,
चिकित्सक–राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय
मु० पो० कमालपुरा (सवाई माधोपुर)

गर्भदान योग—

कस्तूरी १¾ माशा, अफीम ११ माशे, केशर ११ माशे, जायफल ११ माशे, भांग १३ माशे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकनी सुपारी ३ तोले, गुड़ ५ तोले, लवंग (लौंग) ११ माशे–लेकर सबको बारीक पीस छानकर बेर के बराबर ३० गोलियां बनावें, रोज नित्य सवेरे १ गोली खायें।

नोट—ऋतु स्नान होने के पहिले दिन से ऋतु आने के दिन तक खायें।

मासिकधर्म चालू होता है। उस दिन से ७ दिन तक सुबह शाम ६ माशे हाथी दांत का बुरादा, मधूनिर, या मधूमादक के साथ ७ दिन खायें और ऋतु स्नान होने के चौथे दिन से ४ माशा हाथी दांत के महीन बुरादे की पोटली बनाकर गुप्तस्थान में रखें। इस योग से बांझ स्त्री भी गर्भधारण करती है।

सूचनायें—

(१) जिस स्त्री को गर्भ नहीं रहता उसके पति के साथ दोनों पति पत्नी की परीक्षा करनी चाहिए।

(अ) स्त्रियों का मासिक समय पर न होना, ज्यादा होना, प्रदर, रक्त की कमी, राजयक्ष्मा, वातज, कास, इत्यादि कारणों से स्त्रियां गर्भधारण नहीं करती हैं।

(ब) पुरुषों की नपुंसकता, प्रमेह, उपदंश धातु सम्बन्धी बाधायें दूर करने के बाद ही गर्भ धारण होता है।

परीक्षा—

पति और पत्नी का मूत्र अलग अलग छोटे छोटे मिट्टी के पात्र में लेकर उसमें कच्चे चने डाल दें। तीन दिन के बाद देखें कि किसके मूत्र में चने के अंकुर निकल आये हैं। जिस पात्र से चने अंकुर लिये निकलेंगे वह स्त्री हो या पुरुष निरोगी माना जायगा और जिसके मूत्र से अंकुर नहीं निकलें उस पर औषधोपचार करना होगा। बाद में इसी तरह परीक्षा करने के बाद ही गर्भाधान योग देने से बांझ स्त्री को भी अवश्य गर्भाधान होता है।

मधूनिर–मधूमादक–मधू (शहद) के साथ पानी मिलाकर औटाने पर मधूनिर होता है। इसी शहद में शराब मिला औटाने पर मधु मादक होता है।

आहार–सात्विक और थोड़ा होना चाहिए। लाल मिर्च, लहसुन, प्याज, करेला, बैंगन आदि गरम वस्तुओं का त्याग करें।

—श्री डा० डी. पी. मेश्राम वैद्यभूषण
एक्स–डिप्टीमेयर गौतम नगर, नागपुर

गौमूत्र के सफल प्रयोग–

(१) पांडु कामला पर–सुबह शाम गाय के ताजे गौ मूत्र १-१ तोले से निम्न दवायें लेवें शीघ्र लाभ करती है–

शंख भस्म १ तोला, मण्डूर १ तोला, कसीस भस्म १ तोला, शृंग भस्म १ तोला सबको मिला कर १-१ माशे की पुड़िया बनाकर लें।

(२) प्लीहाहर योग–बढ़ी हुई तिल्ली काटने के लिए नौसादर १ तोला, कलमीशोरा १ तोला, शंख भस्म १ तोला, अर्कक्षार १ तोला, चने का क्षार १ तोला, सुहागा फूला १ तोला, शु० हीराकसीस १ तोला, काला नमक ५ तोला, सबको मिलाकर ११-११ माशा की पुड़िया बनाकर सुबह शाम गौ मूत्र से लेवें। इससे बढ़ी हुई तिल्ली यकृत की गांठ, शोथ, वायु गुल्म रोग ठीक होते हैं।

(३) मेद हर अर्क–गौ मूत्र का भवका द्वारा अर्क खींचकर रखें। ५-५ तोले दिन में ३ बार लेने से बढ़ा हुआ मेद हल्का होता है।

(४) बच्चों के डब्बा (पसली) पर–१ बोतल गौमूत्र में १ तोला केशर, १ छटांक रेवन्दचीनी का सत्व मिलाकर रखें। गौमूत्र में पहले सत्व पका लेवें बाद में छानकर केशर घोटकर मिला देवें।

बच्चों के पसली चलना, श्वास उठना, सर्दी लगने पर १०-१० बूंद बच्चों को पिला देवें, शीघ्र लाभ करती है।

(५) कनपेड (प्लेग की गिल्टी) पर–काली मिर्च, काली जीरी, कुचला, गोमूत्र में पीसकर लेप कर देवें। इससे कनपेड (प्लेग की गिल्टी–गांठ) फोड़ा उठना ठीक होता है।

(६) कुकर खांसी पर—अर्क क्षार ३-३ रत्ती दिन में ३ बार गौमूत्र से देने से कुकर खांसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(काली खांसी) जाती है।

—वैद्य विशारद श्री मांगीलाल राजवैद्य
लखेरी (राजस्थान)

श्वास (दमा) पर—

(१) भटकटय्या (कटेरी) पंचांग, अपामार्ग की पत्ती, अडूसा की पत्ती, केला की पत्ती, पीपल वृक्ष की छाल, ढाक की पत्ती, भुट्टी (मक्का) की छोई (खाकर बचा हुआ) इनको समभाग लें और सब की अलग अलग भस्म करें। बाद में एक ही में मिला लें। फिर इन भस्मों को किसी चौड़े मुख के पात्र में डालकर आठ गुना जल डाल दें। दिन में ३ बार डंडा द्वारा चला दिया करें। चौथे दिन ऊपर का पानी सावधानी से नितार लें। नीचे का जमा हुआ (गाढ़ा) द्रव फेंक दें। निथरे हुए पानी को कढ़ाई में डालकर अंगीठी पर चढ़ादें और मन्दाग्नि से पकावें। जब गाढ़ा होने पर आजायें तब आग निकाल लें। साधारण गर्मी द्वारा खुश्क करलें। यह सफेद रङ्ग का क्षार प्राप्त होगा।

मात्रा—१ माशा से २ माशा तक काकड़ासिंगी १ रत्ती, पीपल ५ रत्ती, मयूरचन्द्रिका भस्म १ रत्ती असली शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम देने से श्वास (दमा) खांसी एवं वायु की नलियां साफ करता है। यह योग अपूर्व गुणकारी सिद्ध हुआ है।

(२) कुलथी को पानी में पकने को रखदें और उसी में थोड़ा नमक (खाने का), थोड़ी हल्दी गठान वाली और डाल दें। पक जाने पर उतार लें और छान लें। छने हुए पानी को फेकें नहीं बल्कि रोगी को ठंडा होने पर पिलादें। थोड़ी थोड़ी देर में पकी हुई कुलथी को भी श्वास के रोगी को खिलायें। भूख लगने पर उसी कुलथी को ही खिलायें। दूसरा भोजन न दें। इस प्रयोग द्वारा भी श्वास के रोगी ठीक हो जाते हैं।

(३) सफेद आक के फूल आधा सेर, अडूसा के पत्ते आधा सेर, लौंग १ छटांक, सौंठ १ छटांक, जायफल २ नग, काली मिर्च १ छटांक, नौसादर (थप्पी वाला) इनको हंडिया में भर कर मुख बंद कर गजपुट में लगा भस्म करें। इस भस्म में १॥ तोला कलमी सोरा पीसकर मिलालें। फिर पुराना गुड़ मिला गोली (झरबेरी के समान) बनालें।

मात्रा—१ गोली सुबह शाम या दिन में ३ बार भी दे सकते हैं।

गुण—श्वास (दमा) कास इत्यादि पर अचूक गुणकारी है।

(४) श्वास खांसी पर बूटी—सफेद शरपुंखा की जड़ चिलम में भरकर तम्बाखू की भांति पीने से श्वास, खांसी मिट जाती हैं।

(५) काले धतूरे के सूखे पत्ते चिलम में भरकर पीने से श्वास ठीक होता है।

(६) अडूसा के पत्ते (छाया में सूखे हुए) चिलम में भरकर तमाखू की भांति जोर से कस लगाकर पीयें। श्वास का दौरा शान्त हो जाता है।

(७) ऊंटकटारा की जड़ छाया में सुखाकर रखें। मात्रा ४ रत्ती पान में रखकर सेवन करें। इससे दमा खांसी में लाभ होता है।

—वैद्यरत्न श्री आत्माराम बर्वे आयु० शास्त्री
घन्सौर (सिवनी) म० प्र०

आवश्यक सूचना

शिशुरोगाङ्क उत्तम ग्लेज कागज पर (राजसंस्करण) भी छापा जायगा। इसे प्राप्त करने के लिए १.५० अधिक अर्थात् वार्षिक मूल्य ७.०० मनियार्डर से भेजना होगा। वी० पी० से नहीं भेजा जायगा। राजसंस्करण १ माह की देरी से भेजा जा सकेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यालोचन

१—शार्ङ्गधर संहिता—

[कृष्णा नामक हिन्दी भाषाटीका सहित] भाषा-टीकाकार—आचार्य श्री राधाकृष्ण पाराशर, आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० गुप्ता लेन कलकत्ता–६।

आयुर्वेद की लघुत्रयी में शार्ङ्गधर संहिता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी कई भाषाटीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु सुबोध एवं सर्वांगपूर्ण व्याख्या सहित कोई टीका अभी तक हमें दृष्टिगोचर नहीं हुई। आलोच्य ग्रन्थ इस दिशा में बहुत कुछ सफल हुआ है। इसमें प्रायः सब क्लिष्ट स्थलों का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया गया है। अंग्रेजी माध्यम से अधीत आधुनिक आयुर्वेद के या अन्य वैद्यक के उपाधिधारी वैद्यों की सुविधा के लिए इसमें स्थान स्थान पर अंग्रेजी प्रतिशब्दों की योजना की गई है। तथा विशेष वक्तव्यों द्वारा भी विषय को समझाया गया है। जहां तक हो सकता है लेखक ने इस पुस्तक को आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी बनाने का सराहनीय प्रयत्न किया है। ६०२ पृष्ठों की उत्तम आकर्षक जिल्द वाली इस पुस्तक का मूल्य ५.७५ कुछ अधिक नहीं है।

२–सुलभ आयुर्वेदीय औषधि योजना—

महाराष्ट्र के [illegible] वैद्यराज श्री वेणीमाधव शास्त्री जोशी जी इसके लेखक हैं। महाराष्ट्र राजकीय आयुर्वेदीय अनुसंधान समिति की ओर से प्रकाशित इस महाराष्ट्र भाषा की मौलिक पुस्तक में अग्निमांद्य, अजीर्ण, वमन, अम्लपित्त, अतिसार आदि कुल ५१ सर्व सामान्य विकारों पर सुन्दर संक्षिप्त विवेचनासहित उपयुक्त सुलभ योग दिये गये हैं। साथ ही साथ प्रत्येक रोग पर पथ्यापथ्य एवं लंघन आदि का भी विचार किया गया है। इस पुस्तक में, वर्णित रोग के तात्कालिक घरेलू उपचार के लिये बहुत ही उत्तम मार्गदर्शन हुआ है। पृष्ठ १५४ की यह स्कूली साईज की पुस्तक उत्तम पुष्ट कागज पर छपी हुई अजिल्द है। मूल्य छपा नहीं है। मंत्री–महाराष्ट्र राजकीय आयुर्वेदीय अनुसंधान समिति, मुस्तफा विल्डिंग, सरफिरोजशाह मेहतारोड बम्बई नं० १ से प्राप्त हुई है।

३-चिकित्सा पद्धति

यह भी उक्त महाराष्ट्र राजकीय अनुसंधान समिति द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति की उत्कृष्टता प्रगट करने के लिए प्रकाशित हुई एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। यह सरल हिन्दी भाषा में है।

शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से रोग परीक्षण कर उसकी शास्त्रोक्त प्रणाली द्वारा चिकित्सा कैसी, किस प्रकार करनी चाहिए, इसका यथायोग्य मार्गदर्शन इस पुस्तक में सूक्ष्म विचारपूर्वक किया है।

इसमें प्रारंभिक परीक्षण एवं चिकित्सा के लिए ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, शोथ, उदर, श्वास, कामला, आमवात, संधिगतवात और अस्थिमज्जागत वात इन १३ रोगों पर, प्रत्यक्ष कई रोगियों का परीक्षण कर उनकी चिकित्सा का सरल शास्त्रोक्त मार्ग का स्पष्टीकरण किया गया है। जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि आयुर्वेदिक सिद्धान्त काल्पनिक नहीं, प्रत्युत पूर्ण वैज्ञानिक हैं। निरापद चिकित्सा के लिए आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ एवं सुलभ है। इसे सबका सहयोग प्राप्त होना अत्यावश्यक है। जिससे भारत की गरीब जनता इसके द्वारा ठीक ठीक लाभ उठा सके।

उक्त अनुसन्धान समिति का यह ठोस कार्य परम प्रशंसनीय है। आशा सब समंजस विद्वान वर्ग तथा जनता जनार्दन की ओर से इसका पूर्ण सहयोग पूर्वक समादर होगा। पुष्ट कागज पर उत्तम छपी हुई २७८ पृष्ठ की इस पुस्तक पर मूल्य अंकित नहीं है।

४–स्वास्थ्य और संगठन—

यह उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विकाश खंड के लिए स्वीकृत, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका, बहुत छोटे साईज की, स्वास्थ्य और सुगठन संघ, कटरा, अहियागंज लखनऊ से प्रकाशित हो रही है। वार्षिक मूल्य १०.५० है। तथा सम्पादक श्री एच. डी. श्रीमाली बी. एच. सी. एल. डी हैं।

इसमें स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्राकृतिक साधनों पर उत्तम लेख प्रकाशित होते हैं। हम इस पत्रिका का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनन्दन पूर्वक सहर्ष स्वागत करते हैं, तथा इसके अत्यधिक प्रचार की कामना करते हैं।

५-दीर्घायु —

(स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रमुख मासिक पत्रिका) सम्पादक-डा० लालबहादुर सिंह, चौहान, तथा प्रकाशक यू० डी० पाराशर वैद्यर्षि, गनी बिल्डिङ्ग, देशबन्धु गुप्ता रोड, नई दिल्ली-५। वार्षिक मूल्य ४.००

इस पत्रिका का उद्देश्य सम्पादक के शब्दों में "अपने देश के नागरिकों का जीवन स्तर उठाने के लिए रोगों की रोक थाम, सुन्दर चिकित्सा व्यवस्था की सुलभता और स्वास्थ्य स्तर के अभ्युदय के लिए आयुर्वेद के आधार भूत सिद्धान्तों को अपनाना" है।

इसी दृष्टि से इस प्रथमांक में--स्वास्थ्य और दीर्घायु में व्यायाम का स्थान, गर्भवती स्त्रियां क्या करें? मानव स्वास्थ्य में इसबगोल की उपयोगिता आदि उत्तमोत्तम लेखों का संकलन किया गया है। लेखों की विवेचन शैली सरल एवं सुबोध है।

हम अपने इस सहयोगी का हृदय से स्वागत करते हुए, इसके दीर्घायुष्य की हित कामना करते हैं।

६-सचित्र जन आयुर्वेद —

यह धन्वन्तरि साईज का मासिक पत्र गत एप्रिल मास से प्रकाशित हो रहा है। इसका एप्रिल मास का प्रथमांक तथा मई, जून का संयुक्तांक हमारे सामने है। इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं-राजवैद्य ईश्वरीदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य महताब सिंह का नौहरा, अलवर (राजस्थान) वार्षिक मू० ५.००

इसमें मधुमेह, बालकों का जिगर रोग, सर्वविष चिकित्सा, संजीवनी वटी आदि उत्तम लेखों का सुयोग्य रीति से संकलन हुआ है।

हम अपने इस सहयोगी का भी सरल हृदय से स्वागत करते हैं, और चाहते हैं कि इसकी नित्यप्रति उन्नति हो।

७-सिद्ध भैषज्य माला (सिद्ध प्रयोग संग्रह)-

लेखक प्रोफेसर गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य प्रकाशक-सरल चिकित्सा ग्रन्थमाला कार्यालय, सरस्वती-निकेतन, भिवानी। स्कूली साइज पुस्तक पृष्ठ ७८ सजिल्द मूल्य २.०० रु०

इसमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों से कुल ६४ प्रयोगों का उपयुक्त संग्रह किया गया है। साधारण औषधालयों में प्रतिदिन उपयोग में आने वाले सामान्य योगों का वर्णन इस दृष्टि से इसमें किया गया है कि जो एक छोटी सी फार्माकोपिया का काम दे सके। प्रूफ की गल्ती इस में बहुत हो जाने से दो पृष्ठ का शुद्धि पत्र जोड़ा गया है। पुस्तक साधारणतः ठीक है किन्तु मूल्य अधिक है।

८-श्रीनिवास सूक्ति त्रिशती—

श्री सदाचार्य श्रीनिवासशास्त्री ने सूर्यप्रभा नामक स्वरचित पुस्तक में से ३०० सूक्तियों का संकलन हिन्दी भाषान्तर सहित इस छोटी सी ४० पृष्ठ की पुस्तिका में किया है। सूक्तियां सब मार्के की एवं समयोचित हैं। मूल्य ०.५०। पता-श्री वाणीवेश्म, कमरा नं० डी ६९४ हजरा स्ट्रीट, कलकत्ता।

९-आरोग्य मंदिर —

महाराष्ट्र भाषा के प्रसिद्ध मासिक पत्र का 'अपघात निवारण' विशेषांक। मूल्य १.२५

इसमें मोटर से कुचल जाना, आग से जलना, खेलकूद में गिर पड़ना आदि कारणों से होने वाले शारीरिक अपघातों का सुन्दर विवेचन किया गया है। अपघात विषयक तात्विक विचार, अपघात और आयुर्वेद, अपघात पर आयुर्वेदीय उपचार आदि आदि उपादेय लेखों का सुन्दर सचित्र संकलन किया गया है। मराठी भाषा में यह पठनीय एवं संग्रहणीय है।

पता—आरोग्य मंदिर कार्यालय तिलक मार्ग अमरावती।

१०-आरोग्य लेखांजलि [प्रथम भाग]

लेखक पं० केदारनाथ पाठक 'रासायनिक'। प्रकाशक श्री श्यामसुन्दर रसायन शाला, गायघाट, वाराणसी १। ६० पृष्ठ वाली छोटी स्कूल साईज की अजिल्द पुस्तक, मूल्य १.००

इसमें स्वास्थ्य विज्ञान और आहार विज्ञान इन दो भागों के अन्तर्गत् कुल १२ छोटे छोटे किन्तु सारगर्भित लेखक के स्वलिखित निबन्धों का संकलन किया गया है। स्वास्थ्य विज्ञान में मालिश और उसकी विधि, अपने हाथों कपड़ों की सफाई, आयुर्वेद में गंगा और ग्रीष्मऋतु चर्या विषयक लेख उत्तम हैं। आहार विज्ञान में आंवला, अमरूद, पपीता, खरबूजा, बेल, करेला और आलु का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

स्वास्थ्य—साधना की दृष्टि से पुस्तक सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। हम इसका अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं। जिससे लेखक इसके अन्य भागों को प्रकाशित करने में उत्साहित होवे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार एवं सूचनायें

फतेहपुर १७ सितम्बर। राजस्थान के प्रमुख वैद्यों की एक बैठक वैद्य श्री बहादुर सिंह एम. एल. ए. की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई, जिसमें आयुर्वेद समाज के लिये निम्नलिखित कार्यवाहक समिति का गठन किया गया।

अध्यक्ष—श्री अम्बालाल जोशी
उपाध्यक्ष—श्री नित्यानन्द शर्मा:
" श्री मदनलाल पुष्करणा
प्रधान मन्त्री—श्री चिरञ्जीलाल शर्मा
मन्त्री—श्री मक्खनलाल शास्त्री
संयुक्त मन्त्री—श्री सत्यदेव शर्मा
उपमन्त्री—श्री बाबूलाल जोशी
कोषाध्यक्ष—बाबा जयरामदास

कार्य समिति सदस्य—श्री भागीरथ जोशी, श्री बहादुर सिंह, महन्त श्री मुरली मनोहरशरण शास्त्री, श्री सीताराम मिश्र, श्री भूदेव शर्मा, श्री गोपालदत्त शर्मा, श्री विष्णुदत्त पुरोहित।

--प्रधानमंत्री

छात्र परिषद् का चुनाव

श्री हनुमान आयुर्वेद कालेज रतनगढ़ छात्र परिषद् का नये सत्र का चुनाव कालेज के प्रिन्सीपल वैद्य श्री चिम्मनलाल जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ। इसमें निम्न पदाधिकारी चुने गये--

अध्यक्ष-श्री रामप्रसाद शर्मा गौनियाल
उपाध्यक्ष-श्री भीमसैन गौड़
मंत्री-श्री माधवाचार्य शर्मा
कोषाध्यक्ष-श्री रामेश्वर शर्मा
क्रीड़ा मन्त्री-श्री बजरंगलाल शर्मा

-मंत्री

काशी मण्डल वैद्य सभा के प्रस्ताव

(१) काशी मण्डल वैद्य सभा की प्रबन्धकारिणी समिति का यह अधिवेशन वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय में आयुर्वेद विभाग खोलने की घोषणा पर हर्ष प्रकट करता है एवं उसके अधिकारियों को इस कार्य को बधाई देता है।

(२) यह सभा का० हि० वि० वि० के अधिकारियों द्वारा श्री सुन्दरलाल अस्पताल के सामने स्थित आयुर्वेदीय वनस्पत्युद्यान की सीमा में मेडीकल कालेज के भवन निर्माण सम्बन्धी विचार को जानकर दुखी है। क्योंकि वैद्यसभा को यह विदित है कि विश्वविद्यालय के अधिकारी आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं आयुर्वेदीय अनुसंधान संस्थान स्थापित करने का आश्वासन दे चुके हैं। सभा यह भी समझती है कि उक्त दोनों कार्यों के लिए आयुर्वेदीय वनस्पत्युद्यान के विकास एवं संरक्षण के लिये अधिकतम स्थान की आवश्यकता है। वर्तमान स्थान घिर जाने पर यह सम्भव न हो सकेगा। इसलिए यह सभा विश्वविद्यालय के अधिकारियों के उक्त विचार का विरोध करती है और उनसे अनुरोध करती है कि वे अपने उक्त विचार को त्याग कर आयुर्वेदीय वनस्पत्युद्यान, आयुर्वेदीय औषधि संग्रहालय (हरबेरियम), शरीर भवन, सर सुन्दरलाल अस्पताल, आयुर्वेद महाविद्यालय भवन, आयुर्वेदीय फार्मेसी इत्यादि आयुर्वेद महाविद्यालय से सम्बन्धी किसी भी भूमि पर मेडीकल कालेज भवन कथमपि निर्माण न करें।

(३) यह सभा का० वि० वि० के अधिकारियों द्वारा ३६ वर्षों से चली आ रही आयुर्वेदीय फार्मेसी को बन्द किये जाने सम्बन्धी निर्णय का घोर विरोध करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) यह सभा का० वि० वि० के अधिकारियों द्वारा आयुर्वेदीय फार्मेसी बन्द करने तथा आयुर्वेदीय वनस्पत्युद्यान में मेडीकल कालेज का भवन बनाने सम्बन्धी निर्णय से यह समझती है कि इन आयुर्वेद के आधारभूत साधनों के नष्ट हो जाने पर सर सुन्दरलाल अस्पताल का आयुर्वेदी विभाग भी बन्द हो जायगा। इसलिये यह सभा अधिकारियों से अनुरोध करती है कि वे आयुर्वेद के विरोधी दशा में अपने बढ़ते हुए पग को तत्काल रोकें और आयुर्वेद के समस्त विभागों का संचालन यथावत् करें।

(५) यह सभा अनुभव करती है कि प्रत्येक जिले की आयुर्वेदीय औषधि ग्रहण करने की इच्छुक जनता के लिये जिला स्तर पर प्रत्येक जिले में न्यूनतम एक सर्व साधन सम्पन्न आयुर्वेदीय आतुरालय की अविलम्ब आवश्यकता है। —प्रधान मन्त्री

आयुर्वेदिक एडवाइजर का स्वागत

हरिद्वार ७-१०-६१ आज आयुर्वेद विज्ञान परिषद् (हरिद्वार) की ओर से अमरेश्वरानन्द बाल चिकित्सालय में सायंकाल भारत सरकार के केन्द्रीय आयुर्वेदिक परामर्शदाता श्री डा० सी० द्वारकानाथ के स्वागत में वैद्यों के विशाल अभिनन्दन समारोह का आयोजन हुआ। माननीय एडवाइजर महोदय ने परिवार नियोजन पर गम्भीरतापूर्वक स्वतंत्र विवेचन किया। आयुर्वेद की सामयिक स्थिति की चर्चा करते हुए अन्त में इस बात की बधाई दी कि हरिद्वार के वैद्यगण राजनीति से दूर रहते हुए वैज्ञानिक चर्चा के लिये एकत्रित होते हैं। कार्यक्रम की सफलता का श्रेय श्री वैद्य निरंजन देव जी आयुर्वेदालंकार एवं डा० विष्णुदत्त जी भारद्वाज को है। सम्पूर्ण प्रबन्ध बाल-कल्याण समिति की ओर किया गया।

—वैद्य श्री ज्ञानेन्द्र पांडेय।

आयुर्वेदीय निर्माता संघ

राजकीय प्रवास भवन, जयपुर में राजस्थान के आयुर्वेदीय औषधि निर्माताओं की एक बैठक आचार्य विरंची वैद्य की अध्यक्षता में हुई। इस बैठक में राजस्थान आयुर्वेदीय औषध निर्माता संघ का गठन कर तत्कालीन कार्य संचालन के लिये एक विधान भी स्वीकृत किया गया।

कार्य संचालनार्थ कविराज डा० बहादुर सिंह जी एम०एल०ए० धौलपुर को सर्व सम्मति से संयोजक निर्वाचित किया गया। अस्थाई कार्यालय धौलपुर रक्खा जायगा।

नगर वैद्य सभा का नव निर्माण

राजलदेसर (चूरू) नगर के समस्त वैद्यों की उपस्थिति में नगर वैद्य सभा का नव निर्माण गत माह में हुआ। सर्व सम्मति से निम्नांकित पदाधिकारी चुने गये।

अध्यक्ष—श्री स्वामी गंगेश जी महाराज
उपाध्यक्ष—वैद्यराज श्री फुसाराम जी महाराज
मन्त्री—श्री वैद्य भामराज पाटोदिया
कोषाध्यक्ष—वैद्यराज श्री गोवर्धनलाल जी दाधीच

—मन्त्री

भूल सुधार

भाग ३५ अङ्क ८ पृष्ठ ४२, दूसरे कालम में नीचे से तीसरी पंक्ति में 'बालार्क' के स्थान पर 'वातार्क' छप गया है। कृपया पाठक सुधार लें।

शोक समाचार

स्थानीय स्वामी औषधालय के संचालक वैद्य श्रीमान् पं. बनवारीलाल जी का ७८ वर्ष की आयु में तारीख ४-६-६१ को स्वर्गवास हुआ। आप संस्कृत तथा आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान तथा अनुभवी और मिलनसार व्यक्ति थे। वैद्य सभा में आपका सदा सहयोग रहा तथा आप वैद्य सभा के सदस्य थे। परमात्मा दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें। —वैद्यराज श्री हरबाजीनारायण राव गुलकरी आयुर्वेदाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मशीन की विशेषताएं

मशीन के व्यवहार में किसी प्रकार की परेशानी नहीं, हर कोई बड़ी सरलता से व्यवहार कर सकता है।

- इसमें खर्चा नहीं के बराबर होता है, लाभ बहुत अर्थात् "कम खर्च वाला मशीन"
- अनेकों रोगों में चमत्कारपूर्ण लाभ होने के कारण—
- रोगियों को आकर्षित करने का उत्तम साधन है।
- मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है, प्रभावशाली है, बहुत दिनों तक निर्बाध काम देने वाली है।
- टार्च में पड़ने वाली गोल सैल इसमें पड़ती हैं जो सर्वत्र मिल जाती हैं।
- गांव -शहर हर स्थान पर इससे काम लिया जा सकता है।

मूल्य—३५.०० मात्र। पैकिंग-पोस्ट व्यय ४.०० पृथक्। मशीन के साथ व्यवहार विधि मुफ्त दी जाती है। आर्डर के साथ ५ रु० एडवांस अवश्य भेजें।

नोट—डाइनुमा द्वारा चलने वाली—इसमें किसी प्रकार की बिजली अथवा बैटरी खर्च नहीं होती। बिना किसी प्रकार के अतिरिक्त खर्च के यह जन्म भर काम देती रहती है। मूल्य केवल ५०.०० पोस्ट एवं पैकिंग व्यय ५.५० रु० प्रथक्। रेल से मंगाने में खर्चा कम होगा इसलिए रेलवे स्टेशन पत्र में स्पष्ट लिखें। आर्डर के साथ १०.०० रु० एडवास अवश्य भेजें।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतति निरोध के लिए

पुरुषों के लिए-

	एक	एक दर्जन
फ्रैंच लैदर साधारण	०.५०	५.००
फ्रैंच लैदर बढ़िया	०.७५	७.५०
क्रोकोडायल फ्रैंच लैदर	१.००	१०.००

स्त्रियों के लिए-

चैक पैसरी जापानी	०.८७	८.५०
डाइफ्राम (डच) पैसरी बढ़िया	२.५०	२५.००

नोट—उपरोक्त कोई भी सामान एक दर्जन से कम मंगाने पर एक नग का जो मूल्य लिखा है वह लगाया जायगा, १ दर्जन का नहीं। डायफ्राम (डच) पैसरी ६ मंगाने पर १२.५० लगाये जायेंगे।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स
विजयगढ़ (अलीगढ़)

टिकिया बनाने की मशीन

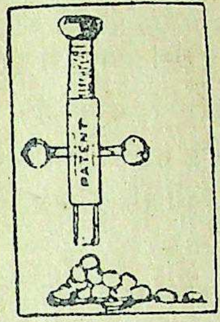

निकिल पोलिस की हुई बहुत उत्तम, टिकाऊ और सुन्दर मशीन निर्माण कराई हैं। इससे ३ साइज की टिकिया (२ रत्ती, ४ रत्ती, ६ रत्ती की) बनाई जा सकती हैं। सामान्य व्यक्ति भी बड़ी आसानी से टिकिया बना सकता है। बड़ी मांग है। आप भी एक मशीन मंगा लीजिएगा। मू० ११.०० पोस्ट एवं पैकिंग व्यय १.२० पृथक्।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स
विजयगढ़ (अलीगढ़)

तिहरा काम करने वाला
सर्वोत्तम स्टेथिस्कोप

यह स्टेथिस्कोप चाइना का बना हुआ है और अपने ढंग का निराला है। इसमें तीन निम्न प्रकार के चैस्टपीस है— १-घंटी की तरह का (BellType) २-धातु का (*Flat*) ३-कलाई पर बांधने का।

तीनों इच्छानुसार अदल-बदल कर काम में लाये जा सकते हैं। चित्र में स्टेथिस्कोप में घंटी की तरह वाला (Bell Type) लगा है, धातुवाला नीचे दिखाया है तथा कलाई पर बांधने वाला ऊपर। साथ में एक सुन्दर थैला भी है। इसके अलावा प्रत्येक तरह के फालतू पार्ट भी हैं। यह स्टेथिस्कोप चिकित्सकों के लिए बड़ी काम की चीज है। मूल्य २०.०० रु०, पोस्ट व्यय पृथक्।

एक चैस्टपीस वाला भारतीय	१०.००
एक चैस्टपीस वाला जर्मनी सर्वोत्तम	२२.००
स्टेथिस्कोप रखने का चमड़े का थैला	५.५०

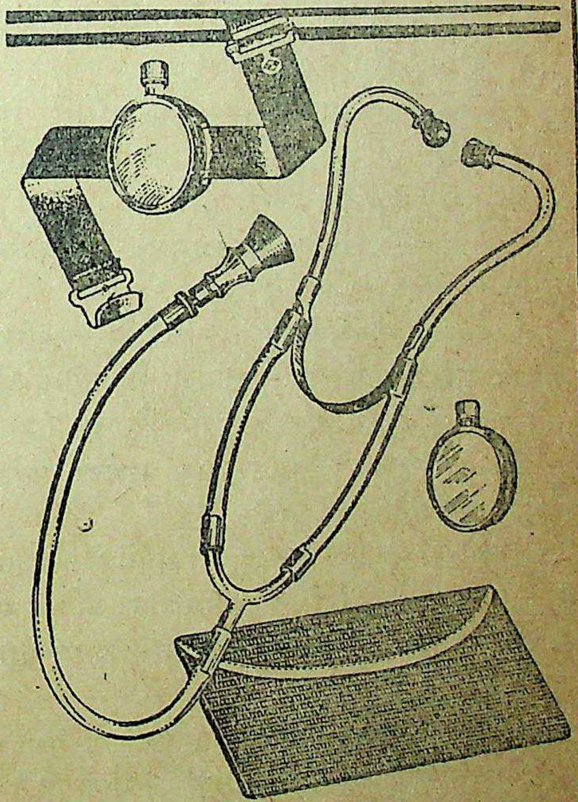

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल सफल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

इन पुस्तकों में आपको प्रायः सभी रोगों पर उत्तमोत्तम प्रयोग प्राप्त होंगे। चिकित्सा कार्य में आपको प्रतिदिन सहायता देने वाली इन पुस्तकों को अपने पास रखें, अध्ययन करें तथा अपनी बुद्धि एवं अवसर के अनुसार इनमें वर्णित हजारों प्रयोगों से आप लाभ उठावें।

रस तन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—दो भागों में हजारों शास्त्रीय एवं सुपरीक्षित प्रयोगों का उपयोगी संग्रह, निर्माण विधि एवं गुणधर्म विवेचन। मूल्य प्रथम भाग ९.००, द्वितीय भाग ६.००

अनुभूत योग चिन्तामणि—प्रयोग संग्रहकर्त्ता डा. गणपति सिंह वर्मा। २ भागों में रोगों का वर्णन तथा उपयोगी प्रयोग दिये हैं। प्रथम भाग ४.२५, द्वितीय भाग ४.००

अनुभूत योग चर्चा—आयुर्वेदाचार्य श्री बन्शरीलाल साहनी ने अपने जीवन के अनुभव इस पुस्तक में चिकित्सकों के लाभार्थ प्रस्तुत किये हैं। सर्वत्र सुलभ लगभग ६५० उपयोगी प्रयोग तथा उनका पठनीय विवेचन है। उपयोगी पुस्तक है। प्रथम भाग २.१०, द्वितीय भाग ३.५०

अनुभूत योग प्रकाश—डा० गणपति सिंह वर्मा द्वारा १५ वर्ष के परिश्रम से प्राप्त उपयोगी प्रयोगों का सुन्दर संग्रह है। मूल्य ६.२५

अनुभूति—लेखक के १८६ स्वानुभव पूर्ण प्रयोगों का सुन्दर संग्रह पठनीय है। मूल्य २.००

आयुर्वेदीय सिद्धभैषज्य मणिमाला—सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ सिद्ध भैषज्य मणिमाला के प्रयोगों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया गया है। मू. २.५०

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते एवं सफल प्रयोग संग्रह। मूल्य ३.००

देहाती अनुभूत योग संग्रह—दो भागों में देहाती सुलभ वस्तुओं से निर्मित उत्तमोत्तम प्रयोगों का वर्णन है। कुल ६५० प्रयोग हैं। मूल्य प्रथम भाग ६.००, द्वितीय भाग ७.००

सिद्ध योग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी के अनुभूत उपयोगी प्रयोगों का संग्रह प्रत्येक वैद्य के लिये पठनीय है। मूल्य २.७५

राजकीय औषधि योग संग्रह—उ० प्र० सरकारी डिस्पेंसरियों में व्यवहृत ४०० से ऊपर औषधियों के प्रयोग, निर्माण विधि, गुण वर्णन और व्यवहारादि, श्री पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी द्वारा लिखित प्रयोग ग्रन्थ। मूल्य ८.००

सिद्ध मृत्युञ्जय योग—इस पुस्तक में ५३ सफल प्रयोगों का वर्णन है। चिकित्सकों के लिये उपयोगी है। मूल्य १.००

औषध स्वावलम्बन—तुलसी, पान, अद्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियों का संक्षिप्त वर्णन देते हुए यह समझाया गया है कि वह औषधि किन किन रोगों पर लाभ करती है। मूल्य २.००

सिद्ध प्रयोग—(दो भाग)-पं. विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। अनेक सिद्ध योगों का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया गया है। मूल्य प्रथम भाग १.००, द्वितीय भाग ०.५०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत संस्कृत में प्रयोगों का संग्रह है। सरल हिन्दी में टीका की गई है। टीकाकार पं. किशोरीदत्त शास्त्री। मू. ०.६२, टीकाकार पं० कालिकाचरण पाण्डेय एम. ए मूल्य १.२५

वैद्य बाबा का बस्ता-जैसा कि नाम से ही प्रकट है, पुस्तक का आकार डायरी के समान है। इससे पुस्तक की उपादेयता और बढ़ गई है। सजिल्द मूल्य १.२५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग में आने वाले १३१ चूर्णों का संग्रह। मूल्य १.२५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह—इस पुस्तक में से १६६ क्वाथों का संग्रह प्रकाशित किया है। मूल्य १.२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—३२३ बूटियों (गुटिकाओं) का उपयोगी संग्रह। मूल्य २.००

पता--धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि

सूखारोगांक

सूखा रोग पर सारगर्भित, गवेषणापूर्ण,
अनुभवयुक्त तथा वैज्ञानिक समाधान

—विशेष-सम्पादक—

वैद्य श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, गुरुकुल स्नातक

—सम्पादक—

वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग ज्वालाशरण अग्रवाल बी. एस सी.
दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

भाग ३५ अगस्त वार्षिक मूल्य ५.५०
अङ्क ८ १९६१ इस अङ्क का मूल्य १.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल सफल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

इन पुस्तकों में आपको प्रायः सभी रोगों पर उत्तमोत्तम प्रयोग प्राप्त होंगे। चिकित्सा कार्य में आपको प्रतिदिन सहायता देने वाली यह पुस्तकें को अपने पास रखें, अध्ययन करें तथा अपनी बुद्धि एवं अवसर के अनुसार इनमें वर्णित हजारों प्रयोगों से आप लाभ उठावें।

रस तन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—दो भागों में हजारों शास्त्रीय एवं सुपरीक्षित प्रयोगों का उपयोगी संग्रह, निर्माण विधि एवं गुणधर्म विवेचन। मूल्य प्रथम भाग ६.००, द्वितीय भाग ६.००

अनुभूत योग चिन्तामणि—प्रयोग संग्रहकर्ता डा. गणपति सिंह वर्मा। २ भागों में रोगों का वर्णन तथा उपयोगी प्रयोग दिये हैं। प्र. भाग ४.२५, द्वितीय भाग ४.००

अनुभूत योग चर्चा—आयुर्वेदाचार्य श्री वंशरी लाल साहनी ने अपने जीवन के अनुभव इस पुस्तक में चिकित्सकों के लाभार्थ प्रस्तुत किए हैं। सर्वत्र सुलभ लगभग ६५० उपयोगी प्रयोग एवं उनका पठनीय विवेचन है। उपयोगी पुस्तक है। प्रथम भाग २.५०, द्वितीय भाग ३.५०

अनुभूत योग प्रकाश—डा. गणपति सिंह वर्मा द्वारा १५ वर्ष के परिश्रम से प्राप्त उपयोगी प्रयोगों का सुन्दर संग्रह है। मू० ६.२५

अनुभूति—लेखक के १८६ स्वानुभव पूर्ण प्रयोगों का सुन्दर संग्रह पठनीय है। मूल्य २.००

आयुर्वेदीय सिद्ध भैषज्य मणिमाला—सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ सिद्ध भैषज्य मणिमाला के प्रयोगों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया गया है। मू. २.५०

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते एवं सफल प्रयोग संग्रह। मूल्य ३.००

देहाती अनुभूत योग संग्रह–२ भागों में देहाती सुलभ वस्तुओं से निर्मित उत्तमोत्तम प्रयोगों का वर्णन है। कुल ६५० प्रयोग हैं। मूल्य प्र. भाग ६.००, द्वि. भाग ७.००

सिद्ध योग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी के अनुभूत उपयोगी प्रयोगों का संग्रह प्रत्येक वैद्य के लिये पठनीय है। मू. २.७५

राजकीय औषधि योग संग्रह—उ. प्र. सरकारी डिस्पेंसरियों में व्यवहृत ४०० से ऊपर औषधियों के प्रयोग, निर्माण विधि, गुण वर्णन एवं व्यवहारादि, श्री पं० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी द्वारा लिखित, प्रयोग ग्रंथ। मूल्य ८.००

सिद्ध मृत्युञ्जय योग—इस पुस्तक में ५३ सफल प्रयोगों का वर्णन है। चिकित्सकों के लिए उपयोगी है। मूल्य १.००

औषध स्वावलम्बन—तुलसी, पान, अद्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियों का संक्षिप्त वर्णन देते हुए यह समझाया गया है कि वह औषधि किन किन रोगों पर लाभ करती है। मू. २.००

सिद्ध प्रयोग—(दो भाग)–पं० विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। अनेक सिद्ध योगों का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया गया है। मू० प्रथम भाग १.००, द्वितीय भाग ०.५०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत संस्कृत में प्रयोगों का संग्रह है। सरल हिन्दी में टीका की गई है–टीकाकार पं० किशोरीदत्त शास्त्री मू. ०.६२, टीकाकार पं० कालिकाचरण पांडेय एम. ए. मूल्य १.२५

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से ही प्रगट है, पुस्तक का आकार डायरी के समान है। इससे पुस्तक की उपादेयता और बढ़ गई है। सजिल्द मूल्य १.२५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग में आने वाले १३१ चूर्णों का संग्रह। मू. १.२५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह—इस पुस्तक में से१६६ क्वाथों का संग्रह प्रकाशित किया है। मू. १.२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—३२३ बटियों (गुटिकाओं) का उपयोगी संग्रह। मू० २.००

पता–धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के संयुक्त-मन्त्री, अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन
द्वारा गठित स्वास्थ्य योजना-संचालक समिति के सदस्य, युक्तप्रान्तीय
आयुर्वेद महामण्डल के भू. प्रधान मन्त्री, आयुर्वेद विज्ञान
परिषद् हरिद्वार के संयोजक, पंचपुरी वैद्यसभा (हरिद्वार)
के उपसभापति, भू. प्रधान-इटावा जिला
वैद्य संघ तथा प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान व
सिद्ध चिकित्सक--

कविराज श्रीमान् रामनाथ जी शास्त्री वैद्य

आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वाचस्पति एम.एस.सी. [ए.]
प्रोफेसर एवं चिकित्सक (बहिरंग)-आयुर्वेदिक कालिज
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

को

यह धन्वन्तरि का 'बाल शोष अङ्क'

सादर समर्पित

जिनके आशीर्वाद, निर्देशन तथा ज्ञान भण्डार से मैं आयुर्वेद साधना में संलग्न हूँ।

विनयावत-

ज्ञानेन्द्र पाण्डेय
बाल शोष अङ्क के विशेष सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं. १ अस्थि पंजर—इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया है। हाथ, अंगुली, रीढ़, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ सकते हैं। मूल्य ५.००

नं. २ रक्त परिभ्रमण—इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त भ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई हैं तथा दूसरे हाथ और दूसरे पैर में धमनियां दर्शाई हैं। मूल्य ५.००

नं. ३ वातनाड़ी संस्थान—इस चित्र में सम्पूर्ण वातनाड़ी मंडल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्व-वातनाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क सम्बन्ध का चित्रण पृथक किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५.००

नं. ४ नेत्र रचना एवं विकृति—इसमें पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १. दक्षिण चक्षु—इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गए हैं। २. पटलों और कोष्ठों को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिज काट। ३. चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४. नेत्र चालिनी पेशियां। ५. दृष्टिभेद (दर्शन सामर्थ्य)। ६. साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आयेगा। मूल्य ५.००

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६.००

नोट—सादा बिना कपड़ा-लकड़ी लगे चित्र शीशा में मढ़ने के लिए १ चित्र ४.००, चारों मंगाने पर १२.००

वैद्यों के लिए आवश्यक

रोगी रजिस्टर–हर वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखे। यह चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगीरजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिसमें आवश्यक कालम दिये हैं। मू. ३.५०

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिये प्रमाण पत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रंगों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू. १.०० मात्र। अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रंगों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर कार्य पर पहुँचने पर उन्हें वे स्वस्थ हैं इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका मू. १.००। अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रंगों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू. १.२५

रोगी व्यवस्था पत्र—रोगी के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिखकर रोगी को दे दीजिये। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आ जायेगा। साइज २०×३०=३२ पेजी। मू. ०.३७ प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू. १.००

तापमापक चार्ट–(टेम्परेचर चार्ट)–इससे रोगियों का तापमान अङ्कित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अङ्कित किया जा सकेगा अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १.०० मात्र।

पता - धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यङ्ग-बहुरंगी शारीरिक चित्रावली

(रियायती मूल्य १५ सितम्बर से ३० अक्टूबर सन् १९६१ तक)

यह शारीरिक चित्रावली बहुत प्रयत्न करके परमिट प्राप्त कर इंगलैंड से मैसर्स ज्योर्ज फिलिप्स एन्ड सन्स नामक फर्म से खासतौर से तैयार कर मंगाई गई है। इसकी मांग सदैव से बनी रही है तथा हमारा विश्वास है कि जो भी इसे देखेगा मुग्ध हो जायगा। इसमें २० इञ्च लम्बे ७ चित्र दिये गये हैं जिनमें कि सभी संस्थानों (Systems) को उनके प्राकृतिक रंगों में दर्शाया गया है। उदरस्थ आमाशय, यकृत्, मूत्राशय, मलाशय, गर्भाशय आदि सभी अंगों को उनके प्राकृतिक रंगों में छापकर काटकर यथास्थान चिपकाया गया है। हृदय, फुफ्फुस आदि अङ्ग भी इसी प्रकार लगाये गये हैं। इनमें से हर एक अङ्ग का चित्र बीच में से दो पर्त होकर अङ्ग के अन्दर की दशा भी दिखलाता है।

इन सबके अतिरिक्त बांयी ओर तीन चित्र दिखाये हैं। इनमें से प्रत्येक ८ इञ्च लम्बा है। इसमें से अगल बगल की ओर से दीखने वाली पेशियों का तथा अस्थियों का चित्र है। एक चित्र शव को बीचों बीच चीरने पर जो दृश्य दिखाई देगा उसका है। गर्भाशय में पड़ा बच्चा किस प्रकार रहता है और गर्भ प्रसव कैसे होता है यह भी इसमें दिखाया है।

इन सभी चित्रों पर नम्बर पड़े हैं तथा उनके नाम संस्कृत, हिन्दी तथा इंगलिश में साथ में लगी पुस्तिका में दिये हैं। यह चित्र एक के ऊपर एक तह होकर एक पुस्तकाकार बन जाते हैं। मजबूत जिल्द बांध दी गई है। विस्तृत विवरण वनौषधि विशेषांक में अन्त में देखें या पत्र लिख कर हमसे मंगालें। इसका मूल्य १५ रुपया नैट है।

रियायत-३० अक्टूबर सन् १९६१ तक मंगाने पर हम आपसे पोस्ट व्यय नहीं लेंगे। ३ चित्रावली मंगाने पर एक इंजेक्शन सिरिंज आल ग्लास ५ सी. सी. की बढ़िया (सुई सहित) जिसका मू. चार रुपया है फ्री भेजी जायगी। आर्डर के साथ ५.०० एडवांस आना आवश्यक है।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स विजयगढ़ [अलीगढ़]

औषधि-पेटी

प्रत्येक चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सार्थ या अन्य आवश्यक कार्य निमित्त जाते समय यात्रा में औषधियां साथ रखे। चिकित्सक को हर स्थान पर रोगी मिल जाते हैं उस समय औषधियां पास न होने पर बड़ी असुविधा होती है। इसलिए औषधि-पेटी चिकित्सकों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हमने निम्न प्रकार की सुन्दर टिकाऊ औषधि पेटी तैयार कराई हैं। इस पर मजबूत आइल क्लाथ (कपड़ा) चढ़ाया जाता है। अन्य विवरण निम्न प्रकार है-

नाप—ऊंचाई ७। इञ्च, लम्बाई ९॥ इञ्च, चौड़ाई ४॥ इञ्च।

शीशियां—२ ड्राम की २४, ४ ड्राम की १८ तथा ८ ड्राम की ८ शीशी, कुल ५० शीशियां मय कार्क।

वजन-मय शीशियों के लगभग १॥ सेर। लकड़ी की पार्सल में पैक करने पर ३ सेर।

पाकेट—एक पाकेट लगी है जिसमें कागज रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर सिरिंज व थर्मामीटर रखने के लिए स्थान बना है।

मूल्य—कार्क एवं शीशी सहित औषधि-पेटी का १८.००, पोस्ट व्यय ४.०० पृथक्।

नोट—आर्डर के साथ ५.०० एडवांस अवश्य भेजें।

पता-दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ [अलीगढ़]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

मेरा मानव शिशु दीन-हीन	श्री सरयूप्रसाद भट्ट	५
केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री का शुभ सन्देश	... ...	६
सम्पादकीय विचार	श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय	७
पहेलियां	श्री उद्धव सखाराम पन्त	६
पिछले अंक में प्रकाशित पहेलियों के उत्तर	... ...	६
आयुर्वेद तथा समाज में सूखारोग	श्री मदनगोपाल गुप्त एम० एल० ए०	१०
बालशोष-शास्त्रीय विवेचन	श्री शिवकुमार व्यास	१३
बालशोष-हैतुकी विश्लेषण	श्री बंशीधर तिवारी	१८
शिशु शोष-विकृति विज्ञान	श्री मुकुन्दचन्द्र व्यास	२१
सूखारोग का क्षेत्र	श्री शेषराव जैन	३१
राजस्थान में बालशोष का रूप और चिकित्सा पद्धति	श्री अम्बालाल जोशी	३५
बालशोष चिकित्सा पद्धति	१. श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय	४०
	२. श्री ओम्प्रकाश शर्मा	४२
	३. श्री शेषराव जैन	४३
बालशोष में प्रयुक्त औषधियां व द्रव्य	श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय	४६
बालशोष पर अनुभव	१. श्री श्यामदास पीयूषमणि	४६
	२. श्रीमती सत्यकुमारी गोयल	५२
	३. श्री गोविंद बल्लभ पंत	५३
	४. श्री नन्दकिशोर शर्मा	५४
	५. श्री मुकुन्दचन्द्र व्यास	५४
हमारे सफल सिद्ध प्रयोग	१. श्री सत्यप्रसाद निर्भीक	५६
	२. श्री पूर्णचन्द्र जोशी	५७
	३. श्री मुन्नालाल गुप्त	५८
	४. श्री पं० रामनरेश मिश्र	५६
शतः शतोनुभूत निश्चित फलप्रद प्रयोग--	श्री ए० एम० अडसोद	६१
	श्री देवीसहाय	६१
	श्री रामवृक्ष	६१
	श्री गणेशदत्त शास्त्री	६२
	श्री श्रेयन्स कुमार बड़कुल	६२
	श्री नन्दलाल शर्मा	६२
	श्री प्रेमदत्त शास्त्री	६३
	श्री मक्खनलाल बरनवाल	६३
	श्री नौबतराम जैन	६३
	श्री उमाशंकर दाधीच	६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखा-रोगांक

●

मेरा मानव शिशु दीन हीन

[१]

रसमय है पुष्ट न क्यों
वह मांसल तन
'मधुमय' वसन्त ने इन्हें अरे
कैसे पतझड़ में डाल दिया
इस पतझड़ ने हरित कि मांसल
इनका सब कुछ लूट लिया।
इस हड्डी के ढांचे में
मेरा मानव-शिशु दीन-हीन
हां झांक रहा।
चर्मास्थि शेष,
'जीवन' संज्ञा है नाम-रूप

[२]

ऐसी संजीवन भिषक् कि हे तुम?
निर्माण करो।
हो लच्च लच्च मानव शिशुओं का
उद्धार आज।
ये शुष्क-काय जो मृरामय सम
भर दो प्राणों का सरस राग
स्नेहिल जीवन ध्वनि रसमय
झंकृत होवे संजीवन मय
अणु-अणु 'मधुमय'
विगलित करुणा की धार भिषक्
वह स्वास्थ्य कांतिमय अमृतमय
आज उड़ेलो तुम।
वरदान तुम्हारे हाथों में,
पीयूष पाणि,
दो जीवन चिर,
लहलहा उठे,
हां गमक उठे
उपवन 'सूखा'
शुचि स्वास्थ्य-सुरभि से सना-सना
इसमें नित केलि करे मारुत

[३]

हा भरत धरा के लच्च लच्च
ये भरत कि क्यों है दीन-हीन?
इनमें प्राणों की शेष कहानी है
जीवन की शेष कहानी है।
ये शौर्य शक्ति पुरुषार्थ कि कैसे
निर्मित कर पाएंगे।
केहरि क्रीड़ा क्या सम्भव इनको?
नहीं नहीं यह कथन कहानी—
मात्र आज।
मां शकुन्तले;
ये भरत तुम्हारे गौरव को
क्या शेष अहा रख पाएंगे?
कैसा यह प्रसव तुम्हारा है?
सोचो क्षण भर।
ये भावी भव-पथ निर्माण
करेंगे क्या?
निश्चित न आज ये रख सकें
तेरे गौरव को अक्षुण्ण हरा
कह रहा कि इनका अबल हृदय
रसमय है पुष्ट न क्यों—
यह मांसल तन?

रचियता—श्री सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय' वैद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री का

शुभ-सन्देश

MINISTRY OF HEALTH
INDIA
नई दिल्ली

श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय वैद्य
सम्पादक–धन्वन्तरि सुखारोगांक
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ० प्र०)

प्रिय महोदय,

स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमकर जी को प्रसन्नता हुई कि आप अपने पत्र 'धन्वन्तरि' का सुखारोगांक निकालने जा रहे हैं। इस विशेषांक की सफलता के लिए मन्त्री जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

आपका -
र० वा० जठार
स्वास्थ्य मन्त्री जी का निजी सचिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषांकाध्ययन से पूर्व अवश्य पठनीय—

सम्पादकीय-विचार

★

इस बात की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं कि आज का बालक कल देश का नागरिक बनेगा, बाल्यावस्था जैसे स्वच्छन्द वातावरण से निकलकर उत्तरदायित्व के क्षेत्र में उसे आना होगा। सुयोग्य सन्तति ही देश की सम्पत्ति होती है। अतः यह आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है कि बालकों का स्वास्थ्य सुदृढ़ रहे और वे शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार से स्वस्थ व विकसित होते रहें।

परन्तु स्थिति क्या है?

वर्तमान युग में बालकों की अवनत दशा का संकेत ही पर्याप्त होगा। बालमृत्यु की संख्या में सुधार नहीं हो रहा है। देहातों में अब भी बाल विवाह प्रचलित हैं। माता-पिता अनभिज्ञ होते हैं तथा साथ ही अति कामातुरता की चरम अवस्था को पार करते हुए असमय में शिशु की प्राप्ति करते हैं। फिर यह भी नहीं कि संतान निरोध हो, बल्कि संख्या की अधिकता एक दिन दरिद्रता का रूप धारण कर परिवार का सुख चैन लूटकर स्थान से ग्राम, ग्राम से समाज, समाज से प्रान्त और प्रांत से सारे देश में व्याप्त होती जा रही है। कहां तो पुत्र की प्राप्ति के लिये कितनी आशाएँ लगी रहती हैं दम्पति को और फिर बाद में वे स्वयं ऊबने लगते हैं।

नकल के लिए भी अकल चाहिए?

यदि बालकों के जन्म पर विचार करते हुए गर्भ निरोध पर ही दृष्टिपात किया जावे तो मेरे विचार में वर्तमान यन्त्रादि से गर्भ निरोध उपाय व्यभिचार को बढ़ाने वाले हैं। पाश्चात्य देशों की नकल करते हुए हमारे राज तन्त्र संचालक परिवार नियोजन की भौतिक अवरोध क्रियाओं पर विपुल धन व्यय कर रहे हैं। आपरेशन पद्धति, विभिन्न प्रकार की रबर की थैली, दवायें आदि प्रचलित की गयी हैं, युगल दम्पत्ति की महत्वपूर्ण शक्तियां नष्ट होती रहती हैं। सरकार विदेशों की नकल तो करती है पर अकल से काम नहीं लेती। उसे भारत के प्राचीन शास्त्रों को देखना चाहिए। जनता को आध्यात्मिक दौर पर चलाना चाहिए। इन्द्रिय निग्रह कितना सुन्दर उपाय है? पर सरकार तो कागजी कार्यवाही पर लम्बे-चौड़े आंकड़े बना देती है। ये नवीन विज्ञान के भयानक यन्त्र आदि तो प्राचीन पद्धति के बाद भी लाये जा सकते हैं। लेकिन शासन को अपना घर झांकने की फुर्सत ही कहां?

राष्ट्र की नींव कमजोर होने के लिए उत्तरदायी कौन?

राष्ट्र की बुनियाद बालक हैं और उनकी उन्नति के लिए केवल सरकार की ही जिम्मेवारी नहीं है, माता-पिता का भी पर्याप्त कर्त्तव्य है। जनता को जागृत हो बालकों पर अपना विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनकी मनोवृत्तियों को नित्य प्रति सुधारने और अधिक उत्तम बनाने का समान प्रयत्न करें। अधिकांशतः माताओं की अनभिज्ञता बच्चों को कहीं का नहीं छोड़ती। अनावश्यक लाड़ प्यार, अन्य विश्वास आदि के लिए माताओं को ही कहना होता है। प्रसूतागार, धात्री, दूध पिलाने के नियम आदि जानकारी होने से पर्याप्त लाभ पहुँचेगा। मातृ बनने से पहले सभी बातों का ज्ञान होना चाहिए।

बालकों के बढ़ते हुए रोग?

सदाचार का अभाव, भोजन व रहन-सहन का बिना नियमपूर्वक चलना प्रभृति कारणों से बच्चों को बीमारियां घेरे रहती हैं। गरीबों की कमर और टूट जाती है जब वे पहुँचते हैं डाक्टर के पास। तीक्ष्ण औषधियों से तत्काल लाभ हो जाता है पर वह कितने दिन टिक पाता है? सृष्टि के साथ ही आयुर्वेद को जन्म दे दिया गया कि जनता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य समस्या का समाधान होता रहे। पर चकाचौंध में जनता गुमराह होती है यह आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु अधिकांश जनता अब भी अपने बच्चों का घर में ही इलाज कर लेती है। बूढ़ी माताओं को अभी तक याद है घुट्टियां और नुस्खे, पर ये आने वाली नयी मातायें फैशन से प्रभावित होती जा रही हैं। पुराने आयुर्वेदिक नुस्खे अपने बच्चों को देने में लज्जा अनुभव करती हैं। अस्पतालों में रोज दौड़ी जाती हैं। विषैली दवाओं के उपयोग के लिए बच्चों की सुकोमल प्रकृति पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है? यह किसी से छिपा नहीं। भारत के बालकों का स्वास्थ्य का हल आयुर्वेद से ही मिल सकता है। प्राचीनकाल में वीर व स्मरणीय बालक किसी परिवार नियोजन के परिसंस्कृत उपायों के परिणाम नहीं थे। मातायें हृष्ट-पुष्ट थीं, उनमें प्राचीन सभ्यता के प्रति आस्था थी, श्रद्धा थी। परन्तु आज भौतिकता की ओर परिवार अग्रसर हो रहे हैं और किए जा रहे हैं। परिणामतः बालकों की दयनीय दशा है। रोगों की अधिकाधिक उत्पत्ति किसी को बताने की आवश्यकता नहीं। अधिक द्रव्य व्यय करने वाले अमीर बच्चों का कुछ भी हाल हो पर गरीब बालकों का हाल देखकर हृदय कांप उठता है। यही हुआ है हमारी आजादी का अवर्णनीय फल।

दयानीय अवस्था का एक मात्र स्थान—

बालकों के रोगों का उपचार, अनागत बाधा प्रतिषेध से परिपूर्ण शास्त्र प्राचीन भारतीय चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, शार्ङ्गधर, काश्यप, हारीत आदि संहिताओं में बाल रोगों का वर्णन मिलता है। सभी शास्त्रों में अनेक बाल रोगों का वर्णन पाया जाता है इनमें भी अन्तर उपस्थित है।

अष्टांग आयुर्वेद में से एक :अंग कौमारभृत्य है। यद्यपि अनेक संहिता ग्रन्थों में बाल रोगों का निर्देश किया गया है परन्तु बाल रोग विशेषज्ञ आचार्य काश्यप की संहिता का आज विशेष स्थान है। इसमें बालकों से सम्बन्धित विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है। इस संहिता द्वारा बाल रो[ग] की एक बहुत बड़ी समस्या चिकित्सकों की हल [हो] जाती है।

भयंकरता लिए प्रमुख बाल रोग--

बालकों को अनेक रोग होते हैं उसमें गरी[ब] और मध्यम वर्ग के परिवारों में सूखा रोग की भ[र]मार है। इसकी भयंकरता से सभी परिचित है[ं]। बच्चों को यह कहीं का नहीं छोड़ता। यह अभाव [का] द्योतक रोग अल्प समय में बालकों को घेर क[र] काल कवलित कर देता है। शुद्ध दूध का अभा[व] माताओं की अज्ञानता, क्षीर दोष, दृष्टि दो[ष] खटिक की कमी आदि अनेक कारणों से सूखा रो[ग] की उत्पत्ति होती है। इसमें क्या होता है? इस[का] संकेत भी पुनरावृत्ति होगा क्योंकि जनता [व] चिकित्सक इससे खूब पहिचान रखते हैं। निदा[न] तो तत्काल हो जाता है परन्तु उपचार काल शी[घ्र] समाप्त नहीं होता।

क्या आयुर्वेद में सूखारोग नहीं है?

आयुर्वेद से कुछ शिकायत भी प्रायः की जा[ती] है। आलोचक व नव्य क्रम में शिक्षित लोग आयु[र्]वेद में अनेक स्थानों की अपूर्णता या अनुपस्थि[ति] की बात कहते हैं। उनके ये मत कहां तक सत्[य]तायुक्त होते हैं इसके स्पष्ट करने की आवश्यक[ता] नहीं। यही कठिनाई सूखा रोग के विषय में हम[ें] सम्मुख आती है।

ऐसी परेशानियों या अपूर्णताओं को य[दि] छिपाया जाता है तो किसी अन्याय व विश्वासघा[त] से कम नहीं। किसी भी विज्ञान की कमी पूर्ण [व] विकसित करने का क्रम चलता रहता है। इस[में] लज्जा या संकोच का प्रश्न ही नहीं उठता।

काश्यप संहिता, शार्ङ्गधर संहिता आदि [में] अनेक बाल रोगों का उल्लेख किया है। आचा[र्य] काश्यप ने सूखारोग से सम्बधित रोग फक्क [का] विस्तृत वर्णन दिया है। अन्य आचार्यों ने भी [इसके] लक्षणों का किसी न किसी रूप में उल्लेख कि[या]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर इनके सूत्र रूप में वर्णन होने से कमी प्रतीत होती है। आज के विज्ञान का युग-क्रमबद्ध व स्पष्ट वर्णन की मांग करता है। आयुर्वेद को भी इससे पीछे नहीं रहना चाहिए। पूर्ण विकसित करने की दशा में कदम उठाते हुये बाल शोष पर पूर्ण वैज्ञानिक प्रकाश डालने के लिए ही हमने

धन्वन्तरि का बाल शोष अंक—

उपस्थित किया है। वस्तुतः इस साहित्य की उपस्थिति से एक नवीन रूप में अध्याय चिकित्सकों के लिये प्रस्तुत हो गया है—इसके हमें विशेष कहने आवश्यकता नहीं। धन्वन्तरि कार्यालय के व्यवस्थापक महानुभावों ने जो प्रसंशनीय कदम उठाया है उसके लिए सभी लाभान्वित होने वाले वैद्य स्वयं धन्यवाद प्रगट करेंगे। यह सम्पादन कार्य मुझे सौंपा गया और मैंने यथाशक्ति कार्य सम्पन्न किया है।

स्थानाभाव की चरम सीमा—

इस विशेषांक के लिए मेरे पास लेखों के ढेर लग गये। सभी कुछ न कुछ विशेषता लिए थे। मैं चाहता भी था कि सभी के उपयोगी अंश या लेख प्रस्तुत किए जावें। परन्तु व्यवस्थापक महोदय की ओर से स्थान बढ़ाने की पूर्ण असमर्थता प्रगट करने के कारण अनेक लेख अस्वीकृत कर देने पड़े। कुछ लेखों के नितान्त उपयोगी अंशों को लेकर ही विशेषांक को सजाने का प्रयत्न किया है। कहां तक कहें, जगह इतनी भी नहीं रही कि मैं अपना लेख भी दे पाता।

उपसंहार की ओर—

मैं अपने सभी विद्वान लेखकों का हृदय से आभारी हूं जिन्होंने व्यस्त रहते हुए भी अंक के लिये लेख भेजे हैं। यथासंभव उनको प्रकाशित किया है जो अप्रकाशित रह गये हैं उसके लिए क्षमा ही मांग सकता हूँ। यह बाल शोष विशेषांक कैसा प्रतिपादित हुआ है इसका निर्णय वाचकों पर ही रहता है। आशा है कि अपने विचारों से अवगत कराने का कष्ट करेंगे।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।
बालशोष के सम्पादक।

पहेलियां

प्रयास रहितो यासो बलदोऽग्निप्रदीपकः।
कफमेदोमदभ्रांति हरः स्वादुर्हिमोलघुः ॥ १ ॥

चमरी कुंडली ग्राही तुवरोऽग्निप्रदो हिमः।
कफपित्तकृमिकुष्ठ, गण्डमाला, व्रणार्तिहः ॥ २ ॥

कीरनाशोऽपि न व्याधो नटोऽपि नच नर्तकः।
आमवातातिसारघ्नः कटुस्तिक्तोग्निदीपनः ॥ ३ ॥

वर्तुलं कंदुकं नैव तुवरं कफकारकम्।
शुक्लं शीतलं स्वादु त्रिधातून्मादनाशकम् ॥ ४ ॥

वनस्पतिर्गुरुर्ग्राही दाहघ्नो वर्णदो हिमः।
रक्तफलः कषायश्च योनि-दोष निबर्हणः ॥ ५ ॥

नोट—इन पहेलियों के उत्तर आगामी अङ्क में प्रकाशित किए जायेंगे।

—उद्धव सखाराम पंत निलेकर नागपूरीय-सिद्ध नागार्जुन, आयुर्वेद महाविद्यालय

पिछले अङ्क में प्रकाशित पहेलियों के उत्तर

(१) केसर (२) तुलसी (३) बच (४) शङ्ख (५) नल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद तथा समाज में सूखा रोग

कविराज श्रीमान् मदनगोपाल जी गुप्त आयुर्वेदाचार्य, ए. एम. एस.,
एम. एल. ए. (सदस्य-विधान सभा) उ० प्र० राज्य।

आदरणीय श्री कविराज जी से उत्तर प्रदेशके सभी वैद्य बन्धु परिचित हैं आयुर्वेद के लिए विधान सभा में भी आप संघर्ष करते रहते हैं। आप एक सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने के साथ योग्य चिकित्सक भी हैं। धन्वन्तरि के लिए समय निकाल कर जो लेख भेंट किया है, तदर्थ हम आभारी हैं।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

इस प्रदेश में बच्चों का सूखा रोग अति प्रचलित रोग है और हजारों बच्चे प्रतिवर्ष इस रोग से ग्रस्त होते हैं और कितने ही उचित चिकित्सा के अभाव में या माता-पिता की अज्ञता, अन्धविश्वासादि कारणों से काल कवलित हो जाते हैं। गरीब परिवारों में या अशिक्षित लोगों में यह रोग अधिकतर देखा जाता है। मातायें इस रोग का नाम सुनते ही बालक के प्रति निराश हो जाती हैं।

इस रोग के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें बालक सूखता जाता है। साधारणतया बालकों में भ्रूणावस्था से ही उसके शरीर के प्रत्येक धातु में बड़े वेग के साथ वृद्धि होती रहती है जिससे उसका शरीर उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है। यदि रोग न हो और पूर्ण पोषणयुक्त आहार भी न मिलता हो तो भी प्रकृति की कृपा से बालक की अभिवृद्धि क्रमशः होती रहती है और उसका आयाम व भार व उसकी कार्य क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है परन्तु कुछ विशिष्ट कारणों से जब बालक में अजीर्ण, प्रतिश्याय, अतिसार या छर्दि आदि प्रक्रियाओं द्वारा उसके शरीर के पोषक तत्वों का सात्म्यीकरण नहीं होता और वे अधिक मात्रा में शरीर के बाहर निकल जाते हैं तो जैसे हैजा में कै दस्त से मनुष्य कमजोर व तेजहीन हो जाता है उसी प्रकार बालक भी तेजोहीन व क्षीणतर होता जाता है। इसी प्रकार उसमें अजीर्ण की सम्प्राप्ति के साथ साथ प्रतिश्याय व शोथ की सम्प्राप्ति के लक्षण पूर्वरूप भी संचित होते रहते हैं और सूखा रोगग्रस्त बालक में प्रतिश्याय व शोथ के भी लक्षण उपस्थित दिखाई देते हैं, उदर फूला रहता है, पैर, मुख, पलक, हाथादि अङ्गों में सूजन दिखाई देती है, शरीर सूखकर हड्डियां निकल आती हैं मांस क्षय हो जाता है, पीठ पसली की सब हड्डियां दिखाई देने लगती हैं, पैर की अस्थि भी कमजोर हो जाती हैं, शिर का मांस भी सूख जाता है और शिर पर तुरकी के स्थान पर गड्ढा हो जाता है। और उस स्थान पर गढा होने के साथ साथ स्फुरण भी प्रतीत होता है। रक्तहीनता के भी लक्षण दिखाई देते हैं। रोगी पांडु वर्ण का हो जाता है। नख, नेत्र, कर्णपाली की लालिमा जाती रहती है। बालक पीड़ा से रुदन करता रहता है या निष्क्रिय पड़ा रहता है। अधिक बुभुक्षा, पिपासा भी बढ़ जाती है। दस्तों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। छर्दि भी बढ़ जाती है। रोगी को किसी प्रकार भी विश्रान्ति नहीं मिलती। माता पिता भी दिन रात सुश्रूषा करते करते ऊब जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना भयङ्कर रोग है जो तपेदिक की भांति घातक समझा जाता है। तपेदिक का एक शास्त्रीय नाम शोष भी है और इसे बालशोष के नाम से इसी कारण पुकारा जाता है। चरक सुश्रुत में १८ प्रकार के क्षय बतलाये गए हैं और यह विशिष्ट बाल क्षय या बालशोष रोग नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। इसी अर्थ को द्योतन करने वाले शब्द "सुखण्डी" या "सुखौड़ी" भी लोक में प्रचलित हैं जिसमें बालक सूखता जाता है, वजन घटता जाता है। इस रोगी से लोग घृणा करने लगते हैं अतः यह "घिनौवा" भी कहा जाता है। यह रोग उतना घातक नहीं है जितना लोक में प्रसिद्ध है। अपनी भयानकता के कारण इस रोग का नाम "मसान" पड़ गया। मसान शब्द श्मशान का द्योतक है तथा क्वचित मृतवत्सा रोग को भी मसान कह देते हैं। इसकी घातकता के द्योतनार्थ ही इसका नाम मसान पड़ गया है। क्वचित लोक में इसको 'उड़नी' या 'छट्टी' भी कहते हैं। परछांवों व लरकहाई भी इसी का नाम है। स्थान भेद से इसकी घातकता के निदर्शनार्थ अनेक नाम पड़ गये।

इस रोग की चिकित्सा में ममरखी या नीलकंठी बूटी का प्रयोग होता है जिससे लाभ भी होता है। इसी कारण इसको ममरखी रोग भी कहते हैं। ममरखी शब्द अमृतत्व के अर्थ में या उसके अपभ्रंश के रूप में प्रयुक्त होता है।

क्वचित् तालुकण्टक भी इस रोग को समझा जाता है क्योंकि इस रोगी के शीर्ष प्रदेश के ब्रह्मरंध्र के स्थान पर जहां शिर की हड्डियां आपस में मिलती हैं गड्ढा पड़ जाता है या तालुपात हो जाता है। इस रूप में इसको तालुकण्टक समझते हैं। इसका अच्छा वर्णन माधव निदान में है।

शिर में जहां कपालास्थियां मिलती हैं ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश कहलाता है। यह स्थल अति कोमल व मांसाच्छन्न होता है परन्तु इस रोग में मांस सूख जाता है और ब्रह्मरन्ध्र पर गड्ढा हो जाता है, जहां नाड़ियों का स्फुरण स्पर्श से प्रतीत किया जा सकता है। जब बालक अति क्षीण व दुर्बल हो जाता है तो इस प्रदेश में जो गड्ढा पड़ जाता है उसको तालुपात कहते हैं। यहां कांटा लगने के सदृश पीड़ा होती है इसीसे इसको तालुकण्टक कहते हैं। बालक स्तनपान करना छोड़ देता है क्योंकि उसे स्तनपान से कष्ट होता है। पतले तरल कई रंग के हरे-पीले दस्त अधिक संख्या में आते हैं। छर्दि भी होती है। द्रवांश निकल जाने से बालक को प्यास भी लगती है और हर समय पानी की मांग करता है। कण्ठ, नली में श्लेष्मा के भी लक्षण दिखाई देते हैं। बालक इतना दुखी हो जाता है कि गरदन सीधी नहीं रख सकता और बेचैन रहता है। दुर्बलता अधिक बढ़ जाने पर कभी तेजोहीन होकर निष्क्रिय पड़ा रहता है।

बाल शोष का वर्णन गद निग्रह में निम्न प्रकार मिलता है—

अत्यहः स्वप्न शीताम्बु श्लैष्मिक स्तन्य सेविनः।
शिशुः कफेन रुद्धेषु स्रोतसु रसवाहिषु।
अरोचकप्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायेत।
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्ल मुखेक्षणः॥
—गद निग्रह।

इसमें ज्वर प्रतिश्याय तथा कास का स्पष्टवर्णन है जो रोगी में प्रायशः देखा जाता है।

सूखारोग को क्वचित फक्क रोग भी समझा जाता है। फक्क रोग का वर्णन काश्यप संहिता में विषद पर खंडित रूप से पाया जाता है।

यह रोग प्रायः क्षीराशी या क्षीरान्नाशी बालकों को होता है। रोग का समारम्भ माता के श्लेष्म दुष्ट अभिष्यन्दि दुग्ध से होता है। माता का दुग्ध आहार विहार के परिणामस्वरूप श्लेष्मदुष्ट या अभिष्यन्दि व विदाहि हो जाता है। प्रसव के बाद स्त्रियां पीनोन्नत पयोधरा होती हैं और बालकों को दुग्ध पान कराती हैं। दुग्धपरिपूर्ण कुचों को मर्दन करने से दुग्ध अविकृत होते हुए भी विकृत हो जाता है और उसमें लसीका वाहिनियों के रस तथा रक्त का संमिश्रण हो जाता है। कुचमर्दन में कुच गत सभी तरल पदार्थों का मन्थन हो उठता है जिससे दुग्ध यदि अविकृत हो तो भी विकृत अन्य गुरु अभि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्यन्दि व विदाहि पदार्थों से युक्त हो जाता है और यदि कुच मर्दन के बाद बिना कुचों को विश्राम दिये बालक से यदि दुग्धपान कराया जाता है तो वह दुग्ध कुस्वादु अभिष्यन्दि गुरु व विदाहि होकर बालक में अजीर्ण व प्रतिश्याय का श्री गणेश कर देता है।

माता के दुग्ध की परीक्षा एक ग्लास जल में डाल की जा सकती है। एक गिलास जल में स्तन से दुग्ध निचोड़ दें। यदि दुग्ध अविकृत होगा तो सरलता से जल के साथ एक रस हो जायगा। पर यदि दुग्ध अभिष्यन्दि या श्लेष्मदुष्ट हुआ हो तो वह जल में सरलता से एक रस न होगा और पानी में नीचे चला जायगा या नीचे बैठ जायगा। इसी प्रकार कुच मर्दन के पूर्व व पश्चात् भी दुग्ध की परीक्षा की जा सकती है और उसमें अन्तर मिलेगा।

माता क्वचित् गर्भधारण के बाद भी बालक को दुग्धपान कराती रहती हैं। यह दुग्ध भी विकृत, गुरु व अभिष्यन्दि होता है और बालक को सात्म्य न होने से अजीर्ण बढ़ता जायगा।

क्वचित माता के विकृत आहार विहार या अन्य रोग के कारण भी बच्चों को फक्क रोग हो जाता है। जो बालक १ वर्ष के होने पर भी अपने पैर से नहीं चल सकते और उनको कुछ पंगुता आजाती है। इसी पंगुत्वावस्था के द्योतनार्थ इस रोग का नाम फक्क रखा गया है।

बालः संवत्सरादूर्ध्वं पादाभ्यां यो न गच्छति।
सफक्कः इतिविज्ञेयकार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्॥
क्षीरजं गर्भजं चैव तृतीयं व्याधि संभवम्।
फक्कं त्रिविधं प्रोक्त म्................................॥

इस प्रकार फक्क क्षीर जन्य, गर्भ जन्य व व्याधि जन्य तीन प्रकार का कहा गया है। जहां माता दूध न पिलाकर धात्री दूध पिलाती है वहां उसकी विकृति से यह रोग पैदा होता है।

इस प्रकार शास्त्र में सूखा रोग के मुख्यतः तीन प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं।

(१) तालु कण्टक (२) बाल शोष (३) फक्क

निश्चय ही ये रोग क्षीर या अन्न जो भी बालक ग्रहण करता है उसके जीर्ण सात्म्य न होने से उत्पन्न होते हैं। और परिणामतः यह रोग पूर्ण पोषणयुक्ताहार पाते हुए भी जीर्ण न होने से तथा अजीर्ण द्रव्य के मल व छर्दि व प्रतिश्याय के रूप में बहिर्गमन होने से इसमें धातुक्षय के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और रोग के जीर्णावस्था में शोथ व ज्वर के लक्षण भी पैदा हो जाते हैं।

फक्क की समानता अस्थि क्षय रोग या पक्षाघात से हो सकती है। साधारणतया यह रोग इतना प्रचलित है कि चिकित्सक के अतिरिक्त जनसाधारण भी इसका निदान कर लेते हैं। पंडित, मौलवी, ओझा आदि भी इस रोग का उपचार करते हैं और अज्ञ अन्धविश्वासी लोग चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान न देकर ओझादि व टोटका की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं।

लोक विश्रुत रोग परीक्षायें—

(१) इस रोग की लाक्षणिक परीक्षा के अतिरिक्त कर्ण से परीक्षा करने की परिपाटी प्रचलित हो गई है। बच्चे का कान पकड़ कर दबाते हैं या कान पकड़कर भूमि से जरा ऊपर उठाते हैं। ऐसा करने से बालक रोदन नहीं करता। बालक इतना निष्क्रिय हो जाता है कि कान को दबाने व उठाने पर वह कोई प्रतिक्रिया नहीं करता है।

(२) गुड़ परीक्षा—रोगी बालक के शिर पर ब्रह्मरंध्र स्थलपर जहां गढ़ा होजाता है तीन मासे गुड़ चपका दें। और उसके ऊपर एक गेहूँ के आटे की मोटी रोटी या जौ के आटे की रोटी ढककर इसे रोगी के सिर में चिपका दें। ४, ५ घंटे बाद रोटी को खोलकर देखें। यदि सूखा या सुखण्डी रोग होगा तो गुड़ का पता न चलेगा। गुड़ उड़ जावेगा। इस परीक्षण का वर्णन रसराज महोदधि भाग ३ में भी हैं।

यों तो अनेक परीक्षण लोक प्रसिद्ध है पर उपर्युक्त दो परीक्षण अति प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि लोक में यह रोग अति घातक रूप से प्रसिद्ध है परन्तु यह चिकित्सासाध्य है और विधिपूर्वक विवेक से चिकित्सा करने पर निश्चय ही लाभ होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालशोष-शास्त्रीय विवेचन

कविराज श्री डा. शिवकुमार जी व्यास, डी. आई. एम. एस., भिषगाचार्य।

नवीन प्रकाशित 'पंचकर्म विज्ञान' पुस्तक के लेखक श्री व्यास जी की लेखन शैली विवेचनात्मक रहती है। बालशोष पर पर्याप्त 'स्टडी' के बाद आपने यह उपयोगी तथा वैज्ञानिक विशिष्ट परिचय धन्वन्तरि के लिए प्रस्तुत किया है। बालशोष के साथ फक्क का नाम आता ही है अतः फक्क रोग को दृष्टिगत करते हुए शास्त्रीय प्रकाश डाला है। यत्र-तत्र समन्वयात्मक ढङ्ग से प्रविचार उपस्थिति लेख की सर्वांगीणता के उदाहरण हैं।

--श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

दो शब्दों के योग से बने "बालशोष" में प्रथम शब्द बाल तथा दूसरा शब्द शोष है। इस विषय का परिचय देते समय मैं उचित समझता हूँ कि इन दोनों के विषय में दो-दो शब्द लिखता चलूँ ताकि स्पष्टीकरण में सरलता हो। अतः प्रथम बाल शब्द को लेता हूँ।

बाल-

बयस्तु त्रिविधं बालंमध्यंवृद्धमिति।
तत्रोनषोड़शवर्षांबालास्तेऽपि त्रिविधाः॥
क्षीरपाः क्षीरान्नादा अन्नादा इति।
तेषु सम्वत्सरपराः क्षीरपाः॥
द्विसम्वत्सरपराः क्षीरान्नादाः।
परतो अन्नादा इति॥

—सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ३५

अर्थात्-वय तीन प्रकार की होती है। बालावस्था, मध्य (युवा) अवस्था तथा वृद्धावस्था। बालावस्था सोलह वर्ष तक होती है। यह बालावस्था भी तीन प्रकार की है। क्षीरपा, क्षीरान्नदा और अन्नदा। इनमें एक वर्ष तक क्षीरपा, दो वर्ष तक क्षीरान्नदा और इसके पश्चात् अन्नदा होती है।

इसी स्थान पर यह लिख देना उचित है कि यह वर्गीकरण एक साधारण नियमानुसार किया है-प्रत्येक इकाई को लेकर कोई सिद्धान्त नहीं बनाया जाता। यों तो अनेक ऐसे बालक मिलेंगे जो एक वर्ष के बाद भी अन्न नहीं खा सकते हैं तो भी नियम के अनुसार १ वर्ष के बाद २ वर्ष तक का बालक 'क्षीरान्नदा' ही होगा। दूसरी बात यह कि अन्नदा अर्थात् अन्न खाने वाले बालक का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं कि वे दूध न पीवें। कहना केवल इतना ही है कि उनका मुख्य आहार अन्न हो जाता है। दूध न भी मिल सके तो भी चल कार्य सकता है। अस्तु.

शोष -

दूसरा जो शब्द है अब उसको देखिएगा। आयुर्वेदोक्त परिभाषानुसार शोष की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से है-

'संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते।'

—सु० उत्त० अ० अ० ४१

अर्थात्-रसादीओं (सप्तधातु) का संशोषण करने के कारण शोष कहा जाता है। अस्तु.

सूखा रोग—

उपरोक्त शास्त्र के प्रमाण के अनुसार बाल तथा शोष के विषय में लिख चुके हैं। अब ५-७ पंक्तियों में एक शब्द चित्र उपस्थित है जिससे आप सूखारोग को समझ सकेंगे।

क्षीण काय, क्षीण मांस, शुष्क स्फिक (Hips), अस्थि कंकाल मात्र, आगे को बढ़ा हुआ पेट, सिर की अस्थियों को चमकाते हुए, अनाथ, उठने बैठने चलने में असमर्थ, नेत्र अन्दर को धंसे हुए, ओजहीन, उभरी हुई संधियों वाला, वर्णरहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वचा तथा मन्द ज्वर युक्त, अग्निमांद्य से प्रपीड़ित किसी भी बालक को देखते ही अनायास मुख से निकल जाता है "इसे सूखा रोग है।"

यह हुई सूखारोग की एक साधारण रूपरेखा। यहां पर स्पष्ट कर दूं कि बालक कहने से हमारा तात्पर्य केवल ऊपर वय के अनुसार वर्णित क्षीरपा तथा क्षीरान्नदा से ही है उसके बाद अन्नदा को बड़ी आयु में हुआ शोष 'सूखारोग' की लोकोक्त परिभाषा में नहीं आ सकता।

सूखारोग और शास्त्र वचन [आप्तोपदेश] –

'सूखारोग' करके आयुर्वेद के वृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी में कोई नाम आया हो ऐसा मुझे ध्यान नहीं पड़ता तो भी वहां अलग अलग बाल रोगों का वर्णन दिया हुआ है जिनको देखकर हम इससे समन्वय कर सकते हैं। यहां कुछ का वर्णन करना प्रासंगिक है।

चरक—चरक ने बालरोग प्रकरण में नाभितुण्डी एवं क्षीर दोषज आदि जिन बाल रोगों के विषय में लिखा है उनमें सूखारोग से किसी का तारतम्य नहीं बैठता।

सुश्रुत—यहां भी चरकोक्त बात ही पाई जाती है।

वाग्भट—जिन बालरोगों का वर्णन किया है उनमें बालशोष नाम के एक रोग का भी वर्णन है जिसका समन्वय हम सूखारोग से कर सकते हैं।

शार्ङ्गधर—सूखारोग से मिलते जुलते तीन रोग हैं। प्रथम गात्रशोष, दूसरा दौर्बल्य और तीसरा पारिगर्भिक।

माधवनिदान—पारिगर्भिक और क्षीर दोषज (विशेष रूप से वात दूषित) रोग सूखारोग के समन्वय में आ सकते हैं।

काश्यप—वास्तव में आयुर्वेद साहित्य में बालरोग विशेषज्ञ काश्यप आचार्य को माना जाता है और बालरोग विषयक साहित्य का प्रमाण भी काश्यप संहिता ही है। इसमें बालरोग प्रकरण में जो रोग मिलता है वह है फक्करोग।

इस प्रकार सूखारोग से सम्बन्धित कुछ आप्तोपदेशों के निर्देश स्थल ऊपर दिए हैं। यहीं एक शास्त्र नियम और बतादूं कि इनके अतिरिक्त दूसरे रोग भी बालकों को हो सकते हैं। माधव का वाक्य देखिए—

"ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरोरिताः।
बाल देहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेया कुशलैरिहः॥"

—माधव निदान

इस वाक्य से चरक आदि में बालशोष का वर्णन न होने से उनमें कोई दोष नहीं आता—कारण यह है कि वहां शोष रोग का वर्णन तो आ ही गया है। अस्तु.

इन सब नामों से प्रचलित रोगों का युक्तियुक्त वर्णन किसी अन्य लेखक महोदय के लेख में विस्तार . .गा। हम यहां पर निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण आदि की विवेचना करेंगे।

निदान—

शोष किस कारण उत्पन्न होता है यह लिखना प्रथमावश्यक है। कारण की दृष्टि से यदि शास्त्र वचन देखें तो शार्ङ्गधर में उक्तरोग के समन्वय में आ सकने वाले तीनों पूर्व वर्णित रोगों की उत्पत्ति का कोई विशेष कारण नहीं कहा। माधव निदान में भी केवल मां के दूध को ही दोषी बताया है। पारिगर्भिक में गर्भिणी माता का दूध पीने से और वात दुष्ट स्तनपान करने से ही इस व्याधि की उत्पत्ति कही है। वाग्भट्ट का कारणों के विषय में एक दृष्टिकोण है लिखा है—

'अत्यहः स्वप्न शीताम्बु श्लेष्मिक स्तन्य सेविनः।'

—अ० हृ० उ० अ० २

जिसके अनुसार बहुत अधिक सोने वाले, शीतल जल या कफकारक पदार्थ (दुग्ध) सेवी को होता है। और काश्यप संहिता में फक्करोग का निदान लिखते समय लिखा है—

धात्री श्लैष्मिक दुग्धा तु फक्कदुग्धेति संज्ञिताः।
तत्क्षीरयो वहु व्याधिः कार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्॥
पित्तानिल प्रकृतिकी पट्टुक्षीरा पट्टुगजा।
कृतः पंगु जड़ा मूका त्रिदोष क्षीर भोजिनः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन वाक्यों के द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि धात्री के कफ दूषित फक्क कहलाने वाले दूध के सेवन से अथवा पित्त एवं वात दूषित दूध से यह रोग उत्पन्न होता है।

न केवल क्षीर दोष ही फक्क का कारण कहा है अपितु किसी को गर्भज फक्क भी हो जाता है। इनके अतिरिक्त भी व्याधि सम्भव फक्क करके तीसरी प्रकार का एक फक्क कहा है जिसका कारण निज और आगन्तुक ज्वरादि रोग हैं तथा–

'अतिविण्मूत्र दूषिका शिंघाणकमलोद्भवा।
इत्येतै कारणैर्विद्याद्व्याधिजां फक्कतां शिशोः॥'

कह कर अत्यन्त विण्मूत्र शिंघाणक मलादि दूषण से बालक को व्याधिजन्य फक्क होता है।

निदान विषयक इतना वर्णन लिखकर इनके विषय में आधुनिक विज्ञान के बचन भी बता देना चाहता हूँ। यद्यपि किसी रोग विशेष को शोष नहीं कह सकते तो भी निम्न अवस्थायें हैं जिनका तारतम्य इस रोग से बैठ सकता है–

1. Rickets.
2. Coeliac Disease.
3. Wasting.

कुछ भी हो इस रोग का किसी नाम विशेष से चाहे समन्वय नहीं हो सके तो भी इन रोगों के निदान लिखना आवश्यक है कारण कि इनमें 'सूखा' होता है।

"रिकेट्स" के कारण बताते हुए हमें मानना ही होगा कि खाद्योज डी और खटिक की अल्पता इसका साक्षात् कारण है। यह रोग प्रायः ६ मास से १८ मास तक के बालकों में मिलता है। इनकी अल्पता वास्तव में ही क्षीरज दोष कहला सकती है और इस प्रकार हम समन्वय की दृष्टि से कह सकते हैं कि मां के दुग्ध में इनकी अल्पता रहती है।

"सीलियक" रोग के लक्षणों को जिनको हम समन्वय से आगे लिखेंगे देखकर हम कहेंगे कि यह भी सूखारोग ही है। इसके कारण को देखें तो पता चलेगा कि पाचन में विकार ही इसका कारण है। बालक की आन्त्रिक पाचन एवं शोषण शक्ति नष्ट हो जाती है और उसके साथ ही साथ यकृत् की कार्यक्षमता भी कम हो जाती है तथा क्लोम ग्रन्थि भी पूर्णतः क्रियाशील नहीं रहती, अतः जो आहार बालक खाता है उसको शरीर सहंनन में प्रयोग नहीं कर सकता।

"वैसटिंग" नामक अवस्था के कारण कुछ विशेष रोग हैं यथा यक्ष्मा, सहज फिरङ्ग, चिरकालीन श्वसनक ज्वर, गुप्त पूयोरस अथवा हृदय की सहज विकृति आदि। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखे आहार दोष एवं पाचन दोष भी कारण हैं। साथ ही साथ स्वाभाविक कारण (Idiopathic) भी कहा जाता है जो कि बालक के शरीर को सुखा देता है।

निदान वर्णित कारणों का उपसंहार करते हुये मैं कहूँगा कि सूखारोग के मुख्यतः तीन कारण होते हैं–

(१) आहार विषयक–जिनमें क्षीरज दोष, खटिक, खाद्योज डी आदि तथा गर्भावस्था में पोषक तत्वों में कमी आदि होते हैं।

(२) पाचन विषयक–आंतों की प्रणालीविहीन ग्रन्थियों की तथा यकृतादि की क्रियाओं के विकार

(३) रोग विषयक–जिनमें ऊपर वर्णित सहज एवं क्षय आदि इस रोग के कारण होते हैं। स्वभाविक भी इसी में आ जाएगा।

सम्प्राप्ति–

'शिशो कफेन रुद्धेषु स्रोतः सु रस वाहिषु।'
—अ. हृ. उ. अ. २

अर्थात्–बालक की (उक्त दूषित) कफ के कारण स्रोत एवं रसवाहिनियां अवरुद्ध हो जाती हैं।

इस बात को बता रहा है कि इसके कारण जो शोष होता है वह अनुलोमक शोष होता है। कारण यह है कि कफ के द्वारा स्रोत एवं रसवाहिनियों के अवरोध से शरीर का पोषण क्रमशः बन्द हो जाता है और रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस सम्प्राप्ति को देखते हुए मानना ही होगा कि कफ के द्वारा ही रसवाही स्रोतों का अवरोध हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। आंतों में भी श्लेष्मा के कारण शोषण में रोध रहता है अतः पाचन न हो सकने से शरीर को पोषण तत्व नहीं मिल सकते। आधुनिक 'सीलीयक' रोग भी इसी में आ जाता है क्योंकि उसमें भी आंत्र अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं करती। इस रोग की विकृति बताते हुए श्री चीडिल ने लिखा है कि यकृत् का कार्य सुचारु न होने से पित्त (Bile) का निर्माण कार्य उचित नहीं होता अतः पाचन में बाधा पड़ती है।

"रीकेट्स" की सम्प्राप्ति को देखें तो पता चलता है कि खटिक एवं स्फुर लवण (Calcium & Phosphorus) की आवश्यकता अस्थि निर्माण में होती है और इनका सात्मीकरण करने के लिए खाद्यौज डी की भी आवश्यकता होती है। जब रक्त में इन दोनों की कमी हो जाती है तो अस्थियों के विकास स्थानों में सेलें बड़ी अनियमित रूप में पड़ी रहती हैं। लम्बी अस्थियों के सिरे स्थूल हो जाते हैं। अस्थियों में खटिक की जितनी मात्रा मिलनी चाहिए उससे आधी मिलती है और इसी कारण अस्थि-मार्दवता तथा अस्थि-वक्रता मिलती है।

जिन बालकों को किसी रोग विशेष के कारण शोष रोग होता है उनमें देखने में आता है कि उसके शरीर में धातुओं में क्षीणता आती जाती है और उस क्षीणता के कारण वह बालक शनैः शनैः सूखता जाता है। वास्तव में रोगावस्था में दोनों प्रकार की सम्प्राप्ति मिलती है—प्रथम तो व्याधि के कारण क्षय की और दूसरे आहार आदि का शरीरांगों में न लग कर क्षीणता करने की।

लक्षण—

इस प्रकार मुख्य मुख्य परिवर्तन होते हैं—अस्थि निर्माण में, पाचन संस्थान में एवं फुफ्फुस आदि अवयवों में। अस्थि निर्माण में अस्थिवक्रता तथा अस्थि मार्दवता, पाचन संस्थान में अतिसार वमन एवं आंतों का क्षोभ, यकृत् प्लीहा वृद्धि आदि होते हैं। फुफ्फुस में प्रेसक (Cattarh) सा रहता है जो कास निमोनियां आदि का जनक होता है और इसीके कारण किसी किसी को राजयक्ष्मा हो जाता है।

अब इस रोग के लक्षणों को देखिये—

दुर्बलत्वम्। बालकस्य सततं बलहानिरित्यर्थः हतौजा इत्यपरे।

—शार्ङ्गधर पूर्वखंड अ. ७.

और—

अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांस बलद्युतिः।
संशुष्कास्फिचबाहूरुर्महोदर शिरो मुखः॥
पीताक्षो हृषिताङ्गश्च दृश्यमानास्थिपिञ्जरः।
प्रम्लानाधर कायश्च नित्यमूत्र पुरीषकृत्॥
निश्चेष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपिवा।
दौर्बल्यान्मन्द चेष्टश्च मन्दत्वात्परिभूतकः॥
माक्षिका कृमि कीटानाम् गम्यश्चासन्न मृत्युरुक्।
विशीर्ण हृष्टरोमा च स्तब्ध रोमा महानखः॥
दुर्गन्धी मलिनः क्रोधी फक्कः श्वसिति ताम्यति।

—काश्यप संहिता

अर्थात् अनाथ बालकों को क्लेश होकर मांस बल और द्युति क्षीण हो जाती है। जिससे स्फिक् और बाहु शुष्क हो जाते हैं, उदर आगे को बढ़ जाता है और शिर एवं मुख भी बड़े हो जाते हैं, पीले नेत्र और क्षीणांग हो वह अस्थि पञ्जर मात्र दिखाई देता है। अधोकाया मलिन रहती है जिसका कारण नित्य किये गए मल-मूत्र की स्वच्छता का अभाव है। अधोकाया हाथ तथा जानु भी चेष्टाविहीन हो जाते हैं। दौर्बल्य, मन्द चेष्टा तथा सुस्ती के कारण माक्षिका कीट कृमि आदि पास जाकर (Secondary Infection) आसन्न मृत्युकारी रोग कर देते हैं। रोगी के रोम विशीर्ण हृष्ट तथा स्तब्ध रहते हैं। नख बढ़ जाते हैं। दुर्गन्धि आती है, मलिनता बढ़ जाती है और वह क्रोधी हो जाता है। तथा विशेष प्रकार से श्वास लेता है।

Although not wasted the muscles are weak and flabby and the ligaments loose on account of softening of the bones and consequent bending of the spine and lowering of the diaphragm, the abdomen is protuberent these being some what enlarged also. The blood shows a moderate degree of hypochromic anaemia.

—Majumdar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल क्षीण न हुई अवस्था में जबकि मांस क्षीण एवं कोमल हो तथा मांस रज्जु शिथिर हो जाएँ अस्थि मार्दवता के कारण से। रीढ़ के झुके होने से उदरच्छदा पेशी के नीचे आ जाने से उदर का बाहर निकलना तथा यकृत् एवं प्लीहा का स्पर्शलभ्य होना पाया जाता है जो कुछ बढ़े होते हैं। (इन सब का अर्थ हुआ कि सहोदर रोगी होगा) रक्त परीक्षा में पता चलेगा कि मध्यमावस्था की रक्ताल्पता है। उसके नेत्र "पीताक्ष" होंगे जो ऊपर काश्यप जी ने कहा है।

"The Rib ends are the first to show the enlargement at their junctions with the Costal Cartilages and thus produce an apparence of beeding the 'Rickety-rosary.'

—Savill

अर्थात्—सर्वप्रथम पसलियों की अस्थियां तरुणास्थियों के संयोग स्थल पर उभार दिखाती हैं। और इस तरह एक अस्थिपञ्जर की सी शक्ल दिखाई देती है। अस्तु

आए दिन चिकित्सार्थ आने वाले बालकों को देखते समय उपर्युक्त रूप को जान कर निदान करना सहल है और लगभग सभी लक्षण ऊपर के वर्णन में आ भी गए हैं तो भी इन सभी का तथा कुछ नित्य दीखने वाली अवस्थाओं का वर्णन नीचे देता हूं जो इस व्याधि के निदान करने में सहायक होंगे। मैं यहां उनके वर्णन करने के लिए दो भाग कर लेता हूँ प्रथम लक्षण तथा दूसरे चिह्न।

लक्षण (*Symptoms*)—

रोगी बालक के अभिभावक का कहना होता है कि कुछ दिन से निम्न बातें हो रही हैं—

१. स्वभाव—इसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है (क्रोधी) हर समय सुस्त एवं ग्लानियुक्त रहता है तथा तब से ही यह 'सूखता' जा रहा है।

२. पाचन—इसकी भूख कम हो गई है (किसी किसी को भूख अधिक भी लगती है) और यह दूध आदि नहीं पीता तथा पिला भी दिया जाए तो कुछ समय में ही वमन कर देता है।

३. मलत्याग—इसे दस्त लगते हैं और पतले फटे फटे कई कई बार पुनः पुनः मल त्याग करता है।

४. मानसिक अवस्था—इसको बैचैनी अनुभव होती है ठीक प्रकार से नींद भी नहीं आती और रात को यह कपड़े उतार उतार कर फैंकता रहता है तथा माथे पर पसीना आता है।

५. सहायक लक्षण—(प्रायःकर) इसका शरीर गर्म रहता है, बार बार खांसी जुकाम होता है—फिर मिट जाता है और ५-७ दिन में ही पुनः होजाता है।

यह सम्भाविक लक्षण मिलते हैं. कुछ में अन्य प्रकार के लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं।

चिन्ह (*Signs*)—

जब बालक सामने आता है (प्रायः ३ वर्ष तक का) तो हम पाते हैं—

१. आकृति—पीला रंग—हाथ-पांव एवं नितम्ब सूखे हुए, छाती की पर्शुकायें उपपर्शुकाओं के संयोग-स्थल पर उभरी हुई, आगे से निकला हुआ पेट, चलने फिरने में असमर्थ, निश्चेष्ट, मलिन आभा एवं प्रभाविहीन, हाथ लगाने में एवं बातचीत करने में भी चिड़चिड़ा (प्रक्षुब्ध) स्तब्ध तथा दुर्गंध युक्त होता है।

२. पाचनतन्त्र—पेट उभरा हुआ—तना हुआ तथा कुछ स्तैमित्य सा होता है। देखें तो उस पर सिरायें चमकती दिखाई दे सकती हैं। प्लीहा एवं यकृत शोथ युक्त, कठोर एवं स्पर्शलभ्य होते हैं। रोगी दबाते ही रो उठता है।

मल की परीक्षा की जाये तो प्रायः आमावस्था का मल होगा। स्नेहांश एवं दुग्धादि के छिछड़े उसमें पड़े होंगे, दुर्गन्धित तथा प्रायः कर श्वेत वर्ण (कभी कभी हरे पीले वर्ण) का होगा।

३. कंकाल—यदि ऊपर से देखना आरम्भ करें तो कपाल चौड़ा होता है। पश्चात् कपालास्थि (*Occipital bone*) में विशिष्ट प्रकार की मृदुता मिलती है। उरः प्रदेश देखें तो वक्रास्थि माला (*Rickety Rosary*) और तत् कारण उत्पन्न

—शेषांश पृष्ठ २० पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालशोष-हेतुकी विश्लेषण

श्री प्रो० वंशीधर जी तिवारी-वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

राजकीय आयुर्वेद कालिज-रायपुर के प्रोफेसर आदरणीय श्री तिवारी जी धन्वन्तरि के पुराने लेखकों में से हैं। लेखन शैली की सुन्दरता तथा गंभीरता आपके लेखों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रस्तुत लेख में आपने बालशोष के कारणों से सम्बन्धित विषय पर अच्छा लिखा है। आत्मसात् करने की ओर उन्मुख आयुर्वेदीय शैली निश्चय ही लाभकारक है। अपूर्णगर्भ को मुख्य दोषी ठहराते हुए कुछ सामान्य रूप की ओर संकेत किया है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

सूखारोग को सूकिया, बालशोष, अस्थिमार्दव, अस्थिवक्रता आदि नामों से पुकारते हैं। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ काश्यप संहिता में इसे फक्क रोग नाम से वर्णन किया है। चरक और सुश्रुत के समान ही काश्यप संहिता भी २५०० पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का ग्रन्थ माना जाता है। यह कौमारभृत्य का प्राचीन ग्रन्थ है। इस सूखा रोग (*Rickets*) को फक्क रोग नाम दिया है। माता का दूध कफ से दूषित होने पर उसे भी फक्क दुग्ध कहा है। और फक्क रोग में बालक को तीन पहियों की गाड़ी से चलने का अभ्यास कराने का उपदेश है। इस तीन पहिये वाली गाड़ी का नाम भी फक्करथ है। प्राचीन काल से ही भारत में शिशुओं को लकड़ी की तीन पहिए की गाड़ी से चलने का अभ्यास सिखाते हैं। यह रोग भी भारत में बहुतायत से पाया जाता है क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति आहार में पौष्टिक रस का अभाव अथवा विटामिन डी की कमी माना जाता है। इसी विटामिन डी का खानपान और अभ्यङ्ग रूप में उपयोग हितकारी है। भारत में मध्यम वर्ग का बड़े परिवार और श्रमिक बालकों में ही यह रोग विशेषतः पाया जाता है।

फक्क रोग प्रायः शिशुओं को ६ मास से ८ मास तक आक्रमण करता और तीन वर्ष की आयु पर समाप्त हो जाता है। कभी कभी बालकों में ६ वर्ष से लेकर १४ वर्ष के लगभग आक्रमण करता है। आहार में चर्बी या विटामिन डी की कमी के साथ ही शुद्ध प्रकाशयुक्त स्थान का अभाव और अस्वास्थ्यकर परिस्थिति भी माना है। रोग का कारण दैविक प्रकोप भी मानते हैं जो कि अंधविश्वास मात्र है। इसे संसर्गज (*Infectious*) मानना भी उचित नहीं है किन्तु अवस्था विशेष में यह छुआछूत से उत्पन्न हो सकता है। कुछ व्याधियों के परिणाम से भी यह संसर्गज होजाता है। पाश्चात्य चिकित्सा में इस रोग का कारण आहार में चर्बी की कमी तथा विटामिन डी का अभाव माना है अतएव इसकी पूर्ति के लिए काड नामक मछली का तैल खाने और अभ्यङ्ग के लिए प्रयोग करते हैं। काश्यप ने इस रोग के तीन कारण माने हैं—१. दुग्ध से २. गर्भज विकारों से और ३. रोगों से। माता का दूध शिशु के लिए पूर्ण आहार माना जाता है। कुछ मातायें अपने स्वास्थ्य की हानि के भय से अथवा बडप्पन के नाम पर अथवा फैशन (या सौन्दर्य) के नाम पर भी उपमाता (धाय) का दूध पिलाती हैं। धाय के अलावा गाय, बकरी या भैंस का दूध भी पिलाते हैं। माता या धाय का दूध वात, पित्त, कफ या त्रिदोष से दूषित होने पर शिशुओं को तदनुसार विकार उत्पन्न करता है। गर्भज विकारों में गर्भावस्था में अपरिपुष्टि पोषण अथवा अन्य गर्भावस्था की विकृतियां कारण हैं। इसी में अपुष्ट गर्भ, पूर्णकालिका गर्भ आदि भी सम्मिलित हैं। रोगज कारणों में ज्वर, क्षय, न्यूमोनियां, अतिसार आदि रोगों का परिणाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल कारण—

बालक के स्वास्थ्य और दीर्घायु का मूलभूत आधार गर्भाशयस्थावस्था का पोषण है। इसमें माता पिता का स्वास्थ्य और उनका आहार विहार आदि सम्मिलित है। गर्भकाल ६ मास का माना गया है इससे पूर्व समय में उत्पन्न बालक अपुष्ट होता है और उसे सूकिया एवं अन्य भयंकर रोग होने का भय रहता है। इसलिए अपूर्णगर्भता (*Immature infant*) सूकिया रोग का प्रमुख कारण है। अपूर्णगर्भ विभिन्न आचार्यों के मत में भिन्न प्रकार से माना जाता है—

१-युग्मशिशु (*twin*)—ये पूर्ण काल में होने पर भी प्रायः अपूर्ण और अपुष्टाङ्गवयव होते हैं इसलिये शीघ्र ही रोगाक्रांत हो जाते हैं और सावधानी से पोषण की आवश्यकता होती है।

२—पूर्णकालिक (४० सप्ताह) होते हुए भी विकारयुक्तधातु से दूषित होना।

३—माता पिता के जीर्ण रोग जैसे मधुमेह, टी. बी., योनि विकार और मूत्र विकार आदि से प्रभावित होना।

४—जन्मकालिक वजन (६ पौंड पूर्ण, ४½ पौंड से कम होना अपूर्ण) बहुगर्भता (बहुसंतान) में प्रजननक्रम-प्रथमबालक पूर्ण हृष्ट पुष्ट और क्रमशः अपुष्ट।

५-गर्भझिल्ली अपूर्णता, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का प्रभाव जैसे असंबद्धित गर्भ (Illigitimate child), असुखीजीवन, परिजनहीनता आदि हैं।

अपूर्ण या अपुष्ट शिशु के लालन-पालन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। शिशु को प्रथम ६ माह तक प्रति पौंड शारीरिक बजन पर प्रतिदिन के हिसाब से २॥ औंस (लगभग ६ तोला=२८.५ मिलिग्राम) दूध की आवश्यकता रहती है अथवा उष्णशक्तिनामक केलोरी (Calory) प्रति पौंड शारीरिक बजन पर ५० अपेक्षित होती हैं। एक औंस माता के दूध में २० केलोरी शक्ति रहती है और बच्चों के लिए प्राप्त होने वाले बाजार के जमे हुए सूखे दूध में पूर्ण मक्खनयुक्त में १८ केलोरी तथा आधे मक्खनयुक्त दूध में १६ केलोरी होती हैं तदनुसार बाजार से सूखा दूध शक्कर मिलाकर देना चाहिए। एक चाय चम्मच शकर में १५ केलोरी शक्ति होती है। इस मात्रा के अनुसार आहार नहीं मिलने पर बालक सूकिया रोग से ग्रस्त हो सकता है।

हेतु से लक्षणों की ओर—

अपूर्ण शिशु का शिर मृदु और बड़ा होता है। चेहरा पतला, लम्बा और नुकीला हो जाता है। आंखें और गर्दन भी छोटी होती हैं। उदर लम्बा होता है। नाभि कुछ नीचे होती है, रक्तसंवहन और श्वासोच्छ्वास में कष्टता और अल्पता होती है। रक्तकण (Heamoglobin) ५०% से ६०% ही रह जाते हैं और ६ से १० सप्ताह में रक्ताल्पता होकर शरीर में लोह और चूने की कमी हो जाती है। साथ ही विटामिन और खनिज लवण की कमी हो जाती है और फिर यकृत् वृद्धि, पांडु अथवा सूकिया का आक्रमण हो जाता है। अस्थियों में चूने धातु का भाग ६०% होना चाहिए किंतु इस रोग में यह भाग छटकर ३० या ४०% रह जाता है। लोहा और यकृत् अथवा दोनों ही बढ़ने लगते हैं। मांसपेशियां अल्पशक्ति और मृदु होने से भोजन रस का पूर्ण शोषण नहीं होता और मलबद्धता (Constipation) भी हो जाती है। यकृत्स्राव रसों से अधिक भोज्यस्राव रस का निस्राव होने से वह पचता नहीं है। इससे मस्तिष्क धातु पर भी बोझ बढ़ जाता है। इस तरह मस्तिष्क ग्रन्थि और मस्तिष्क केन्द्र पर प्रभाव होने पर कर्णबाधिर्य भी हो जाता है। गर्दन सीधी नहीं रख सकता और शिशु घुटने के बल रेंगता है। कमर झुकाकर बैठता है। महास्रोत (Alimentary cannal) और श्वाससंस्थान (Respiratory System) की श्लैष्मिक कला का प्रकोप होता है। बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। उरु अस्थि (जांघ की Femur) झुक जाती है। बाहु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अस्थियां भी अग्रभाग से कुछ आगे को झुक जाती हैं। दन्तोद्गम देर से प्रारम्भ होता है। सूकिया रोग के परिणाम में न्यूमोनियां (श्वास-पथ कला शोथ) हो जाता है और अतिसार (Diarrhoea) भी होता है। कश्यपसंहिता में भी प्रायः यही लक्षण दिये हैं। फक्क (सूकिया) रोगाक्रान्त शिशु अनाथ, क्षीणमांसबल तेज वाला, नितम्बबाहू सूखा हुआ, उदर-शिर और मुख लम्बा, आंखें पीतवर्ण और अस्थिपञ्जर दिखाई देता है, शरीर का नीचे का भाग सूखा हुआ और म्लान, मलमूत्र की अधिकता, हाथ पैर और गला चेष्टा रहित या मंद चेष्टा हो जाता है। शिशु पर मक्खि, कृमि और अन्य कीटपतंगादि भी बराबर बैठते हैं। उसके रोम कृमिरहित और दूषित होते हैं। नख बढ़ जाते हैं। वह मलिन, क्रोधी और दुर्गन्धित होता है। श्वास कृच्छ्रता और नाक से तथा मुख से विकृत कफ का स्राव होता रहता है।

—श्री प्रो० बन्शीधर तिवारी आयुर्वेदाचार्य
राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
रायपुर (म० प्र०)

❀ पृष्ठ १७ का शेषांश ❀

हैरीसन सल्कस मिलता है। पृष्ठ वंश (*Vertibrae*) कटि प्रदेश में उभर जाते हैं। पैरों की आकृति धनुष की सी होती है।

४. रक्त परीक्षा–रक्त में रक्ताल्पता (*Hypochromic Anaemia*) के लक्षण मिलते हैं। रक्त में फास्फोरस की मात्रा कम हो जाती है और फास्फेट्स की मात्रा बढ़ी हुई दिखाई है। अधिक गम्भीर अवस्था (*Severe Case*) में रक्त खटिक (*Blood calcium*) की मात्रा भी कम हो जाती है।

५. अन्य चिह्न–रोगी बालक को ज्वर रहेगा। प्रायः कर १०० से १०१ डिग्री तक रहता है। फुफ्फुस परीक्षा करने से फुफ्फुस प्रसेक (*Lung Cattarh*) के चिह्न मिलेंगे। नेत्रों का वर्ण पीत होगा और वह अक्षि गुहा में धंसे से होंगे। जिह्वा की आभा मलिन होगी। त्वचा का वर्ण भेक वर्ण का मिलेगा।

उपसंहार–

ऊपर जो भी वर्णन किया है वह प्रत्येक सूखा रोग के रोगी के साथ घटाया जा सके ऐसा सम्भव नहीं। तो भी कारणों की दृष्टि से आहार विषयक, पाचन विषयक तथा रोग विषयक कारण प्रर्याप्त हैं और प्रायः कर किसी में कोई, अन्य में कोई इनमें से ही मिलते हैं। सम्प्राप्ति भी प्रायः कर अस्थि कंकाल एवं पाचन तन्त्र में परिवर्तनों की मिलती है तथा लक्षणों की दृष्टि से ऊपर वर्णित लक्षण एवं चिह्न *Symptoms and Signs*) रोग को पहिचान करने में अवश्य सहायक होते हैं।

—श्री शिवकुमार व्यास,
५, देवनगर, करौल बाग, नई दिल्ली

★ ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशुशोष-विकृति-विज्ञान

श्री मुकुन्दचन्द्र जी व्यास वैद्यराज

प्रस्तुत लेख अपने क्षेत्र के सफल चिकित्सा श्री व्यास जी द्वारा हमारे विशेष निवेदन पर प्रस्तुत किया गया है। सूखारोग के विकृति विज्ञान स्थल पर पूर्णरूपेण प्रकाश डाला है। भाषा परिसंस्कृत है, शैली गम्भीर तथा रोचक है। लेख विस्तृत होते हुए भी उपयोगितावश हमने स्थान दिया है। आशा है पाठक लाभान्वित होंगे।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

सर्वप्रथम शङ्कास्पद स्पष्टीकरण—

शोषरोग प्रायः छोटे-बड़े सभी को होता है, परन्तु "बालशोष" पृथक् क्यों कहा गया की शङ्कास्पद समस्या स्पष्टीकरण रूप से इस पृथकीकरण का यही अभिप्राय रखती है कि बाल्यकाल की आवयविक अल्पता को "बालसंज्ञा" दी गयी है और है भी सत्य क्योंकि कथित संज्ञाधार से बालकों में अपक्वापूर्णाङ्गीण नैसर्गिक क्रिया अपना विशेष स्थान रखती है।

इसके अतिरिक्त शिशु सुकोमलता भी सुमन सदृश मानी गयी है। अतः दैहिक मृदुता के कारण कुत्सित छाया दोषादिकों का कुप्रभाव बालकों पर शीघ्र हो जाया करता है। अर्वाचीन आयुर्वेदज्ञ यदि इसे वास्तविक विज्ञानाधारित न मानकर अन्ध विश्वास व कपोलकल्पित मानते हैं तो यह उनकी हास्यास्पद युक्ति है। इससे यही ज्ञात होता है कि वे इस रहस्यमयी 'भूतविद्या' को कुतार्किक कुचक्र में आकर समझने में असमर्थ रहे हैं अर्थात् ज्ञातव्य ज्ञान से वञ्चित रह गये हैं। आश्चर्य तो इस बात का हो रहा है कि जो वस्तु आयुर्वेद की मुख्याङ्ग है उसे अनभिज्ञता के गर्त में ढकेला जा रहा है उनके द्वारा जो आयुर्वेद मंदिर के गण्यमान अर्चक हैं।

शंका की कोई सीमा नहीं, परन्तु वह भी तर्क संगत हो न कि कुतार्किक, तदपि शंकावादी प्रश्न कर ही बैठते हैं कि तद्विषयक भूतविद्यान्तर्गत छाया-दोषादिकों का जो वर्णन किया गया है, वह विज्ञान संगत नहीं है अपितु कपोल कल्पित है। वे तो रोग संज्ञक त्रिदोषज आवयविक यान्त्रिक विकृतियां हैं।

मैं भी इन कथित विकृतियों को मानता हूँ तथाऽपि उनसे मैं यही प्रश्न करूंगा कि इन विकृतियों की उत्पत्ति का मूल भूत हेतु कौन है? उसका किसी ने अन्वेषणात्मक विचार किया? कतिपय तादृशो उदाहरण आप महानुभावों के समक्ष रखता हूँ जिनकी पुष्टी एवं साक्षी आपकी मनो आत्मा स्वयं ही दे देंगी। विशेषतः उत्फुल्लिका (बदली) रोग बालकों को नभमण्डल मेघाच्छादित हो जाने पर हो जाया करता है इसका क्या कारण है? जिस प्रकार सूर्य चन्द्र के तेजोऽमृत पोषक परमाणु, राहु केतु ग्रह की म्लान छाया से ग्रसित हो रोगिष्ट अथवा यों कहिए अरिष्टकारक बन जाते हैं और वायु मण्डल को दूषित कर देते हैं उसी प्रकार शिशुओं में सहज श्लेष्मा व अम्बरीश आर्द्रता इस रोग की स्वभावतः सहायक भूत तथा हेतुरूप हो जाती है। इसके अतिरिक्त खाद्य पदार्थ जैसा कि मुद्ग पर्पट (मूंग की दाल के पापड़) सिद्ध किये जाते हैं उस समय (तदुपरि) रजस्वला की प्रतिछाया प्रपात से उनमें लालिमा तथा स्वाद में अम्लता आ जाती है। वैसे ही पतिसहवासनन्तर अस्नाता स्त्री, ऋतुमती, रजोदुष्टा मार्जारी की दूषित परिछाया प्रसूता व शिशु एवं नालावशेष (जर, आंवल) पर विपातित हो जाती है तो अशौच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्याङ्ग के कारण प्रसूताङ्गीगस्तन दुग्ध विषाक्त बन जाता है जिसके स्पर्श पान से तथा उपरोक्त छूत संक्रमण से नवजात शिशु को लोहित वर्ण (लावण), रक्तवाय (रतवाय) रोग हो जाया करता है। तदुक्त प्रकोप तुलसी, प्रयौण्ढ्रादि तज्जातीय क्षुपों पर भी होते देखा है। इसी स्थावर जंगम विषाग्नि वाष्प से क्षुप प्रायः मूर्च्छित वा दग्ध या मृत हो जाते हैं। तथ्योक्तोदाहरणों को ही साक्षी-भूत प्रत्यक्ष समझ लेना अथवा न्यायसंगत मान लेना चाहिए।

अस्तु विषयान्तर में न जाकर अब वास्तविक विषय की व्याख्या करते हुए यह बता देना आवश्यक है कि बालकों के लिए अन्यान्य रोगों को प्रधानता न देकर पूर्वाचार्यों द्वारा 'बालशोष' ही को मुख्य क्यों माना गया? का सारगर्भित प्रत्यक्ष प्रमाण को पुष्ट कर दे रहा है कि शिशुओं की शारीरिक शक्ति मुख्यतः रक्त पर ही अवलम्बित है अर्थात् एकमात्र रक्त ही शिशु संज्ञक सम्पूर्णाङ्ग का सम्पोषकीय सुधा है और इसी के द्वारा शरीर सम्पुष्टि एवं सम्बर्धन को प्राप्त होता है। यथार्थ में रक्तोत्पत्ति का जीवनीय केन्द्र यकृत, न्यायेन रक्त के जन्मदात्री की प्राथमिकता यकृत् ही को दी गई है। हेतु रूप से क्रमिक गणना में यह (यकृत्) शोष रोग का प्रतीक माना गया है। तत्सम्पर्कावयव 'अन्योन्याश्रित न्यायेन' आधारित हैं तथा उनके पोषकीय आश्रयदाता हैं। केवल दुग्धपान व पवन-पान, तोयपान, स्पर्शपानेत्यादि। खाद्यद्रव्यों की दृष्टि से प्रथम तो दूध में क्षारांश न होना, द्वितीय पदार्थ के माधुर्य विशेष से नैसर्गिक निर्मलता तथा जलीय स्वच्छता और पान करने वाले शिशु में भी तृतीय तादृशी स्वाभाविकता से तीनों ही दृष्टिदोष-छाया-दोष के पात्र होते हैं। भेद दृष्टि से वातिक स्पर्श में पोषक, शोषक दो गुण पाये गये हैं।

स्पर्श-विज्ञप्ति-

नाम भेद से स्पर्श कितने ही भागों में विभक्त है-प्राकृत स्पर्श, कर्म विपाकीय स्पर्श, ग्रह नक्षत्रादि छायान्तर्गत आधिदैविक स्पर्श, मानवीय पूतनारज की चाण्डाली-गर्भाधानीय बीज दोषात्मक आधिभौतिक स्पर्श। इनका विषाक्त प्रभाव "शिशु-शोषक" और सुधाक्त प्रभाव "बाल-पोषक" होता है। इसलिये षड्रसान्तर्गत कतिपय लवणादि रसों की न्यूनता तथा उपरोक्त नैसर्गिक निर्मलता से याकृत रक्त में जीवाणु परमाणुओं की प्रचुरता न पाये जाने पर दैहिक दुर्बलता की हेतुभूत अस्थ्यादि धातुपोषक शक्ति इतनी बलवती नहीं हो पाती जितनी कि यौगण्डाख्य यौवनावस्था में। यह लोकोक्ति भी चरितार्थ है कि "दैवोदुर्बल घातकः" अर्थात शक्ति क्षीण के सभी शत्रु होते हैं। यों तो प्रासंगिक प्रकरण अग्र पंक्तियों में आयेगा ही तथाऽपि प्रसंग-वश विषय विवेचन अत्रैव कर देना पड़ रहा है, अन्यथा विद्वानों की रोग मुख्य को मीमांसा स्वबुद्धि से ही समझ लेनी चाहिए। तदुपरान्त हमारे पूर्व विज्ञानवेत्ता ने भी तो स्पष्टरूपेण इस रोग का पृथगुल्लेख कर दिया है, तदपि "आप्तवाक्य प्रमाणम्" हमें भी मन्तव्य है।

सम्प्राप्ति का पूर्वाभास-

पूर्वोक्त प्रतिपादित सिद्धान्त की सम्पुष्टि से यह ज्ञातव्य है कि बिना सम्प्राप्ति किसी भी रोग उत्पत्ति न होती है और न उसका नामकरण ही किया जाता है। अतः व्याधि कर्मज हो किंवा दोषज, रोगानुसार सम्प्राप्ति तदुपकरणों को आधार मान कर ही अमु-कामुक नामों से निर्धारित जाती है। इसी प्रकार उक्त विषयक लक्षण की आधारभूत व सहायक भूत शक्ति विशेषतः रक्त तथा आमाशय-पित्ताशय, अग्न्याशय, ग्रहणीकला, आन्त्रादि यान्त्रिक क्रिया पर आश्रित है और इसके ह्रास के हेतु हैं तद्वत विपरीत वैकारिक दोष, जिनकी प्रासंगिक विश्लेषण निम्न दर्शन में व्यक्त की जा रही है।

सोदाहरण दोष-दर्शन-

(१) प्रथम दोष है गर्भिणी प्रसूता के आहार विहारादि प्रक्रिया में असाधारण अवहेलना तथा तज्जात रज, स्तन दुष्टि इत्यादि।

(२) द्वितीद दोष है शिशुपरिचर्या में प्रामादिक उपेक्षा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) तृतीय दोष है कर्म विपाकादि आधिदैविक आधिभौतिकेत्यादिक।

गुणभेदानुसार तीन प्रकार के त्रिदोषज प्रभाव माने गये हैं। यथा—कालान्तर प्रभाव, आशुकारी प्रभाव, असामयिक (आकस्मिक) आगन्तुज प्रभाव। ये भी दो-दो भागों में विभक्त हैं। जैसा कि—

१-(अ) मातृ दोषज प्रभाव।
(ब) शिशुजात स्वकीय दोषज प्रभाव।
२-(क) रोग-भैषज-दोषज प्रभाव।
(ख) छायादृष्ट्यादि परकीय दोषज प्रभाव।
३-(ग) प्राकृत प्रतिकूलात्मक प्रभाव।
(घ) पूर्वकृत पापोदित प्रभाव।

स्त्रियों की कृत्प्रज्ञापराध सम्बन्धित अनेकों त्रुटियों से गर्भस्थ बालकों में कितनी ही विकाराङ्गीण विकृतियां पायी जाती हैं और कितने ही प्रमाण दृष्टिगोचर होते ही रहते हैं, किन्तु यहां लेख विषयक मुख्य पाठ का ही दिग्दर्शन स्थानौचित्य है। फलतः स्त्री समाज की उपेक्षा ही उक्त रोग सूचक सहायक भूतामामाग्नि पित्तान्त्र ग्रहणीकला यकृद्धिश्च सम्भूतात्मकीय हेतुरूपा कही गयी है।

कारणोद्भवरोगलक्षणायाः विज्ञानयुक्त सन्दर्भ व्याख्या—

१-(अ) नैयायिक सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि—

यानि यानि करोती, यं तानि गर्भगतानि वै।
यथा माता तथा बालो गर्भसंगोहि दौहृदा॥

गर्भिणी और गर्भस्थ बालक इन दोनों का पारस्परिक संयोग ही "दौहृदा" है। अतः माता जिन-जिन आहार विहारादि कर्मों को करती है, तदनुरूप दोषों की प्रवृत्ति उस गर्भस्थ शिशु में अनुसृत होती रहती है अथवा व्याधिरूप में जन्म ले लेती है, जिसका सजीवोदाहरण हमें इस उक्ति से परिचित करा रहा है।

"विचेष्टितं हि गर्भिण्या, गर्भस्थेलगति हितत्।
यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारोनान्यथा भवेत्॥"

इस प्रामाणिक स्मृति को महाभारतकालीन चक्रव्यूहान्तर्गतीय वीर सौभद्र के चारित्र्यैतिहासिक जान लेना चाहिए।

इस मूलोत्पत्ति का प्रारम्भ शिशु जातः से पूर्व—गर्भाधाने तथा गर्भावस्थायां स्त्रियां को प्रायः अतिसाराजीर्णारुचि अम्लपित्तादि रोग हो जाया करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कारणजन्य अनेकों उपेक्षित क्रियायों द्वारा ऋतुदर्शन के होते ही तात्कालिक स्नान, सम्भोगान्ते शीघ्र जलपान तथा कृत भोजने सम्भोग व भोजनोपरान्त अपाचित रसावस्था में मैथुन प्रभृति एवं ब्रह्ममुहूर्ते मध्यान्हे सन्ध्यादि कुवेलायां तथा अमावस्यादि अभद्रारिष्ट तिथि नक्षत्र पर्वप्रभृत्यादि कुयोगे मैथुन रजस्वला-रुग्णा, गर्भावस्था में भोग, अपक्व शुक्रार्तव कुत्सित हीन रजो वीर्यादि दशायां कामकर्म, बाल्यजरादि अमेलापक रतिक्रिया, बिलासितावश अज्ञानान्धकीय बिपरीतासनों द्वारा मैथुन, अतिमैथुन, अङ्गुलि मैथुन, अयोग्यमैथुनादि कुकर्मों से कुपित दोष प्रदरादि भयंकर महारोगों एवं तत्लाक्षणिक विगलित शुष्क संतति को जन्म देने वाले होते हैं। कथित तद्दोषांश प्रभाव सुकोमल शिशुओं में प्रविष्ट रूप से प्रकुपित हो बालशोषादि रोगों को उत्पन्न कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ऋतुदान में भोग की अतृप्ति के कारण मानसिक खिन्नता, तैलाक्त उष्ण पदार्थों के विशेष सेवन से आम दूषित होकर ग्रहणीकला की क्रिया को अनियमितता में ला देता है जिसके फलस्वरूप उष्णता की अति हो जाने पर न तो आमाशय में शुद्ध व पूर्ण रस बनने पाता है और न रक्त ही, क्योंकि रस की अपूर्णता ही रक्ताल्पता का कारण बन जाती है। तात्पर्य यह है कि यही रस यकृत में परिस्रुत होकर ही तो रञ्जक पित्त द्वारा रञ्जित हो रक्त संज्ञा को प्राप्त होता है तथा यही न्यूनता स्वभावतः अल्परक्त में जीवाणु परमाणु शक्ति एवं निर्बलता की द्योतक होती है। अतः तत्स्थिति में पोषित बालक जन्मजात के पश्चात् आगे चल कर उक्त रोग में परिणत हो जाते हैं। परन्तु प्रसंग परिणामतः पोषक शोषक का आश्रयदाता व जन्मदाता "रक्त प्रधान न्यानेन" यकृत ही तत्स्थान दातव्य है। वास्तव में देखा जाय तो इस (शोष) रोग को यकृत् प्रधान ही मानना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने का अभिप्राय यह है कि कोई भी कारणोत्पादक प्रभाव रोगाक्रमण से पूर्व यकृत पर ही अपनी प्राथमिकता को प्रकट करता है। क्योंकि राक्तिक विद्यच्चेतना शक्ति का मुख्य केन्द्र इसे ही माना है। इसलिए कारणोद्भव आवश्यकीय विषयवस्तु यकृत दर्शन की जानकरी करा देना अत्युचित है, जिसकी सांकेतिक स्वरूप लक्षणों से व्याधि विज्ञान स्पष्टतया हो सके।

सचित्र यकृद्व्याख्या—

चित्र संख्या (१) का अग्रभाग—

उदरगुहायां दक्षिणभागस्य पार्श्वकाधोभागे हृदधरायाः स्पर्शित तथा दक्षिणतः कूर्मपृष्ठाकारे किञ्चिदुन्नत व वाम भागे नतगति और कनिष्ठाकारे प्रसृतरूपेण परिपक्व तालफल सदृश घन

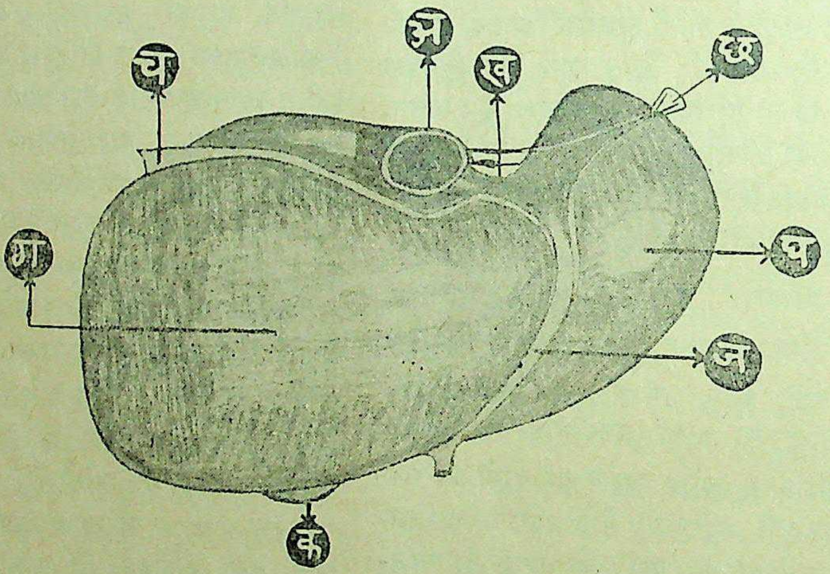

चित्र संख्या १—यकृत् का अग्र भाग

(अ) महासिरा। (क) पित्तकोष। (ख) दीर्घपिण्डकांश। (ग) दक्षिण पिण्ड। (घ) वामपिण्ड। (च) दक्षिण पार्श्विकी प्रबन्धिनी। (छ) वामपार्श्विकी प्रबन्धिनी। (ज) दीर्घ प्रबन्धिनी।

एवं कोमल ग्रन्थिवत कलाभाग से सम्बन्धित स्थूलरूप से स्थित जो सम्मुख स्वरूपाकृति दृष्टिगोचर हो रही है इसी को यकृत् कहते हैं।

चित्र संख्या (१) के अन्तर्गत चिह्नित (अ)

हृदधरा संयोजित "महासिरा" है जिसके द्वारा आमाशयागत रस, रञ्जकपित्त से रञ्जित हो कर हृदय में पहुँचता है और हृत्कोष्टक में स्वच्छ हो धमनियों द्वारा रक्तवाहिनियों में प्रवेश कर सञ्चरण क्रियया पूर्णाङ्ग का पोषण करता है। जब इसी यकृत् में शोफ-शोष-कृमि-विद्रधि इत्यादि व्याधियां प्रवेश कर जाती हैं और रक्तहीन यकृत् निर्बल बन कर बालक में पाण्डु-शोफ-शोष विकृतियों को उत्पन्न कर देता है।

चित्र संख्या (१) में चिह्नित (क)

यकृत् के पृष्ठ देश में स्थित कोष को "पित्तकोष" कहते हैं। यह यकृत में बनने वाले रक्त का सहायकभूत अर्थात् रक्ताणुशक्ति की संवृद्धि करने वाला माना गया है। इसमें एक प्रकार का आग्नेयगुणाक्त तरल पदार्थ पाया जाता है, वही क्षारीय तत्व आमाशय-ग्रहणी कला यकृत् की क्रियात्मक वस्तुओं को सहायता पहुँचाता है।

जब इसमें भी अम्लत्व, पूयत्व, शुष्कत्व आ जाते हैं तो बालक को दूध का पाचन होकर वमन, हिक्का, अम्लपित्तादि रोग हो जाते हैं और शनैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनैः शिशु सूखने लगता है। विद्रधि के कारण यकृत् में शोथ आ जाती है। एक अर्थ में पित्तकोष को यकृत का प्राण भी कह सकते हैं।

चित्र संख्या (१) का चिह्नित (ख)—

इसे "दीर्घपिण्डिकांश" कहते हैं जो क्रमशः पूर्वापर दोनों ओर यकृत् के तल भाग में स्थित है तथा चि० सं० (१) चिह्नित ग—"दक्षिणपिंड" एवं चित्र सं० (१) चिह्नित घ—"वामपिंड से अवबोधित हैं। ये चारों पिण्ड स्थान स्थिति से आश्रित हो पारस्परिक वृक्कान्त्रकलामपित्तादिकों में स्वसम्पर्क स्थापित कर रखे हैं। वात दोष से इनमें कर्कसता व कठोरता आ जाती है। कफ वात दुष्टि से शोफ तथा पित्त प्रकोप से उष्णता एवं कुपित वातपित्त से शुष्कता और कफपित्त की विकृति से अर्बुदादि रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। इन कारणों से शिशु रोग का शिकार बन जाता है पिंडवैकारिकता से बालक में मलमूत्र व वृक्कगति की अवरुद्धि हो जाकर उदर भारवह हो जाता है और समस्त शरीर कृश होकर बैठने चलने में बालक असमर्थ हो जाता है।

चित्र संख्या (१) में चिह्नित (च)—

इसे "दक्षिण पार्श्विकी प्रबन्धिनी" तथा चित्र सं. (१) चिह्नित (छ)—को 'वामपार्श्विकी प्रबन्धिनी' एवं चि. सं. (१) चिह्नित (ज)—को 'दीर्घप्रबन्धिनी' कहते हैं जिसमें बंधकर यकृत् पिण्ड स्वस्थाने सुरक्षित है। इनमें जब निर्बलता आती है तब रज्जुरूपी प्रबन्धिनियां ढीली पड़ जाती हैं और साथ ही यकृत् भी ढीला हो जाता है जिससे उदर पिलपिला हो जाता है। इसमें ढीलापन आ जाने पर अतिसार इत्यादि उपद्रव होकर शोषरोग बन जाता है।

चित्र संख्या (२) का पृष्ठ भाग—

चि० सं० (२) चिह्नित (ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, श, ष, स)—

इनका लेख सूक्ष्मरूपेण उपरोक्त चि० सं० (१)

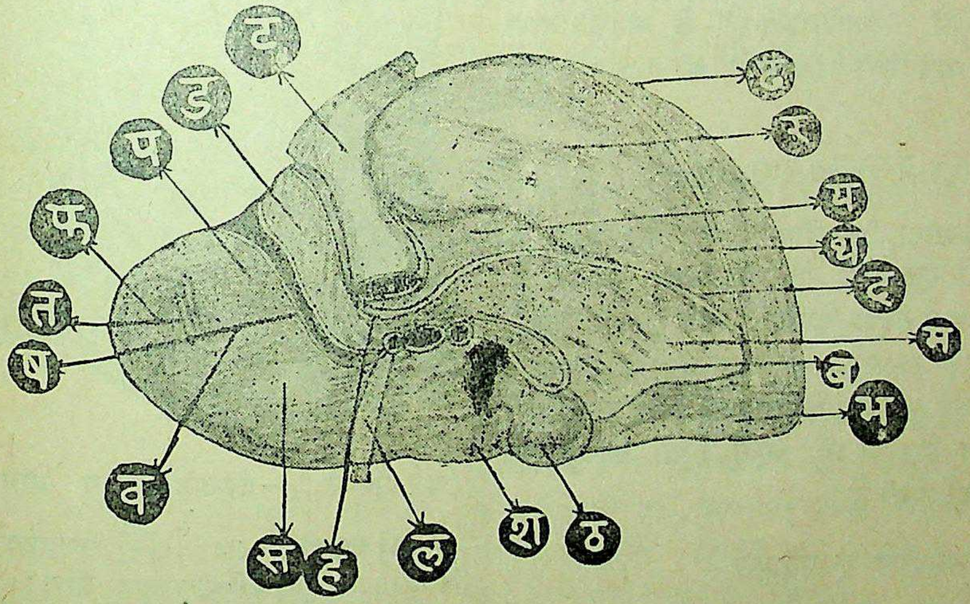

चित्र संख्या २—यकृत् का पृष्ठ भाग

(ट) अधरा महासिरा। (ठ) पित्तकोष। (ड) दीर्घपिण्डिका। (ढ) दक्षिण पिण्ड। (त) वाम- पिण्ड। (थ) यकृत् प्रबन्धिनी का पूर्व भाग। (द) यकृत् प्रबन्धिनी का अपर भाग। (प) अन्ननलिका स्पर्शज खात। (फ) आमाशय स्पर्शज खात। (ब) ग्रहणी स्पर्शज खात। (भ) बृहदन्त्रकोण स्पर्शजखात। (म) वृक्कस्पर्शज खात। (य) अधिवृक्क स्पर्शज खात। (र) उदर्याऽनावृत प्रदेश। (ल) संवाहिनी सिरावशेष। (व) दीर्घ सीता। (श) चतुरस्रपिण्डिका। (ष) पिण्डयोजनिका। (स) पिण्डकूट। (ह) द्वार सीता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अन्तर्गत हो चुका है जिनके पुनरावर्तन की आवश्यकता ही न रह गई है।

खात वर्णन —

चित्र संख्या (२) में चिह्नित (प, फ, ब, भ, म, य)—

लिङ्गानुसारेण क्रमशः "अन्ननलिकास्पर्शज खात, आमाशयस्पर्शज खात, बृहदन्त्रकोणस्पर्शज खात" कहते हैं। दुष्टस्तनपान व दूषित पदार्थों का उपयोग तथा औषधि विपरीतता से इनमें विकार आ जाने पर बालक को सूखारोग होने लगता है। जो "वृक्कस्पर्शज खात, अधिवृक्कस्पर्शज खात" से अवबोधित हैं वे गरिष्ठदोष, मूत्रदोष इनके विशेष कारण माने गये हैं। उपरोक्त कारणों को आधार मानकर "ग्रहणीस्पर्शज खात" को अतिसार संग्रहणी का हेतुरूप दिया गया है।

चि० सं० (२) में चि० (र)—

"उदर्याऽनावृत प्रदेश" एवं चि. सं० (२) में चि. (ल) को "संवाहिनीसिरा" के अवशेष माना गया है। यही सिरा 'महासिरा' की सहयोगी कही गयी है।

चि० सं० (२) में चिह्नित (व) (ह)—

"दीर्घसीता, द्वारसीता" कहते हैं। यकृत् के पुरस्तल में फैली हुई दोनों पिंडों की विभक्ति है. उससे वामपूर्व में जो दिखाई दे रही है वही "दीर्घसीता" है। याकृत् पश्चिमस्तल भाग में यकृद्द्वार की ओर गई हुई मध्य में स्थित है, उसे "द्वारसीता" कहा गया है। ये भी यकृत् पिंडों को सुरक्षित रखने वाली होती हैं।

यकृदाभ्यन्तरीय सूक्ष्मदर्शन-

यकृद्विदीर्ण आभ्यन्तरीय भाग में सूक्ष्मतम प्रतिहारिणी महासिरा, कंदिकाभ्यन्तरीय शाखा, कन्दिकाभ्यन्तरीय सिरा, कन्दिकाकेन्द्रिणी परितरव सिराजालक, इनका दिग्दर्शन कराया गया है, जिन्हें अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से ही देखा जा सकता है।

चित्र संख्या (३) व (४)—

चिह्नित (१, २, ३, ४)—

के अन्तर्गत "याकृतीसिरा" कहलाती हैं। पुनरपि केन्द्रों में कन्दिकाओं की याकृत्सिराओं के सूक्ष्मतम मुख दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सिरायें "कन्दिकाकेन्द्रिणी" नाम से सम्बोधित हैं।

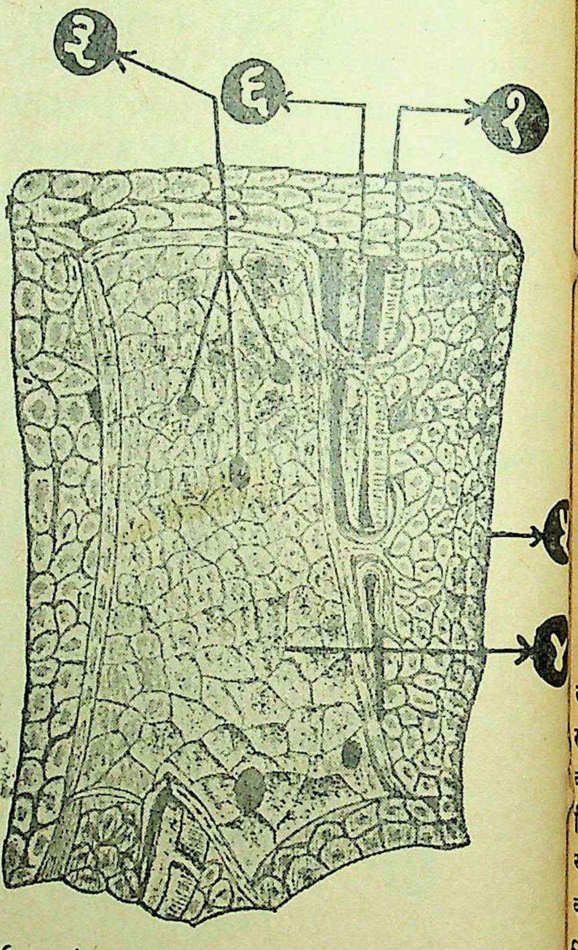

चित्र संख्या ३—यकृताभ्यन्तरीय भाग—

[१] याकृती सिरा। [२] उन्मुक्तशाखा सिराओं के मुख। [३] कन्दिकान्तराल सिरा। [४] यकृत के कोषाणु। [५] पित्तकोष।

उनके पुञ्जीभूत होने से याकृती सिरायें क्रमशः स्थूलता को प्राप्त होती जाती हैं। कन्दिकाओं के भीतर रहने वाली जो अदृष्टसिराएँ हैं, वे प्रायः कन्दिकाओं से आवृत रहती हैं जिनका "अधरामहासिरा" में प्रवेश है। ये यकृत में परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

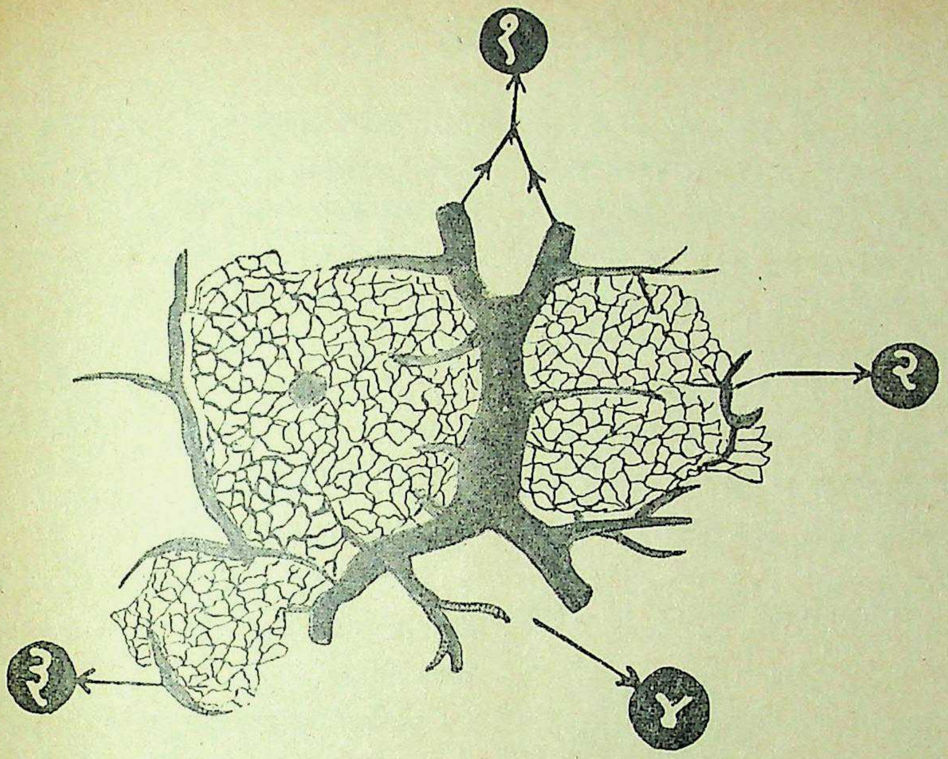

चित्र संख्या ४—यकृदाभ्यन्तरीय कंदिका संस्थान—

[१] कन्दिकान्तराल सिरा। [२] कदिन्काकेन्द्रिणी सिरा। [३] कन्किाकेन्द्रिणी सिरा (परितखजालक) [४] कन्दिकान्दतराल सिरा।

तरवजालकरूप में प्रसृत हैं और कन्दिकाऐं इष्टिका-रूपेण सिराधमनियों का संरक्षण करती हुई यकृत् को सुदृढ़ बनाये रखती हैं। जब इनमें रक्त संचरण क्रिया वैकारिक रूप को धारण कर लेती हैं तो यकृत् अपने कार्य में अक्षम हो शोष रोग को उत्पन्न कर देता है।

चिह्नित (५)—

ये यकृत् के "कोषाणु" हैं। इनका कार्य है यकृत का पोषण कर उसे सबल बनाये रखना। ये ही यकृत् की जीवनीय शक्ति है, परन्तु इनका पालन पोषण राक्तिक सिरा-धमनी द्वारा हुआ करता है। इनकी निर्बलता यकृत् को पिलपिला सा बना देती है।

चिह्नित [६]—

ये "पित्तस्रोत" से परिज्ञापित हैं। सूक्ष्मतम जो पित्तस्रोत हैं वे कन्दिकाओं के अन्तरवर्ती सिरा-धमनी जाल से बने हुए हैं, उनके सहचर माने गये हैं। उनके पारस्परिक सम्मेलन से पित्तस्रोत स्थूलता को प्राप्त होते जाते हैं और वे स्रोत चित्र में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं, इनका तथा प्रधान यकृत् का एकीकरण हो जाने से 'याकृती नाम्नी पित्तनलिका' से अवबोधित है जो 'कौषिकी' नलिका के द्वारा ग्रहणी पार्श्वे मिलती हुई साधारण पित्त नलिका का निर्माण करती है, जिसका मुख ग्रहणी के भीतरी भाग में दिखाई दे रहा है। क्रियमाण पैत्तिक प्रसंग पूर्व ही पंक्तिबद्ध हो चुका है। अतः यहां पुनरावृत्ति की अनावश्यकता को समझ कर केवल इतना ही बता देना पर्याप्त है कि इस रोग का प्रधान हेतु यकृत् ही माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रासंगिक एक रोगी

छाया चित्रित रोगी, जो इस समय ४ वर्ष का प्रतीत हो रहा है, इसकी जाति जायसवाल क्षत्री, तथा नाम प्रेम राज (प्रेमकुमार), और स्थान जुमेरात बाजार हैदराबाद (आ० प्र०), एवं माता का नाम संजीवनी बाई और पिता का नाम ठाकुरप्रसाद जी है। यह जन्मजात जलीयांशयुक्त सशोफ पीताभ पांडु रोग से ग्रसित रहा है। मेरी चिकित्सा से पूर्व डाक्टर लोग सूचिका द्वारा जलीयांश निकाल दिया करते थे। जब इस बालक को हमारे स्थानीय चिकित्सालय में लाया गया, उस समय रोग-स्थिति निम्न प्रकार थी–

ग्रीवा भार को वहन न कर सक रही थी, बिना किसी आश्रय बालक बैठने में असक्य था, देह में शोफ व पाण्डुता छाई हुई था, यकृत शोथयुक्त था। चिकित्सा आरम्भ की गयी। छः मास के पश्चात् इस समय बालक बैठने चलने में अभ्यस्त हो रहा तथा ग्रीवा भी भारवहन में सक्षम है। शनैः शनैः रोगी स्वस्थता को प्राप्त करता जा रहा है। रोग रुपये में चतुर्थ हिस्सा शेष रह गया है। विश्वास है कि कुछ ही मास में रोगी रोगमुक्त होकर स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकेगा।

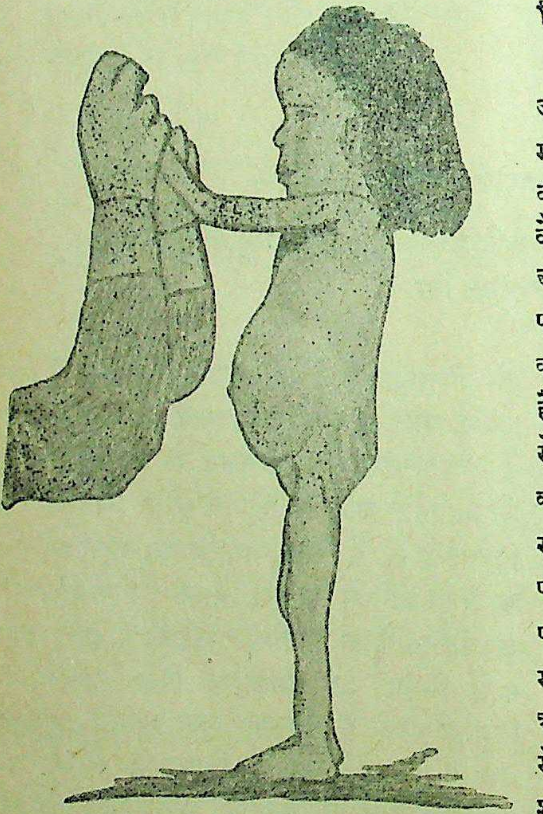

चित्र संख्या—५

इस चित्र में शोफरोगान्तर्गत पदार्थ गारिष्ठ्य, जलीयांश, यकृद्विद्रधीत्यादिक कथित कारणोद्भव शोफयुक्त यकृद्वृद्धि के रोगी का चित्रण किया गया है।

पूर्वोन्मुक्त प्रासंगिक प्रकरण–

आवश्यकतावश यकृद्व्याख्यार्थ पूर्व प्रसंग का विषयान्तर कर दिया गया था, उसी का पुनरारम्भ किया जा रहा है।

उपरोक्त उद्धृत इतिवृत्त से यह स्पष्ट है कि जन्मजात के लिए जन्मजन्मान्तरीय कृतकर्म एवं मातृज पितृज दोष व प्राकृत प्रकोप से कितनी ही व्याधियां सम्बन्धित हैं, जिनका प्रत्यक्षीकरण हमारा वैद्यकविज्ञान विदित कराने में किसी भी प्रकार से उन्मुख नहीं है और इसी मैमांसिक मर्मज्ञता का परिचय अग्र पंक्तियों में प्रमाणित किया जा रहा है। कतिपय स्त्रियों की टेव मृद्भक्षण की हुआ करती है और साथ ही वात कफ कारक गरिष्ठ पदार्थों के सेवन की भी, जिससे बालकों को भविष्य में पांडुता का रूप धारणकर लेना पड़ता है। गर्भावस्था में रक्त पोषक व रक्तवर्द्धक वस्तुओं के सेवन न करने पर दौहृद में स्वभावतः रक्ताल्पता आ जाती है। परिणामतः प्रसवानन्तरे जब गर्भाशयस्थ विषाक्त मल बहिर्गामी हो जाता है तब प्रसूता में और भी असक्तता एवं निर्बलता आ जाती है तथा शून्याङ्ग में वात प्रवेश, जलीयांश के स्थानस्थायित्व से यकृत शोफ की प्रक्रिया यकृत् में रक्त व स्तन में दुग्धोत्पादकीय सक्रिय शक्ति को अभाव युक्त असमर्थ बना देती है। परिणामस्वरूप तज्जातक दोष कुसुमित कोमलाङ्गी क्षीण शिशुओं पर भी निज नैसर्गिक शोषणाधिकार का स्थान ग्रहण करे बिना नहीं रह सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि सूतिकामल आभ्यन्तरस्थ होजाता है तो स्त्री में स्वेच्छाछायादि व मलीमस्वेच्छताभिसूत स्तन दुष्टि दोष शिशुशोषण किये बिना नहीं रह सकते, अर्थात् कथित यकृद्दौर्बल्यादिक लाक्षणि-कोभयता बालकों को कृशगात्री बना देती है। सिवाय क्षीणकाय के रक्तमांसादि धातुओं का शेष स्थान ही नहीं रह जाता।

१-(ब) बालकों को भी विशेषत: मिट्टी खाने की टेब पड़ जाती है, जिसके कारण मलबद्धता हो कर यकृदामान्त्रिक क्रिया में बाधा आने लगती है तथा दोषों का सञ्चय होने लगता है। अन्ततोगत्वा

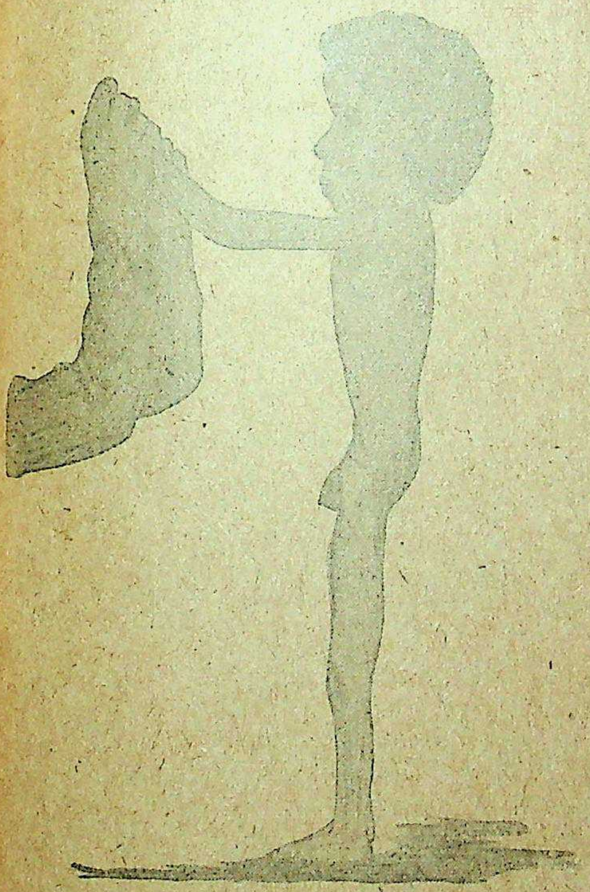

चित्र संख्या—६

इस चित्र में शोषविषयक यकृत्‌ह्रास के रोगी की स्वरूपाकृति दर्शायी गयी है।

उदरवृद्धि होकर पांडुता एवं शोषणता आ जाती है। शर्करायुक्त मिष्ठ पदार्थों का अतिशय अथवा अन्नादिक वस्तुओं का अति सेवन भक्षणादि कुपथ्य पालन, ये सब आम की विकृति कर कृम्युत्पत्ति कर देते हैं। तत्कारणात् पाण्डुरोग व रस रक्तादि धातु क्षीण हो कर सूखा रोग बन जाता है।

२-(क) दन्तोद्‌गम से उत्पन्न हुए रोग तथा अन्यान्य कारणों से उत्थित मन्थरज्वर, अतिसार, कास, श्वास, उत्फुल्लिका, मसूरिका इत्यादि रोगों के शीघ्र शमनार्थ आशुकारी विषाक्त उग्र औषधियों का सेवन करा देना, रोग मुक्ति के अतिरिक्त अयाचित उभय विषों को संचितकर शोष रोग में परिणत कर देता है।

माताएँ स्वस्वार्थ सुखार्थ सुकोमल शिशुओं को अहिफेनादि विषमय वस्तुस्वभाव में बांध देती हैं, जिससे मलविसर्जन, वातानुलोमन न होने पर विषैलीवाष्प रक्त का शोषण करने लगता है। अत: शिशुओं को श्वासोच्छ्‌वास क्रिया में भी काठिन्यता का अनुभव करना पड़ता है। इसी प्रकार बिस्कुटादि विष्टम्भी पदार्थों के सेवन व कृत्रिम रबरस्तनचोष्यरस के आमाशय में प्रविष्ट होने से भी यह रोग सहजस्थायी बन जाता है।

२-(ख) स्तन्यदुष्टि का नाना विधि हेतुओं से जन्म होता है, वैसे ही छाया दोष के भी विभिन्न रूप हैं। यह वस्तु तो पूर्व वर्णित हो चुकी है कि शिशु कोमलत्व पर छाया दोष शीघ्र प्रभावोत्पादक होता है। तथैव प्रसूति व ऋतुमती को शारीरिक शून्यत्व के कारण रज, रक्त, वात दुष्टि गुणधर्मा-नुसार स्वभाव से ही हो जाया करते हैं। स्पर्शगुणा-वह विषाक्तवात रोम कूप द्वारा दुर्बल धातुओं में प्रविष्ट हो सम्पूर्णाङ्ग एवं स्तनस्थ दुग्ध को विषयुक्त बना देना उसका सहजस्वभाव है, कारण कि रक्त ही दैविक जीवन माना गया है और वात उसका सहा-यक भूत। अत: रजशुद्धि से स्त्रियों के रक्त में तात्विक जीवाणु-परमाणुओं की आंशिक बाहुल्यता के कारण स्तनस्थ दुग्ध में भी पोषक तत्व विशेषरूप से पाये जाते हैं, जिनसे बालकों का पोषण होता है तथा बालक हृष्ट-पुष्ट व निरोग रहते हैं और उन्हीं वात-रक्त दोनों के पारस्परिक "अन्योन्याश्रय न्यायेन" प्रादुर्भूत विघुतत्व विषयुक्त बन जाते तथा परिणामस्वरूप प्रसर्पित विषाग्नि छाया रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणत हो पूतिगन्धत्व कीटाणुओं की बाहुल्यता कर देता है तब उपरोक्त पोषकीय तत्वों का ह्रास होकर शिशु शोषणता को प्राप्त कर जाते हैं।

पूतिगंध से तात्पर्य है पूतनादोष, जिसकी हेतु रूपा है रजस्वला पतिसहवासिताऽस्नातापरिछाया प्रभाव, अर्थात् इन कष्मल प्रभावों से रजोदुर्गन्धि व रक्त दुष्टि होना स्वाभाविक है, जिनके कारण भाषावाद, कर्मवाद के भेद से इस रोग के अनेकों नाम तथा अनेकों ही कारण व अनेकों रुग्ण एवं रोगोदाहरणों से वैद्य समाज परिचित है, किन्तु उनका प्रज्ञापराध समझें अथवा परिस्थिति का प्रतिबन्धन, ये सब दोष मात्र्यवहेलनात्मकीय प्रमादेत्यादिक कृत कर्मों में ढ़केल दिये जाते हैं, क्योंकि इन सबकी शुभाशुभ की हेतु रूपा मातायें ही हुआ करती हैं और है भी सत्य, जिनके स्वाभाविक उदाहरण हमें उपलब्ध हैं "दौहृद" तथा 'जन्मजात'। ममतामयी मातायें जो कुछ भी करती हैं अपने बालकों के हितार्थ ही किया करती हैं, चाहे शिशु गर्भस्थ हो वा जन्मजात। उनकी इच्छा ही माता की इच्छा और उनका हित ही माता का हित, इस ज्ञान से मातायें भली भांति बिज्ञ हैं। जैसे कि गर्भिणी स्त्री आहारबिहारादि की चेष्टाचरण किया करती है, वह निजेच्छा से नहीं, गर्भस्थेच्छा से स्वेच्छा से नहीं, जन्मजातजेच्छा से। इसका कारण है पूर्वकृत पाप, वे पोपोदित कर्म इनकी इच्छाओं में प्रेरित हो इन्हें समस्त शरीरज स्वेदमल दुर्गन्धता को प्राप्त हो जाता है। इस दुर्गन्ध में एक प्रकार के विषाक्त कीटाणु निवास करते हैं और वे कीटाणु (रोगाणु) स्तनपान के साथ बालकों में प्रवेश कर उन्हें शोष लेते हैं। वैसे ही शारीरिक स्वेदस्थ कीटाणु छायास्पर्श से शिशुओं के रोमकूप में प्रविष्ट हो बालकों को शोष रोग का शिकार बना देते हैं। इसी प्रकार चक्षुविष भी बाल रक्त का चूषण कर लेता है। इसी को लोकवाणी व वैद्यक शास्त्र में दृष्टिदोष की संज्ञा दी गयी है यद्यपि इन दोषों को विषाग्नि कहा जाए तो भी कोई दोषापत्ति नहीं।

३-(ग) छाया विज्ञान की दृष्टि से रेवती-ग्रह नक्षत्र, भूगर्भित वाष्प, प्राकृताप्राकृत आणविक विस्फोटादिक विकृतादृश्य छाया शिशुओं में आगन्तुजाकस्मिक रूप से प्रवेश कर विपर्य गुणाक्त बन जाते हैं अर्थात् शोष रोग की उत्पत्ति करने वाले होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि तालु प्रदेश में जो ब्रह्मरन्ध्र का स्थान है, उसमें धनञ्जय वायु का निवास है। और वही स्थान नैसर्गिक मृदुस्थि के कारण प्राकृताप्राकृत वातिक छायादोषादि से दूषित हो रक्तेन सह उसी प्राणवायु का शोषण करने लगता है, जिसे आयुर्वेदज्ञ 'तालुकण्टक' कहते हैं।

चित्र संख्या ७
शोषरोगान्तर्गत जन्मजात जलीयांशयुक्त पाण्डुरोगी का स्वरूप

३-(घ) तच्चिह्नित के अन्तर्गत असामयिकागन्तुज व्याधियां कर्म विपाक से सम्बन्ध रखने वाली हुआ करती हैं, जो पूर्वकृत सुकर्मों का अस्त तथा पूर्वोक्त कुकर्मों का उदय समयावधि (कालावधि) को प्राप्त हो आकस्मिकाक्रमण तस्करवत् किया करती हैं। यह वैज्ञानिकों की शास्त्रसङ्गत सत्य धारणा ही नहीं अपितु निरापद सत्य प्रामाणिकता है।

—शेषांश पृष्ठ ३२ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखारोग का क्षेत्र

कविराज श्री शेषराव जी जैन आयुर्वेद रत्न

धन्वन्तरि के सुपरिचित लेखक आदरणीय वैद्य जी ने इन दिनों अनेक समस्याओं में ग्रस्त रहने पर भी लेख भेजा इसके लिए हमको धन्यवाद देना ही है। आपने इस लेख में बताया है कि सूखारोग कोई स्वतन्त्र व्याधि नहीं अनेक रोगों का समूह मात्र है। आयुर्वेद में भी इसका इससे अधिक स्पष्ट विवरण अप्राप्य है। बाल शोष और उससे सम्बन्धित अवस्थाओं या रोगों पर अनुभव पूर्ण विवेचनात्मक विवरण इस लेख में पाठकों को मिलेगा।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

अत्यह: स्वप्न शीतांबु श्लेष्मिक स्तन्य सेविन:।
शिशो: कफेन रुद्धेषु स्त्रोतःसु रस वाहिषु ॥
अरोचक प्रतिश्यायो ज्वर: कासश्च जायते।
कुमार: शुष्यति तत: स्निग्ध शुक्ल मुखेक्षण: ॥

—अ० हृ० उ०अ० २–४४-४५

आचार्य वाग्भट के उक्त श्लोकों पर यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार किया जायगा तो हमें यह स्पष्ट ज्ञात हो जावेगा कि बाल शोष कोई एक रोग न होकर अनेक रोगों के आक्रमण से अवस्थानुसार अनेक लक्षणों का समूह दृष्टिगोचर होता है।

हमें सखेद कहना पड़ता है कि बृहद्त्रयी एवं लघुत्रयी के ग्रन्थों में इस रोग पर विस्तृत रूप से प्रकाश कहीं भी नहीं मिलता है। काश्यप संहिता कौमारभृत्य नामक ग्रंथ अत्यंत प्राचीन है एवं इसके श्लोक भी खंडित हैं तथापि विद्वानों के के लिए इस विषय का मननीय ग्रंथ है।

जिस प्रकार रोगराज राजयक्ष्मा को क्षय, शोष, आदि नामों को पुकार कर शाब्दिक सार्थकता की सूचना मिलती है उसी प्रकार बालशोष, अर्थात् 'बाल:इति शुष्यति:' बालक के दिन प्रतिदिन सूखने का बोध होता है। फक्क नाम भी इस सार्थकता को प्रमाणित करता है। यथा–'बाल: संवत्सरा (पन्न:) पादाभ्यां यो न गच्छति। स फक्क इति विज्ञेयस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥' छटी, सूखा, मसान आदि इसके नाम भी इन्हीं लक्षणों के परिचायक हैं।

कौमारभृत्य के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का होता है।

(१) क्षीरज (२) गर्भज (३) व्याधिज

हम इन्हीं तीन प्रकारों का वर्णन कर इसका अन्य रोगों के संबंध पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

(१) क्षीरज फक्क–

जिस धात्री का दुग्ध प्रज्ञापराध आहार विहार में मिथ्याचारों से कफ दूषित हो जाता है। दूध को एक चम्मच में निकाल कर यदि जल में डाला जाय तो वह दूध नीचे बैठ जाता है। यह कफ दूषित दूध की परीक्षा है। इस प्रकार का दूषित दूध होने के कारणों पर प्रकाश डालना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि आजकल के माता पिता इन कारणों को अपने नियम संयम द्वारा दूर करदें तो इस दुष्ट रोग जनित मृत्यु संख्या का निराकरण होने के साथ साथ भारत को हृष्ट पुष्ट दीर्घजीवी बलशायी सन्तति का पुन: गौरव प्राप्त हो सकता है। एक बालक को जन्म देकर यदि माता अविलंब दूसरा गर्भ धारण कर ले तो दूध कफ दूषित हो जाता है। मैंने अपने जीवन में ऐसी माताओं के भी दर्शन किये हैं जो प्रथम शिशु जनन के एक वर्ष के भीतर ही पुन: दूसरे शिशु की भी जननी बनीं। मान लिया यदि किसी औषधि सेवन वा अन्य साधित उपचारों से गर्भ नहीं रहा तो भी जनन के १-२ मास तक भी हमारे बंधु भगिनी संयम रखते नहीं देखे गये। यह भी हमारे बंधु भगनियों को स्मरण रखना चाहिए कि अवस्था प्राप्त होने पर निसर्ग द्वारा स्त्रियों में आर्तव स्राव प्रतिमास होता है। गर्भावस्था में इसी आर्तव स्राव से शिशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पोषण होने के कारण वह इस गर्भ काल में बंद रहता है मासिक में प्रवृति होती है। इस काल में बालक भी दूध पीता है इस प्रकार उस-बंद मासिक शोणित में द्वंद छिड़ जाता है। बालक उसे दूध रूप में प्राप्त करना चाहता है। तथा कामान्ध माता पिता उसे रजः निष्कासन पर विवश करते हैं। फलतः इस स्राव को दुग्ध रूप में परिणत करने वाले अवयव विकृत हो अपक्व शोषित मिश्रित अशुद्ध दूध का ही स्तनों में प्रवर्तन करते हैं। इस दुग्ध की गरिष्ठता को बालक भली भांति पचा नहीं सकता।

एक दूसरा कारण कफवर्धक आहार विहार भी हैं। माता का दिन में सोना, दही, उड़द आदि गरिष्ठ, बासे, अम्ल अधिक लवण युक्त चटपटे पदार्थों का सेवन करना, चक्की, चूल्हे, आदि के व्यायाम से भागना अथवा भोजन के तत्काल बाद बालक को दूध पिलाना, भोजन बनाते समय ही यदि बालक रोया तो उसी समय भागते आकर बालक को दूध पिलाना किंवा चूल्हे के पास ही बालक को दूध पिलाते हुए भोजन तैयार करना, धूप शीत आदि स्थानों से शौच से मूत्र त्याग से आकर एकदम बालक को दूध पिलाना, स्तन को धोये बिना बालक को दूध पिलाना, शरीर पर स्वेद हो शरीर उष्ण हो ऐसी अवस्था में दूध पिलाना स्तन्य दुष्टि के प्रधान कारण हैं। अब पाठक स्वयं विचार करें कि दोष करते हैं माता पिता और फल मिलता है हमारे नन्हें मुन्ने अज्ञान शिशुओं को।

(२) गर्भज फक्क—

गर्भिणी में स्थित मातृका के दुग्ध में स्थित होने पर वह गर्भ फक्क पीड़ित होकर शीघ्र ही क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है। यह स्थिति भी काम क्रीड़ा की ही देन है। प्रथम प्रकार में दुग्ध का कफ दोष से दूषित होना ही लिखा है। किंतु इस स्थिति में दूध वात एवं पित्त वा त्रिदोष दूषित हो जाता है। ये दोष दुग्ध वाहिनियों में तो स्थित रहते ही हैं प्रत्युत गर्भ काय में गर्भ पोषक अंगों में भी स्थित होकर गर्भस्थ भ्रूण के पोषित सुधा का चूषण कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में गर्भपात भी हो सकता है अथवा यदि न भी हुआ तो जो बालक जन्म लेता है वह इतना लचीली अस्थियों वाला दुर्बल होता है कि बहुत चिकित्सा करने पर भी उस दोष का प्रमार्जन दुष्कर होता है। ये बालक अल्पायु ही होते हैं। साधारण देहाती भाषा में इसे कोख खराब होना कहते हैं। इस तरफ की स्त्रियां ऐसा समझती हैं कि इस कुक्षि में किसी भूत प्रेत प्रेतनी का वास हो गया है जो बालक को समाप्त कर देती है। यदि ऐसी स्त्री समीप बैठी हो तो बेचारी दूसरे बाल बच्चे वाली बहुओं की तो शामत आ जाती है। उनकी सास देवी उन्हें ऐसी जली कटी सुनाती हैं कि बेचारी के होश गुम हो जाते हैं। उनकी छाया मात्र से भागना, अंग स्पर्श न होने देना, खाना पीना आदि में सम्मलित न होने देना सास देवियां उन्हें सिखला देती हैं। यदि दो सगी बहनों में से एक को यह दोष हो तो भी उत्कृष्ट स्नेह घृणा में परिवर्तित हो जावेगा यह निश्चय है। अधिक क्या कहूं मैं तथा मेरी धर्म पत्नी स्वयं इस मानापमान के भुक्तभोगी हैं। मानव ठोकर खाकर ही संभलता है। इसका मैं स्वयं सच्चा उदाहरण हूँ। मेरा प्रथम बच्चा चि० प्रमोद इस समय ९ वर्ष का है। तथा दूसरी बालिका कुमारी कुसुम ७ वर्ष की है। प्रमोद

:: पृष्ठ ३० का शेषांश ::

अस्थिमृदुता के कारण उपरोक्त वैकारिक प्रभाव तालुरन्ध्र पर शीघ्र हो जाया करता है, जिसे 'तालु कंटक' रोग, ऐसा कहा करते हैं। अतः इस बीभत्स व्याधि में परिणत कर देते हैं।

विशेष विज्ञप्ति—

जिस शृङ्गादिक प्रचालना को सामयिक समाज लज्जाप्रद समझते हैं वही आधि व्याधि परिहारक बघनख पाषाण पूर्णफल पर वस्त्रवेष्टित रज्जु भय-माल भी वैज्ञानिक महत्व रखती है।

—श्री वैद्य मुकन्द चन्द्र व्यास
चन्द्रचिकित्सालय, कोलसावाड़ी (भगवानगंज)
हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तीन माह के होते न होते ही यह दूसरी गर्भ-स्थिति हो गई। फलस्वरूप चि० प्रमोद ६ वें माह से ३ वर्ष की आयु तक इस दुष्ट रोग का शिकार रहा था। मेरी कमाई का संपूर्ण भाग रोग राज की भेंट में स्वाहा कर आज वह पूर्ण स्वस्थ है। दूसरी बालिका कुसुम अभी ७ वर्ष की होते हुए भी इतनी दुर्बल है कि उसे कोई ५ वर्ष की ही कहेगा। फिर भी वह स्वस्थ है। एक बात और भी बता दूं कि उस समय मेरे गांव में ८ बच्चों में से केवल यही दो बच्चे हैं जो जीवन धारण कर स्वस्थ हैं, शेष सब यमराज के अतिथि हो गये। इस काल में घर बाहर मंदिर कुंए पर मेरी धर्मपत्नी को जिन अपमानों का सामना करना पड़ा वह अवर्णनीय है।

(३) व्याधिज फक्क —

जीर्ण ज्वर, यकृत विकार अथवा निज तथा आगन्तुज व्याधियों से पूर्ण जीवतिक्तियुक्त पोषणाभाव से दारिद्र्यजन्य अस्वास्थ्यकर निवास, सूर्य प्रकाश के अभाव से शिशु अधिक काल तक रुग्ण रहता है। क्रमशः उसका मांस, रक्त एवं द्युति क्षीण हो जाती है। हाथ पैर अत्यंत दुर्बल एवं शुष्क हो उदर आगे बढ़ जाता है। नेत्र श्वेत पीत, सिर तथा मुख बड़ा एवं शरीर अस्थि पंजर मात्र रहता है। दौर्बल्य मंद चेष्टा शैथिल्य के कारण कृमि कीटमक्षिकादि उसे मृत्युकारी रोग कर दे सकते हैं। उसके नख बढ़ जाते हैं। शरीर से दुर्गन्ध आती है मलिनता बढ़ जाती है। उसका श्वास एक विशिष्ट प्रकार का होता है। ऐसा बालक क्रोधी एवं चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है। इस प्रकार के फक्क को व्याधिज फक्क की संज्ञा दी गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीनों प्रकार के फक्क में सप्त धातु, तीनों दोष एवं संपूर्ण अवयवों में विकृति स्पष्ट भासित होती है। अब हमें यह देखना है कि बाल शोष का संबंध किन किन रोगों से होता है। तथा तद्‌जन्य क्या क्या लक्षण होते हैं।

यह सर्व प्रथम लिखना उचित है कि यह रोग ६ मास से कम के आयु वाले शिशुओं में आज तक नहीं देखा गया। बाल शोष के संपूर्ण लक्षण १८ माह की आयु के पश्चात् ही प्रगट हुए हैं।

अजीर्ण—

सर्व प्रथम प्रत्येक शिशु में यही लक्षण दृष्टि-गोचर होता है। जीवतिक्ति तथा सुधारहित भारी दुग्धपान अथवा माता के प्रज्ञापराधन दोष से शिशु की अग्नि मंद होकर कफ दोष प्रवृद्ध होता है जिससे अन्त्रिक एवं आमाशयिक रस निर्माण का अनुपात विकृत हो जाता है। तथा अन्त्रस्थ पदार्थ अधिक काल तक अपाचित पड़े रहने से जीवाणु वृद्धि प्रारंभ हो जाती है। फलतः बालक क्षुब्ध रहता है उसका नैसर्गिक चांचल्य विलुप्त होजाता है। शरीर शिथिल होकर पाचन क्रम विकृत होजाने से सुस्ती अधिक रहती है। कभी कभी वमन भी हो जाती है। अथवा पतले दस्त भी हरित पीतवर्ण के होते हैं। बालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

पाचन संस्थान विकृति—

दुर्गन्धित हरा पीला फटा मल युक्त अतिसार बहुधा देखा जाता है। उदर में मंद मंद शूल गुड़गुड़ाहट आध्मान रहता है। उदर बाहर निकल आता है। निद्रा कम आती है। अग्निमांद्य अरुचि अपचन मलावरोध विशेष रूप से मिलते हैं। बृहदांत्र क्षुद्रान्त्र ग्रहणी एवं मध्यान्त्र प्रक्षुब्ध शोथ युक्त होने से आहार का परिपाक न होकर मल मूत्र प्रथक्करण जल शोषण एवं पाचन क्रिया विकृत हो जाती है। कभी कभी अग्न्याशय ग्रहणी आमाशय में व्रण भी देखे गये हैं। रस धातु पूर्ण रूप से क्षुब्ध एवं विकृत हो जाती है।

यकृत प्लीहा विकृति —

रक्त धातु के आगार केन्द्रद्वय यही हैं। पाचन संस्थान की विकृति से उदर का बाहर निकलना, सांस्थानिक क्रिप्वीकरण, महाप्राचीर पेशी की दुर्बलता के कारण यकृत का अधोभाग उदर भाग में खिसकने से स्नेहिक परिवर्तन होता है। पित्त निर्माण क्रिया में न्यूनता आ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्बोहाइड्रेट, बसा एवं प्रोटीनयुक्त पदार्थों का पाचन नहीं हो पाता। फलस्वरूप विष-नष्टीकरण शक्ति में भी न्यूनता आ जाती है। प्लीहा अपने स्थान से भ्रष्ट होकर नीचे खिसक जाती है। रक्त के श्वेत एवं रक्त कणों का अनुपात नष्ट हो जाता है। फलतः रक्त की अत्यधिक कमी होकर शरीर पांडुत्वपूर्ण हो जाता है। नेत्र श्वेत पीत एवं मल मूत्र भी दुर्गन्धयुक्त उत्सर्जित होता है। रक्त के फास्फोरस की न्यूनता होकर फोस्फेट की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। गंभीर स्थिति में रक्तीय सुधा की मात्रा भी अत्यधिक न्यून हो जाती है। दुग्ध अथवा भोजन करते ही बमन होना, रात्रि में मंद मंद ज्वर रहना अथवा सदैव मंद मंद ज्वर बना रहना, शिर पर स्वेद आना, मल में आम मिश्रित रक्त मिश्रित चावलों के धोवन के समान हरित पीत फटा फटा मल आना, अंतिमावस्था में वस्त्रों में मल का निकल जाना आदि लक्षण मिलते हैं। शरीर की रोग प्रतिबंधक क्षमता नष्ट हो जाती है शिशु थोड़ा भी शीत ऊष्मा आदि आहार विहारज दोष सहन नहीं कर सकता बल क्षीण होकर मांस सूखने लगता है। दोनों पैर और बाहु शुष्क हो जाते हैं। नितम्ब प्रदेश पर झुर्रियां (सिकुड़ने) पड़ जाती हैं। कानों की लोर का मांस नीचे लटकता है तथा जोर से दबाने पर भी शिशु को वेदना ज्ञान नहीं होता।

श्वसन संस्थान विकृति--

बालक के दुर्बल होने के कारण प्रसेकोत्पादक जीवाणुओं का आक्रमण सहज हो जाता है। उन्हें शीघ्र सर्दी लग जाती है फलस्वरूप श्वास नलिका में शोथ होने की अधिक शक्यता रहती है। यह शोथ बड़ी नलिकाओं में होने पर मंद सस्वर घर्घर शब्द शुष्कावस्था में तथा रूक्ष बुद बुद शब्द आर्द्रावस्था में एवं यदि शोथ छोटी नलिकाओं में हुआ तो शुष्कावस्था में तीव्र स्वर घर्घर युक्त तथा आर्द्रावस्था में सूक्ष्म कर्कश शब्द वक्ष परीक्षा यंत्र द्वारा ज्ञात होगा। यह श्वास नलिका शोथ श्वसनक (कर्कटिक) तमक श्वास उरस्तोय अथवा फौफ्फुसीय यक्ष्मा का दोष काल देश चिकित्सा पथ्यापथ्य सावधानी आदि के अनुसार कोई भी रूप लेकर बालक को अत्यंत जर्जर क्षीण काय कर दे सकता है। यहां हम उपरोक्त संपूर्ण रोगों का निदान न कर इस रोग से संबंध मात्र स्थापित करने तथा तद्रोग की इस प्रकार में छाया दर्शन करने की चेष्टा कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप बालक का अस्थिपंजर मात्र शेष रह जाता है। पशुकाओं में वक्रास्थि माला की उपलब्धि मात्र होती है। वक्ष में पसलियों की अस्थियों तथा तरुणास्थि के संयोग पर नाली सी बन जाती है जो कुक्षा की ओर नीचे तक चली जाती है।

अस्थि मार्दव (अस्थिगत परिवर्तन)—

इस रोग में इस परिवर्तन का प्रमुख स्थान है। कारण इस रोग में अस्थिओं में उपस्थित संपूर्ण खनिज द्रव्य जब शरीर द्वारा शोषित कर लिए जाते हैं तब अस्थियों में काठिन्य न रह कर मृदुता आ जाती है। अधिकांशतः फास्फेट आफ लाइम विशेष रूप से शोषित होने के कारण चूने के भाग में अत्यधिक न्यूनता आने से भार पड़ने पर अस्थियां वक्र हो जाती हैं। बालक का भार जिस दशा में अधिक पड़ता है अस्थियां उसी ओर वक्र होती हैं। बहुधा उर्वास्थि आगे से बाहर की ओर तथा जंघास्थि नीचे के $\frac{1}{3}$ भाग में वक्र हो जाती है। प्रगंडास्थि बहिः प्रकोष्ठास्थि तथा अन्तः प्रकोष्ठास्थि बच्चे का हाथों के बल चलने और खड़े होने के कारण बाहर की ओर मुड़ जाती हैं। शैशवकालीन स्कर्वी, अत्यधिक स्वेद में कनपटियों वैठ जाती हैं। सिर की अस्थियां चौकोर डब्बे के आकार की हो जाती हैं जिससे सिर बड़ा प्रतीत होने लगता है। हाथ पैरों की संधियां शिथिल होने से चलने फिरने में बालक सामर्थ्यहीन हो जाता है। चेहरा शुष्क होने से अस्थियां उटावदार हो जाती हैं जिससे आकृति बानरस्वरूप भासित होती है; ब्रह्मरन्ध्र अधिक दिन तक बंद नहीं हो पाता तथा बिलम्ब से दंतोद्भव होता है। पैरों की आकृति

—शेषांश पृष्ठ ३६ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान में बालशोष का रूप और उसकी चिकित्सा पद्धति

कविराज श्री पं० अम्बालाल जोशी साहित्यायुर्वेदरत्न, आयुर्वेद केशरी, एम. सी.

आपकी सर्वप्रियता एवं कार्यकुशलता के उदाहरण अभी हाल के ही देखे जा सकते हैं— मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष तथा अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक के रूप में निर्विरोध निर्वाचन। आप जोधपुर के सम्मानित म्युनिसपल कमिश्नर होने के साथ ही 'जय आयुर्वेद' के सहयोगी हैं ही। सुप्रसिद्ध चिकित्सा व विद्वान लेखक के रूप में पर्याप्त सफलता प्राप्त करने वाले श्री जोशी जी से हमें आशा है कि महासम्मेलन पत्रिका के सम्पादक के रूप में आप पूर्ण सफल सिद्ध होंगे। प्रस्तुत लेख में आपने हमारे विशेष निवेदन पर राजस्थान में बालशोष की चिकित्सा पर उपयोगी प्रकाश डाला है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

आज के इस युग में जब कि यातायात के अनेक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं तथा भारत ही क्यों विश्व के एक भाग से दूसरे भाग तक कुछ ही घण्टों तथा दिनों में पहुंचा जा सकता है या सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है, किसी भी वस्तु को किसी एक देश या प्रान्त तक सीमित रखना अत्यन्त ही कठिन है। विश्व एकीकरण का नारा लगाने वाले इस युग में कोई भी वस्तु किसी एक देश या प्रान्त तक सीमित नहीं रखी जा सकती। यदि इस ओर कोई प्रयत्न भी किया गया तो वह हास्यास्पद तथा निष्फल ही होगा। फिर भी अत्यधिक प्रचलित बातों को लेकर यदि यह उहापोह किया जाय कि अमुक बात अमुक प्रान्त में प्राचीनकाल से व्याप्त है तो यह अनर्थ न होगा उसका प्रान्त से बहिष्कार भी न किया जा सकेगा!

बालशोष रोग भारत के प्रत्येक प्रान्त में समान स्तर पर व्याप्त है। यही कारण है कि एक प्रान्त में चल रही इस रोग की चिकित्सा दूसरे प्रान्त में यहां तक पहुंच गई कि उसका उत्पति विषयक मौलिक विश्लेषण करना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य हो गया। अब आज इस अन्तर्प्रान्तीय एकीकरण के युग में इसकी चिकित्सा को एक प्रदेशीय कहना संसार की दृष्टि में 'कूप मण्डूक' की कथा को चरितार्थ करना है। परन्तु यह भी भूलना नहीं है कि इस लेख में वर्णन की गई चिकित्सा राजस्थान में बहुतायत से दृष्टिगत की गई है।

बालशोष एक गरीबों का रोग है तथा राजस्थान एक गरीब प्रदेश है। यहां के व्यवसाय, व्यापार, खेती आदि सभी अर्थोपार्जन के साधन अपर्याप्त हैं अतः यहां पर यह रोग बालकों में बहुतायत से पाया जाता है। यह रोग उन बच्चों को अधिकतर होता है जिनकी माताओं को उनके पोषण के लिए अपर्याप्त पोषण खाद्य द्रव्यों की उपलब्धि होती है एवं जिनका रहन-सहन, वस्त्र विन्यास बहुत ही गन्दा होता है। असूर्यम्पश्या अंधेरी कोठरियों में अन्धकारपूर्ण गन्दी गलियों में जो निवास करते हैं उन लोगों के बच्चों को यह रोग शीघ्र ही आ घेरता है। अभावजनित यह रोग बालकों के क्षय रोग के रूप में अवतरित होता है। यह रोग शनैः शनैः आगे बढ़ता है तथा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में तो साधारणतया ज्ञान भी नहीं होने देता। कालान्तर में आगे बढ़ने पर यह कष्टसाध्य हो जाता है।

साधारणतया इस रोग के मुख्य मुख्य निदान ये हैं।—(i) जीर्ण रोगों के प्रतिफल स्वरूप, (ii) फुफ्फुस विकार जनित, (iii) दुग्धदोष जनित, (iv) अपौष्टिक आहार जनित तथा (v) आन्त्र विकार जनित आदि कारणों से यह रोग आगे बढ़ता है तथा कालान्तर में असाध्य गति को प्राप्त हो जाता है। हम पूर्व में यह कह आए हैं कि यह रोग प्रारम्भ से ही कृच्छसाध्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में ज्वर, तदनन्तर अतिसार, वमन आदि लक्षणों को लेकर यह रोग पैदा होता है। बच्चे को अतिसार फटी हुई हरी, पीली, सफेद तथा अन्य रंगों की आती हैं। इसमें तालू नीचे लटक आता है तथा मस्तक (खोपड़ी) तालू के स्थान पर गड्ढा हो जाता है। धीरे धीरे बच्चा सूखने लगता है तथा निरुत्साहित सा प्रतीत होता है और कालान्तर में यहां तक कि सीधा बैठ भी नहीं सकता। उसकी रीढ़ की हड्डियां झुक जाती हैं। धीरे धीरे बच्चे का सारा शरीर सूख जाता है। विशेषकर गर्दन तथा टांगें बेडौल व भद्दी प्रतीत होने लगती हैं। बालक अस्थि का ढांचा मात्र रह जाता है। बच्चे के पृष्ठ (पुट्ठे) पर झुर्रियां पड़ जाती हैं तथा वहां चमड़ी लटक जाती है। रक्त के श्वेताणुओं का ह्रास हो जाता है।

इस रोग की विशेष परीक्षा करने के निमित्त निम्न विधियों का उपयोग करते हैं—

(१) इस रोग में बच्चे के कान की लौ पतली पड़ जाती है। इसे जोर से दबाने से बालक रोता नहीं है अर्थात् उसके दर्द नहीं होता, वे सुन्न पड़ जाती हैं।

(२) बच्चा दूध पीने की अत्यधिक इच्छा करता है तथा माता को भी छोड़ना नहीं चाहता।

(३) बच्चे को मक्खी पकड़ कर किसी भी प्रकार निगलवा देने से वह उल्टी (वमन) नहीं करता।

(४) 'अण्डे को फोड़कर बैठाने की परीक्षा' परीक्षा तो है ही साथ ही चिकित्सा भी है।

यह कार्य हथेली पर ऊनी तथा सूती वस्त्र रख उस पर अंडे का पानी रख कर गुदा पर हाथ रख कर भी किया जा सकता है।

(५) यह परीक्षा भी चिकित्सा के रूप में तथा रोग विनश्चय के रूप में अपनाई जाती है। रोगी के तालू के गड्ढे में १॥, २ माशा गुड़ की डली रख कर ऊपर से गोंदा हुआ गेहूं के आटे का लोया चिपका कर पट्टी बांध दें। ४ से ६ घंटे के बाद पट्टी खोल कर देखें तो गुड़ की डली वहां नहीं मिलेगी। यदि गुड़ मौजूद रहे तो यह सूखा रोग नहीं है। यह कार्य भी तब तक किया जाता रहता है जब तक गुड़ उड़ता रहे। रोगी के ठीक हो जाने पर गुड़ उड़ना बन्द हो जावेगा।

अब हम इसकी चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे। राजस्थान एक विशाल प्रदेश है और यहां पर अन्य अनेकों प्रांतों की तरह दो प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां मुख्यतया प्रचलित हैं (१) आयुर्वेदिक जो ६० प्रतिशत जनता की चिकित्सा करती है तथा (२) एलोपैथी जो शेष जनता की अधिकांश संख्या

:: पृष्ठ ३४ का शेषांश ::

धनुषाकार हो जाती है। पृष्ठवंश कटि प्रदेश में उभर जाते हैं। मांसपेशियों के संविशैथिल्य के कारण ऐसा ज्ञात होता है मानो बालक को पक्षाघात होने के कारण चलने फिरने की सामर्थ्य का नाश हुआ हो।

श्वासिक संस्थान विकृति—

कृशता क्षीणता के कारण बालक सदैव रेंरें करता है। बालक में प्रसेकजनित स्वरयंत्रीय आक्षेप, श्लैष्मिक कला शोथ तथा वायु प्रवेश मार्ग में किसी अवरोध की प्रतीति होती है। वह संतप्त रहता है गला बैठा हुआ सा ज्ञात होता है। कुछ कालोपरांत श्वासकृच्छ्रता का भास होकर डब्बे की शिकायत मिलती है। कभी कभी कण्ठशालूक की स्थिति भी देखने को मिलती है। श्वासकृच्छ्रता वृद्धि में ज्वर विशेष मिलता है। कभी कभी स्वरयंत्रीय शोथ होकर रोहिणी की उपलब्धि होकर बालक का जीवन समाप्त हो जाता है। अतिसार, श्वसनक आदि के साथ इसमें शिशु को धनुष्टम्भ सम आक्षेप आदि आकर मृत्यु होते भी देखी गई है। अधिकांशतः गंभीर रक्तक्षय द्विजलीयता में यह स्थिति मारक ही होती है किंतु तीव्र ज्वर के कारण आक्षेप हो तो शीघ्र उपचारोपरान्त रोग पर विजय संभाव्य है।

—श्री वैद्य शेषराव जैन आयुर्वेद रत्न
सरकारी आयु० दवाखाना, सोनी (भंडारा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिकित्सा करती है तथा शत प्रतिशत राज्य द्वारा पोषित तथा समर्थित है। इन दोनों चिकित्सा पद्धतियों के अलावा भी अन्य चिकित्सा पद्धतियां यहां चालू है जो अत्यन्त ही अपर्याप्त हैं वे हैं– यूनानी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, क्रोमोपैथी आदि। इन सबका प्रचलन राजस्थान में नगण्य तथा अत्यल्प है। क्योंकि आयुर्वेदीय चिकित्सा ही हमारा इष्ट विषय है इसलिए हम इस पर ही इस लेख में विचार करेंगे।

राजस्थान में इस रोग की चिकित्सा चार प्रकार से की जाती है—(१) आयुर्वेदीय औषधि चिकित्सा, (२) झाड़फूंक चिकित्सा, (३) टोटका चिकित्सा तथा उतारा चिकित्सा, (४) दुग्ध (डम्भ) चिकित्सा। ये चिकित्सायें राजस्थान के उन गांवों में प्रचलित है– जहां आसपास भी डाक्टर नहीं मिलते, पढ़े लिखे वैद्य भी उपलब्ध नहीं होते तथा जो वर्षों से इन्हीं सहायताओं से जिन्दा हैं उनका इन पर विश्वास वर्षों पूर्व से (शताब्दियों से) जमा हुआ है।

अत्यन्त ही प्रारम्भ से इस रोग से ग्रसित बालक को लेकर मातायें झाड फूंक करने वालों के पास जाती है तथा वह लोहे के शस्त्र से या मयूर पंख की छड़ी को हाथ में लेकर हवा में हिलाता हुआ कुछ मंत्रोचारण के साथ यह कार्य करता है। इस कार्य के लिये विशेष निर्दिष्ट मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। तथा अनेक बार इससे बालकों को लाभ भी होता है। यह कार्य दिन में १-२ या तीन बार किया जाता है। चाहे इसे विश्वास कहें या मानसिक चिकित्सा, यह राजस्थान की एक बहुप्रचलित चिकित्सा है जो देवी देवता, भोमिया, भोपाओं के नाम पर भी चलता रहता है। आज की परिभाषा में इनको फैलने का कारण शिक्षा की कमी तथा धर्मभीरुता, मन्त्रशास्त्र तथा झाड़ फूंक के प्रति फैली मानसिक दुर्बलता, देवी देवताओं के प्रति अंध भक्ति तथा उनकी अप्रतिष्ठा द्वारा होने वाले क्रोध के लिए भय ही कहे जाते हैं। कुछ भी हो उनका अटूट विश्वास है आज इन बातों में। प्रातः ७ से ८ बजे तक मध्यदिन १२ बजे तथा सायं ६ से ७ बजे तक यह झाड फूंक की जाया करती है।

दूसरी पद्धति है टोटका तथा उतारों के द्वारा इस रोग की चिकित्सा। यह भी उपरोक्त विश्वासों का ही प्रतिफल कहा जा सकता है। किसी प्रकार का दान पुन्य न्यौछावर इसका मूल आधार प्रतीत होता है। चौराहे पर कुमकुम, अक्षत, दीपक किसी प्रकार के पकवान आदि मिट्टी के बर्तन आदि में डालकर रख ये उतारे किये जाते हैं। पानी एक बर्तन में लेकर बच्चे पर सातवार घुमाकर ऊपर परनाल में डाला जाता है और फिर इस प्रकार नीचे गिरे पानी को बच्चे की आंखें पर ललाट पर लगाया जाता है। इसी प्रकार अनेकों टोटके सम्पन्न किये जाते हैं। कुछ टोटके ऐसे हैं जो औषधियों से भी सम्बन्धित हैं तथा जिनका आधार भी वैज्ञानिक कहा जा सकता है। जैसे–

१-(i) सहदेवी-इसबूटी को शनिबार को सायं न्योत कर लाल डोरे से बांध दी जाती है तथा रविवार को सूर्योदय से पूर्व जड़ को निकाल कर ले आवे व उसी लाल डोरे से बांध कर बालक के गले में लटका दें।❀

२-लहसुन (रसोन) की फुली को डोरे से बींध कर गले में लटकावें। इससे भी विश्वास किया जाता है कि सूखा रोग नहीं होता।

३-सेर के नाखून चांदी में मढकर गले में लटका देते हैं तथा ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके बाद यह रोग नहीं होता।

४-रीछ के बाल भी चांदी की चौकी (मादलिए) में डालकर गले में लटका दिया जाता है।

❀ कुछ वर्षों पूर्व पाश्चात्य वैज्ञानिक विज्ञान की दुहाई देकर इन वस्तुओं का बहिष्कार किया करते थे तथा परिहास करते थे। परन्तु कालान्तर में प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र बसु ने 'वृक्षों में प्राण' का अनुसंधान कर इस भारतीय कल्पना की पुष्टी की है। प्रथम दिन मनुष्य जाकर उस बनस्पति को यह कहे कि विश्व कल्याण के निमित्त मैं तुम्हें यहां से उखाड़ कर ले जाऊंगा। इस प्रकार का निमंत्रण वृक्षों की प्राण शक्ति को इंगित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—अतिबला की २-३ पत्तियां लेकर बंगला पान में रख कर चबावें। फिर इसके स्वरस मिश्रित थूक को बालक के पृष्ठ वंश की कशेरुकास्थि पर खूब मालिश करें। फिर कपड़े से उस स्थान को साफ कर देखें। श्वेत कोड़े छोटे छोटे बाहर निकलते हुए मालूम होंगे। उन्हें शीघ्रता से चिमटी के द्वारा दूर हटालें यह क्रिया मंगलवार को की जाती है।

६—उपरोक्त प्रकार से ही अपामार्ग की पत्तियां भी बालक के पृष्ठवंश पर (कशेरुकास्थि) पर मर्दन करें। उसके शुष्क होने पर भैंस के गोबर (गीले) की मालिश करें। उसी प्रकार के श्वेत कीट निकलेंगे उन्हें हटा लेने चाहिए। यह प्रयोग भी मंगल या इतवार को किया जाता है।

७—मकोय के पत्तों का उपयोग भी उपरोक्त प्रकार से ही किया जाता है।

८—अरणी (अग्निमंथ) के पत्तों का स्वरस रोगी की तालु पर निचोड़ कर मालिश करें (धीरे धीरे हाथ फिरावें) यह प्रयोग सात दिन ही करें। माता को भोजन में चने तथा चावल मात्र दें।

उपरोक्त टोटके औषधियों के प्रत्यक्ष चमत्कार बताते हैं। कह नहीं सकते कि इनमें बार आदि के बधन क्यों रखे गये हैं।

ग्रामीण जनता राजस्थान में अधिक है तथा वह अपनी चिकित्सा के लिये बार बार डाक्टरों की हाजरी नहीं बजा सकती। वे स्वयं चिकित्सा करने के आदी है। विशेष परिस्थिति में यदि रोगी ठीक होता प्रतीत नहीं होता हो तो वे निकटतम वैद्य की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न कर लेते हैं। अक्सर यहां के ग्रामीण नागरिक तथा चिकित्सक जिन औषधियों का प्रयोग करते हैं उनका संकलन यहां किया गया है—

९—ऊंट की हड्डी को माता के दूध में घिस कर रोगी बच्चे को पिलाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इसमें जहर मोहरा खताई भस्म या पिष्टी मिला कर देते हैं। लाभ होता है। इसकी मात्रा २ रत्ती की है।

१०—अजास्थि को खूब बारीक पीसकर सुरक्षित रख देते हैं। यह चूर्ण २ रत्ती तथा प्रवाल भस्म (अर्क दुग्ध भावित) २ रत्ती मिश्रित कर मां के दूध या शहद में देते हैं।

११—कच्छप पृष्ठास्थि को अर्क गुलाब में पीस कर समान भाग गोंद बबूल मिश्रित कर ४ रत्ती की मात्रा शहद में या मातृ दुग्ध में देते हैं।

१२—मूर्वा के पत्ते बकरी के दुग्ध में सेवन कराने से लाभ होता है।

१३—विदारीकन्द २ रत्ती शहद में बालक को चटा दिया जाता है।

१४—अश्वगंधा २ रत्ती शहद में चटाने से सूखा रोग मिटता है।

१५—शंखकीट २ रत्ती माता के दूध में मिलाकर पिलाने का यहां रिवाज सा है।

१६—वीर बहूटी २ माशा, केशर ३ माशा, कस्तूरी १ रत्ती, अफीम १ रत्ती मिश्रण कर गुलाब जल में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनालें। अतिसार सहित या तद्जन्य शोथ में लाभ करती है। मात्रा २ से ४ वटी।

(वीर बहूटी को राजस्थान में सावण की डोकरी कहा करते हैं। यह लाल रंग का रेशमीन गद्देदार सुन्दर जानवर होता है)।

१७—काली गाय का मूत्र ३२ तोले, केशर १ तोला शामिलकर पीस लें। फिर १ कांच की बोतल (शीशे) में डालकर गेहूं की राशि में दबा दें। ८ दिन बाद प्रयोग में लावें। मात्रा १० से २० बूंद।

१८—दरियाई नारियल ६ माशा, डीकामाली ६ माशा, जहरमोहरा खताई भस्म ३ माशा, स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ माशे गुलाबजल में घोटकर उड़द (माष) प्रमाण वटी बनालें। मात्रा १ वटी दिन में २ या ३ बार आवश्यकतानुसार दूध में देते हैं।

१९—हरड़े बच, कूट समान भाग लेकर पानी में पीस लें। इसे शहद में मिलाकर माता के स्तनों पर हल्का सा लेप करें। बाद में बच्चे को स्तन पिलावें। सूखा रोग समाप्त होता है। यदि बालक अन्न खाता हो तो यह औषधि शहद में चटा दें। लाभ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०—नौसादर ६ माशे, कुत्ते की हड्डी १।। तोला, छोटी इलायची के दाने १।। तोले तीनों को अत्यन्त बारीक कर चूर्ण बनालें। मात्रा ४ रत्ती शहद में चटाने से ३ सप्ताह में यह रोग मिटता है।

उपरोक्त सभी योग पूर्णतया अनुभूत तथा निरापद हैं। इनका प्रयोग संभवतः सहस्त्रों वर्षों से जनता में होता चला आ रहा है।

इसके सिवाय हमने कुछ विशेष शास्त्रोक्त तथा आयुर्वेदीय विद्वानों द्वारा प्रशस्त प्रयोगों का व्यवहार कर सफलता प्राप्त की है उनका उल्लेख यहां करना आवश्यक है।

(i) च्यवनप्राश (शार्ङ्गधरोक्त)

(ii) मुक्तादिवटी (बाल रोगों पर—आचार्य यादव जी कृत)।

(iii) कुमार कल्याण रस (शास्त्रोक्त)

(iv) अरबिन्दासव।

(v) स्वर्ण वसंत योग (मान्यवर गोखले महोदय)।

सुवर्ण आधी रत्ती, अभ्रक २ रत्ती, अजास्थि भस्म ८ रत्ती, माक्षिक ४ रत्ती, बंग भस्म ४ रत्ती, प्रवाल भस्म ४ रत्ती, श्रृंग भस्म ८ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती, गडूची सत्व १६ रत्ती बंशलोचन ८ रत्ती, सूभूकूष्माण्डम् ३६ रत्ती।

भावना—नवनीत डालकर मर्दन करें। फिर नीबू का रस डालते रहें। चिकनापन मिटने पर वासा-रस, एला क्वाथ, त्वक् क्वाथ, पिप्पली क्वाथ क्रमशः डालकर मर्दन करते रहें। सूखने पर प्रयोग में लावें। मात्रा २ रत्ती शहद में।

यह अत्यन्त प्रभावशाली औषध है। हमने इसका प्रयोग कर यश पाया है।

२१—पंचामृत मिश्रण—

पंचामृत पर्पटी १ रत्ती, प्रवालपंचामृत १ रत्ती, संजीवनी वटी १ रत्ती, स्वर्ण पर्पटी ¼ रत्ती।

मात्रा ३ रत्ती तक बलाबल अनुसार। अनुपान शहद में।

इस रोग के निवारण के लिए औषधि सेवन के साथ ही साथ अभ्यंग (मालिश) का प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः निम्नलिखित तैलों में से किसी तैल का देश, काल, दोष कल्पना, बलाबल देख कर प्रयोग करें।

(i) जैतून का तैल।

(ii) महा मरिच्यादि तैल।

(iii) महानारायण तैल।

(iv) लाक्षादि या चंदन बला लाक्षादि तैल।

इसके सिवाय इस रोग के निवारण के लिये राजस्थान में दम्भ क्रिया का भी प्रयोग करते हैं। दम्भ क्रिया में विशेष गति रखने वाले चिकित्सक आवश्यकतानुसार एक लोहे की शलाका गर्म कर रोगी की देह के विशेष अंगों पर डम्भ लगा देते हैं।

ये पेट पर तीन तथा तालू के पास एक इस प्रकार आवश्यकतानुसार काक पाद, रेखा रूप, बिन्दु वृत्त, अर्ध वृत्त आदि की शकल में लगाये जाते हैं। इस क्रिया से जहां तक अनुमान किया जाता है शरीर की सहन शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार स्थानीय शक्ति के बढ़ने से रक्त परिभ्रमण के द्वारा सम्पूर्ण देह की जीवनीय शक्ति पर इसका असर पड़ता है। यह चिकित्सा भी इस रोग की एक सफल चिकित्सा है जो वैद्यों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है।

पथ्यापथ्य—इसके सिवाय इस रोग में पथ्यापथ्य व्यवस्था भी अपना एक विशेष महत्व रखती है। सर्व प्रथम दुग्ध के सिवाय कुछ भी सेवन न करें। नित्य मालिश तथा स्नान करें। रोगी की सफाई तथा निवास की सफाई की ओर अधिक ध्यान दें। श्वेत तथा उज्वल वस्त्रों को धारण करें। बच्चे को स्वच्छ हवा में रखें, धूप आदि का नियमित सेवन करावें। गांवों में ये सभी व्यवस्थायें सुकर तथा सुलभ हैं।

व्यवस्था—यह रोग एक संक्रमक रोग है अतः अन्य बालकों को इस रोगी बालक से दूर रक्खें। रोगी के मल मूत्रादि को एकदम साफ करदें, पड़ा न रहने दें।

—श्री. पं. अम्बालाल जी जोशी आयुर्वेदाचार्य,
मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालशोष चिकित्सा पद्धति

(१)

कविराज श्री महेन्द्रनाथ जी पाण्डेय आयुर्वेद बृहस्पति

प्रसिद्ध लेखक एवं बालरोग विशेषज्ञ आदरणीय श्री वैद्य जी ने सूखारोग की प्रारम्भिक चिकित्सा पर सरल प्रकाश डाला है। भाषा सामान्य है पर बात सभीसम्मिलित करदी हैं। लेख उपयोगी है।

शेष दोनों विद्वानों ने भी उपचार पर अपने अनुभव से उपयोगी वर्णन किया है। आयुर्वेद के साथ अन्य विधियां भी दी हैं। —ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

सूखा रोग इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि सदोष भोजन जिसमें खनिज लवण और विटामिन का अभाव होता है तथा अपूर्ण भोजन जिनमें हड्डियों, मांसपेशियों और शिशुओं को बनाने वाले पदार्थों की कमी या अभाव रहता है किस प्रकार स्वास्थ्य की नींव को खोद देते हैं। और सारे शरीर के ढांचे को बिगाड़ देते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि पूर्ण स्वास्थ्यप्रद भोजन, जिसमें खनिज लवण और विटामिनों की अधिकता हो की व्यवस्था की जाय और सूर्य किरणों की प्रचुर मात्रा शरीर में पहुंचाई जांय, सूर्य स्नान और वायु स्नान कराया जाय तो जड़ से यह रोग दूर किया जा सकता है। बच्चे की संकटजनक परिस्थिति का मुकाबला करने का यही एक अमोघ शस्त्र है। हमारे देश की माताएं छोटे बच्चों को तेल लगाकर जाड़े के दिनों में धूप में सुला देती हैं। प्रतिदिन धूप मिलने से अस्थियां सबल रहती हैं और प्रायः अस्थि संबंधी रोग उन्हें नहीं होता।

बच्चे को पर्याप्त मात्रा में दूध दीजिए। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो माता को ऐसा भोजन मिलना चाहिए जिसमें शरीर की आवश्यकता को पूरा करने वाले सभी तत्व उसमें मौजूद हों। अर्थात्—माता के भोजन में दूध, घी, सब्जी, ताजे मौसमी फल, सन्तरा सेब मुनक्का, बादाम, की प्रचुरता हो। यदि बच्चे को माता का दूध न मिलता हो तो गाय या बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए और बच्चे को सन्तरे का रस, पालक का रस, अनार का रस आदि भी देना चाहिए। मां का दूध पीने वाले बच्चों को भी फलों के रस देने की व्यवस्था करनी चाहिए। अनाज तो एकदम बन्द कर देना अच्छा होता है। ५-६ सन्तरे का रस और बकरी का दूध देकर यह रोग आसानी भगाया जा सकता है।

बच्चे को दिन में कम से कम दो बार धूप स्नान करना चाहिए। जब बच्चा धूप में हो तो उसके सब कपड़े अक्सर उतार देने चाहिए जिससे उसके बदन में हवा और सूर्य की अल्ट्राबायलेट किरणें लग सकें। जब तक रोग बिल्कुल निर्मूल न हो जाय, अस्थियां मजबूत न हो जांय, स्नायु और मांसपेशियां पूर्ण स्वस्थ न हो जांय तब तक अनाज खाने को न दिया जाय। काड लिवर आयल (मछली का तेल) रिकेट रोग की अच्छी औषधि समझी जाती है। परन्तु काड लिवर आयल देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि विटामिन बी और सी वाले फल और शाक तरकारियां बच्चों को अवश्य पहुंचें। यदि विटामिन बी और सी ऊपर से नहीं पहुंचाया जाता तो काड लिवर आयल से लाभ के बदले हानि होने का खतरा अधिक रहता है।

मछली के तेल की मालिश भी की जा सकती है। मालिश से अच्छा लाभ होता है, काडलिवर आयल के बदले यदि बच्चों को मक्खन दिया जाय तो उनका स्वास्थ्य जल्दी सुधरता है। दूध के साथ सन्तरे का रस और दो चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्मच पालक का रस देते रहने से विटामिन बी और सी की कमी शरीर में नहीं रह जाती। दूसरे दूध का सारा कैलशियम पचने लगता है और शरीर की कैलशियम की कमी शीघ्र पूरी हो जाती है। हड्डियां मजबूत बनने लगती हैं। उनकी कमजोरी दूर होने लगती है और पूर्ण भोजन प्राप्त होने से शरीर में रक्त और मांस की अधिक वृद्धि होने लगती है, स्नायुएं और टिश्यूज सबल होने लगते हैं और शरीर का सारा रोग दूर होजाता है।

बच्चे का स्वास्थ्य सुधरने का प्रबंध करना चाहिए। स्वास्थ्य में सुधार होने पर, शरीर के सब तत्व पूरे पहुँचते रहने पर अस्थियों का विकार स्वयं ही धीरे धीरे दूर हो जाता है और रोग नष्ट हो जाता है।

आयुर्वेद के मत से प्रवाल, मोती, मुक्ता शुक्ति और अभ्रक, लोह आदि की भस्में उचित मात्रा में देनी पड़ती हैं। स्वर्ण वसंत मालती रस, गुरुच का सत्व, कुमार कल्याण रस आदि से भी लाभ होता है। अरविन्दासव बच्चों के लिए अच्छी घुटी का काम करता है। महालाक्षादि तैल और नारायण तैल आदि की मालिश करने से भी लाभ होता है। अच्छा यह होता है कि महालाक्षादि तैल की मालिश की जाय, तथा दूध, सन्तरा, मक्खन आदि विशेष रूप से दिये जांय और बसंत मालती रस, गुरुच सत्व और प्रवाल मिला कर उचित मात्रा में में दिया जाय। धूप आदि उचित रूप में मिलने की व्यवस्था की जाय।

यदि बच्चे को सूखा रोग हो गया हो तो उसकी चिकित्सा निम्नलिखित तरीके से करनी चाहिए—

छोटे बच्चे अक्सर सूखने लगते हैं और उनका वजन कम होने लगता है। यदि बच्चे का वजन घटने लगे तो किसी चतुर चिकित्सक को दिखा कर रोग का निदान करना अच्छा होता है। जिससे ठीक ठीक रोग का निर्णय हो सके। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो उसे वह मिलते रहना चाहिए। यदि बच्चा ऊपरी दूध पर रहता हो तो उसे उचित नियमानुसार दूध देना चाहिए। बच्चे को टमाटर का रस या सन्तरे का रस पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। बच्चे का आहार धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए और बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि बकरी का दूध न मिले तो गाय का दूध उचित पानी मिला कर या मक्खन निकाल कर देना चाहिए। क्षीण होते हुए बच्चों की पाचन शक्ति मक्खन देने से या वसा देने से और क्षीण होती है। इसलिये इस रोग में काड लिवर आयल लाभ के बदले हानि पहुंचाता है। बच्चे को सर्दी से बचाना चाहिए और उसे काफी मात्रा में धूप मिलने की व्यवस्था करनी चाहिए। बच्चे की उचित मालिश की व्यवस्था कीजिए और आयुर्वेदिक विधि से तैयार किये लाक्षादि तैल की मालिश कराइए। इस रोग में औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी सावधानीपूर्वक भोजन सुधार की। यदि दस्त अधिक आते हों तो दस्त बन्द करने व्यवस्था करनी चाहिए। भृङ्गराज को पीस कर निकाला रस एक एक चम्मच की मात्रा में दिन में २-३ बार देने से दस्त बन्द हो जाते हैं। हाजमा दुरुस्त हो जाता है और बच्चे स्वस्थ होने लगते हैं।

कैलशियम पहुँचाने से इसमें लाभ होता है। हाइपोफासफेट आफ लाइम का शरबत लाभ करता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि एक्सट्रैक्ट आफ माल्ट एक चम्मच की मात्रा में दो तीन बार देने से लाभ होता है। यदि क्षय के कारण यह रोग होता है तो जहर मोहरा खताई की भस्म आधी रत्ती की मात्रा में खिलाने से एवं यही भस्म तैल में मिला कर मालिश करने से लाभ होता है। ताल में होने वाले घोंघे का मांसरस खिलाने से भी लाभ होता है।

—श्री. महेन्द्रनाथ जी पाण्डेय आयु० बृहस्पति,
महेन्द्र रसायनशाला, मम्फोर्डगंज, प्रयाग २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

श्री० वैद्य ओमप्रकाश जी शर्मा B. I. M. S.

बाल शोष की उपचार पद्धित इस प्रकार है–

१—सबसे प्रथम बच्चे का पचन संस्थान ठीक करना चाहिए जिससे वह औषधि एवं आहार को जीर्ण कर सके। शिशु आहार मातृ दुग्ध से लेता है अतएव बच्चे के साथ साथ उसकी माता का आहार विहार भी ठीक होना चाहिए। चिकित्सा के साथ जाता की चिकित्सा पर ध्यान देना आवश्यक है।

२—माता को 'स्तन पान' काल में ब्रह्मचर्य रखना चाहिए आहार विहार सात्म्य कर सुन्दर स्वास्थ्य का रक्षण करना चाहिए। मिर्च,खटाई आदि छोड़कर दुग्ध शुद्ध करे, दूषित दुग्ध के विषय में अपने निकटतम चिकित्सक से परामर्श करें। दुग्ध के दोष और उसकी चिकित्सा एक वृहद विषय है लेख की विस्तृती के कारण यहां संक्षेप में लिखूंगा।

दुग्ध परीक्षा–

सफेद चौड़े मुंह की स्वच्छ शीशी या जार अथवा ग्लास लेकर जल भरदें। जल स्थिर होने पर ग्लास के सहारे किनारे से धीरे धीरे मां के एक स्तन का दूध डालें (स्मरण रहे दूध बीच में जोर से न डालें अन्यथा जोर से दूध बैठ जायेगा परीक्षण ठीक नहीं होगा) यदि दूध बिना घुले नीचे बैठ जाये और नीलाभ बन जाये तो दुग्ध अत्यन्त दूषित समझें, कम घुले तो कम दूषित, सब घुल जाए (नीर क्षीर) तो ठीक समझें, इसी प्रकार दूसरे स्तन की परीक्षा करें। अघुलनशील दूध को श्लेष्मिक दूध कहते हैं—

धात्री श्लेष्मिक दुग्धातु फक्क दुग्धेतिसंज्ञिता।
तत्क्षीरयो बहुव्याधिः कार्श्यमान फक्कत्वमाप्नुयात्॥

सूखा रोग की चिकित्सा में अनिवार्य है शिशु पोषण के लिए माता का दूध। नीचे का योग दूषित दुग्ध को शुद्ध बनाता है—

पाठा महौषधि सुरदारू मुस्त मूर्वा गुडूची वत्सल फल किराततिक्त रोहिणी सारिवा कषायाणाम् च पानं शस्यते।
—च० शा० अ० ८-८७

२२—पाढ़ल, सौंठ, देवदारू, नागरमोथा, मूर्वा (अभावे मरोड़फली), गिलोय, इन्द्र जौ, चिरायता, कुटकी, तगर, अनन्तमूल, सब समभाग लेकर (यव) जौकुट चूर्ण कर रखलें। इसमें से २ तोला चूर्ण का क्वाथ प्रातः तथा २ तोला सायं लेने से सर्व प्रकार का दूध शुद्ध होजाता है। और इस युक्ति से बालक निरोग एवं पुष्ट हो जाता है।

२ अनुभूत चिकित्सा–

सूखा (फक्करोग और पारगर्भिक) रोग में निम्न औषधि चिकित्सा के साथ-साथ निम्न प्रयोग भी करें। इन प्रयोगों से शीघ्र लाभ मिलेगा अनुभूत है।

२३—एक छोटा सा गढ्ढा कर उसमें बड़ का पत्ता बिछा कर एक मुर्गी के अण्डे की जर्दी डाल दें। उस पर सूखा रोग के रोगी को नंगा गुदा द्वार से बिठादें, जर्दी गुदा से चढ़ जाएगी। जब तक जर्दी चढ़े तब तक बराबर बिठाते रहें। १ सप्ताह बाद १-१ दिन छोड़कर, १ मास बाद २ दिन छोड़कर फिर जर्दी जब तक चढ़े तब तक प्रति सप्ताह १ दिन चढ़ायें।

२४ कुकरौंधा पीसकर रोगी के ब्रह्मरंध्र पर रखें।

औषधि चिकित्सा–

प्रत्येक प्रकार सूखा रोग पर उपरोक्त प्रयोग तथा माता को कषाय पिलाने के साथ निम्न औषधि चिकित्सा प्रत्येक सूखा रोग में प्राणदान करती है। रोग कितना ही बढ़ गया हो रोगी बल तथा रोग बल का ध्यान कर निम्न चिकित्सा से अवश्य होगा ऐसा मेरा अनुभव और विश्वास है।

२५—वातार्क रस १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, शृंग भस्म १ रत्ती, गोदन्ती भस्म १ रत्ती, मुक्ता शुक्ति १ रत्ती, मण्डूर भस्म ४ रत्ती, महा गंधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग ४ रत्ती (यदि मिलाया जा सके तो कुमार-कल्याण रस १ रत्ती) कुल की ४ मात्रा प्रतिदिन २ मात्रा (अवस्थानुसार कम अधिक)।

२६-अरविन्दासव क्षीर पायी शिशु को ५-५ बूंद एवं क्षीरान्नपायी को १५-१५ दिन में ३ बार।

२७-Adexolin Glaxo (एडक्सोलीन) ग्लेक्सो ५ बूंद, Ostelin (ओस्टोलीन) ग्लेक्सो ५ बूंद, Bocadex Drops २ बूंद (मल्टी विटामीन ड्राप), लाइम वाटर १० बूंद माता को पिलाते समय दिन में २ बार अपने दूध में मिलाकर पिलादें फिर दूध पिलायें।

२८-Calci Ostlilin with vitamin B १२ (कैलसिआई ओस्टोलीन विद विटामिन बी. १२) का १ c. c. इन्जेक्शन सप्ताह में २ बार मांस में चूतड़ पर लगायें।

२९-प्रातः सूर्य की रश्मियों में सूर्य स्नान के साथ काडलिवर आयल या गुडुच्यादि तैल या लाक्षादि तैल की हलके हाथ से मालिश करें। मेरे अनुभव से सूखाहारी लाल तैल इलाहाबाद का श्रेष्ठ तैल है।

—श्री ओमप्रकाश शर्मा बी. आई. एम. एस.
चिकित्साधिकारी नौगवां (अलीगढ़)

(३)

श्री शेषराव जी जैन

बालशोष में बृंहण चिकित्सा प्रशस्त मानी गई है। स्वच्छ वायुयुक्त स्वास्थ्यकर निवास स्थान होना चाहिए। बालक की स्वच्छता का पूर्णतया ध्यान रखना आवश्यक है। प्रतिदिन बालक को मत्स्य यकृत तैल, लाक्षादि तैल, चंदनबला लाक्षादि तैल आदि से मर्दन कर सिर पर कपड़ा बांध लगभग १ से २ घण्टे सूर्य स्नान कराना चाहिए। सूर्योदय की प्रथम किरणें बालक के शरीर पर अमृतोपम कार्य करेंगी। नीचे एक लेप मैंने अपने बच्चे के लिए निर्माण कर प्रयोग किया, अनुभूत है—

३०—तैल-केकड़े १ छटांक, केंचुए (भूनाग) १ छटांक, असगन्ध १ छटांक, अमृता १ छटांक, सेमल मूल १ छटांक। इन पांच द्रव्यों को अजा वा गोदुग्ध में पीसकर कल्क बना लें। इसमें से आधे कल्क का चतुर्गुण काथ बनाकर छान लें।

अब आधा सेर शुद्ध तिली तैल में उपरोक्त कल्क एवं क्वाथ डालकर तैल सिद्ध कर लें। इस तैल की प्रातःकाल मालिश कर १ घण्टे तक शिशु को सिर पर वस्त्र बांधकर सूर्य की धूप में रखें। इसकी मालिश से मन्द मन्द ज्वर समाप्त होकर रक्त संचालन क्रिया बढ़ती है। शरीर में बल, मांस की वृद्धि होती है। यदि उपरोक्त बतलाये तैलों में कोई भी प्राप्त न हो तो नीचे लिखा उबटन भी शतशोनुभूत लाभप्रद है।

३१—सेमल मूल का चूर्ण और काले तिल समान भाग भैंस के दूध में सुचिक्कन पीसकर इससे बालक को भलीभांति मर्दन कर धूप में १ घण्टा रख स्नान करावें।

स्नान के पानी में नीचे लिखी वस्तुयें डालकर अर्धावशेष क्वाथ करें। इस जल को माता एवं शिशु दोनों को स्नान कराने से ग्रह बाधा, गर्भज फक्क, मातृ स्तन्यज दोष निर्मूल होते हैं।

स्नान जल द्रव्य—

उतरन बेल १ छटांक, अमरबेल १ छटांक, अपामार्ग मूल १ छटांक, अर्कमूल १ छटांक, निम्ब पत्र १ छटांक, लगभग २५ सेर जल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औटावें। आधा शेष रहने पर उतार समशीतोष्ण होने पर स्नान करावें।

बाल शोषांतक वटी नं० १ -

३२—प्रवाल भस्म ६ माशे, मुक्ता भस्म ३ माशे, शङ्ख भस्म ६ माशे, कुक्कुटांडत्वकभस्म ६ माशे, कच्छप पृष्ठ भस्म (अभाव में मृगश्रृंगभस्म) ६ माशे, कांतलोह भस्म ३ माशे, मधुमंडूर भस्म ६ माशे, कपर्दभस्म ३ माशे, असगन्ध चूर्ण १ तोला, शतावरी चूर्ण १ तोला, त्रिकुटा चूर्ण ३ तोले।

इन सब औषधियां को खरल में पीसकर असगन्ध क्वाथ, शतावरी क्वाथ, मकोय स्वरस की ३-३ भावना देकर किंचित् प्रमाण में शहद डालकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें। बालक की अवस्थानुसार दिन भर में ३ से ५ मात्रा शहद से, ऊपर से चूने का पानी पिलावें। यह पानी Lime water नाम से बाजार में मिलता है और नीचे लिखे अनुसार तात्कालिक कार्यों में निर्माण भी कर सकते हैं। अन्तर इतना ही है कि इसे अधिक दिन नहीं रखा जा सकता। अधिक दिन रखने वालों को द्विवाष्पित जल बनाकर पश्चात् उस जल में यह जल बनाना चाहिए।

सुधा जल निर्माण विधि–१० सेर पानी किसी मिट्टी के पात्र में औटाते हुए २॥ सेर रहने पर उतार लें। उस जल में १ पाव चूना डालकर कपड़े से मुंह बांधकर २४ घण्टे पड़ा रहने दें। पश्चात् किसी कलईदार पात्र में स्वच्छ चौड़े वस्त्र द्वारा इस चूने के ऊपर का स्वच्छ ऊपरी पानी छान लें गदला न उठने पावें। अब इस पानी को हरी अथवा नीली बोतल में सुरक्षित रखें। इस जल को किसी मिश्रण के साथ अथवा अकेला ही देने से यकृत विकार पाचन विकृति, सुधाल्पता जन्य अस्थिमृदुता दूर होकर अस्थियां दृढ़ होती हैं। शरीर में प्रतिबन्धक क्षमता बढ़ती है और कैल्शियम की कमी से होने वाले समस्त रोगों का निराकरण होता है। अस्थियां पुष्ट होती हैं और जीवतिक्ति 'अ' के सात्म्यीकरण का सर्वश्रेष्ठ साधन यह सुधा जल ही है। नीचे कुछ और भी शतशोनुभत आयुर्वेदीय प्रयोग दिये जा रहे हैं।

३३—वृहत सुवर्ण वसंत मालती २ रत्ती, मुक्ता प्रवाल पंचामृत २ रत्ती, कणा चूर्ण ४ रत्ती, वंशलोचन ४ रत्ती।

४ मात्रा प्रति ४-४ घण्टे पर शहद से दें।

३४—अरविन्दासव ½ तोले, सुधाजल (Lime water) ½ तोले, भोजन के पश्चात् दिन में तीन बार दें।

३५—मधु मंडूर भस्म २ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, कणा चूर्ण ४ रत्ती, अकीक भस्म २ रत्ती, असगंध भस्म ४ रत्ती, कसीस भस्म २ रत्ती, वंशलोचन ४ रत्ती। ४ मात्रा-प्रति ४-४ घण्टे पर मधु से देकर ऊपर से २-२ चम्मच सुधाजल पिलावें।

३६—गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, जहरमोहरा खताई पिष्टी ४ रत्ती, मुक्ता प्रवाल पंचामृत ४ रत्ती, श्रृंगभस्म ४ रत्ती, कर्कट श्रृंङ्गी ४ रत्ती, कणा चूर्ण ४ रत्ती। ५ मात्रा प्रति ३-३ घण्टे पर शहद से देकर ऊपर से अरविन्दासव सुधाजल का मिश्रण पिलावें।

३७-अण्डे का पीतांश, सुधाजल और अजा दुग्ध में घोटकर थोड़ा ग्लूकोज मिलाकर उपरोक्त कोई भी योग देने के आधा घण्टे पश्चात् देना सर्वश्रेष्ठ है।

३८-एक कम्बल के टुकड़े को चार तह कर बिछाकर उस पर एक अण्डा फोड़ कर डाल दें। पश्चात् बालक को इस अण्डे पर इस तरह बिठादें कि गुदाद्वार ठीक जरदी पर बैठे। आप आश्चर्य से देखेंगे समस्त जरदी- गुद मार्ग द्वारा अन्दर चली जायगी। प्रतिदिन यही क्रिया कीजिए। जब तक रोग रहेगा तब तक गुदा की आकर्षण शक्ति भी तीव्र रहेगी। जैसे जैसे रोग कम होगा वैसे वैसे थोड़ा थोड़ा द्रव्य शेष रहता जावेगा। यह क्रिया कम से कम १४ से २१ दिन तक करनी चाहिए। यदि पूर्ण लाभ न हो तो एक सप्ताह की विश्रान्ति लेकर पुनः क्रिया आरम्भ करनी चाहिए। यह सर्वमान्य है कि अण्डे में फास्फोरस, लोहांश, और जीवतिक्ति ए परिपूर्ण मात्रा में रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे बालक को सम्पूर्ण पोषणांश एक साथ मिल जाते हैं। मैंने स्वयं अपने बच्चे के लिये गुदद्वार से अण्डे का प्रयोग कराया है।

३९-कुमार कल्याण रस २ रत्ती, पंचामृत पर्पटी १ रत्ती, अमृता सत्व ४ रत्ती, शङ्ख भस्म ४ रत्ती, लघु मालती वसंत २ रत्ती, चौंसठ प्रहरी पीपल २ रत्ती। ४ मात्रा प्रति ४-४ घण्टे पर शहद से दें। ऊपर से अरविन्दासव सुधाजल मिश्रित पिलावें।

४०-अश्वगंधारिष्ट, बालामृत, अरविन्दासव, सारस्वतारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, सुधा जल प्रत्येक १०-१० तोले, कुमारी आसव ५ तोले, लोहासव ५ तोले।

समस्त औषधियों को मिश्रण कर शीशियों में भर दें। पर मिश्रण १-१, २-२ चम्मच मात्रा में अवस्थानुसार शिशु को २-३ बार दें। प्रत्येक नम्बर की औषधि देने के उपरांत इसे दे सकते हैं। यह बिलकुल निरापद एवं शतशोनुभूत मिश्रण है।

आयुर्वेदीय सूचीवेधनों में मैंने मार्तण्ड के मौक्तिक और प्रवाल का सूचीवेधन किया। इनका सूचीवेधन अलग अलग उतना उत्तम फल दृष्टिगोचर नहीं कराता जितना कि मिश्रित सूचीवेधन। नितम्ब की मांसपेशी में गहरा सूचीवेधन लाभप्रद हुआ है।

आइये अब पाठकों को थोड़ा पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति द्वारा इस रोग की चिकित्सा का भी दिग्दर्शन करा दें।

४१-आंग्ल पद्धति में काड् लिवर आयल, (मत्स्य यकृत तैल) का अत्यधिक गुण वर्णित है। यह तैल काडलिव्हर आयल, शार्क लिव्हर आयल, तथा हैलिबट लिव्हर आयल ३ प्रकार का आता है। प्रथम से द्वितीय और द्वितीय से तृतीय अधिक गुणप्रद, शक्तिशाली एवं दुर्गन्धि आदि दुर्गुणों से रहित है। प्रथम में दुर्गन्धि दोष अधिक है। इस तैल की मालिश भी प्रथम सूर्योदयकाल में कर सूर्य स्नान का आदेश पाश्चात्य वैज्ञानिक भी देते हैं। इस तैल की ५ बूंद से लेकर १ चम्मच तक मात्रा है। इसे अजा और गौदुग्ध एवं सुधाजल, संतरा स्वरस आदि के साथ देना चाहिए। हैलिबट लिव्हर आयल के कैपसूल्स, पैपसूल्स, कैचेट्स भी बाजार में मिलते हैं। उन्हें भी अवस्थानुसार इसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।

४२—आंग्ल पद्धति में इस रोग के लिए विटामिन ए+डी, कैल्शियम की न्यूनता से उत्पन्न हुआ रोग मान इन्हीं की पूर्ति हेतु चिकित्सा करते हैं।

४३-सीरप फेरी आयोडाइड (Syrup Ferri iodide) २५ बूंद, सीरप कैल्शियम हाइपोफास्फेट (Syrup Calcium hypophosphate) १५ बूंद, जल १ ड्राम। ३ मात्रा भोजनोपरांत।

४४--यही कार्य कैल्सीफेरोल (Calciferrol) अथवा लिकर कैल्सीफेरोल (Liquor Calciferrol) १० से २० बूंद तक संतरा स्वरस, अजा अथवा गौदुग्ध या सुधाजल अथवा सादे जल से देने से भी होता है।

४५--डेल्टोव्हीन (लिली), एडव्हिटाल, एडक्सोलीन (ग्लेक्सो) एव्हीडोल्सी (पार्क-डेविस) अल्वाइट (एलवर्ट डे) यूनीवाइट (यूनिकेम) एडीप्लेक्स फोर्ट (अ. डे.) डेकाब आदि किसी भी कंपनी के ड्राप्स का प्रयोग ५ बूंद से १५-२० बूंद तक अवस्थानुसार दूध, जल, सुधाजल अथवा फल स्वरस के साथ कर सकते हैं।

४६- पैराथायराइड एण्ड कैल्शियम टेबलेट या एवोमिन टेबलेट १-१ गोली ३ मात्रा जल या दूध से दें।

४७--डीकाडोक्सलीन अथवा कोलायडल कैल्शियम विद विटामिन डी अथवा ओस्टोकैल्शियम फोर्ट, बेरिन, मेक्राबिन आदि सूचीवेधनों का प्रयोग मांसगत चौथे दिन पश्चात सप्ताह में एक बार इस प्रकार करना चाहिए। आहार-विहार, स्वच्छता, शुद्ध वायु, शुद्ध निवास का ध्यान रखना चाहिए।

—श्री. शेषराव जैन वैद्यराज,
आयुर्वेद दवाखाना, सोनी (भण्डारा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विहंगम दृष्टि—

बालशोष में प्रयुक्त औषधियां व द्रव्य

श्री ज्ञानेन्द्र पांडेय जी वैद्य, बाल-शोष अङ्क के सम्पादक

हमारे विज्ञ लेखकों ने अपने लेखों में अनेक औषधियों को बताया है। अपने अनुभूतसिद्ध योगों का पूरा परिचय देते हुए, शास्त्रीय योगों के कुछ नामादि प्रस्तुत किये हैं। हम इन्हीं आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्राप्या-स्थानाभाववश कुछ औषधियों पर सनिर्माण विधि प्रभाव प्रस्तुत करते हैं। —श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

बाल शोष रोग में स्पष्टतः शास्त्रों में जितनी कम औषधियां प्राप्त होती हैं उतनी सरलता से इस विशेषांक में अनुभवी आयुर्वेदज्ञों द्वारा इस पक्ष को विस्तृत कर दिया है। सूखारोग में वैद्य अपने योगों का व्यवहार अधिक विश्वासपरक मानते हैं फिर भी शास्त्रीय औषधियां सन्देह से रहित हैं। उनके प्रयोग से भी शतप्रतिशत सफलता मिलती है। सखा रोगांक में विभिन्न स्थलों पर अनेक औषधियों का वर्णन आया है, अधिकांशतः सभी के अपने अपने गुप्त सिद्ध योग हैं। उनसे लाभ उठाने के साथ शास्त्रीय औषधियों के विषय में भी पूरी जानकारी आवश्यक है। कुछ इन शास्त्रोक्त औषधियों के नाम तो यत्र-तत्र आगये परन्तु निर्माण विधि तथा विशिष्ट विवेचन न होने से उसे यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

शास्त्रोक्त प्रमुख औषधियां—

४८–कुमार कल्याण रस (भै० र०)—

विधि–रस सिन्दूर, मुक्तापिष्टी, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक–इन औषधियों को समभाग मिलाकर १ दिन तक घृतकुमारी के रस में घोटकर आधी रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

मात्रा–एक गोली दिन में दो बार मातृदूध या शहद, रोगानुसार अनुपान भेद से देते हैं। छोटे बच्चों में मात्रा में न्यूनता कर देते हैं।

विमर्श—सूखारोग तथा उससे सम्बन्धित वातविकारों के लिए वस्तुतः यह अनुपम योग है। जहां सामान्य दुर्बलता में उत्तम लाभकारी है वहां अत्यधिक शक्तिह्रास में आश्चर्यजनक फलप्रद देखा गया है। कृश बालक चाहे किसी प्रकृति का हो उसे उचित अनुपान से प्रयोग किया जा सकता है। पारद, स्वर्ण, अभ्रक, लौह आदि रसायनों का इसमें योग होने से ये उत्तम धातु परिपोषण गुण करता है। यकृत् आदि में लाभ पहुंचाता है। जब दूध या भोजन नहीं पचता बालक दिनप्रतिदिन गलता जाता हो तथा सूखारोग के अन्य लक्षणों के लिए यह रस उत्तम है। बालशोष के अतिरिक्त यह रस बच्चों के ज्वर, कास, अतिसार आदि में परम प्रशस्त है।

४९–मधुमालिती वसन्त (र० चं०)—

विधि–सिंगरफ २० तोला को अनारदाना के रस में ७ दिन तक घोंटकर सूखा चूर्ण बनालें। तदुपरांत कुक्कुटाण्ड २० के रस के साथ कड़ाही में मन्दाग्नि से चलाते हुए शोषण करें। फिर कचूर, श्वेतमरिच, प्रियंगु प्रत्येक को सिंगरफ (निर्मित) के भार से आधे आधे वजन में मिलादें। अन्त में अनार के रस से ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

मात्रा–१ या २ गोली घृत अथवा मण्डूर भस्म शृंग भस्म में देनी चाहिए।

विमर्श–स्त्रियों तथा बालकों दोनों को यह खरलीय रस उपयोगी रहता है। शिशुओं को गर्भिणी माता का स्तन्य पीने में जो पारिगर्भिक हो जाता है तब इस रसका सेवन करायें। अस्थि-वक्रता (रिकेट्स) में यह प्रशस्त है। ऐसी अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त, मांस, अस्थि के पोषणार्थ इसे अन्य उचित खटिक योगों के साथ सेवन करना चाहिए । गर्भिणी की अस्थिधातु क्षीण हो जाने पर अवस्थाओं के अनन्तर उत्पन्न मृद्वास्थि रोग के पूर्व तथा उत्तर अवस्थाओं में हितकारक है । अन्य रोगों में अच्छा है ।

२०–मुक्तादि वटी (या० त्रि० आ०)—

विधि—मुक्तापिष्टी २ तोला, सोने के बर्क, चांदी के बर्क, कमल केशर, गुलाबकेशर, कहरवा, जहरमोहरा खताई, संगयेशव, गौरोचन इनको १-१ तोला तथा नागकेशर २ तोला, केसर ६ माशे, कपूर ३ माशे, गोदन्ती भस्म १२।। तोला एकत्रित करें। बर्कों के अलावा अन्य द्रव्यों को पीस लें । पुनः धीरे धीरे बर्क को घोटें । तदन्तर शतपत्री जल में ६ दिन खरल करके १ रत्ती परिमाण की वटिकायें निर्माण कर लें ।

विमर्श—यह वटी अत्यधिक प्रचलित है । इसको १-४ गोली माता के दूध या अन्य उचित अनुपान से प्रातः सायं खिलाते हैं । बालशोष के लिए रामबाण है । साथ में पांडु, अफारा, खांसी आदि विकारों में निश्चित लाभ पहुँचता है । जब मातायें 'दूध डालने की' शिकायत करती हैं तो उस अवस्था में बच्चे को देवें । निरन्तर इस दवा के प्रयोग से बालक निरोग तथा सुन्दर, बलशाली बन जाता है । वस्तुतः वटी का योग उत्तम है ।

२१–मालती चूर्ण (आ० नि० मा०)

विधि—खर्पर १ सेर की मात्रा में लेकर १ सेर नीबू के रस के साथ हांडी में डालकर धीमी अग्नि से पाक करें । रस जल जाने पर पात्र को उतार लें । शीतल हो जाने पर धो लेना चाहिए । इस विधि से प्रस्तुत शुद्ध खर्पर १ सेर और उसके बराबर बड़ी हरड़, छिलके सहित छोटी एला आधा सेर कपड़छन करके मालती चूर्ण बन जाता है ।

विमर्श—यह औषधि बाल शोष तथा तत्सम्बन्धी व्याधियों में परम प्रशस्त है । यह रस तथा रसायनियों को पुष्टि देता है । पुनः आगे की रक्त, मांस, मेद व अस्थि आदि धातुओं को भी बल प्राप्त होता है । इसे १ से ३ रत्ती दिन में दो बार माता के दूध या जल के साथ सेवन कराया जाता है । सामान्यतः थोड़े ही दिनों में बालशोष समाप्त हो जायेगा फिर भी लगभग १ मास तक निरन्तर प्रयोग करवाना अच्छा रहता है ।

२२–बालार्क गुटिका—

विधि—शुद्ध खर्पर, प्रवाल भस्म, शृंगभस्म, सिंगरफ शुद्ध, सोहागे का फूला, सफेद मरिच, कचूर, केशर इनको बराबर भाग मिलाकर जल में घोंट कर आधी आधी रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए ।

विमर्श—यह बालकों के रोगों में अच्छा काम करती है । बात कफ दोषों में प्रशस्त है । जिन बच्चों को उचित पोषण विभिन्न कारणों से न मिल सकता हो उनको अस्थि निर्बलता आदि अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है । उस समय १ गोली दिन में दो बार माता के दूध में सेवन कराना चाहिए ।

२३–लाक्षादि तैल (शा० सं०)

विधि- पीपल की लाख ४ सेर, सोया, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, रेणुकबीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, पदमाख, खस, सफेदचन्दन, जटामांसी, मजीठ, सब सवा सवा तोला लीजिये । तिल का तैल १ सेर तथा मट्ठा ४ सेर मिलाकर विधिवत् पाक करें । जब पानी ४ सेर शेष रह जावे तो छान लें । अन्य द्रव्यों के पानी से निर्मित कल्क को यथावत् कड़ाई में मन्दाग्नि द्वारा पाक करते हुए जब तैल शेष रह जावे तो छान लेना चाहिए । पाक होने पर सुगन्धित द्रव्य डालते हैं ।

विमर्श—यह तैल प्रसिद्ध है । अनेक बात रोगों, ज्वर, कास आदि में लाभकारी है । बालशोष रोगियों को इसका मर्दन कराना लाभप्रद पाया गया है । उनको इससे बल मिलता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५४—अरिविन्दासव (भै० र०)—

विधि—सफेद कमल, खस, गंभारी की छाल, नील कमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरैटीमूल, जटामांसी, नागरमोथा, काली अनन्तमूल, त्रिफला, बच, कचूर, कालीनिसोथ, नील के बीज, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलैठी, महुवा के फूल, मुरा या जटामांसी इन सभी द्रव्यों को ४-४ तोले की मात्रा में लेकर चूर्ण बना के रखलें। फिर मुनक्का ८० तोला, धाय के फल ६४ तोला, जल २०४८, शक्कर ४०० तोला तथा शहद २०० तोला लेकर १ मास तक रख कर परिपक्व बनाकर छान लें।

विमर्श—यह आसव बालकों को परम प्रशस्त है। शिशुओं को जो अस्थिबक्रता होकर नितम्ब-प्रदेश शुष्कता, जीवनीय शक्ति की कमी, हाथ पैर मुड़ जाना, धातु पोषण की कमी, पाचन शक्ति की कमी आदि पैदा होते हैं तब यह आसव अत्यु-पयोगी है। बालकों को सेवन कराते रहने से सुन्दरता, बल प्राप्ति होती है। बच्चों को इसे ३ से ६ माशा की मात्रा में सेवन करायें।

अन्य शास्त्रीय औषधियां—

इन औषधियों के साथ ही निम्नांकित शास्त्रीय योग बालशोष प्रभृति विकारों में प्रशस्त हैं—

५५—प्रवालपंचामृत, ५६—शंखभस्म, ५७—मधुमण्डूर ५८—चन्दनबलालाक्षादि तैल ५९—नारायण तैल ६०—संजीवनी वटी ६१—स्वर्ण बसन्त योग ६२—गोदन्ती भस्म, ६३—कुक्कुटाण्ड-त्वक् भस्म, ६४—मुक्ताभस्म ६५—स्थिरादि तैल ६६—लाक्षादि तैल इत्यादि।

६७—वनस्पतियां तथा प्राणिज द्रव्य—

बालशोष प्रभृति विकारों में स्वतन्त्र रूप से कुछ बनस्पतियों व प्राणिज द्रव्यों का भूरिशः प्रयोग होता है। जो निम्न है—

मयूरशिखा, ब्राह्मी, अनार, आक, गुड़हल, आलू, बन्दाल, अण्डा, पीपल, शम्बूक, बासा, नरकपाल, अतीस, कर्कट, कच्छपपृष्ठ, उष्ट्रखुर, गदही का दूध, गोरोचन।

इन सबके विवेचन को प्रस्तुत करना स्थानाभाव वश संभव नहीं। इन द्रव्यों को यथाविधि बालशोष प्रभृति रोगों में कार्यकर पाया गया है। योग बनाकर तो अनेक द्रव्य प्रयोग किये ही जाते हैं।

६८—अहिण्डिका की चिकित्सा बताते हुए आयुर्वेद में मयूरशिखा को बिना सेवन किए लाभदायक कहा गया है। चन्द्रग्रहण में विधिपूर्वक मयूरशिखा (Adiantum Caudatum) को जड़ से उखाड़ कर कमर या गर्दन में बांधने से यह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।[1]

६९—इसी तरह काश्यप संहिता में ब्राह्मी का सुन्दर प्रयोग बताया गया है।[2] प्राणिजद्रव्यों तथा अन्य वनस्पतियों के प्रयोग विशेषांक में यथा स्थान लिखे हैं। —श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय जी वैद्य, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

संतति निरोध के लिए

पुरुषों के लिए—

फ्रैंच लैदर साधारण	०.५० का
फ्रैंच लैदर बढ़िया	०.७५ का
कोकोडायल फ्रैंच लैदर	१.०० का

स्त्रियों के लिए—

चैक पैसरी जापानी	०.८७ की
डाइफ्राम पैसरी बढ़िया	२.५० की

नोट—उपरोक्त कोई भी सामान एक दर्जन मंगाने पर उसी मूल्य में १३ भेजे जायेंगे।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स,
विजयगढ़ (अलीगढ़)

१—सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम्।
पद्यनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्यहिण्डकां नियतम्॥ —चक्रदत्त

२—न तु ब्राह्मीघृतं शूद्रः पिबेत्तद्धस्य नाशनम्।
प्रजाक्षत्रेण सृज्यते शूद्रा शूद्रा ब्राह्मीं पिबन्ति ये॥
मृताः स्वर्गं न धर्मश्चैषां विलुप्यते।
दीप ………॥ —का० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालशोष पर अनुभव

[१]

आचार्य डा० श्यामदास पीयूषपाणि आयुर्वेदाचार्य

चिकित्सा-क्षेत्र में कभी कभी शिशुओं की शारीरिक पुष्टि का अभाव देखने में आता है। शिशु की ऐसी विकृति का निदान यांद्च चिकित्सक बालशोष, शिशु-कार्श्य, अस्थि कोमलता आदि नाम दे करते हैं, और उसके बाद चिकित्सा भी अपने अपने अनुभव के आधार पर चालू रखते हैं। परन्तु मेरे खयाल से इस रोग में बहुतेरों को सफलता न मिलती होगी, मैंने कम से कम दो हजार बालशोष से ग्रसित शिशुओं की चिकित्सा करने का अवसर प्राप्त किया है। उससे संग्रहीत अपार अनुभव यहां लिख रहा हूं।

सबसे पहले आयुर्वेदज्ञ धुरन्धर विद्वानों से मेरी यह जिज्ञासा होनी चाहिए, कि आयुर्वेदोक्त शिशु-कार्श्य, बालशोष की सम्प्राति किस प्रकार और क्यों?

मैंने जितने भी बालशोष के रोगी देखे, उनमें तीन चौथाई गर्भ-दोष और एक चतुर्थांश उनके माता-पिताओं के रतिज-रोग जनित विकार के कारणस्वरूप बालशोष होते देखा—

(१) क्षय, उपदंश द्वारा आक्रान्त माता पिताओं की सन्तान को।

(२) वह स्थान जहां विशुद्ध वायु, प्रकाश की कमी तथा सीलवाली जमीन जहां हमेशा ही दुर्गन्धि-युक्त वातावरण हो, रहने वाले की सन्तान को।

(३) गर्भकालीन अम्ल, मन्दाग्नि, कोष्ठ-बंधता आदि कारणों से पोषण-विकार से उत्पन्न शिशु को,

(४) बहु-सन्तति वाली प्रसूति की दुर्बलावस्था में हृष्ट-पुष्ट शिशु भी उसका स्तनदुग्ध पान करते रहने से बालशोष का शिकार हो जाता है।

(५) उपयुक्त आहार, पालन-पोषण का अभाव तथा दन्तोद्गमकालीन विभिन्न उपसर्गजनित शिशु को बालशोष होना अनिवार्य है।

साधारणतया ६ महिनों की आयु से लेकर ३ वर्ष तक शिशु इस रोग का शिकार होते हमने देखा है।

पीड़ा-प्रारम्भ का पूर्व-राग इस प्रकार रहता है – अचानक ही पाचन शक्ति की गड़बड़ी, पेट का फूलना, मन्द मन्द ज्वराभास, नाड़ी की गति द्रुत क्रमशः निर्बलता, चिड़चिड़ापन। इसके अतिरिक्त कपोल, तथा शरीर के ऊर्ध्व भाग पर पसीना, निद्रितावस्था में–सिर व गर्दन पर पसीना, हाथ-पैर की उष्णता, शरीर पर वस्त्रादि आच्छादन का रहना नापसन्द आदि। शरीर में पीड़ा (वेदना) गोद में उठा लेने से रोना, प्रस्राव का परिमाण अधिक होना, कभी कभी लालाभ या पीलेपन पेशाब का आजाना, पेट आगे की ओर बढ़ जाना होता है भूख अधिक महसूस होती है। स्तन-पान करता है और दूध भी डालता है। ऐसी हालत में दस्त होने लगते हैं, कभी कभी ३-४ दिन पर्यन्त कोष्ठबद्धता और पुनः उदरामय हो जाता है।

शिशु दिन व दिन दुर्बलता को प्राप्त होता है, मुख-चेहरा रक्तहीन पीला दिखाई देता है। शरीर की मांसपेशियां ढीली हो जाती हैं। चमड़ी सिकुड़कर लटकने लगती है, देखने से बंदर का बच्चा जैसा मालूम देता है।

पेट बहुतों का बड़ा और सिर भी इस प्रकार का हो जाता है। गर्दन की मांसपेशियां सिकुड़ जाने से बड़ा बदसूरत दिखाई देता है। रोग के सम्बन्ध में बहुत सी बातें लिखने की जरूरत समझते हुए भी अपने उद्देश्य पर आता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस रोग की चिकित्सा का क्रम निम्न प्रकार है—

(१) शिशु को निर्मल उन्मुक्त वातावरण में रखना।

(२) प्रातःकालीन सूर्य किरणों का सेवन शिशु को अत्यन्त लाभदायक है।

(३) तेल का मर्दन और औषधोपचार।

सरसों का तेल धूप में तपाकर सर्वाङ्ग पर मर्दन कराना चाहिए। पुरातन घृत अथवा ज्वराधिकारोक्त किराताादि तेल, दशमूल तेल, चन्दनादि तेल ही उत्तम है। तेल लगाने के पश्चात् अल्प समय के लिये शिशु को सूर्य स्नान कराना चाहिए।

पाचकाग्नि को बढ़ाने के लिये सबसे पहिले ध्यान देना चाहिए। विभिन्न उपसर्गों के उपशमनार्थ देने वाली औषधियों के साथ साथ दीपन-पाचन औषधि अवश्य देते रहें।

औषधि चिकित्सा—

७०—मकरध्वज—बाल शोष पर यह उपयोगी है। बल और आयु के अनुसार मात्रा ¼ से ½ रत्ती।

अनुपान—मुक्ताशुक्ति ½ रत्ती और मधु।

७१—मुक्ताभस्म व शुक्ति भस्म स्वतन्त्र रूप से भी दिया जाने से लाभ हुआ है।

शिशु चाहे कितना ही कमजोर क्यों न हो जब तक उसके शरीर में रस व रक्त का उत्पादन करना आप उचित न समझेंगे भले ही आप बढ़िया सी दवा दें, कुछ लाभ न होगा। इसलिए खूब सदस मात्रा में नवायस मंडूर अथवा पुनर्नवा मंडूर प्रारम्भ से देते रहें। इससे एक विकृति आपके सामने आसकती है। वह है कि या तो उदर विकार अधिक बढ़ जायगा या पेचिश प्रारम्भ हो जायगी। कुछ भी हो पहले पहल उपसर्ग बढ़ जाने पर घबड़ाना नहीं चाहिए। औषधि को आत्मसात् करने की सामर्थ्य जब तक उसमें न आवेगी बीच बीच में अगर दवाईयां देना बन्द करना पड़े तथापि इसे फिर से देने की कोशिश जारी रखिए।

पांडु पंचानन भी मार्के की दवा है चाहे तो दोनों को मिला दें। मात्रा इतनी कम देवें कि उसके पाचन-संस्थान पर कोई कुप्रभाव न पड़े। मैं अपने रोगी को इस तरह से देता हूं कि यह औषधियां उसके लिए अनुकूल पड़ सकें। प्रवाल भस्म भी मिलाता हूं। औषधियों की क्रिया को साम्य व आत्मसात बनाने के लिए विचार करना आवश्यक है कि कितने परिमाण में देना चाहिए।

मेरे पास बालशोष का रोगी चाहे कैसी भी हालत हो, आने पर लक्षणानुसार सभी औषधियां अति मृदु मात्रा में देता हूं। दो-तीन दिन तक दवा देने के बाद असली चिकित्सा जो रक्त-जनक और रक्तोत्पादक है अपनाता हूँ। वह यह है—

७२—विटामीन बी १२+विटामीन बी १ अर्थात् थियामीन हाईड्रोक्लोर २—रक्त का सूचीवेध।

विटामिन बी-१२, यह अच्छी कम्पनी की बनी हुई होनी चाहिए—जैसे स्कुईब का रुब्रामीन अथवा ग्लैक्सो का मेक्राबीन। मैं इन दोनों का प्रयोग करता हूँ। विटामिन बी १२ और बेरिन (यानी विटामीन बी १) दोनों को मिलाकर आयु के अनुसार रोजाना सूचीवेध प्रयोग करना चाहिए। शिशु कितना ही जीर्ण व दुर्बल हो गया हो लगातार ६।८ इन्जेक्शन से आप देखेंगे कि उसके मुर्दनी सी हालत पर आपने काबू पा लिया। इसके बाद हर तीसरे दिन एक सूचीवेध करते जाइये जब तक शिशु का शरीर सेव जैसा सुर्ख न होजाये।

यह तो होगया पहला तरीका, दूसरा तरीका है- शिशु की माता का रक्त उसके शरीर में प्रविष्ट कराना। इस प्रणाली के द्वारा चिकित्सा बहुत ही आसानी से फिर बिना पैसे होती है। पर यह जितना आसान है उतना ही खतरनाक है क्योंकि आशा के अतिरिक्त फायदेमन्द होने पर भी इस प्रणाली पर थोड़ा सा ध्यान उतर जाने से रोगी को संभालना मुश्किल की बात होगी।

माता के रक्त का प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह जांच लेना चाहिए कि शिशु की मां की तन्दुरुस्ती वर्तमान में ठीक है। उसके शरीर में रोग या फोड़े, फुंसी आदि रक्त दूषित करने वाली बीमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियां तो नहीं हैं ? कहने का तात्पर्य है कि मौजूदगी हालत में माँ अगर हर तरह से ठीक-ठाक हो तो उसका रक्त शिशु को जीवन प्रदान करने वाला होगा। यहां शंका यह हो सकती है–रक्त का प्रयोग करने वाले सिद्धान्तानुसार यह खिलाफ है या नहीं? इसमें प्रतिकूलता कभी भी न पड़ेगी। यहां सिद्धान्तस्वीय शोणित संचारण प्रणाली (यानी *Auto Hemotherapy*, प्रश्न उठ सकता है, रोगी के शरीर से रक्त निकाल पुनः उसी के शरीर में प्रविष्ट कराना चाहिए, लेकिन आप के कथनानुसार यह सिद्धान्त कहां तक सही होगा? सोचने की बात है–जब रोगी तो है वह शिशु और उसकी मां का रक्त देना उचित है या नहीं ? तब इसका उत्तर सरल है। शिशु के शरीर का निर्माण माता के रक्त द्वारा होने के कारण माता और पुत्र दोनों के शरीर में कोई अन्तर नहीं।

"वस्तु की प्राप्ति केवल विश्वास पर ही होती है, न कि तर्क से।" अनुभव और आर्ष-प्रमाण के निकट वैज्ञानिक जिज्ञासा का स्थान नहीं। छोड़िए बात, मतलब पर आइयेगा। हां-माता का रक्त लेना हो तो पहले उसकी शिरा में से निकाल देखिये वह रक्त प्रयोग करने लायक है या नहीं। इसलिए निम्न-लिखित बातों पर गौर रखिए। सिरिंज में रक्त जमता तो नहीं ? रक्त का रंग कालिमायुक्त या हलका लाल अथवा विकार प्राप्त न हो। प्रयोग में वही रक्त ठीक रहेगा जो निर्दोष हो।

मां का रक्त आपके विचार में जब सही बैठा है तब निस्संकोच प्रयोग कीजिए। दिन व दिन लाभ नजर आवेगा, पहले दिन २-३ बूंदें ही काफी हैं। रोजाना एक एक बूंद बढ़ाते जाइये। रक्त प्रयोग करने के बाद शिशु को देख रेख में रखना जरूरी है। पहले पहल रक्त देते हुए २४ घण्टों के अन्दर उसकी कोई प्रतिक्रिया हुई या नहीं हुई। प्रतिक्रिया-स्वरूप ज्वर होना ही अधिक देखने में आता है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की तकलीफ हो सकती है। पहले पहल कोई प्रतिक्रिया न हुई तो समझ लीजिए, कि बाजी मार गये। रोजाना लगाते जाइये–लकड़ी में भी जान आजावेगी। इस प्रणाली द्वारा कम से कम १५ दिन में शिशु तन्दुरुस्त हो जाता है।

सिरिंज में रक्त आते ही अगर जमना प्रारम्भ हो जाय परन्तु वह प्रयोग के उपयुक्त हो तो ऐसे क्षेत्र में सोडा साइट्रास का घोल एक दो बूंदें सिरिंज में भर लेने के बाद ही रक्त निकालना चाहिए। सोडा साइट्रास ५ ग्रेन और डिस्टिल्ड वाटर ४ ड्राम का घोल बनाना चाहिए। रक्त का परिमाण आगे चलकर जितना बढ़ेगा इस घोल की भी बूंदें बढ़ानी होंगी। कम से कम एक सी. सी. या मिलीलिटर में २-३ बूंदें ही काफी हैं। यह घोल अपने अनुभव के आधार पर मिलाना ठीक होगा। रक्त-संचारण प्रणाली को उन्हें ही अपनाना ठीक होगा, जो सूचीवेध के अच्छे जानकार हैं। नए शिक्षित के लिए विटामिन वाला प्रयोग निरापद तथा लाभदायक होगा। सूची-वेध चाहे विटामिन या रक्त का कैसा ही हो, दोनों ही प्रयोग मांसपेशियों में करें, खास करके शिशु के नितम्बस्थ मांसान्तर्गत ही ठीक होगा क्योंकि शरीर में हड्डी और चमड़े के अतिरिक्त उसमें और है ही क्या ? पेशियां सूखकर चिपट जाने पर खूब साव-धानी से दो-तीन सूई देने के बाद रस-रक्त व मांस की वृद्धि होने लगेगी। सूचीवेध प्रयोग में जो सब नियम पालन करना आवश्यक हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए काम करना चाहिए।

शिशु का आहार-विहार—मां का दूध शिशु के लिए अमृत होने पर भी वह विषतुल्य माना जायगा अगर उसमें कोई विकृति आई हो तो उसकी जांच जरूर करनी चाहिए। चिकित्सा के प्रारम्भ में दूध की जांच करके उपयोगी सिद्ध हुआ तो जारी रखिये नहीं तो गाय या बकरी का दूध ही ठीक रहेगा। मां का दूध अनुकूल हुआ तो नियमित समय पर दूध का सेवन कराने का नियम बता दें। बच्चे को लेकर उसकी मां जब शय्या-ग्रहण करेगी उस समय से सुबह तक एक बूंद भी चाहे वह कितना ही रोवे चिल्लावे मत पिलावें। सभी ने इसका अनुभव किया होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाचन शक्ति अगर अधिक न बिगड़ी हुई हो केवल 'सूखा' लगगया तो फलों का रस, टमाटर, केले पके हुए का थोड़ा थोड़ा सेवन कराना चाहिए। साथ साथ 'विकाडेक्स' ड्रोप्स सेवन भी चालू रखिये। होमियोपैथिक में एक टानिक है जिसका नाम 'एलफेलको' है अच्छा काम करता है। रक्त बढ़ने के साथ भूख बढ़ने पर 'फेराडोल' या 'शार्कोफेरल' कुछ दिन सेवन कराने से उसका वजन बढ़ जायगा।

आचार्य श्री श्यामदास 'पीयूषपाणि' आयुर्वेदाचार्य
सर्वोदय सेवा आश्रम औषधालय, दौगवां,
पो० कसेरकलां (बुलन्दशहर)

[२]

कविराज सत्यकुमारी गोयल वैद्याचार्या आयुर्वेदालंकृता, शास्त्री।

उम्र ११ साल, रोगी का नाम उमेशकुमार, पिता रघुवीर सिंह मुरादाबाद, दिनांक १७-८-६० को उसे मैंने देखा।

उसका वृतान्त—जिस समय मैंने देखा, प्रथम तो वह हर समय खाने के लिए मचलता था और खाने पर भी अधिक निर्बल था। हल्का हल्का ज्वर भी था, नेत्र एवं मुख श्वेत थे। मल कभी अत्यन्त कठोर इतना कि गुदा छिल जाती और साथ में रक्त भी दिखाई पड़ता और कभी इतना पतला कि पानी की तरह बहता था और पित्त के रङ्ग का फुटकीदार था। मुख से लेकर गुदा पर्यन्त सब अंदर प्रत्येक अङ्ग में भी छाले थे। वे छाले क्या अंकुर से भान होते थे और अर्शाङ्कुर की भांति लगते थे। पहले तो ऐसी स्थिति को देखकर मैं आश्चर्यचकित सी रह गई फिर भी दूध पिलाने के लिए कहा। वह अन्न भी खाता था और उस दिन बहुत थका था तो मैंने रात को अंजीर आधी मिट्टी के पात्र में भिगोने और प्रातः खिलाने को कहा। उससे दूसरे दिन दस्त दो हो गये। फिर मैंने उसे प्रवाहिका हर चूर्ण दिया। क्योंकि उसने मुझे बताया, १५ या २० दिन पर स्वतः ही उसे दस्त आने लगते हैं और चिकित्सा करने पर ठीक होजाते हैं। फिर दूसरे दिन उदर को स्पर्श करने से कुछ कुछ यकृत भी बढ़ा सा जान पड़ा। मैंने नवायस लौह, मण्डूर भस्म और हिंग्वाष्टक चूर्ण लिया। १-१ रत्ती नवायस लौह और मण्डूर भस्म प्रातः सायं मिलाकर दिया और वह अन्न भी खाता था। भोजन के साथ हिंग्वाष्टक ½ माशा देने को कहा, उससे उसकी एक सप्ताह तक दशा ठीक रही परन्तु एक सप्ताह बाद खूब दस्त आने लगे। यह स्थिति देखकर मैं कुछ घबड़ा सी गई। उसे ज्वर काफी था। उस समय मैंने संजीवनी आधी गोली और शङ्ख भस्म शहद के साथ दिया और दिन में हिंग्वाष्टक जामुन के सिरके के साथ दिया। इससे उसे कुछ शांति मिली। मुंह के छालों के लिए खदिरादि वटी दी, उसे वह अच्छी तरह चूस कर खा लेता था और नितम्ब प्रदेश पर दिखने वाले पर व्रणों पर सफोनामाइड पाउडर को लेकर सफेद वैसलीन में खूब फेंटकर उसको लगाने को कहा। वह २-३ बार के लगाने मात्र से छाले कृष्णाभ हो गये। मुख के भी ठीक हो गये परन्तु उदर स्थिति ठीक नहीं हुई। मैं कभी कभी जीभ में, मुंह में ग्लेसरीन लगा देती थी। मैंने जब देखा कि कुछ अजीब सा रोग जान पड़ता है तो मैंने उसे डाक्टर के पास जाने की सलाह दी। उसने मान लिया। एक सप्ताह लिवर एक्सट्रेक्ट के इञ्जेक्शन लगे और उन्होंने एनीमा लगाया। प्रमुख लक्षण मूत्र मल, नेत्र, नखादि सब श्वेत थे। फिर भी मैंने कुछ न कहा। उसने एक सप्ताह के बाद फिर मुझसे निवेदन किया। तब मैंने सोचा कि अब तो मैं इसे ठीक करके ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ूंगी। उसके मां बाप बड़े परेशान से दिखाई लगे। तब मैंने अपामार्ग (चिरचिटा) की गांठों से साधित तैल की मालिश करने को कहा और स्निग्ध गरिष्ट पदार्थ तैल, मिर्च, खटाई आदि सब बन्द कर दिये और सेवन में पुनर्नवा का साग दिया उससे कुछ लाभ जान पड़ा। परन्तु स्थिति फिर भी कुछ विकट सी ही रही। मैंने कल्याण घृत दिया। अष्टांग हृदय में शुष्क रेवती नवग्रह में जो लक्षण कहे हैं वही कुछ कुछ मिलते थे। मैंने उसकी चिकित्सा की तो भी कोई लाभ नजर नहीं आया। फिर मैंने हौम्योपैथिक चिकित्सा प्रारम्भ की, उसमें सफलता प्राप्त हुई। बरासटाकार्ब यह हाजमे की तथा बढ़ी हुई गिल्टी को कम करती है। पेट फूलन', सुस्ती, पतला या कब्जयुक्त पाखाना हो। अरजेन्ट मनाइट्रम यह शरीर पर झुर्रियां पड़ गई हों, वह निरन्तर निर्बल होता जाता हो उसके लिए है। चामना यह पतले दस्तों के लिए है जो कि वर्ण में पीत हो। मैंने २-२ दिन, एक एक औषधि २ गोली प्रातः, २ गोली सायं, २ गोली मध्यान्ह दीं। उसकी दशा में निरन्तर सुधार होता गया। एक सप्ताह बाद केवल अरजेन्टम नाइट्रम एक सप्ताह तक सेवन कराया। इस प्रकार २ मास बाद अक्टूबर १९६१ में वह स्वास्थ्य लाभ कर पाया। फिर भी पथ्य जारी था। हौम्योपैथिक चिकित्सा कोई भी बेखटके कर सकता है।

—सुश्री कु० सत्यकुमारी वैद्या
c/o श्री के. बी. लाल हैडकेशियर
बिसवां (सीतापुर) उ० प्र०

[३]

श्री गोविन्द बल्लभ पन्त

सर्वविदित है कि सूखा रोग में खटिक (Calcium) का अभाव होता है। इसलिए इसकी चिकित्सा भी इसी अनुपान की होनी चाहिए, इसकी सबसे उमदा चिकित्सा आयुर्वेद में यह है, ६६% की गारन्टी भी है, यानि ६६% प्रतिशत बालक इससे अच्छे हो जाते हैं।

७३-वराटिका	१ रत्ती से ३ रत्ती तक
जहरमोहरापिष्टी	२ रत्ती से ५ रत्ती तक
मण्डूर	½ रत्ती से २॥ रत्ती तक
प्रवाल पिष्टी	१ रत्ती से ३ रत्ती तक

सबको उपरोक्त अनुपात से मधु के साथ ४-४ घंटे में चूना ६ रत्ती बिना बुझा पानी १ पाव में बुझा कर रखदें और जब चूना बैठ जाय तब पानी छान कर बोतल में भरदें। पाव भर पानी दिन भर में कई बार में पिलाते जांय। एक सप्ताह के अन्दर बच्चे के चेहरे में रौनक नजर आवेगी, वैसे तो वुद्धि-जीवियों के लिए मैं संकेत कर चुका हूं कि कोई भी खटिक योग इसकी दवा में प्रयुक्त किया जा सकता है।

एलोपैथी में अधिकतर यही दवाइयां लाभप्रद हैं। अस्ट्रो कैलसियम इन्जेक्शन १ c.c. प्रतिदिन व ३-३ घंटे में अस्ट्रोकैलसियम लिक्वड ½ चाय की चम्मच से १ चाय की चम्मच तक एकडेक्सोलीन लिक्विड या कैप्सूल इत्यादि जो भी हो अगर समय पर इस रोग का इलाज प्रारम्भ कर दिया जाय तो यह रोग असाध्य नहीं है। संक्रामक अवश्य है, खान पानादि दोष से एक से दूसरे निर्बल बच्चे को होते देखा गया है। अतः चिकित्सा के साथ इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

—श्री. गोविन्दवल्लभ पन्त
राजकीय औषधालय, अनूपपुर, हण्डोल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

श्री. नन्द किशोर शर्मा मंत्री

हमने जितने सूखा रोगियों की चिकित्सा की है उसके आधार पर क्रम इस प्रकार रखना चाहिए। सबसे पहले पचन संस्थानगत कोई विकार हो तो उसे दूर करना चाहिए। बालक को माता का या गौ माता का दूध देना चाहिए। माता को जीवनीय द्रव्यों से परिपूर्ण आहार मिलना चाहिए, साथ ही सूर्य की धूप, शुद्ध जलवायु तथा यथोचित व्यायाम भी आवश्यक है। सूर्य की धूप से विटामिन डी तत्व मिलता है जो अत्यंत आवश्यक घटक तत्व है। पचन संस्थान क्रियाशील होने पर स्निग्ध द्रव्यों को देना चाहिए। बालक को ८-९ छटांक दूध दे सकते हैं। दूध में स्नेहांश व सेन्द्रिय योग मिलाये जा सकते हैं। कैल्शियम के लवण दूध में मिल जाते हैं। इस रोग की प्रमुख औषधि जीवनीय 'डी' मानी जाती है। क्योंकि इससे ही अस्थि निर्माण कार्य होता है। कॉडलिवर तैल में विटामिन डी के साथ ए भी मिलता है अतः इसका यथोचित उपयोग किया जा सकता है। ग्लैक्सो के एडेक्सोलीन में भी उपर्युक्त तत्व मिलते हैं। सूर्य की नील लोहितातीत किरणें (Ultra-violet rays) बड़ी उपादेय हैं। शरीर और वातावरण की स्वच्छता भी आवश्यक है।

आयुर्वेदानुसार, फक्क रोग के शिशु को सात दिन तक कल्याणकघृत, षट्पल घृत या अमृत घृत से स्नेहन करावें। फिर निशोथ सि[द्ध] दुग्ध से शोधन करावें। संशोधन के बाद अस्थि वर्धक द्रव्यों के यूष दें। बच्चे को तीन पैर की लकड़ी की गाड़ी बनवाकर उसके सहारे चलने को दें। नील लोहितातीत किरण चिकित्सा रोग की तीव्रावस्था तथा रक्तस्राव वाले तथा फक्क बालक को वर्जित मानी गई है। इसलिये इस चिकित्सा को सावधानी से करें। अस्थि-वक्रता के कारण यदि पंगुता बालक में उत्पन्न हो जावे तो राज[?] तैल की मालिश उपयोगी होती है। विस्तृत चिकित्सा काश्यप संहिता में वर्णित है।

७४-शक्ति वर्धक योग – शंखाहुली, ब्राह्मी सम भाग लेकर इनका चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की बुद्धि तथा बल बढ़ता है। शंखाहुली सफेद तथा किंचित हल्के नील वर्ण के पुष्प वाली पथरीले स्थानों में बहुत फैली होती है। यह बड़ी उपयोगी वनस्पति है। बच्चों के लिये गुणकारी है।

७५—सैंधव, त्रिकुटा, बड़ी करंज, पहाड़ी करंज, पाढ़ल १-१ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करलें। मात्रा ४ से ६ रत्ती तक, अनुपान घृत ४ माशे व मधु ८ माशे से प्रातः सायं देने से सूखा रोग में लाभ होता है।

—श्री नन्दकिशोर शर्मा,
मन्त्री—पंचायत ढ़ोटी (आगरा)

[५]

श्री वैद्य मुकुन्द चन्द जी व्यास।

(अपने पिछले लेख में उल्लिखित रोगी का उपचार मैं निम्न-पद्धति से कर रहा हूं। पर्याप्त सफलता मिल रही है।)

प्रथमोपचार --

७६-प्रातः-सायं-मध्याह्न में $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती मण्डूर, कपर्द, शङ्ख, शुक्तिभस्म तथा २-२ रत्ती तालीसादि चूर्ण मिश्रण मधुनासह लेहन के १५-१५ मिनट के पश्चात् पुनर्नवा, एरण्ड ककड़ी, रोहितकत्वक, सहिंजना त्वक्, स्नुही, काकमाची, कासनी, कसौंदी ये सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्द्र १-१ तोला एवं अञ्जीर १, बड़ी द्राक्षा ४, कालीमिर्च ५, सौंफ ३ माशा इनकी जल के साथ पिट्ठी बनाकर एरण्ड पत्र से वेष्ठित कर गोधूम चूर्ण पिंड में रख पुटपक्व रीति से निकालकर उसकी ३ मात्रा के साथ आधी आधी आरोग्यवर्धिनी वटी सेवन कराया गया।

७७-दिन में एक बार जटामांसी, बालछड़, नागर मोथा, गुलाबकली, आरग्वध मज्जा, पर्पट क्षार, नली, भारङ्गी मूत्र ५ ५ तोला का चूर्ण कर रख दिया गया और नित्य १ तोला को काकमाची के रस में पाक कर उदर पर लेप कर दिया जाता था।

पथ्य में—यव, मूंग, गेहूँ का यूष व दूध, दाड़िम, मौसम्बी रस का सेवन करवाता था। इस उपचार से जलीयांश, पाण्डुता, शोफ का शमन हो गया।

द्वितीयोपचार—

४० दिन के पश्चात् उपरोक्त मिश्रित लेहन के १५ मिनट के पश्चात् १-१ चम्मच मिश्रण २-२ चम्मच जल के साथ निम्न पेय दिया गया—

७८-आमला सूखा ४० तोला, अञ्जीर २० तोला, मुनक्का १० तोला, धवई का फूल ५ तोला, त्रिकुटा २ तोला, यवानी विडङ्ग १-१ तोला, गुड़ १॥ सेर, घृतकुमारी रस, गौमूत्र १-१ सेर, जल २५ सेर, इनका ६ सेर क्वाथ बना छान कर १॥ सेर मधु मिला मुख मुद्रित कर रखा। १॥ माह के पश्चात् वाष्पयन्त्र द्वारा अर्क निकाल लिया गया। इस प्रकार २ मास के उपचार के साथ साथ मिश्रित तैलाभ्यङ्ग का प्रातः रात्रि में क्रम चलता रहा।

७९-मिश्रित तैल—शङ्ख पुष्पी, चन्दन बला-लाक्षादि, महानारायण तैल समभाग का मिश्रण कर लिया गया। इस द्वितीयोपचार से रोगी के शरीर में रक्तिक क्रिया सुचारु ढङ्ग से होने लगी, रोगी बैठने व गर्दन को संभालने में समर्थ हो गया।

तृतीयोपचार—

८०—सितोपलादि चूर्ण ५ तोला, अमृतासत्व, स्वर्णमाक्षिक, अभ्रक, लौह, शङ्ख, कपर्द, शुक्तिभस्म १-१ तोला, स्वर्णमालिनी बसंत ६ माशा, स्वर्ण सूतशेखर रस ३ माशा, कुमार कल्याण रस १॥ माशा। इनका मिश्रण कर तीनों काल मधु के साथ २-२ रत्ती चटाया गया।

सुपाच्य आहार के पश्चात् दोनों समय १-१ चम्मच अरविंदासव व २-२ चम्मच जल के साथ पिलाया गया, उपरोक्त तैलाभ्यङ्ग क्रम चलता रहा।

इस समय रोगी चलने तथा खड़ा रहने का अभ्यस्त हो रहा है। अभी चिकित्सा क्रम चल रहा है। आशा है प्रभु कृपा से कुछ ही दिनों में उक्त चिकित्सा पूर्णरूपेण उत्तीर्ण हो जायगी।

उपरोक्त विवरण के अलावा कुछ सिद्धयोग भी सफल हुये हैं। इनको मैं बच्चों के बालशोष, फक्क प्रभृति रोगों में प्रयोग कर लाभ उठाता हूं।

बाल सुधा—

८१-मुक्ताफल, प्रबाल, रजत पत्र, कपर्द, शङ्ख, केशर, कृष्णागरु, वायविडंग, अजवायन, चित्रक मूलत्वक्, गजपिप्पली, बला, लघुपिप्पली, कृष्ण-मरिच, पुष्करमूल, दालचीनी, शुंठी, बनफ्सा, गुलेबनफ्सा, गाजवां, गुलेगाजवां, बिभीतकमज्जा, लवंग, गुरुची, पित्तपापड़ा, पुदीना, चिरतिक्त, सौंफ, देवदार, निसोत, नरकचूर, अतीस, नागर-मोंथा मेढ़ासिंगी, काकड़ासिंगी, कपूर कचरी, बालहरीतकी, वृद्धहरीतकी, शङ्खपुष्पी, वासामूल, कण्टकारीमूल, कण्टकारी फल, पत्रज, अर्कमूल-त्वक्, सहिंजनात्वक्, अर्जुनत्वक्, रोहितकत्वक्, आरग्वधमज्जा, कन्यासार, रेवन्दचीनी, शोरक, सैंधव, नृसार, सौभाग्य, यवक्षार १-१ तोला। आलूबुखारा, खुरबाणी १० १० तोला, अञ्जीर, द्राक्षा, आमलक, अनारदाना २०-२० तोला, मृत-संजीवनी सुरा (रेक्टीफाइड स्प्रिट) २०० तोला। इन सबको एक मास पर्यन्त दृढ़ मुद्रित कर रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से छानकर कांच की बोतल में भर रखें।

मात्रा—५ बूंद से २० बूंद। अनुपान-किञ्चिद् जल मिश्रित। समय-तीनों काल। गुण—समस्त व्याधिशामक तथा आरोग्यप्रद व अलभ्यामूल एवं अद्भुत अमृत है।

सञ्जीवन तैल—

८२-कणगुगुल ५ तोले, कूर्मपृष्ठ भस्म, बकास्थि भस्म, सूकरास्थि भस्म, छागास्थि भस्म २॥-२॥ तोले, केशर, बला, अतिबला, अश्वगन्धा, मधुयष्ठि, सतावर, हल्दी, दारुहल्दी, देवदार, मंजिष्ठ, गुरुची, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, नरकचूर, चिरतिक्त, पद्माख, भूर्जपत्र, खस, कपूरकचरी, नागरमोंथा, लघुएला, जटामांसी, सुगन्धवाला, सुगन्ध कोकिला, बालछड़, पनड़ी, हाऊबेर, प्रियंगु, फूलप्रियंगु, कटफल, दाड़िमपुष्प, धबई पुष्प, नागकेशर, कमल केशर, कमलपुष्प, प्रपौण्ड्र पुष्प, प्रपौण्ड्रीरक, कण्टकारी फल, कृष्णागरु, कृष्णमिर्च, जायफल, बिल्वफलमज्जा, त्रिफला (३), शीतलचीनी, तेजपत्र, विडंग, रेवन्दचीनी, कन्यासार, अरणी, गाजवां, बनफ्सा, नाखूना, ज्योतिष्मती, दुरालभा, बा... १-१ तोला। मत्स्य तैल १० तोले, तिल तैल ४ सेर, कामुनी, कासनी, कसौंदी, कंघी, पुनर्नवा, शंखपुष्पी ४०-४० तोले। जल षोडष गुण। क्वाथ चतुर्थ भाग। क्वाथौषध तैल को मन्दाग्नि पर सिद्ध कर शीतल होने पर स्वच्छ वस्त्र से छान के कांच की बोतल में भर रखें।

बाह्य प्रयोग से बच्चा कुछ ही दिनों स्वच्छ हो जाता है। —श्री वैद्य मुकुन्द चन्द्र जी व्यास चन्द्र चिकित्सालय, कोलसावाड़ी (भगवानगंज) हैदराबाद

बालशोष चिकित्सा पद्धति में—

हमारे सफल सिद्ध प्रयोग

(१)

श्री. सत्यप्रसाद जी निर्भीक

योग—सूर्योदय से पूर्व एकत्रित काली गौ का मूत्र ऽ१, कश्मीरी केशर २ तोला, मुक्ता ३ मा० सब को खरल कर १ बोतल में भरदो। ४ से २० बूंद तक मातृ दुग्ध से कम से कम १५ दिन तक प्रयोग करें। बच्चों का सूख जाना (सूकिया) रोग जाता रहता है।

८३—बालकों के लिए घुट्टी—

सुहागा, इन्द्रजौ मीठे, एलवा, नौसादर, श्वेत-जीरा, हींग सुनी २-२ माशा। सनाय, अजवायन, देशी उन्नावदाने, अमलतास गूदा, मुलहठी, कालानमक, हल्दी, मोथा, पीपल छोटी, सोंठ ४-४ मासा, गुलाब के फूल, बिडङ्ग ६-६ मासा, सौंफ १२ माशा, बड़ी हरड़, जंगी हरड़, बहेड़ा, सूक्ष्मेला ७ मासा, मूर्वा फली १२ मासा सबको पीस २ माशे की घुटी पका पिलाने से सब बाल रोग जाते रहते हैं। उदर सूखा, मसान (जिसमें पसली चलना, कास, दस्त, वमन, ज्वर, प्यास, हिचकी, पीला रंग, लाल फोड़ा-फुंसी बिसर्प हो) ठीक हो जाते हैं कई बार प्रयोग में लाया गया है।

८४-मसान रोग में—

हाथी की लीद की धूनी उत्तम है। उक्त औषधियों का यदि सर्बत बनाकर प्रयोग किया जाय तो अत्युत्तम है। इसके लिए कच्चा चूने के पानी में उक्त औषधियों के क्वाथ में सर्बत तय्यार करें लाभप्रद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८५-सर्वत सूखा रोग में—

हरी असगन्ध का अर्क दुगनी सौंफ मिश्री व (शक्कर) मुनक्का, छुहारा मिलाकर शर्बत विधि से सर्बत निर्माण कर उसमें मुक्ता ३ माशा, कश्मीरी केशर १ मासा मिला शीशी में भर दें। मात्रानुपान २-३ तोला दुग्ध से सूखारोग, कास, श्वास, प्रमेह दौर्बल्य में लाभकर है। अनुभूत—कस्तूरी भी डाली जाय तो सोने में सुहागे का काम हो जावेगा।

८६-बालशोष हर तैल—

भांगरा स्वरस, तालमखाना पत्र रस, बंगला पान अर्क, मकोय स्वरस, घीकुमारी रस, क्काथ शालपर्णि, असगन्ध अर्क १०-१० तोला, बकरी दुग्ध, काले तिलों का तैल ऽ१।-ऽ१।।

सबको मिला कढाई में डाल मन्द अग्नि में पकावें। तैल मात्र अवशिष्ट रहने पर बोतल में रख १० तोला कपूर, १ तोला दालचीनी तैल, ३ मासा केशर उत्तम मिलावें।

प्रयोग—रीढ़ पर स्नेहन और २-३ बूंद कानों में भी डालें। इसके अभाव में कर्पूरादि तीनों लाक्षादि तैल में मिला उक्त विधि से प्रयोग करें।

८७-बालशोषे—

शुद्धमेला, मगर मच्छ दन्त, घेंघा ३-३ मासा, बीजशालपर्णि १५ मासा, कपूर, शु० सोहागा, शुद्ध मुरदासंग २-२ तोला—बंगला पान के रस से भावित कर मसूर प्रमाण गोली बना ३ बार दिन में मातृ दुग्ध व जल से घोल पिलावें। गुण—बालशोष, कृशता, पसली चलना, अफरा, दस्त, अजीर्ण में पूर्ण लाभप्रद है।

—श्री सत्यप्रसाद निर्भीक M. A. M. S.
राजकीय आयु० चिकित्सालय, गौचर (चमोली)

(२)

श्री वैद्य पूर्णचन्द्र जी जोशी आयुर्वेद भूषण

८८-(अ) नरवल्ली शुद्ध ला करके कपड़छन कर के शीशी में रख लें। फिर एक छोटी चम्मच प्रातः सायं ताजा या सुखोष्ण जल से दें।

गुण-१० से १५ दिन सेवन कराने पर बच्चे का कायापलट हो जाता है। अस्थि पंजर शेष बालक ठीक स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं।

८९-(ब) पीपल पुरानी छोटी, २ साल की प्रतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, दरियाई नारियल के खोपटा, चिटकी, बंसलोचन, जहर मोहरा खताई, मिश्री समान भाग लेकर कपड़छन करके शीशी में रख लें। अनुपान-मधु या माता के दुग्ध से सुबह शाम मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक बड़े शिशु को ४ से ६ रत्ती देना चाहिए। गुण—सर्व बाल रोग पर परीक्षित है। उचित अनुपान से सर्व रोग ठीक होते हैं।

९०-(स) गौदंती हरताल सफेद उत्तम की भस्म १० तोला, शुद्ध गंधक आंवलासार २ तोला दोनों को खरल में डाल कर ३ घंटे खूब घोट लें। मात्रा १ रत्ती, अनुपान काली गौ का मूत्र १ सेर लेकर १ तोला केशर असली ५ तोला गौमूत्र में खरल करके बाकी जो मूत्र है उसमें मिश्रण कर कपड़ा से छान कर शीशी में रख लें। इस अर्क को ५ बून्द के साथ तीन समय देना शत प्रतिशत सफल अनुभूत योग है।

९१-बाल कल्याण सुधा—

विधि—कैलशियम हाईपोफोस्फेट ६ औंस, सोडियम् हाईड्रोफोस्फेट ३ औंस, पोटासियम हाईपोफोस्फेट २ औंस, ग्लीसरीन ७ औंस, एसिड-हाईपोफोसफेट १ ड्राम, शक्कर २०० तोला, जल २०० तोला लो। पहले मेगनेशिया कार्बो ८० ग्रेन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एनिथी आयास ८० बूंद मिलावें। फिर उसे २० औंस जल में मिलाकर छान लेवें। इस अर्क में ग्लेसरीन को छोड़के अन्य दवा मिलावें। फिर शक्कर तथा ग्लिसरीन मिलादें। अन्त में ३ मासे केशर असली मिलाकर बोतल में भरलें। मात्रा १० से ६० बूंद (या १ ड्राम या १ चाय का चम्मच) तक आयु और शक्तिअनुसार। अनुपान—माता के दुग्ध या जल के साथ मिला कर दें।

उपयोग—यह शर्बत अति स्वादिष्ट होने से सब बच्चे इसे प्रेमपूर्वक पीलेते हैं। यह बालकों के स्वास्थ्य की रक्षा करने और बल देने में अद्वितीय है। जुकाम, अपचन, दूध फेंकना, दांत आना, खांसी, हड्डियों की कमजोरी, दुबलापन, मानसिक बेचैनी, रोना, सुस्त रहना, ठंड लग जाना, गर्मी लग जाना, मौसम पलटने से बीमार हो जाना इन सब आपत्तियों से यह बाल कल्याण सुधा बालकों को बचाता है। इस शर्बत का नियमपूर्वक सेवन करते रहने से बच्चों पर अकस्मात् बीमारी का हमला हो जाने की भीति नहीं रहती, १५-२० दिन की आयु से ३ वर्ष तक के शिशु को यह बालसुधा देते रहने से भविष्य में भी देह सबल बनी रहती है और उस पर रोग का हमला अचानक नहीं होता। यह उत्तम पेय है।

—श्री वैद्य पूर्णचन्द्र जोशी,
जैन दातव्य औषधालय, मोचीबाड़ा, सीकर।

*

(३)

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त वैद्य भूषण, डी० आई० एम०
[धन्वन्तरि ग्रहणी रोगांक के विशेष सम्पादक]

९२—सजीव कर्कट (केकड़ा—जल का एक जीव) को लेकर उन्हें एक हाण्डी में बन्दकर, हांडी पर कपड़मिट्टी कर कण्डों की अग्नि में रख भस्म तैयार करें। मात्रा १/४ रत्ती, अनुपान—माता का दूध।

९३—कर्कट भस्म के स्थान पर कुक्कुटांडत्वक् भस्म का भी उपयोग कर सकते हैं। मात्रा आधी रत्ती

९४—ऊंट के पांवों की हड्डी जोकि बहुत पुरानी कहीं दबी पड़ी हो उसे घिसकर जल के साथ उपयोग करने से भी सूखा रोग चला जाता है। मात्रा १ रत्ती। बराबर ३-४ दिन तक प्रयोग करना चाहिए। रोता बच्चा हंसता हुआ खेलने लगता है। यह मेरा निजी परीक्षित योग है।

९५—नरकपाल भस्म। मात्रा १ रत्ती। अनुपान माता का दूध।

९६—घोंघा (जल जीव शंख में रहने वाला) की भस्म। मात्रा आध रत्ती, नर कपाल कीभस्म आध रत्ती। अनुपान—अर्क वेद मुश्क। मालिश के लिए कॉडलीवर आयल का उपयोग करें।

९७—शंख भस्म, कॉडलीवर आयल, मद्य, षड्गयूष से भी लाभ होता है।

९८—छछुंदा एक जीव विशेष सपेरों के पास से मिल सकता है। उसे लेकर एक चमड़े के थैले में बन्द करके मजबूत चौतरफा सिलाई कराकर बच्चे के गले में डाल दें, उसके मृत्यु होने तक गले में बांधे रखें, इससे सूखा चला जाता है। रात्रि में उसके कुटुर कुटुर करने का शब्द होता है। उसके मृत्यु होने पर वह कुटुर कुटुर का शब्द बन्द हो जाता है।

९९—काकजंघा बूटी की गांठ में होने वाले कीड़े को माता के दूध सहित पीस कर पिलाने से भी यह रोग चला जाता है।

अब बूटियों के प्रयोग पढ़िये—

१००—शंखपुष्पी के स्वरस को निकालकर रोगी बालक की पीठ पर मलें। कुछ देर के पश्चात् काले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या श्वेत रङ्ग के सूक्ष्म कीटाणु दृष्टिगत हों तो उन्हें अलग करते जांय, बाद में गौ के गोबर से वह स्थान शुद्ध कर डालें।

१०१-काकजंघा की पत्ती या खरैटी की पत्ती २॥ लेकर पान के रस से पीस कर पीठ पर लगावें। कई लोग लगे हुए (कत्थे चूने से युक्त) पान को दांतों से कुचलकर वही पान रोगी बालक की पीठ पर दबाते हैं, उस पान में खरैठी या काकजंघा की २॥ पत्ती भी रहती हैं। उससे भी कीड़े निकलते हैं।

१०२-नवसादर, तालाब की काई, बंगला पान पीसकर पीठ पर लगावें। शनिवार और मंगलबार को इससे भी कीटाणु निकलकर रोगी बालक ठीक हो जाता है।

१०३-कटे हुए नींबू में नवसादर पिसा हुआ डाल कर, उस निम्बू का रस रोगी बालक के कान में डालें।

१०४ गंधकाम्ल (*Sulphuric acid*) की एक बूंद एक छटांक जल में मिलाकर बार बार देना भी लाभप्रद है।

१०५—संजीवनी बटी (शार्ङ्गधरोक्त), शृंग भस्म, बबूल गोंद भुना हुआ समान भाग लेकर पीसकर आध रत्ती माता के दूध से दें।

१०६—बसन्तमालती, प्रवालपंचामृत और लोह भस्म उत्तम समान भाग लेकर उचित मात्रा में प्रयोग करने से यह रोग निश्चय चला जाता है। साथ ही चन्दनादि तेल की मालिस, चतुर्भुजी (अतीस, काकड़ासिंगी, पीपल, नागरमोथा) तथा असगंधचूर्ण ४-४ रत्ती का प्रयोग दूध से करते रहना चाहिए।

१०७-गुड़हल के फूलों का शरबत इस रोग में अति लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

१०८-बदांल को शनिवार के दिन आमंत्रित कर रविवार के दिन लावें। उसे ताबीज में रखकर गले में बांध दें।

१०९-बलतंर वृक्ष जिसकेफूल लाल २ होते हैं, उसको गले में बांधने से भी लाभ होता है।

११०-नीम, चमेली, काकबूटी, जो पुताई में काम लाई जाती है, उसकी कोमल लकड़ी का एक गोल हार बनाकर गले में पहना दें। ज्यों ज्यों लकड़ी सूखती जाती है, त्यों त्यों बच्चे का सूखा रोग भी नष्ट होता जाता है।

—श्री मुन्नालाल गुप्त वैद्य
पुरानी दाल मन्डी, कानपुर

(४)

वैद्य श्री. पं० रामनरेश जी मिश्र साहित्यायुर्वेदरत्न, एम० ए०

बाल शोष रोग में निम्न अवस्थाओं में ये योग लाभकारी हैं—

(१११) ग्रहणी में—

[१] आयुर्वेदिक—जातीफलादि चूर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर रस, अथवा महा गन्धक योग का सेवन करना चाहिए।

[२] होमियोपैथिक—कल्केरियाफास, कल्केरियाकार्ब।

[३] हार्वोमिनरल—अल्बोसांग, सालफोस, आइडोफोस।

(११२) आमाशय और आंत्र के उपद्रव में—

[१] आयुर्वेदिक-हिंग्वाष्टक चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक भस्म, बालरस, कुमार कल्याण रस।

[२] एलोपैथिक—एवोमिन पिल्स।

[३] होमियोपैथिक-ऐंगस्टियुरा।

(११३) खटिका पूर्ति के लिए—

[१] आयुर्वेदिक-प्रवालपिष्टी, गोदन्ती, बंशलोचनादि के योग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२] एलोपैथिक-कैल्सियम विद विटामिन डी की गोली।

[३] होमियोपैथिक — कल्केरियाफास, एसाफिटिडा।

(११४) रक्ताल्पता–

[१] आयुर्वेदिक-लौहभस्म स्वर्ण माक्षिकभस्म, माण्डूर भस्म।

[२] एलोपैथिक-विटामिन सी की गोली, लिवर एक्सट्रैक्ट।

[३] होमियोपैथिक-केलिफास।

(११५) स्नेहन मर्दन के आयुर्वेदिक योग—

शास्त्रीययोग-लाक्षादि तैल, चन्दनादि तैल बला तैल चन्दनबला लाक्षादि तैल।

अनुभत एवं परीक्षित योग—

(*A*) केंचुओं को सरसों के तेल में पकाकर लगाना चाहिए।

(*B*) काकमाची की पत्ती ढ़ाई की संख्या में लगाया हुआ पान-२ बीड़ा। दोनों को मुंह में चबाकर पीडित रोगी की कमर के ऊपर रीढ़ पर पीक फेंकें और मलें।

(*C*) भैंस की गोबर का रस बच्चे की रीढ़ पर मलना चाहिये।

(*D*) गुड़ूच्यादि तल १० बूंद पिलाना चाहिए।

(११६) स्नेह मर्दन के एलोपैथिक योग—

(*A*) काडलिवर आयल खाने और लगाने दोनों काम में लाया जाता है।

(*B*) हेलीबट लिवर आयल भी खिलाने से भी लाभ होता है।

ब्रांकाइटिस में पेनीसिलीन बी सोडियम का इन्जेक्शन मांसगत दें। कुछ अन्य अनुभूत एवं परीक्षित योग निम्नलिखित हैं-

[११७] कलई चूना-५ तो., मिश्री ५ तो., जल ५ सेर। सबों को घोलकर ३ दिन धूप में छोड़ दें। फिर मोटे कपड़े से छानकर बोतल में रखलें। मात्रा १ चम्मच। वायु विकारादि में लाभप्रद है।

खटिका की पूर्ति करता है। इसमें सोडाबाई कार्ब मिला देने पर अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

[११८] पीपल, अथवा लहसुन से दूध को पका कर शुद्ध शिलाजीत १ रत्ती से २ रत्ती तक नित्य सेवन करना चाहिए।

[११९] घोंघे को कीड़े सहित पानी में औटायें और अश्वगंधादि चूर्ण दूध में पाक कर मिश्री के साथ खाकर उक्त रस को पी जायें। सुखण्डी दूर होती है।

भोजनोत्तर अरिविन्दासव और प्रातः सायं रस पीपरी देने से भी अच्छा लाभ करता है।

कालीगाय का मूत्र २० तोला, केशर १ तोला- दोनों को मिलाकर १० बूंद की मात्रा से पिलावें और २ तोला लाक्षादि तैल नित्य मालिश करें। १५-२० दिन में लाभ होता है।

गोदन्ती भस्म, प्रवालभस्म, वंशलोचन, सोहागा, लावा और सबके बराबर सितोपलादि-चूर्ण घी के साथ देने से लाभ होता है।

[१२०] कुमारकल्याण रस, रस पीपरी, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, वंशलोचन, छोटी इलायची, स्फटिक (फिटकिरी) भस्म मिलाकर मधु के साथ १ रत्ती की मात्रा में ३ बार नित्य देने और कुमार-कल्याण तेल, काडलिवर आयल और चन्दनादि तैल मिलाकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(१२१) एलोपैथिक—

[१] एवोमिन्स १ गोली, कैल्सियम विद विटामिन डी १ गोली, ग्लूकोज १ तोला। सबको मिला कर ६ मात्रा बनाकर प्रतिदिन तीन मात्रा जल या दूध के साथ दें।

[२] हेली औरेंज या बिटाकोडको अथवा बिटामिन ए, डी, सी का मिश्रित योग पिलाना भी लाभप्रद हुआ है।

(१२२) यनानी—

[१] कुस्तांमरीजां और लाडक सपीस्ता के सेवन से कास श्वास ठीक हो जाता है।

-शेषांश पृष्ठ ६२ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतःशतोनुभूत निश्चित फलप्रद योग

इस प्रकरण में सूखा रोग पर अनेक बार परीक्षित हो चुकने वाले योगों को ही स्थान दिया गया है। आजकल अनुभूत योगों की भी मांग पर्याप्त रहती है। इन योगों के प्रस्तोता विद्वान चिकित्सक हैं। उनका अनुभव इनमें तब परिलक्षित होगा जब आप इन्हें प्रयोग कर देखेंगे। वस्तुतः सैंकड़ों रुपये खर्च करने पर भी कोई ऐसे सिद्ध योग नहीं बताता। परन्तु वैद्य समाज के लाभार्थ हमारे निवेदन पर अनेक योग भेज दिये। अतः धन्यवाद सहित इनमें गिने-चुने योग प्रकाशित किये जा रहे हैं। कुछ यथास्थान लेखों में ही आ गये हैं।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

१२६-आयुर्वेदीय मल्टी विटामिन ड्राप्स

[Ayurvedic Multi-vitamin drops]

आजकल सूखारोग पर एलोपैथिक मल्टी विटामिन ड्राप्स प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु वे मंहगे पड़ते हैं और ज्यादा गुणकारी नहीं रहते। हम अपना परीक्षित योग उसके बराबरी में दे रहे हैं—

गाय का घी १ भाग, तिली का तैल १ भाग, मधु ८ भाग। इनको मिलाकर खूब हिलावें। बस योग तैयार हो गया। इसे बच्चों की आयु के अनुसार ½ से २ चाय की चम्मच तक दिन में २-४ बार जन्म से ही प्रयोग करना चाहिए। इससे सूखारोग होने का डर नहीं रहता। यदि हो गया भी तो अच्छा हो जाता है। इसमें विटामिन ए, डी पर्याप्त विद्यमान हैं। —श्री डा. ए. एम. अडसोड

नांदगांव (खण्डेश्वर) अमरावती

१२७-हमारा सिद्ध योग—

यह योग छोटा पर लाभ बहुत करता है। मुर्गी के अण्डे की जो सफेदी है उसे लीजिये। उसी के बराबर पालक का रस लेकर दोनों मिलाकर कई दिन घुटाई करें। जब सूखा चूर्ण (पाउडर) सा बन जावे तो बालक की अवस्थानुसार ३ रत्ती से ५ रत्ती तक दूध के साथ देने से सूखारोग अवश्य ठीक हो जाता है।

-श्री डा. देवीसहाय आयुर्वेदाचार्य H. M. B. S.

शिव औषधालय, चूरू (राजस्थान)

१२८-गुरुओं की कृपा तथा तान्त्रिकों के साहचर्य से प्राप्त-

रस पीपरि, प्रवाल पिष्टी, गोदन्ती भस्म प्रत्येक समभाग। इनको घोटकर सुहागे की खील भी मिला लें। इस मिश्रण को २ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ दिन में ३ बार प्रयोग करायें। इस योग से हमें ८० प्रतिशत सफलता मिली।

१२९-कपर्दिका भस्म, सुहागे का लावा, शङ्ख भस्म, स्फटिका भस्म, ताल भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म प्रत्येक समभाग। इसको मिलाकर कागजी निम्बू के रस में खरल कर इसकी ७ भावना दीजिए। मात्रा ३ रत्ती, बकरी के दूध के साथ दें। यह ७५ प्रतिशत सफल रहा है।

१३०-मान्त्रिक-तान्त्रिक योग—

सूखारोग के लिए मन्त्र-

सात सरीसो सो रह गई।
बैठल योगिन तेल परोई॥
से तेल में लगे लिलारा।
तुम बांधो आसपास,
मोहि बांधो छवमास।
छव मास में किया खेती।
भूत वैताल समिटो॥
अंजनि के मन्त्र जहां वे तहां जाये।
सत गुरु के बन्दे पांव सिद्ध के दोहाई॥

इसी के साथ—दूयं कुमारीं ब्रह्मचारिणी दृष्टिदोष निवारण हनुमन्तं स्मराम्यहम्।

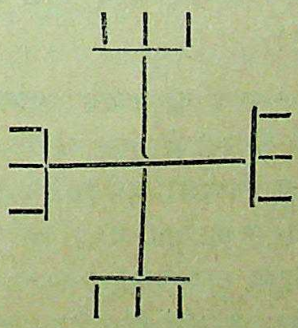

इस उपरोक्त यन्त्र को गोहमाठी से जमीन पर बनालें। गाय के गोयठा से आग जलाकर बकरी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध में बिना चीनी के ही घोंघो में खीर बनावें। कुमारी कन्या के द्वारा कते सूत को घोंघो में ११ बार लपेटे। उधर प्रथम ही दिये मन्त्र को पढ़कर ११ बार झाड़ें। खीर रोगी के हाथ में रखें व बाद में यही खीर रोगी को खिलायें। इससे सूखारोग (सुखंडी) एक ही बार में छूट जाता है।

—श्री रामवृक्ष (?)
(पता आदि अज्ञात-विशेष सम्पादक)

१३१-सफलतादायक प्रयोग—

इस योग को इस प्रकार बनाना चाहिए। काली कुक्कुटाण्ड की पीली जरदी तथा उत्तम मधु दोनों समभाग लेकर तामचीनी या मृत्तिका भाण्ड में रखकर अग्नि पर लकड़ी से चलाते हुए भूनें। जब लाल रंग होकर भरभराने लगे तब उतार कर साफ शीशी के बर्तन में रखें।

इसको ½ से १ माशा तक मां के दूध में रगड़कर सूखारोग ग्रस्त बच्चों को सेवन करायें। इससे कुछ दिनों में ही बालक हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान होता है।

—श्री वैद्य गणेशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
ढेंगो, पो० दंगवार (पलामू)

१३२-अनेक बार परीक्षित शास्त्रीय योग—

प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, योगेन्द्र रस ¼ रत्ती, कुमुदेश्वर रस ½ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती।

प्रातः सायं शहद के साथ अथवा दूध के साथ देने से उत्तम लाभ देखा गया। साथ में लाक्षादि तैल अथवा महामरिच्यादि तैल मर्दन का भी क्रम चला।

पथ्य-—पथ्य का ध्यान रखना प्रमुख है। विबन्ध की अवस्था में द्राक्षा, अग्निमांद्य की स्थिति में शुण्ठी व पिप्पली एवं अतिसार की हालत में नागरमोथा से आश्रित बकरी का दूध दूना दिया जाता है। शुद्ध माता का दूध तथा पौष्टिक सुपाच्य फलों का अच्छा लाभ होता है। मात्रा कम ही रखें।

—श्री श्रेयन्स कुमार 'बड़कुल' शास्त्री
शाहपुरा (भिटोनी) जबलपुर (म० प्र०)

१३३—कुंकुमादि वटी—

शुद्ध केशर २ माशा, कस्तूरी २ रत्ती, मुक्ता पिष्टी, गोदन्ती भस्म, जायफल, शंख भस्म, मण्डूर भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक ६-६ माशे।

विधि—उक्त सभी द्रव्यों में यथा प्रमाण छोटी मधुमक्खी का स्वच्छ मधु मिलाकर सुप्रकारेण मर्दन करें तथा १-१ रत्ती की गोलियां बना कर रख लें।

:: पृष्ठ ६० का शेषांश ::

[२] हब्बे कबीद नौसादरी, हब्बे जहर मोहरा काफूर सय्याल के प्रयोग से यकृत् दोष और विकृत मलादि दोष दूर होते हैं।

[३] जवाहर मोहरा खताई, खमीरा मर वारीद खास के प्रयोग से तथा रोगन बादाम के मालिश से भी अपूर्व लाभ होता है।

(१२३) होमियोपैथिक—

[१] नेट्रमफास और कल्केरियाफास का क्रम से प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद होता है।

[२] ऐलफैल्का भी लाभ करता है।

[३] ऐलफैल्को टानिक-(बोरिक एन्ड टैफेल) स्वास्थ्य सुधार में ७० प्रतिशत लाभप्रद है।

(१२४) हार्बोमिनरल—

[१] सामान्य रूप में सालफोस नित्य ३ माशा।

[२] उग्र रूप में आइडोफोरस नित्य ३ माशा।

दोनों योगों के बाद दूध के साथ अल्बोसांग भी लेना परमहितकारी है।

(१२५) मेरे गुरुवर पं. अंशुमान शर्मा जी एम० ए०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदाचार्य ने भी एक योग हाल ही इसी सप्ताह में बतलाया है। पाठक लोग परीक्षा कर अपना मंतव्य दें—

हड़कड़ंक का पंचांग सरसों तेल में पका कर लगाने से भी सूखा रोग दूर होता है। इसे जल के साथ पीसकर खाया भी जा सकता है।

—श्री पं. रामनरेश मिश्र एम.
परमानन्द आरोग्य सदन
कचनामा पो. मखदुमपुर (गया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपान—माता का दूध, पान पत्र स्वरस, तुलसी पत्र स्वरस।

गुण—बालशोष, बालयकृत्, कास, न्यूमोनियां, वमन, अतिसार, उदर शूल तथा बेचैनी और हाथ-पांव पटकने में, रोने में उक्त अनुपानों से यथा योग दें।

मात्रा—१ से ३ गोली १ से ३ वर्ष के बालकों को

१३४—बाल पौष्टिक शर्बत—

चूने का पानी १ पाव (आध सेर पानी में २ तोला चूना अनबुझा), केशर शुद्ध ३ माशा, ग्लूकोज ११ तोला। चूने के पानी को छानकर उसमें अन्य द्रव्य डाल कर मिश्रित करलें। ग्लूकोज के अभाव में मिश्री डालें।

मात्रा—१ चम्मच दिन में तीन समय।

गुण—तृष्णा, वमन, अतिसार तथा निर्बलता में उपयोगी है।

—श्री वैद्य नन्दलाल शर्मा
आयुर्वेद चिकित्सालय, कोड़वाखुर्द (अम्बाला)

१३५—विदारीकन्द, जौ और गेहूं का आटा मिला घी में भून यवागू बनाकर दिन में कई बार थोड़ा थोड़ा खिलावें। शहद और मिश्री मिलाकर गाय या बकरी का दूध पिलावें।

१३६—कच्चा पपीता लो। उसका थोड़ा सा हिस्सा खोलकर नमक, गेरू और विदारीकन्द का चूर्ण भर कपड़मिट्टी करके आंच में दे दें। जब मिट्टी सुरख हो जाय निकाल लें। ऊपर से मिट्टी हटाकर पपीते को पीस डालें। चूर्ण बन जायगा, नित्य प्रातः सायं मां के दूध में या शहद में १-१ रत्ती चटाने से लाभ होगा।

१३७—शोष रोग में नित्यप्रति पानी में एक बादाम पीसकर शहद में मिलाकर चटावें।

१३८—उबले हल्के दूध में प्रति दिन हेलीवट लिवर आइल या शार्क लिवर आइल १५ या २० बूंद प्रातः सायं बच्चे को देना चाहिए।

१३९—पीपल का चूर्ण १-१ रत्ती प्रातः सायं गोमूत्र में बच्चे को प्रयोग करायें। मकोय, मूली के पत्तों का स्वरस आग पर चढ़ायें। फटने पर सफेद जल रह जाय उसको छानकर बोतल में भर लें। ३०-३० बूंद शहद के साथ बच्चों को पिलावें।

—श्री डा० प्रेमदत्त शास्त्री
आर्यनगर, फिरोजाबाद (आगरा)

१४०—कुछ सफल योग—

बालकों को अत्युत्तम स्वर्ण भस्म ⅛ रत्ती को १ रत्ती दुधबच, अतीस के चूर्ण में मिलाकर नित्य प्रति दिन में दो बार खिलाने से अच्छा लाभ देखा गया है।

अतीस, काकड़ासिंगी, छोटी पीपल, नागर मोथा को समभाग चूर्ण कर लें। इसे १-४ रत्ती की मात्रा में (आधी रत्ती मोती या प्रवाल भस्म मिला लें तो अत्युत्तम) ३-४ बार शहद के साथ खिलाने से सुन्दर फायदा हो जाता है।

—श्री वैद्य मक्खनलाल बरनबाल
चौक, सुलतानपुर (उ० प्र०)

१४१—अनेक रोगियों पर अनुभव किया योग—

इस आश्चर्यजनक हितकारक योग की निर्माण विधि इस प्रकार है। सत्व गिलोय, टिंवल फिटकड़ी, टिंबल सुहागा, गिरी कमल गट्टा, दरियाई नारियल, मुक्ता शुक्ति भस्म, शंख भस्म, जीराश्वेत, मोचरस, लोध, जहरमोहरा, वंशलोचन, इलायची दाना, केकड़ा प्रत्येक १-१ माशा हो। इसमें कलेजी (विधिवत् बनाना चाहिए) ४ माशा डालें। इस प्रकार इस दवा को तैयार कर बालकों को सेवन कराने से बहुत लाभ होता है। सामान्यतः ये सर्व बाल रोगों पर प्रयोग किया जा सकता है।

—श्री नौबतराम जैन प्रभाकर
गढ़हीवाला (होशियारपुर) पंजाब

१४२—सिद्ध प्रयोग—

काली गाय का मूत्र ½ सेर तथा असली केशर १ तोला साफ बोतल में कार्क लगाकर एक सप्ताह रखें। ५-३० बूंद तक दिन में २-३ बार देने से बहुत लाभ हुआ। यह प्रयोग बाल रोगांक में था। इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक पृष्ठ २२ की शिशु संजीवनी तथा सुधा कल्प का प्रयोग हमने असाध्य बात रोगी पर करके लाभ उठाया है।

—श्री उमाशंकर दाधीच वैद्य
सनावद निवाड़ (म० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक रोगों में शीघ्र लाभ करने वाली

बिजली की मशीन

(MEDICO-ELECTRIC MACHINE)

अनेक रोगों की सफल चिकित्सा इस बिजली की मशीन द्वारा करें। बम्बई व दिल्ली के बाजारों में मिलने वाली सस्ती मशीनें शीघ्र खराब हो जाती हैं। हमारी मशीन में प्रमुख भाग कलकत्ता व बैंगलोर बिजली फैक्टरियों से बनकर आते तथा यहां फिट किये जाते हैं अतः हमारी मशीन बहुत समय तक काम देने वाली व टिकाऊ है। प्रभावशाली भी अधिक है जिसने मंगाई उसीने भरपूर प्रशंसा की है। विस्तृत विवरण पत्र डालकर मुफ्त मंगायें।

इस मशीन की विशेषताएँ

- मशीन के व्यवहार में किसी प्रकार की परेशानी नहीं, हर कोई बड़ी सरलता से व्यवहार कर सकता है।
- इसमें खर्चा नहीं के बराबर होता है, लाभ बहुत अर्थात् 'कम खर्च वाला मशीन'।
- अनेक रोगों में चमत्कारपूर्ण लाभ होने के कारण—
- रोगियों को आकर्षित करने का उत्तम साधन है।
- मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है, प्रभावशाली है, बहुत दिनों तक निर्बाध काम देने वाली है।
- टार्च में पड़ने वाली गोल सैल इसमें पड़ती हैं जो सर्वत्र मिल जाती हैं।
- गांव-शहर हर स्थान पर इससे काम लिया जा सकता है।

मूल्य--३५.०० मात्र। पैकिंग-पोस्ट व्यय लगभग ४.०० पृथक्। मशीन के साथ व्यवहार विधि बिना मूल्य भेजी जाती है। आर्डर के साथ ५ रु० एडवांस अवश्य भेजें।

नोट—डाइनुमा द्वारा चलने वाली—इसमें किसी प्रकार की बिजली अथवा बैटरी खर्च नहीं होती। बिना किसी प्रकार के अतिरिक्त खर्च के यह जन्म भर काम देती रहती है। मूल्य केवल ५०.००। पोस्ट एवं पैकिंग व्यय लगभग ५.०० रु. पृथक्। आर्डर के साथ १०.०० रु० एडवांस अवश्य भेजें।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए—

हमारे सफल सैट

निम्नांकित औषधियों के सैट सैकड़ों-हजारों रोगियों पर सफल प्रमाणित होने के बाद वैद्य समाज के समक्ष प्रस्तुत किये गये थे और अब तो इनकी पर्याप्त प्रसिद्धि है। अनेक चिकित्सक मंगाकर अपने रोगियों को व्यवहार कराते हैं। यदि आपकी चिकित्सा में इन रोगों से पीड़ित रोगी हो तो उसे निःसंकोच अवश्य सेवन करावें। अवश्य लाभ होगा।

१. श्वेतकुष्ठ हर सैट—सफेद दाग को नष्ट करने की सुपरीक्षित तीन दवाएें। समय कुछ अधिक लगेगा लेकिन सफेद दाग अवश्य नष्ट होंगे। आन्तरिक रक्त विकृति को दूर करती हुई स्थाई लाभ करने वाली औषधियां हैं। तीन औषधियां १५ दिन सेवन करने योग्य का मूल्य ५.००, पोस्टव्यय २.०६

२. स्त्री रोग हर सैट—इसमें २ औषधियां हैं-१ स्त्री सुधा २. मधुकाद्यावलेह। इनके सेवन करने से स्त्रियों के सभी विशेष रोग नष्ट होते हैं। निर्बलता, आलस एवं अनियमितता नष्ट होकर उत्साह, स्फूर्ति, एवं नीरोगता शीघ्र मिलती है। १५ दिन सेवन योग्य दोनों औषधियों का मूल्य ६.०० पोस्ट व्यय ३.५६

३. हिस्टेरिया हर सैट—स्त्रियों को दौरे से होने वाले इस रोग के लिए आशुलाभप्रद तीन औषधियों का व्यवहार अवश्य करावें। १५ दिन की दवा का मूल्य ?.००, पोस्टव्यय ३.५६

४. निर्बलतानाशक सैट—अनुत्साह एवं निर्बलता से जीवन का आनन्द ही चला जाता है। गृहस्थी भार स्वरूप हो जाती है। निम्न तीन औषधियों का व्यवहार कर अपनी खोई जवानी को फिर से प्राप्त करें—

मकरध्वज वटी—४१ गोलियों की शीशी २.६२,

धन्वन्तरि तैल—मुरदार नसों पर मालिश के लिए १ शीशी २.५०

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिए १ डिब्बा २.००

तीनों औषधियों का एक सैट-मूल्य ६.००, पोस्टव्यय १.५६

५. रक्तदोषहर सैट—इसमें धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ-तीन औषधियां हैं। इनके विधिवत् व्यवहार करने से सर्व प्रकार के रक्तविकार अवश्य दूर होते हैं। फोड़े-फुन्सी चकत्ते, कुष्ठ आदि सभी नष्ट होकर शरीर का रंग रूप निखर जाता है। १५ दिन की औषधियों का मूल्य ६.००, पोस्ट व्यय ४.५०

६. अर्शान्तक सैट—वटी-मलहम-चूर्ण यह तीन औषधियां दोनों प्रकार के अर्श नष्ट करने के लिए सफल प्रमाणित हुई हैं। १५ दिन की दवाओं का मूल्य ३.००, पोस्ट व्यय १.५६

७. वातरोग हर सैट—वात रोग हर तैल, रस एवं अवलेह—इन तीनों औषधियों के सेवन करने से जोड़ों का दर्द, सूजन, अंग विशेष की पीड़ा, पक्षाघात तथा सभी वातव्याधियों में अवश्य लाभ होता है। १५ दिन की दवा १०.००, पोस्ट व्यय १.५६,

नोट—वात रोगी यदि साथ में बिजली की मशीन का व्यवहार भी करें तो शीघ्र लाभ होगा इसमें संशय नहीं। बिजली की मशीन का मूल्य ३२.०० है। पोस्ट व्यय ४.००

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, [illegible] B. Sc., [illegible] गर्ग A., M. B. S.,

CC-0. [illegible] Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

आगामी वर्ष का विशाल विशेषांक

शिशु-रोगाङ्क

प्रकाशित होगा। वर्ष १९६० में प्रकाशित नारीरोगांक को आयुर्वेद समाज ने अत्यधिक पसंद किया। उसी शैली से इस शिशुरोगांक में सम्पूर्ण बालरोगों पर क्रमशः प्रकाश डाला जायगा। विस्तृत विवरण इसी अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वानों लेखकों एवं सफल चिकित्सकों की सेवा में साग्रह निवेदन है कि वे इस विशेषांक को सर्वोपयोगी एवं सुन्दर सर्वांगपूर्ण बनाने में हमको सहयोग दें। समय कम और कार्य अधिक है अतएव इसके लिए अपना कार्य शीघ्र प्रारम्भ करदें।

—सम्पादक।

सम्पादकः—
आयुर्वेदोपाध्याय देवी शरण गर्ग · ज्वाला प्रसाद अग्रवाल बी.एस-सी.

भाग ३५ जून १९६१
अङ्क ६ वार्षिक मूल्य ५.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषांक

कायचिकित्साङ्क—आचार्य श्री पं. रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी के सफल सम्पादकत्व में प्रकाशित यह अनमोल विशेषांक है। ५४४ पृष्ठों में १२५ चित्रों सहित विभिन्न रोगों की सफल चिकित्सा विधि, उनके विषय में आयुर्वेद के सिद्धांत एवं चिकित्सा सूत्र बड़ी सुन्दरता से वर्णित हैं। राज-संस्करण की थोड़ी प्रति शेष हैं। मूल्य ८.५०

माधव निदानाङ्क—इसमें सम्पूर्ण माधव निदान सरल हिंदी टीका सहित प्रकाशित है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत् सम्बन्धी एलौपैथिक समन्वयात्मक विवेचन दिया है। अनेक विशेष वक्तव्य एवं चित्र दिये हैं। पृष्ठ संख्या ६४४, चित्र १५५। मूल्य केवल ८.५०

पुरुष-रोगाङ्क (द्वितीय संस्करण)—इस विशेषांक में पुरुषों के विशेष रोगों पर अनुभवपूर्ण लेख, सफल चिकित्सा एवं प्रयोगादि वर्णित हैं। नपुंसकता, प्रमेह, मधुमेह, स्वप्नदोष, अण्डवृद्धि आदि रोगों पर विस्तृत विवेचन प्रकाशित किया है। मूल्य ६.००

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (द्वितीय संस्करण) प्रथम भाग—इसमें अनुभवी एवं ख्याति प्राप्त २१६ चिकित्सकों के ५०० सफल एवं सरल प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह प्रकाशित किया गया है। पूज्यपाद आचार्य यादव जी त्रिकम जी, स्वामी जयरामदास जी, श्री पं. मस्तराम जी, पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, पं. गोवर्धन शर्मा छांगाणी, पं. रघुवरदयाल भट्ट आदि विद्वानों के उत्तम प्रयोग इसमें प्रकाशित हैं। मूल्य ६.००

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (द्वितीय भाग)—मूल्य २.००

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (तृतीय भाग)—मूल्य २.००

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग)—इसमें २५१ अनुभवी वैद्यराजों के १३०८ उत्तमोत्तम, सरल, पूर्ण परीक्षित प्रयोगों का संग्रह है। मूल्य ८.५०

भैषज्य कल्पनाङ्क—१७२ परिभाषायें, १८ मूषाऐं, १० पुट, ३६ यंत्र, २०० कषाय, ११० चूर्ण, २८ गुग्गुल, १२ पाकावलेह, ३६ पानक, १२६ आसवारिष्ट, ७६ घृत, ३४ तैल के योगों की निर्माण विधि, गुण आदि वर्णित हैं। इस विशेषांक में १३ प्रकरण, ६४ लेखों का शृंखलाबद्ध एवं वैज्ञानिक रूपेण समावेश किया गया है। ६८ चित्रों द्वारा विषय को सुबोध बनाया गया है। यह विशेषांक वैद्य, निर्माणशालाओं के लिये अवश्य संग्रहणीय है। मूल्य ४.००

भैषज्य कल्पनाङ्क परिशिष्टाङ्क—इसमें धातुशोधन, मारण, भस्मीकरण, परीक्षा आदि भलीभांति समझाई गई है। मूल्य १.०० मात्र।

संक्रामक रोगाङ्क—चिकित्सकों को संक्रामक रोगों से बचने के उपाय, रोगी की सफल चिकित्सा विधि, शास्त्रीय विवेचन सभी कुछ है। मूल्य ४.००

संक्रामक रोगाङ्क परिशिष्टाङ्क— मूल्य १.००

कल्प और पञ्चकर्म चिकित्साङ्क—इस विशेषांक में अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कल्प तथा पञ्चकर्म विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य का ६० वर्ष का 'पंचकर्म' शीर्षक लेख अत्यधिक उपयोगी एवं मननीय है। २२० पृष्ठों में विविध कल्पों का विस्तृत वर्णन है। मूल्य ४.०० मात्र।

यकृत्प्लीहा रोगाङ्क— मूल्य २.००

चिकित्सा समन्वयाङ्क (प्रथम भाग)—पृष्ठ संख्या ३६४ अनेकों रङ्गीन एवं सादे चित्र मूल्य ४.००

चिकित्सा समन्वयाङ्क (द्वितीय भाग) २.००

प्रसूति विज्ञानाङ्क—प्रसूति तंत्र पर यह सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य है। सम्पादक श्री पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस. हैं। इसमें ५०४ पृष्ठ तथा १२५ चित्र हैं। प्रसूता को होने वाली व्याधियों के विषय में क्रमबद्ध सुन्दर विवरण दिया है। मू. ८.५०

नारीरोगाङ्क—५०० से अधिक पृष्ठ, १६१ चित्र तथा १३७ विद्वान लेखकों के लेख युक्त यह विशेषांक सम्पूर्ण नारी रोगों का क्रमबद्ध विवेचन, सफल चिकित्सा विधि एवं अनुभूत प्रयोगों का उपयोगी भंडार है। मूल्य ८.५०

भगंदर अंक	१.००	श्वास अंक	१.००
माता अंक	१.००	श्वास अंक (थीसिस)	१.५०
मधुमेह अंक	१.००	ग्रहणी रोगांक	१.००

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़। प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।
सम्पादक—वैद्य देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B. Sc., दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी भस्में

शहरों की चहल-पहल, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं एवं बिजली की चकाचौंध से पृथक विजयगढ़ जैसे ग्रामीण क्षेत्र में स्थित धन्वन्तरि कार्यालय निर्माणशाला में कंडों की अग्नि द्वारा भस्में शास्त्रीय गुणों से युक्त निर्माण हो सकती हैं। दहली, बम्बई, कलकत्ता जैसे शहरी स्थानों में बिजली से बनी भस्में उनकी तुलना में क्या ठहरेंगीं ? और फिर ६२ वर्ष के लम्बे अनुभव के आधार पर बनी हमारी भस्में एक विशेषता रखती हैं। अधिक प्रशंसा न करते हुए वैद्य समाज से हम विनम्र निवेदन करेंगे कि वह हमारी भस्मों को व्यवहार कर उनका चमत्कार देखें।

भस्मों के निर्माण में एक बड़ा व्यय कंडों का, जङ्गल में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का तथा मजदूरों का होता है। विजयगढ़ में यह तीनों वस्तुएं बहुत सस्ती एवं प्रचुर हैं। यही कारण है कि हमारी भस्में विधिवत् बनी होने एवं गुणों में सर्वोत्तम होने पर भी मू. में सस्ती होती हैं, अतएव वैद्यों को मूल्य से हमारी भस्मों के गुण न आंक कर उनको व्यवहार कर परीक्षा करनी चाहिए।

अकीक भस्म—चित्त की निर्बलता, नेत्रविकार, रक्तपित्त आदि रोग दूरकर शरीर को बलवान् बनाती है तथा थूक के साथ रक्त को रोकती है। मूल्य १ तोला ४.००, ३ माशे १.०६

अभ्रक भस्म नं. १–फेफड़े, यकृत, स्नायु और मन्दाग्नि से उत्पन्न रोगों की सुप्रसिद्ध दवा है। पुराना बुखार, खांसी, शारीरिक क्षीणता, श्वास, रक्ताल्पता, अम्लपित्त, संग्रहणी, पाण्डु आदि में आशातीत फल दिखलाती और शरीर में नूतन रक्त का संचार करती है। यह आयुर्वेद-चिकित्सा की सबसे अधिक काम में आने वाली भस्म है। मूल्य १ तोला ४०.००, ३ माशे १०.०६

अभ्रक भस्म नं. २ (शतपुटी)–इसमें उपर्युक्त वर्णित गुण हैं। मूल्य १ तोला ३.०६

अभ्रक भस्म नं. ३ (२५ पुटी)–इसमें न्यून गुण हैं। मूल्य १ तोला १.५६

कपर्द भस्म—पेट का दर्द, परिणामशूल, अम्लपित्त और अग्निमान्द्य में बहुत गुणकारी है। मूल्य १ तोला ०.३७

जहरमोहरा भस्म—यह शारीरिक एवं मानसिक बल को बढ़ाने वाली तथा विषनाशक है। अजीर्ण वमन, दाह, हैजा, अतिसार, यकृत-विकार, घबराहट जीर्णज्वर, बालकों के हरे-पीले दस्त एवं सूखा-रोग में यह अति लाभदायक है। मूल्य १ तोला २.०६

ताम्र भस्म नं. १—शतप्रतिशत विशुद्ध तांबे से बनाई जाती है। उदर-रोग यकृत् प्लीहा, शूल-रोग, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, शोथ रक्तविकार, हिचकी आदि रोगों में प्रयुक्त होती है। अन्य अशुद्ध भस्मों की तरह धन्वन्तरि ताम्र भस्म से क्लान्ति भ्रान्ति की उत्पत्ति नहीं होती। मूल्य १ तोला ६.००, ३ माशे १.५६

ताम्र भस्म नं. २–१ तोला ३.०६, ३ माशे ०.८१

ताम्र भस्म नं. ३–१ तोला १.५६, ३ माशे ०.४४

त्रिवङ्ग भस्म नं. १—गदला, गन्दे द्रव्ययुक्त बार-बार पेशाब होने पर इसका उपयोग लाभदायक है। विशेष गुण की जानकारी के लिए चिकित्सक से परामर्श करें। मूल्य १ तोला ४.५०, ३ माशे १.२५

त्रिवङ्ग भस्म नं. २–१ तो. १.००, ३ मा. ०.३१

कांत लौह भस्म–रक्त को बढ़ाती है और जीर्ण शीर्ण शरीर का फिर से निर्माण करती है। पाण्डु, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, खांसीयुक्त पुराना बुखार, अम्लपित्त आदि रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। मूल्य १ तोला २.०६, ३ माशे ०.५६

नाग भस्म नं. १–इस भस्म के सेवन से अपची, रक्तस्राव, मन्दाग्नि, खांसी, कमजोरी आदि रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। मूल्य १ तोला ३.०६

नाग भस्म नं. २–१ तोला १.२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाल भस्म नं. १-पित्त की अधिकता से होने वाले रोगों की खास दवा है। पुराना बुखार, खांसी, पित्तज कास, रक्तपित्त, तृषारोग, ज्वर, मूत्रविकार आदि में पूर्ण लाभकारी है। इससे कैल्शियम के अभाव की पूर्ति होती है। मूल्य १ तोला ६.०६, ३ माशे १.५६

प्रवाल भस्म नं. २-१ तो. २.०६, ३ मा. ०.५६

प्रवाल भस्म नं. ३-१ तो. २.०६, ३ मा. ०.५६

प्रवाल भस्म नं. ४-१ तो. १.८०, ३ मा. ०.५०

प्रवाल भस्म (चन्द्रपुटी)-गुण-धर्म प्रवालभस्म के समान हैं। इसमें पित्तशामकता और शीतलता अधिक है। मूल्य १ तोला १.८७, ३ माशे ०.५०

बंग भस्म नं. १-असंयम से पैदा होने वाले रोग तथा दुर्बलता इससे दूर होती है। यह शरीर को ताकत देती है। विशेष जानकारी वैद्य से प्राप्त करें। मूल्य १ तोला २.२५, ३ माशे ०.६२

बंग भस्म नं. २-१ तोला १.००, ३ माशे ०.३१

वैक्रांत भस्म—यह हीरे का उपरत्न है। हीरा भस्म के अभाव में इस भस्म का प्रयोग होता है। यह भस्म पुराने बुखार-खांसी, शारीरिक क्षीणता, मूत्रविकार, बात-पित्त और कफ विकारों में फायदेमन्द है। मूल्य १ तोला ७.५०, ३ माशे २.००

मंडूर भस्म नं. १—चिकित्सा शास्त्र में पुराने मण्डूर का बड़ा महत्व है। १०० वर्ष पुराने मण्डूर से ही धन्वन्तरि मण्डूर भस्म बनती है। इससे यकृत-रोग, पांडु, कामला, रक्ताल्पता, मन्दाग्नि, संग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं और शरीर में नया खून बनाती है। मू. १ तोला ०.७५

मंडूर भस्म नं. २-पांडु-रोग, रक्ताल्पता, यकृत विकार आदि में विशेष लाभकारी तथा रक्त-वृद्धि के लिये उपयोगी है। मूल्य ०.६२

माणिक्य भस्म-शरीर की सब धातुओं को पुष्ट कर बुद्धि बढ़ाती है। मू. १ तो. १५.००, ३ मा. ४.००

मुक्ताशुक्ति भस्म-शारीरिक दुर्बलता, ज्वरयुक्त खांसी, पित्तज दाह, पित्तज परिणामशूल, रक्तपित्त, आदि में लाभदायक है। मूल्य १ तोला ०.५६

मोती भस्म नं. १-यह पुष्टि-प्रदायक सुप्रसिद्ध दवा है। इससे चितभ्रम, घबराहट, धड़कन, स्मृति-भंग, अनिद्रा आदि में लाभ होता है। यह सौम्य और शीतल है। नाक, मुंह, मलद्वार आदि से गिरने वाले रक्त को बंद करती है। मूल्य १ तोला १००.००, ३ माशे २५.०६

मुक्ता भस्म नं. २-१ तो. ८४.००, ३ मा. २१.०६

यशद भस्म-यह कफ-पित्त नाशक है। नेत्र-रोग, दाह, रक्तस्राव, पित्त रक्तविकार खांसी, अतिसार, संग्रहणी, क्षीणता, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि रोगों में लाभदायक है। मू० १ तोला १.७५, ३ माशे ०.५०

रौप्य (चांदी) भस्म नं. १-यह शारीरिक दुर्बलता में लाभदायक है और वातपित्त के विकारों का शमन करती है। उदर की वायु-विकृति में विशेष गुणकारी है। मूल्य १ तोला १२.००, ३ माशे ३.०६

रौप्य भस्म नं. २-१ तो. ६.००, ३ मा. २.३१

लौह भस्म नं. १ (३०० पुटी)-खून को बढ़ाकर सभी धातुओं को बढ़ाना इसका मुख्य गुण है। यकृत, प्लीहा, उदर-रोग, पांडु, कामला, कृमिरोग, शोथ, मन्दाग्नि-मूलक रोग, ज्वर आदि में अच्छा लाभ करती है। आयुर्वेदिक भस्मों में यह सर्वाधिक रक्तबर्धक भस्म है। मूल्य १ तो. ८.००, ३ मा. २.०६

लौह भस्म नं. २ (शतपुटी)-मूल्य १ तो. १.७५

लौह भस्म नं. ३-मूल्य १ तोला ०.८१

शंख भस्म-यकृत्, तिल्ली, उदर के विकार, आमांश, संग्रहणी, पेट-दर्द, अम्लपित्त, गुल्म, अजीर्ण आदि में यह विशेष उपयोगी है। मू. ०.३८

पता-धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगामी विशाल विशेषांक

शिशुरोगांक

धन्वन्तरि का आगामी विशेषांक "शिशु-रोगांक" प्रकाशित करना निश्चित किया गया है। २० वर्ष पूर्व धन्वन्तरि-बालरोगांक प्रकाशित किया गया था जिसका द्वितीय संस्करण भी समाप्त होगया है तथा मांग बनी हुई है। उसी विशेषांक का पुनर्मुद्रण करने के स्थान पर एक दम नवीन विशेषांक प्रकाशित करना उचित प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि पहिले बाल रोगांक में समस्त बाल रोगों का विवरण व चिकित्सा नहीं दी गई है तथा वह अधूरा साहित्य है। अब हम विस्तृत सूची आगे प्रस्तुत कर रहे हैं। इसी क्रम से समस्त बालरोगों पर इस नवीन विशेषांक में सरल भाषा में वर्णन एवं सफल चिकित्सा विधि देने का विचार है।

नारीरोगांक भी पहिले प्रकाशित हुआ था, लेकिन वर्ष १९६० में प्रकाशित नारीरोगांक एकदम भिन्न तथा सर्वाङ्गपूर्ण प्रकाशित किया गया जिसे सभी पाठकों एवं विद्वानों ने अत्यधिक पसन्द किया। उसीसे उत्साहित होकर नवीन बालरोगांक प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है तथा हमको विश्वास है कि नारी रोगांक से भी अधिक आप इसे पसन्द करेंगे। इसका नाम "शिशुरोगांक" होगा।

बालक अबोध होते हैं, अपने कष्ट को कहना तो दूर रहा, परिचारक या चिकित्सक को भली प्रकार रोग परीक्षा भी नहीं करने देते, और कभी-कभी अनुभव एवं अनुमान से ही रोग निश्चय करके औषधि देनी पड़ती है। हमारी अभिलाषा है कि इस विशेषांक की सीधी-सादी सरल भाषा हो, सभी बातें समझाकर इस प्रकार लिखी जांय कि जिससे साधारण पढ़ी-लिखी माताएें तथा ग्रहस्थ समझ सकें; स्वयं पढ़कर अपने परिवार के बालकों का समय पर उपचार कर सकें जिससे कि उनकी व्यथा बढ़े नहीं। साथ ही चिकित्सक समाज भी बालरोगों के विषय में सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हुए अपने देश के भावी नागरिक बालकों को नीरोग बनाने में इस विशेषांक से सहायता प्राप्त कर सकें।

लेखकों से निवेदन—

लेखकों तथा विद्वानों की सेवा में प्रथक पत्र द्वारा लेख भेजने एवं सहयोग देने की प्रार्थना की जायगी, फिर भी जिन सज्जनों की सेवा में हमारी अज्ञतावश या असावधानी से पत्र न पहुँचे तब भी वे हमारे इस निवेदन पर ध्यान देकर अपना उपयोगी लेख निःसंकोच भेजें और हमको अधिक से अधिक सहयोग दें। विद्वानों के सहयोग से ही धन्वन्तरि के विशेषांक सर्वोपयोगी बनते रहे हैं तथा भविष्य में भी हमको उनके सहयोग का सहारा है। आशा है सदैव की भांति इस बार भी विद्वानों से पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

आप कोई १-२ या अधिक विषय चुन सकते हैं तथा उन पर अपने लेख भेज सकते हैं, लेकिन प्रत्येक विषय का लेख प्रथक ही होना चाहिए। एक ही लेख में अनेक विषय पर लिखना उचित नहीं होगा, क्योंकि प्रस्तावित विषय सूची के अनुसार ही प्रत्येक विषय क्रमशः लिया जायगा। विषय सूची में एक शीर्षक के नीचे जो कई-कई छोटे शीर्षक लिखे हैं उन्हें आप एक ही लेख में ले सकते हैं।

लेखकों से लेख प्राप्त करने की अन्तिम तिथि १५ सितम्बर १९६१ है। जून के अन्त तक यह सूचना सभी लेखकों को मिल जायगी ऐसा विश्वास है। ढाई माह लेखकों को लेख तैयार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये मिलते हैं। आशा है और निवेदन भी है कि आप इस अवधि में अपने लेख सुन्दर व सचित्र बनाकर अवश्य भेज देंगे।

आप किस विषय पर अपना लेख भेजेंगे, यदि यह शीघ्र ही सूचित करदें तो बड़ी कृपा होगी। इससे यह लाभ होगा कि जो विषय अछूते रहेंगे उनके लिए अन्य लेखकों से समय रहते निवेदन कर सकेंगे, या उनके लिए सम्पादकीय विभाग अन्य प्रबन्ध कर सकेगा। आशा है कि लेखक समुदाय हमारी इस प्रार्थना पर तुरन्त ध्यान देगा।

चित्रकारों से निवेदन—

चित्रकार सज्जन आगे प्रस्तावित विषय सूची में प्रकाशित शीर्षकों से सम्बन्धित चित्र बनाकर हमारी सहायता करें यह हमारा विनम्र निवेदन है। उनके सहयोग से हम इस विशेषांक को अधिक आकर्षक बना सकेंगे। विविध पत्र-पत्रिकाओं में अनेकों उपयोगी चित्र आपके देखने में आये होंगे। यदि आप उनके कटिंग भेज सकें तो हमको उनसे बहुत सहायता मिल सकेगी।

हमारी विनम्र प्रार्थना है कि सभी विद्वान लेखक, चित्रकार एवं पाठक अपनी शक्ति एवं समझ के अनुसार हमारा सहयोग करें जिससे कि हम इस विशेषांक को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाकर वैद्य समाज एवं बाल-समाज की कुछ सेवा कर सकें।

निवेदक

वैद्य देवीशरण गर्ग

आगामी शिशुरोगाङ्क की प्रस्तावित विषय सूची

१—शिशु का गर्भाशय स्थित जीवन

२—प्रसव के पश्चात् शिशु की तात्कालिक चर्या-नाड़ी परिकल्पन, नाभि पक जाना, नाभि से रक्तस्राव, सद्योजात शिशु पालन विधि।

३—नवजात शिशु का दुग्धपान

—मां के दूध की उपयोगिता; मां का दुग्ध न पिलाने की प्रथा; धात्री दुग्ध प्रथा; धात्री का भोजन।

—स्तनों की रक्षा, स्तनसम्पत; मानसिक चिन्ताओं का दुग्ध पर प्रभाव; बच्चे को पर्याप्त भोजन न मिलने के लक्षण; दुग्ध पान में सावधानियां; दूषित दुग्ध की पहचान व चिकित्सा; मां के दूध के अभाव में शिशु-पोषण; कृत्रिम दुग्ध, गौदुग्ध।

४—बालकों में रोग परीक्षा विधि

५—बालकों को औषधि मात्रा का विचार

६—बालग्रह-

बालग्रहोत्पत्ति, ग्रहसंख्या, रोगी परीक्षा, रोग निदान विधि, चिकित्सा-सूत्र, औषधि प्रयोग विधि, विविध ग्रहों की चिकित्सा। मंत्र-तंत्र।

७—दन्तोद्भेद क्रम—

दांत निकलने के समय होने वाले रोग तथा उनकी चिकित्सा; दन्तोद्भेद के समय सावधानियां।

८—पाचन सम्बन्धी विकार—

अल्प पोषण, हीन भोजन, अति भोजन, प्रोटीन जन्य अजीर्ण, मेदजन्य अजीर्ण, कार्बोहाइड्रेट का अजीर्ण; बमन; क्षीरालसक, बालातिसार—पथ्यापथ्य, सावधानी एवं चिकित्सा; अफारा, अफारा में फलवर्ति या सपोजिटरी का उपयोग; दूध पलटना; उदरशूल आदि।

९—अस्थि विकार (Rickets)-चिकित्सा, पथ्यापथ्य व सावधानियां।

१०—कर्ण रोग—कान का बहना, कर्णशूल, बधिरता, कर्णक्ष्वेड, कान में किसी वस्तु का पड़ जाना आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११-कास-
काली खांसी (Whooping cough), कौआ लटकने से कास, ज्वरादि व्याधि के साथ कास।

१२—कृमिरोग—
बिभिन्न प्रकार के उदर कृमियों का परिचय, जीवन चक्र, उनसे उत्पन्न रोग और उनकी परीक्षा, चिकित्सा, पथ्यापथ्यादि।

१३—गुद पाक, गुदभ्रंश, गुदार्श

१४—रोहणी या गलौघ (Diptheria)

१५—चर्मरोग—खाज, छाजन, दाद, फुसियां निकलना आदि

१६—गलरोध या गले की गांठों का फूलना-कारण, लक्षण एवं चिकित्सा

१७—चोरक रोग, तड़का रोग

१८—मोतीझरा या मोतीज्वर (Typhoid fever)

१९—माता या चेचक—
बृहद् मसूरिका (Small pox)
लघु मसूरिका (Chicken pox)
रोमान्तिका (Measles खसरा)
शीतला के प्रकोप से बचने के उपाय,
टीका, उसकी उपयोगिता एवं उससे हानियां

२०—पित्ती उछलना

२१—पैतृक उपदंश

२२—मिट्टी खाना-इससे उत्पन्न होने वाले रोग और उनकी चिकित्सा

२३—मुखपाक (मुहां)

२४—रात्रि को डरना (Night mare)

२५—लू लगना

२६—सर्दी या नाक बहना (प्रतिश्याय)

२७—सूखारोग

२८—स्कर्वी (Scurvy)

२९—हकलाना या तुतलाना

३०—हृदय के रोग
हृदय के अपूर्ण विकास से उत्पन्न विकार तथा स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव, आमवातजन्य हृद्रोग आदि।

३१—बालाक्षेप (मृगी)

३२—बाल यकृत् वृद्धि—
कारण, लक्षण, सूक्ष्म विकृति (Pathology) साध्यासाध्यता, चिकित्सा, पथ्यापथ्य-पूर्ण विस्तार से।

३३—शैशवीय अंगघात, अर्दित, रोहणीजन्य अंगघात, सिरःकम्प

३४—जूं और लीख

३५—बालप्रमेह या मूत्र के रोग, शुक्लिमेह

३६—वातश्लेष्मक ज्वर (Pneumonia)

३७—बालकों के नेत्ररोग—
नवजात शिशु का नेत्राभिष्यन्द, बालकों के नेत्र दुखना; रोहे-कारण, लक्षण, संक्रमण एवं उसे रोकने के उपाय तथा चिकित्सा विस्तार से;
—पलक के किनारे मोटे होना
—परवल
—आंख में चोट लगना, आंख में कुछ पड़ जाना
—फूली, जाला आदि कारण एवं लक्षणानुसार चिकित्सा
—कुकूणक

३८—अन्य बाल रोग
नक्तान्ध्य (रतौंधी), वात बलासक, पाषाणगर्दभ, निरुद्ध प्रकश, सन्निरुद्ध गुद, बालक्षय, तालुकण्टक, प्लीहोदर, बालकों में पाण्डुरोग, अश्मरी, अहिपूतना, महापद्म, पारिगर्भिक आदि

३९—बालकों की आदतें, उनके विषय में अभिभावकों की सावधानी

४०—बालकों के व्यायाम

४१—बालकों के बौद्धिक विकास के लिए उपाय

४२—अन्य आवश्यक विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंक में

विषय-सूची

स्नान गुणाः - - - ७

पंचगव्य और उसके विविध प्रयोग—
श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य ८

आयुर्वेद और तत्व श्री बुद्धिप्रकाश जिज्ञासु - - २६

श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग) श्री अवधविहारी मिश्र - - ३२

ज्वर और उसकी अनुभूत चिकित्सा—
श्री सत्यदेव शर्मा - - ३४

ग्रामीण सूक्तियों में आरोग्य और स्वावलम्बन चर्चा—
श्रीगोपाल दास अग्रवाल - - ३६

कपास श्री ओ३म्प्रकाश शर्मा - - ४१

मेरी सफल चिकित्सा विधि—
असाध्य रोग पर कौड़ी की करामात—
श्री नन्दलाल शर्मा - - ४२

प्रमेह पिड़िका पर मेरा अनुभव—
श्री शिवकुमार शर्मा - - ४३

गुप्तसिद्ध प्रयोग— श्री हरीराम मिश्र - - ४५
श्री डा० ओमपाल आर्य - - ४५
श्री रामकृष्ण शर्मा 'कौशिक' - ४५
श्री रामकुमार मिश्र - ४५
श्री वैद्य चिरंजीलाल गर्ग - ४६

समाचार एवं सूचनाऐं - - - - ४७

सम्पादकः- आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग.
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B.Sc. दाऊदयाल गर्ग A.,M.B.S.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ --चरक सू० १-४०

भाग ३५ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र | जून १९६१
अङ्क ६

स्नान-गुणाः

स्नानं दाहश्रम हरं स्वेद कण्डू तृषापहम् ।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रिय विशोधनम् ॥
तन्द्रा पापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम् ।
रक्त प्रसादनं चापि मतमग्नेश्च दीपनम् ॥
बाह्यैश्च सेकैः शीताद्यैरूष्मान्तर्यातिपीड़ितः ।
नरस्य स्नात मात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥

—भा० प्र०

स्नान दाह, थकावट, पसीना, खुजली और प्यास को नाश करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला, मल नाशक तथा श्रेष्ठ इन्द्रिय शोधक है।

स्नान, तन्द्रा और पाप को नष्ट करने वाला, सन्तोष प्रदान करने वाला, पौरुषवर्धक, रक्त को स्वच्छ करने वाला एवं अग्नि को दीप्त करने वाला कहा गया है।

बाहरी सेचन एवं ठण्डक आदि से अति पीड़ित मनुष्य की अग्नि शरीर के भीतर चली जाती है। वह स्नान करने मात्र से ही दीप्त हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष्कार प्राप्त–

पंचगव्य और उनके विविध प्रयोग

श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य

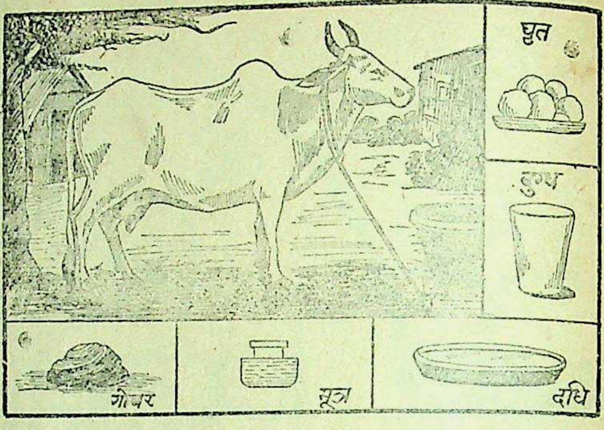

"पंचगव्यं दधि-क्षीर-घृत गोमूत्र गोमयै ॥:"

—द्रव्य गुण विज्ञानम्

अर्थात्—गाय के दूध, दही, घी, मूत्र तथा गोबर को आयुर्वेद शास्त्र में पंचगव्य के नाम से कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक के गुण तथा कार्य-कारिता का वर्णन आगे कुछ विस्तार से किया जावेगा।

१–दूध

गोदुग्ध के सामान्य गुण—

स्वादु शीतं मृदुस्निग्धं बहलं श्लक्ष्ण पिच्छिलम् ।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः ॥
तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्द्धयेत् ।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम् ॥

—चरक सू० अ० २७

अर्थात्–गोदुग्ध चरक के मतानुसार मधुर, शीतल, कोमलता उत्पन्न करने वाला, स्निग्ध (स्नेह-युक्त), बहल (स्थूलता लाने वाला–वैद्यक शब्द सिंधु), श्लक्ष्ण (चिकना 'श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपिहि चिक्कणम्" इति वै. श. सि.), पिच्छिल (सजल श्लक्ष्ण), गुरु (भारी), मन्द (अर्थात् शरीर में स्थापयित्व लाने वाला) तथा प्रसन्नता देने वाला है। इस प्रकार गोदुग्ध में दश गुण हैं। यही दश गुण ओज में हैं अतः "सर्वदा सर्व भावानां सामान्यं वृद्धि कारणम्" अर्थात सदा सब प्रकार से समान गुण वाले पदार्थ मिलकर एक दूसरे को बढ़ाते हैं, इस नियम के अनुसार गोदुग्ध ओज को बढ़ाता है। जीवन देने वालों में श्रेष्ठ है और रसायन है।

वक्तव्य—

(१) ओजो विवर्द्धनम् (परिभाषा)—

"हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम् ।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाविनश्यति ॥"

—चरक

अर्थात्—हृदय में पीलापन लिये जो शुद्ध रक्त होता है उसे ओज कहते हैं। यह अत्यन्त अल्प परिमाण में होता है। इसके नाश होने से मनुष्य नष्ट हो जाता है।

"भ्रमरैः पुष्प फलेभ्यो तथा संध्रियते मधुः ।
तद्वदोजः शरीरेभ्यो गुणैः संध्रियतो सदा ॥"

—चरक

अर्थात्—भौंरा जिस प्रकार से फूल और फलों से मधु संचय करता है उसी प्रकार शरीर की धातुओं से ओज बनता है।

'रसादीनां शुक्रान्तानां तत्परं तेजस्तत्खल्वोजः।'

—सुश्रुत

अर्थात्–रस से लेकर वीर्य तक (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) इन सात धातुओं के सार भाग से जो आठवीं धातु बनती है वह तेज है और उसी को ओज कहते हैं।

प्रथमे जायते ह्योजः शरीरेऽस्मिञ्छरीरिणाम् ।
सर्पिर्वर्णं मधुरसं लाज गंधि प्रजायते ॥

—चरक

अर्थात्–मनुष्यों के शरीर में प्रथम जो ओज उत्पन्न होता है इसका रंग गो घृत के रंग के समान, स्वाद मधु जैसा और गंध साठी की ताजी भुनी हुई खीलों जैसी होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओज के भेद

ओज २ प्रकार का होता है (१) पर (श्रेष्ठ) (२) अपर (सामान्य)

(१) पर (श्रेष्ठ)--इसका अधिष्ठान (स्थान) हृदय है इसके थोड़े से भी नाश होने से मनुष्य तुरन्त मर जाता है। इसका परिमाण सारे शरीर में केवल आठ बूंद है-यह अपर (सामान्य) ओज का सार है।

'प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ बिन्दवो हृदयाश्रिताः'।
—चरक चक्रपाणि टीका

अर्थात्—दशों प्राणों का आश्रय स्थल जो ओज है उसका स्थान हृदय है और वह ८ बूंद है।

(२) अपर (सामान्य)---इसका अधिष्ठान रक्त-वाही धमनियां हैं जो हृदय से निकलती हैं। इसका परिमाण आधी अञ्जलि है और किन्हीं किन्हीं रोगों जैसे प्रमेह में इसका नाश भी हो जाता है इससे मनुष्य की कांति क्षीण हो जाती है और निष्क्रिय हो जाता है किंतु मरता नहीं है।

'अर्धाञ्जलिपरिमितस्यौजसो धमन्य एव हृदयाश्रिताः स्थानं तथा प्रमेहेऽर्धाञ्जलि परिदितमेवौजः क्षीयते, नाष्ट बिन्दुकं, अस्य हि किञ्चित्क्षयेऽपि मरणं भवति, प्रमेहे तु ओजः क्षये जीवत्येव तावत्।'
—चरक चक्रपाणि टीका सू० अ० ३०

उपरोक्त वर्णित ओज को गोदुग्ध, केवल गो दूध ही सर्वतोभावेन बढ़ाता है।

(२) प्रवरं जीवनीयानां—

'जीवितं शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगः।' —चरक

अर्थात्-शरीर, इन्द्रियां, मन और आत्मा इनके संयोग को जीवन कहते हैं। वास्तव में गो दूध देह और इन्द्रियों के संयोग को पुष्ट करने में अद्वितीय है। युग पुरुष महात्मा गांधी कहते हैं कि 'मांस बढ़ाने वाली निरापद वस्तुओं में दूध से बढ़कर कोई भोजन मैं नहीं जानता हूं।'

डा० के० एम० नंदकर्णी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "इण्डियन मैटेरिया मेडिका" में गोदूध के गुण लिखते हुए लिखते हैं कि--

'Milk contains all the elements necessary for the growth and nutrition of bones, nerves, muscles and other tissues. Milk contains also Vitamines which are nature's anti dotes to rickets, scurvy and other results of defective nutrition.

Cow's milk contains an average albuminoids 4, fat (butter) 4, sugar (milk sugar) 5, various salts 1, and water 86 percent. It contains a large proportion of Calcium Phosphate, an important salt required for the formation of bone and also for the proper coagulibility of the blood. The other mineral constituents of cow's milk are Potassium and Magnesium Phos-phates, Sodium Chloride and a trace of Phosphates of iron.

(Indian Materia Medica by Dr. K. M. Nandkarni)

अर्थात्-शरीर की अस्थियों (हड्डियों), नाड़ियों (वात नाड़ी संस्थान), मांस पेशियों तथा अन्य तन्तुओं को पुष्ट करने तथा वृद्धि के लिये जिन जिन उपादानों की आवश्यकता होती है वह सबके सब गो दुग्ध में विद्यमान हैं। गोदूध में वे विटामिन (जीवनीय तत्व) भी उपस्थित हैं जो बालकों के अस्थिक्षय (Rickets) तथा शोष या सूखा रोग (Marysmus) और उन रोगों की जो पोषण के अभाव से होते हैं, प्रकृति प्रदत्त औषध हैं।

गो दूध में एल्ब्यूमिन (एक प्रकार की शर्करा) ४ प्रतिशत, चर्बी (मक्खन) ४ प्रतिशत, शर्करा (दूध शर्करा) ५ प्रतिशत, अन्य लवण १ प्रतिशत तथा जल ८६ प्रतिशत है।

शरीर में अस्थि निर्माण के लिये तथा रक्त को उचित रूप में गाढ़ा बनाये रखने के लिये कैलशियम फास्फेट (एक लवण विशेष) की अत्यन्त आवश्यकता होती है, केवल आवश्यकता ही नहीं वरन् इसकी उपस्थिति अनिवार्य है, गो दूध में वह प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। गोदूध के अन्य खनिज अवयव पोटेशियम तथा मैगनीशियम सल्फेट (दोनों लवण विशेष हैं), सोडियम क्लोराइड (सांभर नमक) तथा स्वल्प परिमाण में लौह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवण हैं।

अतः 'गोदूध जीवनीय द्रव्यों में श्रेष्ठतम है" यह चरक वाक्य उपरोक्त प्रमाणों से पूर्णतया सम्पुष्ट है।

(३) क्षीरयुक्त रसायनम्-

रसायन शब्द के विभिन्न अर्थ हैं—

१. 'रसादीनां धातूना व्याप्यायनं रसायनम्।'

अर्थात् रस से शुक्र तक सातों धातुओं को पुष्ट करने वाले द्रव्य को रसायन कहते हैं। अथवा

२. 'रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यज्जरा व्याधि विनाशनम्।'

अर्थात् रसायन उसको कहते हैं जो बुढ़ापा तथा रोगों को नाश करे। अथवा—

३. 'स्वस्थस्यौजस्करं यत् तद्वृष्यं तद्रसायनम्' —चरक

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य के ओज को बढ़ाने वाला द्रव्य वृष्य अथवा रसायन कहाता है। अथवा-

४. 'लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।' —चरक

अर्थात् रसादि सम्पूर्ण धातुओं को लाभ करने वालों में परमोत्तम होने से इसको रसायन कहते हैं।

दीर्घायु, स्मृति, मेधा (बुद्धि का श्रेष्ठतम रूप), आरोग्य, यौवनावस्था, रूप, रङ्ग, स्वर (मधुर आकर्षक और गम्भीर), उदारता, शरीर और इंद्रियों का बल, वाणी में सिद्धि (बातचीत के द्वारा सुनने वाला वश में हो जाय), नम्रता (अपने स्वभाव में शालीनता) अथवा प्रेम (अपनी दृष्टि ऐसी हो जाय कि प्रत्येक व्यक्ति प्रिय लगे अथवा अपनी आकृति ऐसी हो जावे कि जो देखे वही प्रेम करने लगे) और अलौकिक सौंदर्य (प्रत्येक को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण) यह गुण रसायन सेवन से होते हैं। गोदूध सेवन से भी यह सब गुण होते हैं क्योंकि यह रसायन है।

विशेष--इस प्रकार के परीक्षण के लिये कम से कम एक वर्ष सेवन करना चाहिये।

गो दुग्ध के विशेष गुण-

(१) काली गो के दुग्ध के गुण—

"कृष्णगव्यावरं क्षीरं वातपित्त कफप्रणुत" यो. र.

अर्थात् काली गाय का दूध श्रेष्ठ होता है। बात, पित्त, कफ तीनों दोषों को शांत करता है।

Milk of black cow is very wholesome and good in "Vayu" diseases (Indian Materia Medica) ।

अर्थात् काली गाय का दूध पूर्ण भोजन है तथा वायु के रोगों को शांत करता है।

(२) पीली गो के दूध के गुण—

'पीतायां वात पित्तघ्नं।' —यो० र०

अर्थात् पीली गाय का दूध बायु तथा पित्त दोनों को शांत करता है।

Milk of yellow cows is good in Vayu and Pitta diseases." (*Journal Ayurved March 1926*)।

(३) लाल गौ के दुग्ध के गुण—

'रक्ताया वातहृत्परम चित्रायास्तद्वदाख्यातं।' --यो. र.

अर्थात् लाल तथा चितकबरी गाय का दूध वायु को शांत करने में सर्वश्रेष्ठ है।

"Milk of red or specked cow is good in Vayu diseases." (*J. Ayurved March 1926*)।

(४) सफेद गाय के दूध के गुण—

'श्वेतायाः श्लेष्मलं गुरु।' --यो० र०

अर्थात सफेद गाय का दूध कफकारक तथा भारी होता है।

(५) मृतवत्सा गाय के दूध के गुण—

'बालवत्सा विवत्सानां गवां क्षीरं त्रिदोषकृत।' यो. र.

अर्थात् जिस गाय का बछड़ा मर गया है उसका दूध बायु, पित्त, कफ तीनों दोषों को प्रकुपित करता है।

(६) छोटे छोटे पहाड़ों पर की गौओं के दूध के गुण-

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनांयथोत्तरम्।
पयौगुरुतरं स्नेहं यथाहार प्रवर्तते ॥ --भा० प्र०

अर्थात् जांगल (जहां जंगल अधिक हो अर्थात् अधिकांश देश सूखा हो), अनूप (जहां नदी, नालों, तालावों तथा झीलों की अधिकता हो) तथा छोटे छोटे पहाड़ों पर चरने वाली गायों का दूध क्रमशः (जांगल से अनूप, और अनूप से पहाड़ी) भारी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्नेहयुक्त होता है।

"Milk of small hill cows is more oily and heavy of digestion." (Journal Ayurved March 1926)।

अर्थात् छोटी छोटी पहाड़ियों पर होने वाली गायों का दूध अधिक चिकना तथा पचने में भारी होता है। (आयुर्वेद जर्नल)

(७) अधिक दिन की व्याही गाय के दूध के गुण—

'बष्कायण्यास्त्रिदोषघ्नंतर्पणं बलकृत्पयः। —यो० र०

अर्थात् अधिक दिन की व्याही हुई गो का दूध तीनों दोषों को शांत करता, तर्पण (मन को सन्तुष्ट करने वाला) तथा बल करने वाला है।

"Milk of cows calved long ago is a good tonic and checks Tridosh." (Journal Ayurved March 1926)।

(8)Milk of scanty eater cows is heavy, increases kaph, and is a very good tonic. (Journal Ayurved)

अर्थात् कम चारा खाने वाली गाय का दूध भारी, कफ बढ़ाने वाला तथा शक्ति देने वाला है।

(६) धारोष्ण दुग्ध के गुण—

धारोष्णं पवनप्रकोप शमनं दुग्धं गवां पुष्टिकृत।
पांडु कामलकां निहन्ति तरसा चीणोर्जकृच्छ्रीकरम्॥
दाहं देहगतं कराङ्घ्रिनयनज्वालां च पित्तोन्नतिं।
दुष्टास्त्रं कृशतां कृशानुजनितांकृच्छ्रांश्च रोगाञ्जयेत्॥

तथाच— —यो० र०

'धारोष्णं वा पयः सद्यो बातपित ज्वरं जयेत्'

—चरक

अर्थात् गाय का धारोष्ण दूध वायु को शान्त करता तथा पुष्टि देता है। पांडु, कामला को नाश कर ओज को बढ़ाता है। सारे शरीर की दाह और हाथ पैर तथा नेत्रों की जलन, पित्त की अधिकता, रक्तदोष, अजीर्ण के कारण हुई दुर्बलता तथा अन्य कष्टसाध्य रोगों को नाश करता है। यो० र०

धारोष्ण दूध वातपित्त ज्वर को आराम करता है। (चरक)

(१०) कच्चे दूध के गुण—

'आमं चीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम्।
तदपथ्यं भवेत्सर्वं गव्यमाहिषवर्जितम्॥

—यो० र०

अर्थात् कच्चा दूध पसीने के सूराखों को रोकने वाला, भारी, कफ तथा आम बढ़ाने वाला है। गाय तथा भैंस को छोड़कर सब कच्चे दूध हानिकारक हैं।

वक्तव्य—

गाय का दूध धारोष्ण पिया जा सकता है और ग्रीष्म ऋतु में गाय तथा भैंस दोनों के कच्चे दूध का पानक (लस्सी) पीया जा सकता है-शेष निषिद्ध हैं।

(११) पक्क (उवले) दूध के गुण—

भृतोष्णं कफ वातघ्नं श्रतशीतं तु पित्तनुत।
अर्द्धोदकं क्षीराशेष्टमामाल्लघुतरं हितम्॥

—यो० र०

अर्थात् उबला हुआ गरम गरम गाय का दूध कफ वायु को शांत करता है, और उबालकर ठण्डा किया हुआ पित्त को शांत करता है-आधा दूध तथा आधा पानी उबाला हुआ कच्चे दूध से हलका तथा लाभकारी है।

दुग्ध सेवन काल -

बालेष्वग्निकरं क्षये बलकरं वृद्धस्य रेतःप्रदं।
रात्रौ चीरमनेकदोषशमनं सेव्यं सदा प्राणिनाम्॥

—यो. र.

अर्थात् रात्रि को सेवन किया हुआ दूध बच्चों को भूख बढ़ाता है—क्षय रोगी को बल देता है, वृद्ध मनुष्य को वीर्य प्रदान करता है (सद्यः शुक्रकरं पयः अर्थात् दूध तुरन्त शक्ति देता है) तथा अनेक दोषों को शांत करता है। अतः सदा ही मनुष्यों को सोते समय दूध का सेवन करना चाहिये। तथा च—

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं दिनान्ते तु पयः पिबेत्।
मैथुनान्ते पिबेद्घृतं रजन्यन्तं जलं पिबेत्॥

अर्थात् भोजन के पश्चात् तक्र, रात को सोते समय दूध, स्त्री प्रसंग के पश्चात् घृत तथा प्रातः काल सोकर उठने पर जल का सेवन करना चाहिये।

वक्तव्य—

दूध पीने का शास्त्रीय विधान सायं भोजन के पश्चात ही है—अन्य समयों में साधारण रूप से दूध नहीं पीना चाहिये। इसमें निम्न युक्तियां हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) रात को पशु बैठे रहते हैं अतः उनका रात का दूध जो प्रातःकाल दुहा जाता है भारी होता है। विपरीत उसके दिन में चलते फिरते रहने के कारण दिन का दूध जो सायं दुहा जाता है–पचने में हलका होता है।

(२) प्रातः पिया हुआ दूध निश्चित रूप से भूख कम करता है–क्योंकि भारी होता है–कभी कभी-विरेचन भी कर देता है।

गो दुग्ध अमृत है—

अमृतं शिशिरे बह्निः, अमृतं प्रिय दर्शनं ।
अमृतं राज सम्मानं, अमृतं क्षीर भोजनम् ॥

अर्थात् जाड़े में अग्नि, अपने प्रियतम का दर्शन, सरकारी नौकरी अथवा अन्य राजकीय सम्मान, तथा दूध, दही, रबड़ी, खीर यह सब अमृत समान हैं। अमृत नाम की वस्तु आज तक देखने में नहीं आई यह सम्भव हो सकता है कि अमृत नाम किसी अन्य वस्तु का हो कि किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि भूमण्डल पर दूध ही अमृत है।

रोगों में दुग्धपान व्यवस्था—

(१) दीप्तानले कृशे पुंसि बाले वृद्धे रति प्रिये।
मतं हिततमं यस्मात्सद्यः शुक्रकरं पयः ॥
जीर्णज्वर मूत्रकृच्छे रक्तपित्ते मदात्यये।
कासे श्वासे प्रशंसन्ति गव्यं क्षीर भिषग्वराः ॥
–यो० र०

अर्थात् जिन लोगों का शरीर दुबला हो, बालक वृद्ध तथा स्त्री प्रसंग में अधिक अनुरक्त हों किंतु जठराग्नि मन्द हो उनके लिए दूध सबसे उत्तम भोजन है क्योंकि यह तुरन्त वीर्य उत्पन्न करता है। जीर्ण ज्वर (इक्कीस दिन के पश्चात् का ज्वर), मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित, मदात्यय, कास तथा श्वास में वैद्य लोग दूध का सेवन हितकारी मानते हैं।

(२) जीर्णज्वरे मनोरोगे शोष मूर्च्छा भ्रमेषुच ।
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥
गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् ।
बालवृद्धक्षतक्षीणक्षुद् व्यवायकृशाश्च ये ॥
तेभ्यः सदातिशयिते हितमेतदुदाहृतम् ॥
–भा० प्र०

अर्थात् जीर्ण ज्वर, मनोरोग (अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया तथा स्मरण शक्ति कम हो जाना) शोष (सूखा या तपैदिक) मूर्छा, भ्रम, ग्रहणी, पाण्डु रोग, दाह, तृषा रोग, हृद्रोग तथा गर्भस्राव इन सब अवस्थाओं में–नित्य दूध हितकारी है। बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण (चोट लगने के कारण अधिक रक्त शरीर से निकल गया हो) भूख तथा स्त्री प्रसंग से दुर्बल हुए मनुष्यों के लिये भी सदा ही अत्यन्त हितकारी है। तथाच—

"जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतिसारे विशेषतः" चक्रदत्त

अर्थात् दूध प्रत्येक रोग की पुरातन अवस्था में अमृत के समान लाभप्रद है। अतिसार अथवा ग्रहणी में विशेष रूप से लाभ होता है।

(४) उदर रोगों में दुग्ध प्रयोग—

प्रयोगाणाञ्चसर्वेषां अनुक्षीरं प्रयोजयेत् ।
दोषानुबन्ध रक्षार्थं बलस्थैर्य्यार्थमेवच ॥
प्रयोगापचितां गानां हितंह्यु दरिणांपयः ।
सर्वधातुक्षयार्तानां देवानाममृतंयथा ॥
— चरक चि० अ० १३

अर्थात् सब प्रयोगों के अनुपान स्वरूप दुग्ध का प्रयोग करना चाहिए। दूध के पिलाने से दोषों का अनुबन्धन नहीं होता, बल और स्थिरता की रक्षा होती है। औषधि प्रयोग से कृश हुये उदर रोगियों के लिये दूध इस प्रकार हितकारी है जैसे सर्व धातु क्षय होने से दुःखित हुये देवताओं को अमृत का पीना हितकारी होता है।

नवज्वरे च मन्दाग्नौ ह्याम दोषेषु कुष्ठिनाम्,
शूलिनां कफ दोषेषु कासनामतिसारिणाम्।
पयः पानं न कुर्वीत विशेषात्क्रिमिदोषदम् ॥
–यो० र०

अर्थात् सात दिन तक के ज्वर में, अजीर्ण में (जब तक पिछला खाया हुआ अन्न पच न गया हो) पेट में आम बनती हो, कोढ़ रोग में, पेट दर्द में, अथवा कफ बढ़ गया हो, खांसी (कफ वाली हो) तथा नवीन अतीसार में दूध नहीं पीना चाहिए।

तथाच—जीर्णज्वरे कफेक्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ॥
तदेव तरुणे पीतं विष बद्धन्ति मानवम् ॥
—चक्रदत्त

अर्थात्—जीर्णज्वर में कफ क्षीण हो गया हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो गोदुग्ध अमृत समान लाभकारी है। वही दूध नये ज्वर में पीया हुआ विष के समान मनुष्य को मार देता है।

क्षीरं न भुञ्जीत कदाप्यतप्तं तप्तं च नैतल्लवणेन सार्धम्।
पिष्टेन संधानकषाय मुद्गकोशातकी कन्दफलादिकैश्च ॥
—यो० र०

अर्थात्—दूध कभी भी कच्चा नहीं पीना चाहिए। उबला हुआ भी नमक के साथ नहीं पीना चाहिए। पिट्ठी या पिट्ठी की बनी वस्तुओं यथा बड़े, बड़ी या मिंगौड़ी अथवा कचौड़ी, आसव, अरिष्ट, सिरका, काढ़ा, मूंग, तोरई, कन्द (आलू, रतालू, मूली, गाजर, शलजम, भंसीड़े तथा सकरकन्द) और फल इनके साथ भी दूध नहीं पीना चाहिए।

दूध के साथ खाई जा सकने वाली वस्तुयें—

सहकार फलंचैव गोस्तनी माक्षिकं घृतम्।
नवनीतं श्रृंगवेरं पिप्पलीं मरिचानि च ॥
सितापृथकसिन्धूत्थं पटोलं नागराभयाः।
क्षीरेणसह शस्यन्ते वर्गेषु मधुरादिषु ॥
अम्लेष्वामलकं पथ्यं शर्करा मधुरेषु च।
पटोलः शाकवर्गेषु कटुकेष्वार्द्रकं भवेत् ॥
कषायेषुयवाश्चैव लवणेषु च सैंधवम् ॥
—यो० र०

अर्थात्—पका आम, मुनक्का, शहद, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, काली मिर्च, चिरवा (भुने चावल), सैंधा नमक, परवल, सोंठ, हरड़ तथा मीठे द्रव्य यह सब पदार्थ दूध के साथ खाये जा सकते हैं। तथा खट्टे पदार्थों में आंवला, मीठे द्रव्यों में बूरा या शक्कर, मिश्री, शाकों में परवल, चरपरे स्वाद वालों में अदरख, कसैलों में जौ और लवणों में सैंधानमक दूध के साथ खाना निषेध नहीं है।

मत्स्यमांसगुडमुद्गमूलकैः कुष्ठमावहति सेवितं पयः।
शाकजाम्बव सुरादि सेवितं मारयत्यबुधमाशु सर्पवत् ॥
—यो० र०

नैकध्यं पयसाऽश्नीयात्सर्वं चोष्णं द्रवाद्रवम्।
मूलकाद्याहरितकास्तैल पिण्याकसर्षपाः ॥
कपित्थं जम्बु जम्बीरं पनसं मातुलिङ्गकम्।
वांशं करीरं बदरं कदलीं चाम्लदाडिमम् ॥
फलमीदृग्विधं चान्यत्तद्वद्विदल्व फलान्यपि।
क्षीरे विरुद्धान्यैकध्यं सहवै भुज्यते यदि ॥
बाधिर्यमान्ध्यं वैवर्ण्यं मूकत्वं चाथ मारणम् ॥
—यो० र०

अर्थात्—मछली, मांस, गुड़, मूंग, मूली यह पदार्थ दूध के साथ खाने से कोढ़ हो जाता है। जामुन का शाक अथवा शराब यह दूध के साथ सेवन करने से तुरन्त सर्प के समान मार डालते हैं। तथाच—दूध के साथ पतला या कठिन कोई भी गर्म (उष्ण वीर्य) पदार्थ नहीं खाना चाहिए। मूली आदि हरे शाक, तैल, तिल का कल्क (पिसे हुए तिल) सरसों का शाक, कैथफल, जामुन, जम्बीरी नीबू, बांस, कटहल का शाक, टेंटी (करीर-फल) बेर, केला, खट्टा अनार तथा बेल अथवा इसी तरह के अन्य फल दूध के साथ खाने से बहरापन, गूंगापन, अन्धापन, शरीर का रंग बिगड़ जाना तथा मृत्यु तक हो सकती है।

(१) संतानिका (मलाई) के गुण—

संतानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत्।
तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलास बल शुक्रला ॥
—भा० प्र०

अर्थात् दूध की मलाई भारी, ठण्डी, काम शक्ति को बढ़ाने वाली, रक्तपित्त और वायु को शान्त करने वाली, मन को तुष्टि देने वाली, शरीर को बढ़ाने वाली, चिकनी तथा कफ, शान्ति और वीर्य को देने वाली है।

(२) पीयूष (पेवसी)—

"क्षीरं तत्कालसूताया घनंपीयूषमुच्यते।"
—भा० प्र०

अर्थात्—तत्काल ब्याही हुई गाय का दूध जो जमा हुआ सा होता है। उसे पीयूष (पेवसी) कहते हैं।

(३) किलाटक (उबाल कर फटे दूध का गाढ़ा भाग)—

"नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः"

अर्थात्—उबले हुये दूध को फाड़ने पर जो गाढ़ा भाग प्राप्त होता है उसे किलाटक या छैना कहते हैं।

(४) क्षीर शाक—(बिना उबले फटे दूध का गाढ़ा भाग)—

"अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीर शाकं हि तत्पय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् कच्चा दूध यदि फाड़ दिया जावे तो जो गाढ़ा अंश प्राप्त होगा उसे क्षीर शाक कहेंगे।

(५) तक्रपिण्ड—

दध्नातक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा ।
द्रव भागेन रहितस्तक्र पिण्डः स उच्यते ॥

—भा०प्र०

अर्थात्—दही अथवा मट्ठा डाल कर फाड़ा हुआ दूध फिर कपड़े में बांध कर उसका पानी अलग कर दिया जाय तो उस गाढ़े शाक को तक्रपिण्ड कहते हैं।

पीयूष आदि के गुण—

पीयूषश्च किलाटं च क्षीरशाकं तथैवच ।
तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणाबल वर्द्धनाः ॥
गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ।
दीप्ताग्नीनां विनिद्राणांविद्रधौ चाभिपूजिताः ॥

—भा० प्र०

अर्थात्—पीयूष (पेवसी), किलाटक, क्षीरशाक तथा तक्र पिण्ड ये सब काम शक्ति के बढ़ाने वाले, बल बढ़ाने वाले, भारी, कफ बढ़ाने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, तथा वातपित्त को शान्त करने वाले हैं। जिनकी अग्नि दीप्त हो, जिनको नींद नहीं आती हो तथा जिनके शरीर के अन्दर तथा बाहर विद्रधि (फोड़ा) हो उनके लिये लाभकारी है।

(६) मोरट—

नष्टदुग्धभवं नीरं मोरटं जय्यटोऽब्रवीत् ।

अर्थात्—दूध फाड़कर उसका पानी अलग कर लिया जाय तो उस पानी को मोरट कहते हैं। यह आचार्य जय्यट का मत है।

मोरट के गुण—

"मुख शोषतृषादाह रक्तपित्त ज्वर प्रणुत् ।
लघुर्बल करोरुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥

—भा० प्र०

अर्थात्—यदि मोरट में मिश्री मिलादी जावे तो वह मुख का सूखना (खुश्की), तृषा (प्यास), दाह, रक्तपित्त तथा ज्वर का नाश करता है। हलका है बलकारी है और भोजन पर रुचि लाने वाला है।

(७) सपरेटा दूध (Separated Milk)—

इसके गुण मोरट के ही समान हैं।

(८) क्षीरपाक—

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरान्नीरं चतुर्गुणं ।
क्षीरावशेषः कर्त्तव्य क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥

—चक्रदत्त

अर्थात्—औषध द्रव्यों से आठ गुना दूध और दूध से चौगुना जल इन सबको कढ़ाई में पकाना चाहिए। जब दूध मात्र शेष रह जावे तो उतार कर छान लेना चाहिए। यही क्षीर पाक है।

'क्षीर तिथिगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं समं मतम्,
क्षीरावशेषं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः।

——अष्टांग संग्रह

अर्थात् औषध द्रव्य को दरदरा कर उसमें १५ गुना दूध और दूध के बराबर जल डालकर औटावें। जब दूध शेष रहे तो कपड़े से छान लें इसे क्षीरपाक कहते हैं।

वक्तव्य—मैं प्रायः दूसरी विधि का ही प्रयोग करता हूँ। इतना विशेष है कि कुछ पानी अवशेष रहने देता हूँ।

(९) चरक विधान——

'चतुर्गुणेनाम्भसा वा श्रतं ज्वरहरं पयः।'——चरक

अर्थात् गौदुग्ध में चौगुना पानी डालकर पकाया गया दूध ज्वर को नाश करता है। तथा—

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम् ।
पेयं तदुष्णं शीतं वा यथा स्वं भेषजैः श्रतम् ॥

—चरक

अर्थात् सब प्रकार के जीर्णज्वर में दूध का पीना परम शांतिदायक है। वह दूध गर्म या दोषानुसार औषधियों से सिद्ध किया हुआ उचित रीति से सेवन करना चाहिये।

दुग्धभोजन–

(१) पायस—(खर)

अर्धावशिष्टे क्थनाद्दुग्धेऽष्टांशांश्च तण्डुलान् ।
पचेन्नातिद्रवघनं परमान्नमिदं स्मृतम् ॥
पायसं दुर्जरं बल्यं धातुपुष्टिप्रदं गुरु ।
शुक्लं मधुरं पाके पित्तघ्नं बृहणं सरम् ॥

—यो० र०

अर्थात् दूध उबलते उबलते जब आधा रह जावे तो उसमें दूध का आठवां भाग चावल डालना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये फिर पकते पकते जब न तो अधिक पतला रहे न अधिक गाढ़ा तब उसे उतार लें इसे पायस या खीर कहते हैं। यह बड़ा उत्तम भोजन है। खीर देरी से पचती है, बल देती है रसादि सातों धातुओं को पुष्ट करती है, भारी है, वीर्य बढ़ाती है, पाक में मधुर है, पित्त को शांत करती है, शरीर को पुष्ट करती है और शौच शुद्ध लाती है।

(२) गोधूम पायस–(दुग्ध में पका गेहूं का दलिया) अथवा दुध लपसी—

गोधूमपायस बल्यं मेदः कफकरं गुरु।
शीतलं पित्तशमनं वातकृच्छ्रुक बर्धनम्॥

—यो० र०

अर्थात् दूध में पकाया गया दलिया या दुध-लपसी बल देने वाली, स्थूलता बढ़ाने वाली, कफ कारक तथा भारी है। शीतल है, पित्त को शान्त करती है वायु तथा वीर्य को बढ़ाती है।

(३) दुग्धपानक (लस्सी)–

'यथोचित जलैयुक्तं ससितं दुग्धपानकम्'

अर्थात् दूध में आवश्यकतानुसार जल तथा मिश्री डालकर दुग्धपानक बनाया जाता है।

दुग्धपानक के गुण–

'वातपित्तहरं शीतं मूत्रलं दुग्धपानकम्'

अर्थात् कच्चे दूध की लस्सी शीतल, वातपित्त को शान्त करने वाली और मूत्र अधिक लाने वाली है।

(४) दुग्धचूर्ण (Milk powder)—

Plasmon is a pure soluble milk prepared by seperating casein of milk and leaving the albumin unaltered. It is a colourless white powder containing 12%of proteids, odourless and tasteless soluble in soup and milk. In water the powder swells upto a gelatinous mass which dissolves as more water is added. It contains albumin, phosphates of ammonium, sodium and potassium and a small quantity of common salt.

—Indian materia Medica.

अर्थात् दुग्ध चूर्ण से बनाया हुआ एक विशुद्ध पदार्थ है जो घुलनशील है। दूध की एक प्रकार की प्रोटीन जो थक्का के रूप में होती है उससे अलग करदी जाती है और एल्ब्यूमिन जो एक प्रकार की शर्करा है बिना किसी परिवर्तन के उसी में बनी रहने दी जाती है। यह एक चूर्ण है जिसमें कोई रंग नहीं होता। इसका वर्ण श्वेत होता है। इसमें ६२ प्रतिशत प्रोटीन (अन्य भेद) रहती है–इसमें न कोई गन्ध होती है और न कोई स्वाद। यह किसी भी रस तथा दूध में घुल जाता है। पानी में घोलने पर पहले तो चिपकाहट लिये एक थक्का सा हो जाता है जो और अधिक पानी डालने पर घुल जाता है। इसमें एल्ब्यूमिन, एमोनियम फास्फेट, सोडियम फास्फेट, पुटेशियम फास्फेट तथा अत्यल्प परिमाण में सांभर नमक होता है।

२ दधि-

पंचगव्य का दूसरा अवयव दधि है यह दूध से बनता है–उबले दूध में थोड़ा अम्ल, नीबू का रस, मट्ठा अथवा दही डालने से दूध जमजाता है। इसे दधि कहते हैं। यह क्रिया १२ घंटे में सम्पन्न होती है।

विवरण–

जब लैक्टिक अम्ल (*Lactic Acid*) तैयार करने वाले जीवाणुओं की प्रतिकिया (*reaction*) दूध पर होती है तो दही का निर्माण होता है। ये जीवाणु दूध में अभिषव (*fermentation*) उत्पन्न करके दुग्ध शर्करा का अधिकांश लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं। इस अम्ल के कारण दूध के मेद तथा प्रोटीन जम जाते हैं और दही बनता है–पौष्टिकता की दृष्टि से दूध के सब उपादान दही में भी मिलते हैं केवल दुग्ध शर्करा के स्थान में दुग्धाम्ल तथा दुग्धाम्लजनक जीवाणु मिलते हैं। ये दुग्धाम्लजनक जीवाणु अन्य बीजाणुओं का विनाश करते हैं। विधिपूर्वक दही सेवन करने से अन्त्र में होने वाले जीवाणु और उनका विष नष्ट हो जाता है। पाचन संस्थान के अनेक विकारों में दही बड़ा गुणकारक है।

–डाक्टर घाणेकर कृत सुश्रुत टीका से उद्धृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दधि के सामान्य गुण--

रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बल बर्द्धनम् ।
पाकेम्लमुष्णं वातघ्नं मङ्गल्यं बृहणं दधि ॥
पीनसे चातिसारे च शीतके विषम ज्वरे ।
अरुचौ मूत्रकृच्छ्रेच कार्श्यें च दधि शस्यते ॥

—चरक

अर्थात् दही भोजन पर रुचि लाता है, अग्नि को बढाता है, कामशक्ति को उद्दीप्त करता है-शरीर को चिकना करता तथा बल बढ़ाता है। विपाक में अम्ल तथा वीर्य में उष्ण है। वायु को शांत करता है। मंगलकारी तथा शरीर को पुष्ट करता है। प्रतिश्याय (जुकाम), अतिसार, जाड़ा लगकर आने वाला विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ तथा दुबलापन इनमें दही अत्यन्त हितकारी है। तथा च—

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ।
पाकेऽम्लं श्वासापित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥

—भ० प्रा०

अर्थात् दही उष्णवीर्य, अग्नि बढ़ाने वाला, स्निग्ध, किंचित कसैला है। भारी, पाक में अम्ल है। श्वास, रक्तपित्त, शोथ, मेद और कफ को बढ़ाने वाला है।

नव्य मत--

Curdled milk is said to be useful in jaundice, and an antidote of copper. It is also useful in fever and urinary disorders. Curds mixed with blackpepper administered to the person bitten by surpent is said to counteract the effects of poison

अर्थात् दही कामला रोग में लाभकारी है और ताम्र विष प्रभाव को शांत करता है। यह ज्वर तथा मूत्ररोगों में गुणकारी है। दही में कालीमिर्च मिला कर यदि सांप काटे मनुष्य को खिलाया जावे तो विष के प्रभाव को नष्ट करता है।

—डा० जे. एल. दुबे

वक्तव्य

शास्त्र का नियम है "अति सर्वत्र बर्जयेत्" अर्थात् हर काम की अति सीमा पार करना बुरा होता है। इसी के परिणामस्वरूप यह हानियां होती हैं जिनकी ओर शास्त्रकार ने 'श्वासपित्तास्र शोथ, मेदः कफप्रदम्' अर्थात् दही श्वास, रक्तपित्त, शोथ, मुटापा तथा कफ बढ़ाता है—कहकर संकेत किया है। हमारे एक मित्र कहा करते हैं कि दही अधिक सेवन करने वाले को चार लाभ होते हैं—

(१) उसको बुढ़ापा नहीं आता—अत्यन्त कामशक्ति बढ़ने के कारण मनुष्य अतिव्यवायी (अधिक स्त्री प्रसंग करने वाला) होकर बुढ़ापे से पूर्व अर्थात् जवानी में ही मर जाता है।

(२) उसको कुत्ता नहीं काटता—श्वास हो जाने के कारण हर समय लाठी लेकर चलना पड़ता है।

(३) उसके घर में चोरी नहीं होती-कफ बढ़ने के कारण हर समय खांसता रहता है अतः रात में भी जागता है।

(४) वह पानी में नहीं डूबता-शरीर में अत्यंत कफ बढ़ जाने के कारण इतनी ठंड बढ़ जाती है कि शरीर पानी छूना भी नहीं चाहता इसलिये वह पानी में घुसने का साहस भी नहीं करता। अथवा शरीर की कुल धातुयें या सार भाग कफ बन बन कर निकल जाती हैं। अतः शरीर में सिवाय हड्डी और त्वचा के मांस तो रहता ही नहीं शरीर बिल्कुल हलका हो जाता है और पानी में गिरने पर भी डूबता नहीं।

अतिरिक्त इसके दही की गणना शास्त्रकारों ने सात्विक भोजन में नहीं की जबकि दूध, घी को सात्विक भोजन कहा है। योगाभ्यासी के लिए दही खाना निषिद्ध है, दही राजसिक भोजन है।

(१) निःसार दुग्ध के दधि के गुण (सपरेटा का दही)-

असारं दधि संग्राही शीतलं वातलं लघु ।
विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोगनाशनम् ॥

— यो० र०

अर्थात् दूध में से मक्खन निकाल कर (सपरेटा का दूध) जमाया हुआ दही मल को बांधने वाला, सामान्य दही की अपेक्षा शीतल (अन्यथा उष्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्य), वातकारक, हलका, मल को रोकने वाला (कब्ज करने वाला), अग्नि को बढ़ाने वाला, भोजन पर रुचि लाने वाला तथा ग्रहणी रोग को नाश करने वाला है।

(२) मन्दक (कच्चे) दही के गुण—

'यदा क्षीरं विक्रियामापन्नं घनत्वं
यति तदा तन्मन्दकम्।'

अर्थात् जब दूध पूरे रूप से नहीं जम पाता तो उस कच्चे दही को मन्दक कहते हैं।

गुण—

'त्रिदोषं मन्दकं जातं वातघ्नं दधि॥' —चरक

अर्थात् मंदक दही त्रिदोषकारक है किंचित् वायु को शांत करता है।

(३) सर तथा मस्तु—

'दध्नस्तूपरि भोगो यो घनः स्नेह समन्वितः।
लोके सर इति ख्यातो, दध्नो वारि तु मस्त्विति॥
—यो० र०

अर्थात् दही के ऊपर का भाग जो गाढ़ा होता है और जिसमें स्नेह होता है सर कहलाता है। दही का पानी मस्तु कहाता है। दही के दो भाग होते हैं एक तो पानी जो अपने आप हर समय छूटता रहता है जिसे हलवाई प्रायः फेंक देते हैं यही मस्तु है शेष सर कहते हैं।

सर के गुण—

"शुक्लः सरः" (चरक) अर्थात् सर वीर्य बढ़ाने वाला है।

मस्तु के गुण—

'मस्तु क्लमहरं वल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत्।
स्रोतो विशोधनाह्लादि कफ तृष्णानिलापहम्॥
अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मल संग्रहम्॥
—यो० र०

अर्थात् मस्तु या दही का पानी थकान को दूर करता है, बल देता है, पचने में हलका है, भोजन में रुचि लाता है, शरीर के सूक्ष्म स्रोतों को शुद्ध करने वाला है, प्रसन्नता प्रदान करता है। कफ, प्यास और वायु को शांत करता है। कामशक्ति नहीं बढ़ाता और मल को प्रवृत्त करता है।

दधि सेवन का समय—

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते।
शरद्ग्रीष्म वसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम॥
—सुश्रुत

अर्थात् हेमन्त ऋतु (अगहन, पूष), शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुण) और वर्षा ऋतु (श्रावण, भाद्रपद) में दही खाना लाभकारी है किंतु शरद् ऋतु (क्वार, कार्तिक), ग्रीष्म ऋतु (जेठ, आषाढ़) और वसंत ऋतु (चैत्र, वैशाख) में दही नहीं खाना चाहिए। प्रायः करके (नित्य अथवा अधिकतया) नहीं खाना चाहिए जब कभी खाया जा सकता है।

वक्तव्य

क्वार-कार्तिक में दही खाने से रक्तपित्त, जेठ-आषाढ़ में खाने से संतत ज्वर (मियादी बुखार) और चैत्र-वैशाख में खाने से चेचक, मोतीझला उत्पन्न करता है।

सगुडं वातनुद्वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु।
न नक्तं दधिभुञ्जीत न चाप्यघृतशार्करम्॥
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णैनर्मालकैर्विना।
शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चांबु घृतान्वितम्॥
रक्तपित्त कफोत्थेषु विकारेष च नैव तत्॥
—भा० प्र०

अर्थात् दही में गुड़ डालकर खाने से वायु को नाश करता है, कामशक्ति को बढ़ाता है, शरीर को पुष्ट करता है, मन को संतोष देता है भारी है। दही रात में नहीं खाना चाहिये। यदि खाना ही पड़े तो बिना घी या बूरा डाले नहीं खाना चाहिए। बिना मूंग के पानी, शहद और आमले के अकेला भी नहीं खाना जाहिए। किसी गर्म पदार्थ के साथ नहीं खाना चाहिये। पानी या घी कुछ मिलाकर ही दही खाना चाहिए। साथ ही रक्तपित्त (मुंह, नाक, गुदा, लिंग अथवा शरीर के किसी भाग से रक्त गिरने पर) और कफ के विकार में कदापि किसी प्रकार नहीं खाना चाहिये।

भोजन प्रयोग—

(१) रसाला शिखरिणी—

दधिवद्धं तुल्यसितं त्वर्धपयो गालितं शनकैः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरिचैलाशशि सहितं भवति रसालामिधं लोके ॥

अथवा

ससितं दधिमध्वाज्य मरिचैलादि संस्कृतम् ।
मथितं कान्तकामिन्या कर्पूर परिवासितम् ॥
रसालाशिखरिण्युक्ता मार्जारी मार्जिका बुधैः ॥

—यो० र०

अर्थात् दही बांध लिया जावे जिससे उसका पानी अलग हो जावे । उसके बराबर मिश्री मिलाकर आधा दूध मिलाया जाय , फिर उसे मथकर उसमें काली मिर्च, इलायची तथा कपूर डाल दिया जावे इसे रसाला कहते हैं। अथवा दही शहद घृत मिश्री यथोचित मिलाकर उसमें मिर्च और इलायची डालकर मथ दिया जावे। इसे रसाला या शिखरिणी कहते हैं ।

रसाला के गुण—

रसाला शुक्रला बल्या रोचना वातपित्तजित् ।
स्निग्धा गुरु प्रतिश्यायं विशेषेण विनाशयेत् ॥

—यो० र०

अर्थात् रसाला या शिखरिणी वीर्य बढ़ाती है, बल देती है, भोजन पर रुचि लाती है, वायु और पित्त को शांत करती है। स्निग्ध और भारी है। प्रतिश्याय (जुकाम) को विशेष रूप से शांत करती है।

(२) दधिपानक (लस्सी)—

चतुर्गुणजलैर्युक्तं ससितं दधिपानकम् ।

—नव परिभाषा

अर्थात् चौगुना पानी तथा यथोचित मिश्री डालकर मथा हुआ दही, दधिपानक या लस्सी कहलाता है।

गुण—

दधिपानकं तृषाहरं मूत्रलं वातपित्तजित् ।

अर्थात् दही की लस्सी प्यास को शांत करती है, मूत्र विशेष लाती है और वायुपित्त को नाश करती है।

(३) दधि कुर्चिका—

दध्नासह पयः पक्वं सा भवेद्दधि कुर्चिका ।

—नव परिभाषा

अर्थात् दही के साथ दूध को मिलाकर खोये की तरह पकाया जावे तो उसको दधि कुर्चिका कहते हैं।

(४) तक्र—

इसका वर्णन आगे कुछ विस्तार से करना अभीष्ट होगा।

औषधि प्रयोग—

(१) दध्यादि तैल (गद निग्रह)—

दध्यारनालकोलाम्बुकुलत्थयवजैः रसैः ।
प्रत्येकमाढ़कमितैस्तिलतैलाढकं पचेत् ॥

बलापुनर्नवायष्ठीरास्नानागर दारुभिः ।
साश्वगन्धैः पलार्धांशैस्तत्पिबेत्पवनोदरी ॥

—ग० नि०

अर्थात् दही, कांजी, बेर का काढ़ा, कुलथी का काढ़ा और जौ का काढ़ा प्रत्येक ८ सेर, तिल तैल ८ सेर एवं खरैंटी, पुनर्नवा, यष्ठी मधु, रास्ना (बांयसुरई), सोंठ, देवदारु, अश्वगन्धा प्रत्येक ५ तोले यह सब द्रव्य कढ़ाई में डालकर आग पर चढ़ादें। जब तैल मात्र शेष रहे तो उतार कर छान लें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला ।

लाभ—पीने तथा लगाने से वातोदर नाश होता है।

तक्र

उदश्विन्मथितं घोलं तक्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।
ससरं निर्जलं घोलं मथितं सर वर्जितम् ॥
तक्रं पाद जलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्धवारिकम् ।

—योगरत्नाकर

अर्थात् तक्र चार प्रकार का होता है । (१) उदश्वित, (२) मथित, (३) घोल, (४) तक्र ।

(१) दही में पानी न डाला जाय और मथ लिया जाय एवं नवनीत (लौनी) न निकाला जाय उसे घोल कहते हैं।

(२) घोल में से यदि नवनीत निकाल लिया जाय तो वह मथित कहलाता है ।

(३) दही में चौथाई पानी डालकर मथ लिया जाय और नवनीत (लौनी) निकाल ली जाय तो उसे तक्र कहते हैं।

(४) यदि दही में आधा पानी डालकर मथ लिया जाय तो उसे उदश्वित् कहते हैं। अथवा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्थनेन पृथग्भूत स्नेहमर्धोदकं च यत् ।
नाति सान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥
—सुश्रुत सू० अ० ४५

अर्थात् दही में आधा जल मिला मथानी से मथकर मक्खन निकाली हुई मधुर, अम्ल और कषाय रस वाली अति गाढ़ी या अति पतली नहीं हो ऐसी छाछ को तक्र कहते हैं।

तक्र के गुण—

वातपित्त हरं घोलं मथितं कफपित्तनुत् ।
तक्र त्रिदोष शमनमुदश्वित्कफदं स्मृतम् ॥
—यो० र०

अर्थात् घोल वातपित्त को शांत करता है, मथित कफपित्त को नाश करता है, उदश्वित कफ बढ़ाता है और तक्र तीनों दोषों को शांत करता है।

कट्वर—

'दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ।'
—नव परिभाषा

अर्थात सारयुक्त दही, जिसके अन्दर सम्पूर्ण मक्खन मौजूद है, से जो तक्र बनता है उसे कट्वर कहते हैं।

विशेष—तक्र में से नवनीत निकाल लिया जाता है जब कि कट्वर में विद्यमान रहता है।

तक्र का प्रयोग—

शोफार्शो ग्रहणीदोषमूत्रग्रहोदरारुचौ ।
स्नेह व्यापदि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद्गरेषु च ॥
—चरक

अर्थात शोथ, अर्श, ग्रहणी दोष, मूत्र की रुकावट, आठों उदर रोग [(१) वातोदर (२) पित्तोदर (३) कफोदर (४) सान्निपातिकोदर (५) प्लीहोदर (६) बद्धोदर (७) क्षतोदर (८) जलोदर] अरुचि, स्नेह व्यापद् (तैल, घी पीने अथवा शरीर लगाने के कारण कोई रोग हो गया हो), पाण्डु और गर दोष (स्त्रियां पति को वश में करने के लिये मासिक धर्म, पसीना अथवा शरीर का मल पति को भोजन के साथ खिला देती हैं अथवा शत्रु छल से भोजन के साथ कोई दूषित पदार्थ खिला दे तो जो रोग होता है उसे गर दोष कहते हैं) इन सब रोगों में तक्र का सेवन करना चाहिए।

अर्श—

'नास्ति तक्रात्परं किञ्चिदौषधं कफवातजे ।'
—चरक

अर्थात संसार में मट्ठे से बढ़कर सूखे (बादी) बवासीर की कोई औषधि नहीं है।

ग्रहणी—

तक्रं तु ग्रहणीदोषे दीपनग्राहि लाघवात् ।
श्रेष्ठं मधुरपाकित्वान्न च पित्तं प्रकोपयेत् ॥
—चरक

अर्थात् ग्रहणी ["ग्रहणाद्ग्रहणी मता" अर्थात् जो अन्न को पचाने के लिये ग्रहण करती है उसे ग्रहणी कहते हैं] का कोई विकार हो उसके लिए तक्र श्रेष्ठ औषधि है क्योंकि यह अग्नि को दीप्त करता है, मल को बांधता है और पचने में हलका है। मधुर विपाक होने से पित्त को कुपित भी नहीं करता।

तथा—

गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥
—चरक

अर्थात् जो मनुष्य गुरुता, अरुचि, मंदाग्नि, अतिसार और वातकफ के रोगों से पीड़ित हों उनको तक्र अमृत के समान गुणकारी हैं।

विशेष प्रयोग—

नाति सान्द्रं मतं पाने स्वादु तक्रमपेलवम् ।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥
वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ।
शर्करामधुकोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥
यमानीसैंधवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ।
पिबेन्मधुयुतं तक्र व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ॥
मधु तैलवचाशुण्ठीशताह्वाः कुष्ठसैंधवैः ।
युक्तं प्लीहोदरोजातं स व्योषन्तूदकोदरी ॥
बद्धोदरी तु हबुषायमान्यजाजासैंधवैः ।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्र संयुतम् ॥
—चरक

अर्थात् सब प्रकार के उदर रोगों में सोंठ, मिर्च, पीपल तथा नमक डालकर बहुत गाढ़ा या बहुत पतला न हो ऐसा तक्र पीना चाहिए। वातज उदर रोग में पीपल और सैंधव मिला तक्र पीना चाहिए। पित्तज में मिश्री तथा मुलहठी का चूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालकर पीना चाहिए। कब्ज में सैंधानमक, अजवायन, जीरा और सोंठ, मिर्च, पीपल, शहद डालकर खट्टा और कुछ गाढ़ा तक्र पीना चाहिए। प्लीहोदर में शहद, तैल, घुड़बच, सोंठ, सौंफ, कूट और सैंधानमक डालकर तक्र पीवे। बद्धोदर में हाऊबेर, अजमायन, कालाजीरा और सैंधानमक मिला तक्र हितकारी है। छिद्रोदर में पीपल और शहद मिला तक्र लाभकारी है। तथा—

रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।
तक्र दोषाग्निविन्त्रिविधं तत् प्रयोजयेत् ॥
स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैतियः ।
तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते ॥

—चरक चि० अ० १४

अर्थात् वैद्य दोष और जठराग्नि का बल देखकर सर्व स्नेहांश (नवनीत) निकाले हुए, आधास्नेहांश निकाले हुए या बिल्कुल स्नेहांश न निकाले हुए तक्र का प्रयोग करें। तक्र से स्रोतस् मार्ग शुद्ध होने पर जो रस शरीर में पहुँचता है उससे पुष्टि, बल, वर्ण बढ़ता है और हर्ष उत्पन्न होता है।

अपिच—न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न
तक्र दग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥

—यो० र०

अर्थात तक्र के सेवन करने वाले को कभी कोई रोग नहीं होता जो देवताओं के लिए अमृत का महत्व है वही महत्व मनुष्यों के लिये तक्र का है,

क्वथित (उबले) तक्र के गुण—

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ।
पीनसश्वासकासादौपक्वमेव विशिष्यते ॥

—यो० र०

अर्थात् बिना उबला (कच्चा) मट्ठा पेट के कफ का नाश करता है, किंतु कण्ठ में कफ बढ़ाता है। जुकाम, श्वास और खांसी में उबलता हुआ मट्ठा लाभ करता है।

तक्र कुचिका—

'क्षीरं तक्रेण यत् पक्वं साभवेत्तक्र कुचिका'

—नवपरिभाषा

अर्थात् तक्र के साथ दूध को मिलाकर खोये की तरह पकाया जावे तो उसे तक्र कुचिका कहते हैं।

सेवन काल—

"भोजनान्ते पिबेत्तक्रं" अर्थात् मट्ठा भोजन के पश्चात् दोपहर को पीना चाहिए।

तक्रपान का निषेध—

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ।
न मूर्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्त पैत्तिके ॥

—सुश्रुत

अर्थात् मट्ठा ज्येष्ठ, आषाढ़, क्वार और कार्तिक इन चार महीनों में व्रण (जखम) वाले को, दुर्बल, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त के रोगी को कदापि किसी भी प्रकार सेवन नहीं करना चाहिए।

औषधि प्रयोग

(१) तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं
स क्षारमर्ति जठरे निहन्यात्।

—चरक

अर्थात जौ के आटे को तक्र में घोलकर आग पर पका लिया जाय फिर उसमें जवाखार (यवक्षार) डालकर पेट पर गर्म गर्म लेप किया जावे तो उदरशूल शांत होता है।

(२) तक्रारिष्ट (चरक संहिता अर्श रोगाधिकार)
(३) तक्रारिष्ट (भैषज्य रत्नावली, चक्रदत्त-संग्रहणी रोगाधिकार)
(४) तक्रमण्डूर (भैषज्य. शोथरोगाधिकार)
(५) तक्रवटी (भैषज्य ग्रहणी रोगाधिकार)

३. घृत तथा नवनीत—

पंचगव्य वर्ग का तृतीय अवयव घृत है और घृत का पूर्वरूप नवनीत होता है अर्थात् नवनीत या लौनी को ही गरम करके घृत बनाया जाता है अतः प्रथम नवनीत का ही वर्णन करते हैं।

नवनीत (दही से निकला हुआ)—

नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ।
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोर्दितकासहृते ॥

—भा० प्र०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् नवनीत या लौनी गाय की सबसे उत्तम है। इससे वीर्य बढ़ता है, शरीर का रंग उज्ज्वल होता है। अग्नि तथा बल बढ़ता है, मल बंधता है। वायु, रक्तपित्त, क्षय, अर्श, अर्दित और खाँसी का नाश होता है। नवनीत सभी के लिये हितकारी है किंतु छोटे बालकों के लिए तो अमृत है।

दूध के नवनीत (मक्खन) के गुण—

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत्।
वृष्यं बल्यमति स्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम्॥

अर्थात् दूध से निकाला हुआ मक्खन नेत्रों को हितकारी, रक्तपित्त शांत करने वाला, वीर्य और बल को बढ़ाने वाला और अति स्निग्ध है। मधुर विपाक, ग्राही (मल को बाँधने वाला) और शीतल होता है।

सद्यः नवनीत के गुण—

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु।
मेध्यं किञ्चित् कषायाम्लमीषत्तक्रांश संक्रमात्॥

अर्थात् तुरन्त का निकला हुआ मक्खन मीठा, मल बाँधने वाला, शीतल, हल्का, बुद्धि बढ़ाने वाला और थोड़ा मट्ठे का अंश मिला होने के कारण कुछ कसैला और खट्टा है।

बासा या रक्खा हुआ नवनीत—

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शः कुष्ठकारकम्।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम्॥

अर्थात् देर का रक्खा हुआ मक्खन क्षारयुक्त, चरपरा और खट्टा होने से वमन, अर्श और कोढ़ को उत्पन्न करता है। कफ बढ़ाता है, भारी है और शरीर में चर्बी बढ़ाता है।

घृत

सामान्य गुण—

घृतं पित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम्।
निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम्॥

—चरक सू० अ० १३

स्मृतिबुद्ध्याग्निशुक्रौजः कफमेदो विवर्धनम्।
वातपित्तविषोन्माद शोषालक्ष्मीज्वरापहम्॥
सर्वं स्नेहोत्तमं शीतं मधुरं रसपाकयोः।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्म सहस्रकृत्॥

—चरक सू० अ० २७

अर्थात् घृत पित्त और वायु दोनों को समान रूप से शाँत करता है। रस, वीर्य और ओज को बढ़ाता है। शरीर की दाह शाँत करता है, शरीर को कोमल बनाता है। स्वर को मधुर और गम्भीर बनाता है और वर्ण को उज्ज्वल करता है।

स्मृति, बुद्धि, अग्नि, वीर्य, ओज, कफ और मेद को बढ़ाता है। वातपित्त, विष (किसी भी प्रकार का) उन्माद, शोष (यक्ष्मा अथवा सूखा), दरिद्रता और ज्वर को नाश करता है। संसार में जितने स्नेह हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ है। वीर्य में शीतल, रस और विपाक में मधुर है। विधिपूर्वक संस्कार करने से हजारों गुनी शक्ति आ जाती है और हजारों ही कार्य करने में सक्षम (समर्थ) हो जाता है।

वक्तव्य

(१) पित्तानिलहरं—घृत पित्त और वायु को समान रूप से एवं सर्वतोभावेन शांत करता है। परिणामतः जो व्यक्ति गोघृत का सेवन करता है उसे लू अथवा Sun stroke नहीं होता। ऐसे व्यक्ति यद्यपि अत्यल्प हैं किंतु हैं सही। राजा साहब अवागढ़ (श्री सूर्यपाल सिंह जी) अब से कुछ पूर्व केवल गोघृत ही सेवन करते थे। इसका कारण यह है कि गो और बैल में ताप सहने की क्षमता अन्य किसी भी प्राणी से अधिक है। वह अधिक से अधिक उत्ताप में नहीं घबराते जबकि भैंस आदि शीघ्र पलायन कर जाते हैं। यह गुण गोदुग्ध में भी है किन्तु गोघृत में अधिक मात्रा में है ऐसा एक सुयोग्य मित्र का अनुभव है। उनका कहना है कि किसी व्यक्ति के लू या Sun stroke से आक्रान्त होने पर हमने इन दोनों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

इसी प्रकार गोदुग्ध तथा गोघृत का अधिक सेवन करने वाले व्यक्ति में आपत्ति सहन की क्षमता भी अधिक होती है। बैल गाड़ी कीचड़ में फंस जाने पर रह रह कर शक्ति लगाता है और निकाल ही लेता है किंतु भैंसा बहुत ही हतोत्साह हो जाता है। इसी प्रकार गोदुग्ध सेवन करने वाला व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयंकर से भयंकर आपत्ति आने पर भी अपना धैर्य भङ्ग नहीं होने देता और शांतिपूर्वक सोचकर उससे छुटकारा पाही लेता है।

(२) स्मृति विवर्धनम्—स्मरण शक्ति का अच्छा होना बहुत बड़ा गुण है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है 'स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति' अर्थात स्मरण शक्ति के कम होने से बुद्धि (ज्ञान) का नाश हो जाता है और ज्ञान या बुद्धि का नाश होने से मनुष्य स्वयं ही नष्ट हो जाता है। एक अन्य स्थल पर ऊंच और नीच की परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं "स्मृतिहीनो जनो जघन्य" अर्थात् जिस मनुष्य की स्मरण शक्ति नहीं वही नीच है। घृत इस दोष को दूर करता है अतः यह अकेला गुण ही घृत को इस उच्च आसन का अधिकारी बना देता है।

(३) विषापहम्—घृत हर प्रकार के विष को वह स्थावर हो अथवा जंगम, सर्वथा नाश करता है। कोई विष खा लेने पर आप घृत पिलाइये, किसी विषैले कीड़े के काट लेने पर भी पिलाइये बराबर गुण करेगा। घृत प्रबल विषघ्न है। इसकी मोटी पहचान है कि घृतपूर्ण पात्र में आप बड़े से बड़े बिच्छू या भयंकर सर्प को डाल दीजिये कुछ ही क्षणों में तड़प तड़प कर जान दे देगा।

(४) अलक्ष्मीनाशनम्--मनुष्य शरीर में वीर्य न होने पर कोई भी कार्य नहीं कर सकता अतः निरुद्योगी होने से वह दरिद्र रहता है। घृत वीर्य का भण्डार है। इसके सेवन से शरीर में शक्ति एवं हृदय में उत्साह की वृद्धि होती है। फिर वह उद्योग किये बिना रह ही नहीं सकता और उसकी दारिद्रता का नाश होजाता है। घृत की अलक्ष्मीनाशन क्रिया यही है।

(५) सर्वस्नेहोत्तमम्—

नान्यः स्नेहस्तथा कश्चित्संस्कारमनुवर्तते।

—चरक

अर्थात् तैल, वसा, मज्जा इनमें से कोई भी स्नेह अन्य औषधियों के गुण को इतनी विशेषता के साथ और इतने परिमाण में ग्रहण नहीं कर सकता जितना कि घृत ("घृतं योगवाहि" अर्थात्-घृत जिसके संसर्ग में आता है उसी पदार्थ के गुण ग्रहण कर लेता है) अतः इसे सबसे श्रेष्ठ स्नेह कहा है।

(६) सहस्रवीर्यं विधिभिघृ तकर्म सहस्रकृत—नाना गुणयुक्त तथा नाना कर्मकारी द्रव्यों के साथ पकाने से घृत में हजारों गुनी शक्ति आजाती है अतः हजारों अचिन्त्य (जिनका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता) कार्य करने में समर्थ होता है।

यदप्यपीता वसुधातलैः सुधा,
तदप्यदः स्वादु ततोऽनुमन्यते।
अपिक्रतुष्वध्वरदग्धगन्धिने,
स्पृहां यदस्मैदधते सुधान्धसः॥

अर्थात्—यद्यपि मनुष्यों ने अमृतपान नहीं किया है तथापि ऐसा अनुमान होता है कि घृत अमृत से भी अधिक मीठा है क्योंकि अमृत भोजी देवता भी यज्ञाग्नि में दग्ध घृत की सुगन्ध की आकांक्षा रखते हैं।

(७) रोग प्रशमन शक्ति--

उदावर्त ज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान् हरेत्।
स्निग्धं कफहरं वृष्यं क्षयवीसर्प रक्तनुत्॥

—भा० प्र०

अर्थात्—उदावर्त (उदरस्थ वायु की विपरीत गति), ज्वर, उन्माद, शूल, अफरा, व्रण, क्षय, विसर्प, रक्तपित्त तथा कफ को नाश करता है, स्निग्ध है और वीर्य को बढ़ाता है।

घृत मण्ड—

सर्पिर्मण्डस्तु मधुरः सरो योनिश्रोत्राक्षिशिरसांशूलघ्नं वस्तिनस्याक्षि पूरणेषूपदिश्यते।

--सुश्रुत सू० अ० ४५

अर्थात्—घृत के ऊपर का पतला भाग मधुर, मृदु विरेचक, तथा योनि, कर्ण और शिरःशूल को दूर करने वाला है। वस्ति कर्म, नस्य और नेत्र पूरण में इसीका उपयोग करना चाहिए।

घृत के भेद तथा उनका प्रयोग—

नवीन घृत—

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणेश्रमे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलक्षये पाण्डुरोगे कामला नेत्ररोगयो ॥
--भा० प्र०

अर्थात्—भोजन में, तर्पण में, थके हुए मनुष्य को, शक्ति क्षीण होने पर, पाण्डुरोग में, कामला तथा नेत्र रोग में रोगी को नवीन घृत ही प्रयोग कराना चाहिए।

पुरातन घृत—

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत्त्रिदोषनुत् ।
मूर्छाकुष्ठ विषोन्मादापस्मार तिमिरापहम् ॥
—भा० प्र०

अर्थात्-एक वर्ष से ऊपर का घृत पुराना हो जाता है और तीनों दोषों को शान्त करता है। मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद अपस्मार तथा नेत्रतिमिर को दूर करता है।

सर्पिः पुराणं विज्ञेयं दश वर्षं स्थितं तु यत् ।
सर्पिः पुरातनं श्रेष्ठं त्रिदोषातिमिरापहम् ॥
मूर्छाकुष्ठविषोन्माद ग्रहापस्मारनाशनम् ।
दशसंवत्सरारुर्ध्वमाज्यमुक्तं रसायनम् ॥
शतवर्षस्थितं यत्तु कुम्भ सर्पिस्तदुच्यते ।
रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः स्यात्परतस्तु महाघृतम् ॥
पेयं महाघृतं भूपैः सर्वतोऽपि गुणाधिकम् ।
भक्षणात्कासरोगघ्नमञ्जनान्नेत्ररोगजित् ॥
शिरोभ्यङ्गादूर्ध्वजत्रुरोगघ्नं तत्पुरातनम् ।

अर्थात् दशवर्ष का रक्खा हुआ घृत पुरातन घृत कहलाता है। पुराना घी श्रेष्ठ है। यह घृत त्रिदोष तथा नेत्रतिमिर को दूर करता है। मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रहदोष और अपस्मार को दूर करता है। दश वर्ष के बाद का घी रसायन हो जाता है। सौ वर्ष का घी कुम्भ सर्पि कहा जाता है। यह राक्षसों (रोगों के कीटाणुओं) का नाश करता है। इसके पश्चात् घृत महाघृत कहलाता है। यह सबसे उत्तम घृत है। राजाओं को उसका सेवन करना चाहिए।

पुरातन घृत खाने से उग्रवातज कास (सूखी खांसी) को, अंजन करने से नेत्ररोगों को, तथा शिर पर मलने से ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का नाश करता है।

यथा यथा जरां याति गुणवत्स्यात्तथातथा ।
—हारीत संहिता।

अर्थात् घृत जितना ही पुराना होगा उतना ही गुणकारी होगा।

शतधौत घृत के गुण—

द्रुतहस्तेन संघृष्टं सजलं सर्पिष्पुनः पुनः ।
धौतं वार सहस्रन्तु तदर्द्धं शतमेव वा ॥
हिमवज्जायते शीतं स्वच्छं सेध्यं तथैव च ।
एतल्लेहादिषु योज्यं दाहविसर्पनाशनम् ॥
--भा० भै० र०

अर्थात् घी में शीतल पानी मिलाकर उसे हाथ से खूब घिसना चाहिए। फिर पानी निकाल देना चाहिए, और नया पानी डालकर पुनः घिसना चाहिए। इस प्रकार १०००, ५०० या सौ बार धोने से घृत अत्यन्त शीतल हो जाता है। और उसके लेप करने से विसर्प तथा दाह आदि नष्ट होते हैं।

घृतपानविधि—

शुद्धगव्यं घृतं तप्तं मरिचैर्वा कणान्वितम ।
रसायनं सदापेयं घृतपानं प्रशस्यते ॥
रूक्षक्षत विषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।
हीनमेधास्मृतीनाञ्च घृतपानं प्रशस्यते ॥
–यो० चि०

अर्थात् रूक्षता (खुश्की), घाव, विष और वात-पित्त विकार की शांति तथा मेधा अथवा स्मृति की हीनता को दूर करने के लिये शुद्ध गोघृत को गरम गरम करके उसमें काली मिर्च, अथवा पीपल का चूर्ण डालकर पीना हितकर है। इस प्रकार घृतपान करने से रसायन के गुण प्राप्त होते हैं।

घृतपान निषेध—

राजयक्ष्माणि बाले च वृद्धे श्लेष्माश्रयेगदे ।
रोगे सामेविशूच्यां च विबन्धे च मदात्यये ॥
ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्हि मन्यते ॥
--यो० र०

अर्थात् राजयक्ष्मा के रोगी को, बालक, वृद्ध तथा श्लेष्मविकार वाले को, सामरोग में (किसी रोग की अपक्वावस्था हो अथवा किसी रोग के साथ साथ पेट में आम भी हो), विशूचिका, विबन्ध (मल का उदर में रुकजाना), मदात्यय, ज्वर (नवीन ज्वर) और मन्दाग्नि में घृतपान नहीं करना चाहिए।

औषधि प्रयोग-

(१) घृत दध्यादि योग—

घृतदधिमधुरपयोदधिमण्डै
रुपसिक्तः करिकर्णपलाशः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थगयति हि स्थिरता स्थविराणाम्,
विदधाति वपुर्बलवत्ताम् ।
—यो० र०

अर्थात् हस्तिकर्णपलाश (ढाक का एक भेद—यदि न मिले तो साधारण ढाक लिया जा सकता है) की १ तोला छाल को पीसकर रात्रि के समय घी, दही, मीठे दूध, और दही के मण्ड में से किसी में मिलाकर रख दीजिये। इसे प्रातःकाल पीने से वृद्धावस्था रुकती तथा बलवृद्धि होती है।

(२) घृत सैंधव योग—
उष्णं घृतं सैंधवचूर्णयुक्तं,
निपीतमाशु प्रशमं करोति।
निश्वासकम्पश्रमवारिताप,
रुजांजयेत् वृश्चिक दंशजाताम् ॥
—भा० मै० र०

अर्थात् गरम घृत में सैंधा नमक का चूर्ण मिला कर पीने से श्वास, कम्पन (कपकपी), प[illegible]ना आना, दाह, पीड़ा और बिच्छू के काटे को तुरन्त आराम होता है।

(३) गव्य घृतादि योग—
गव्य घृतं सैंधव संप्रयुक्तं,
शम्बूक भाण्डे निहितं प्रयत्नात्।
सप्ताहमादित्य करैर्विपक्वं,
निहन्ति कूरण्डमति प्रवृद्धम् ॥
--चक्रदत्त

अर्थात् चार भाग गोघृत और एक भाग सैंधा नमक दोनों को एकत्र करके शंख में भरकर सात दिन धूप में रक्खा रहने दीजिये। इसे खाने तथा लगाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ अण्डवृद्धि रोग भी नष्ट हो जाता है।

(४) घृतावसेचनम्--
सद्यः क्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्।
यष्ठीमधुक युक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥
—धन्वन्तरि

अर्थात् शूल युक्त तुरन्त के घाव पर गरम घी में—मुलहठी का चूर्ण मिलाकर उसमें कपड़ा भिगोकर रखना चाहिए।

(५) घृतादि धूम -
घृतगुग्गुलमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः।
धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नश्च निर्दिशेत् ॥
—भा० प्र०

अर्थात् घी, गुग्गुलु तथा मोम समान मिलाकर धूम्रपान करने से क्षवथु (छींकें अधिक आना) तथा भ्रंशथु (नासिका रोग विशेष) नष्ट होता है।

(६) घृतादि धूप—
पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्टं हरीतकी।
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम ॥
--चरक चि० अ० ३

अर्थात् गूगल, नीम के पत्ते, घुड़बच, कूट, कडुआ, हरड़ का छिलका, सरसों तथा जौ इन सब को कूटकर घी में मिला कर धूप देना विषमज्वर को नाश करता है।

(७) घृतभर्जित हरीतकी--
सगुडं पिप्पलीयुक्तामभयांघृत भर्जिताम्।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदनुलोमिनीम् ॥
--चरक अर्श०

अर्थात् अर्श रोग में वायु को अनुलोमन करने के लिए घी में भुनी हुई हरड़ में गुड़ और पीपल का चूर्ण अथवा निशोथ और दन्ती का चूर्ण समान भाग मिलाकर उष्ण जल से सेवन करना चाहिए।

४. गोमूत्र

पंचगव्य का चतुर्थ उपादान गोमूत्र है अतः अगली पंक्तियों में उसीका वर्णन किया जावेगा।

गोमूत्र के सामान्य गुण—
गोमूत्रं कटुतीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायहम्।
लघ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥
कषायं तिक्त तीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलनुत् ॥
—भा० प्र०

कण्डूकिलासगुदशूलमुखाक्षिरोगान्,
गुल्मातिसारमरुदामय मूत्ररोधान्।
कास स कुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान्,
गोमूत्र मे कमपि पीतमपा करोति ॥
—भा० प्र०

अर्थात गोमूत्र कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार और तिक्त है। कफ को शांत करता है। हलका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि को दीप्त करता है। बुद्धि बढ़ाता है। पित्त को बढ़ाता और कफ और वायु को शांत करता है। कसैला, कड़ुआ और तीक्ष्ण है। गरम करके कान में डालने से कर्णशूल को शांत करता है। और खुजली, श्वेतकुष्ठ (शरीर पर सफेद दाग), अर्श, मुख और आंखों के रोग, गुल्म, अतिसार, वायु के रोग और मूत्ररोध, खाँसी, कोढ़, उदर रोग (आठों प्रकार के), कृमिरोग, पाण्डुरोग इन सबको एक गोमूत्र ही पीने से नाश करता है।

वक्तव्य

अक्षि रोगान्—एक बार श्रीरामचन्द्र जी के पूर्वज महाराज दिलीप द्वारा छोड़े गये। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को इन्द्र छल से चुरा ले गये। उसको ढूंढने के लिए उनके पुत्र युवराज रघु गये। मार्ग में उनको महर्षि वशिष्ठ की यज्ञ धेनु नन्दिनी के दर्शन हुए। उन्होंने नन्दिनी को अभिवादन किया और उसके मूत्र से अपने नेत्रों का प्रक्षालन किया। इस वर्णन को कवि कालिदास के शब्दों में पढ़िये—

> तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने
> प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।
> अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो
> बभूव भावेषु दिलीप नन्दनः॥
>
> रघुवंश सर्ग ३

अर्थात् सज्जनों से जो सम्मान प्राप्त कर चुके हैं ऐसे युवराज रघु ने अपने पुण्यों के प्रभाव से अवसर पर प्राप्त नन्दिनी के मूत्र से अपने नेत्रों का प्रक्षालन किया इस प्रकार उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई जिससे वह उन वस्तुओं का भी साक्षात्कार करने में समर्थ हो गये जो दूसरों के लिये अतीन्द्रिय थीं अर्थात् दूसरे जिनको नहीं देख सकते थे।

भावार्थ—यह वर्णन चाहे आलंकारिक ही रहा हो किंतु इस बात की पुष्टि अवश्य करता है कि गोमूत्र नेत्रों के लिये लाभकारी है।

गोमूत्र के गुण—

> अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च।
> कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये॥
>
> —भा० भै० र०

अर्थात् आठों [गो, भैंस, बकरी आदि] मूत्रों में से किसी भी मूत्र को गरम करके कान में डालने से कर्णशूल शाँत होता है। किंतु—

> सर्वेष्वपि मूत्रेषु गोमूत्र गुणतोऽधिकम्।
> अतो विशेषात् कथित मूत्र गोमूत्रमुच्यते॥
>
> —भा० प्र०

अर्थात् सब मूत्रों में गोमूत्र अधिक गुण वाला है अतः शास्त्र में मूत्र कहा हो तो गोमूत्र ही समझना चाहिए।

नव्य मत के अनुसार गोमूत्र के गुण—

(१) Internally it is highly recommended for Cirrhosis of the liver in doses of one to two ounces. It is also described as laxative and diuretic and used in the preparation of various medicines such as Punarnava Mandur, Marichadi Tail for enlargemements of abdominal viscera, painful dyspepsia, ascites, anasarca, jaundice, leprosy, chronic prurigo and other obstinate skin diseases.

(२) In congestive fever with constipation, flushed face and headache an ounce of fresh and warm cows urine is given as a domestic medicine.

(३) It is used externally in the purification and roasting of various metals and in the preparation of oils decoctions etc. (Indian materia medica)

अर्थात् (१) गोमूत्र का आभ्यन्तरिक प्रयोग यकृद्दाल्युदर में बड़ा लाभ करता है। इसकी मात्रा २॥ तोला से ५ तोला तक है। गोमूत्र मृदु विरेचक तथा मूत्रल है और इस गुण के लिये इसका प्रयोग पुनर्नवा माण्डूर और मरिचादि तैल के बनाने में किया जाता है। इन औषधियों से उदर गुहा में रहने वाले अवयवों [यथा यकृत्, प्लीहा, वृक्कादि] की वृद्धि, सशूल अजीर्ण, जलोदर, सर्वाङ्गशोथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामला, कोढ़, भयंकर पुरातन पामा और अन्य दुःसाध्य त्वक् रोग निश्चित् आराम होते हैं।

[२] ग्रीष्मऋतु में अथवा परिश्रम की अधिकता से होने वाले नवीन ज्वर के लिये जिसमें अजीर्ण होता है, मुख लाल हो जाता है और शिर में तीव्र वेदना होती है, २॥ तोला गाय का ताजा मूत्र गरम करके घरेलू दवा की तरह प्रयोग किया जाता है।

[३] गोमूत्र का बाह्य प्रयोग भिन्न भिन्न धातुओं के वर्तनों को साफ करने और अनेक तैलों एवं क्वाथों के निर्माण में किया जाता है।

[इण्डियन मैटेरिया मैडिका]

तथा गोमूत्र यदि स्वस्थ मनुष्य को दिया जावे तो उससे मूत्र का परिमाण बढ़ता है परंतु वृक्क (गुर्दा) यदि विकृत हो तो मूत्र का परिमाण बहुत बढ़ता है। इसकी २॥ तोले मात्रा खाली पेट देनी चाहिए। इस प्रकार कुछ दिन देने से धमनियां प्रसारित होती हैं और रक्त का दवाब (Blood Pressure) कम होता है। रक्त का दवाब कम होने से मूत्र का परिमाण और भी बढ़ता है। २४ घण्टे में ३० से ४० छटांक तक बढ़ता है और शोथ उदर आदि लक्षण कम होते हैं। गोमूत्र से भूख बढ़ती है और रोगी की जीभ सुधरती है। केवल गोमूत्र देने से दस्त १-२ से अधिक नहीं होते इसलिये उसके साथ दंतीमूल देना पड़ता है। यह पुरातन वृक्कशोथ (Chronic Nephritis) के लिए उत्तम औषध है। गोमूत्र की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है।

(डा. वा. ग. देसाई कृत भारतीय रसशास्त्र)

From my life-long experience in medical practice I can say that cows' urine is a self contained medicine for any abdominal ailment.

[Dr. P. L. Agnihotri M. D., D. S., E. M. R. A. S. (London)]

अर्थात् चिकित्सा क्षेत्र में अपने जीवन व्यापी अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि किसी भी प्रकार के उदररोग के लिये गोमूत्र एक पूर्ण औषधि है।

-डा० पी० एल० अग्निहोत्री एम० डी० (लन्दन)

औषध प्रयोग--

(१) गोमूत्रादि चूर्ण--

गोमूत्र को २-३ बार ऊनी कपड़े में छानलें। फिर मृत्पात्र या लौहपात्र में इतना पकावें कि वह गाढ़ा हो जावे। पश्चात् नीचे उतार कर धूप में खूब सुखाकर शीशी में भरलें। मात्रा १-३ माशा ५ तोला जल में मिलाकर दें।

लाभ-गोमूत्र के समान गुण करता है।

--आचार्य यादव जी

(२) गोमूत्रादि लेप--

आरण्यगोमयनिघृष्टमति प्रलिप्तं,
गोमूत्रतक्रलवणैः क्वथितैः प्रयत्नात्।
नाशं प्रयाति रकसं चिरसम्प्ररूढ़,
मप्याशु पापमिव संस्मरणेन शंम्भोः॥

--गद निग्रह

अर्थात् सैंधानमक को गोमूत्र तथा मट्ठे में पका कर गाढ़ा कर लीजिये। फिर रकस (सूखी खुजली) को अरण्य गोमय (जंगली कण्डे) से रगड़कर उक्त क्वाथ का लेप कर दीजिए। इस प्रयोग से लाभ हो जाता है।

(३) गोमूत्र योग--

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा,
क्षीरं गवां वा त्रिफला विमिश्रं।
क्षीरान्नभुक्वलसेव गव्यं
मूत्रं पिवेद्वाश्वयथूदरेषु॥

--वृन्द माधव

अर्थात् भैंस के दूध में गोमूत्र मिलाकर अथवा त्रिफलायुक्त गोदुग्ध, किंवा केवल गोमूत्र सेवन करने और दूधभात खाने से शोथोदर (पेट की सूजन) नष्ट होता है।

(४) गोमूत्रक्षार चूर्ण--

गोमूत्र १० सेर लेकर एक कढ़ाई में उबालकर औंटावें। जब चौथाई शेष रहे तब उसमें सोंठ १ पाव, हरड़ छोटी १ पाव, सैंधानमक २॥ तोले, लौंग १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोले कूट पीस कर डालदें। फिर खुरपे से हिला चलाकर अग्नि पर भस्म बनालें-शीतल होने पर बारीक चूर्ण कर लेवें।

मात्रा १-२ माशा गरम जल से।

उपयोग—कफ सहित श्वास, कास, उदररोग, मलावरोध आदि दूर होते हैं। साधारण औषध होते हुए भी श्वास में बहुत लाभदायक है। तमाखू के व्यसनियों के श्वास रोग में सत्वर लाभ करता है।

(५) गौमूत्र मण्डूर (वंगसेन)
(६) गोमूत्रसिद्ध मण्डूर (चक्रदत्त शूलाधिकार)
(७) गोमूत्र हरीतकी प्रयोग (वृ. नि. र.)
(८) पुनर्नवा मण्डूर (चरक)

अर्थात् सफेद सांठ, निशोथ, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीता, कूट, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरड़, बहेड़ा, आमला, दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल, नागरमोथा प्रत्येक १० तोला, मण्डूर भस्म ५ सेर और गोमूत्र १६ सेर इन सबको कढ़ाई में डालकर पकावें। गाढ़ा हो जाने पर झरबेरी के बेर जैसी गोली बनावें।

मात्रा—१ तोली प्रातः १ सायं

अनुपान—गोतक्र।

लाभ—पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, शोथ, ग्रहणी दोष, कोढ़ तथा क्रिमिरोग को निश्चित नाश करता है।

(५) गोमय—

पंचगव्य का अन्तिम अवयव गोमय अर्थात् गोबर है। अब उसका सविस्तार वर्णन किया जाता है।

गुण—

गोमयं रूक्षोष्णं कटुकमीषत्पित्तकरं लघु।
नेत्रं तिमिरापहं वायु शिर शूलव्रण शोथजित्॥
अर्शाभिघातरुजां तीव्रा नाशयेदविकल्पत॥
—वृद्ध वैद्याधार

अर्थात् गोबर रूक्ष, उष्ण और कटु है—किंचित पित्त को बढ़ाता है, हल्का है। वायुविकार, शिरःशूल, नेत्रतिमिर, व्रणशोथ और अर्श के मस्सों तथा चोट की वेदना को शांत करता है।

नव्यमत—

1. Fresh cowdung laved on the burnt parts alleviates the pain of burns, applied to a cut or a bruise it is said to stop the bleeding and heal the wound. In cases of pains inconsequences of falls or wounds plasters made of fresh cowdung heated on fire are applied with much benefit.

(Indian Materia Medica)

अर्थात् ताजा गोबर जले पर लगाया जाय तो जलन तथा पीड़ा को शांत करता है। यदि किसी चाकू अथवा अस्त्र से कटे हुए व्रण अथवा खुरसट पर लगाया जावे तो रक्त प्रवाह को बन्द करता है और व्रण को रोपण कर देता है। चोट लगने के कारण पीड़ा हो अथवा व्रण (जख्म) में पीड़ा हो तो गरम करके पलस्तर के रूप में प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है।

प्रयोग विधि—

व्रण शोथ पर टिकिया बनाकर अथवा पानी में पकाकर लेप करना चाहिए और व्रण पर गोबर वा रस निकाल कर कपड़े में छानकर गर्म करके और गौज (*Gauze*) या बारीक कपड़ा भिगोकर लगाना चाहिए। गोबर का स्वरस निकालने का सरल उपाय यह है कि एक धुला कपड़ा लेकर गोबर के अन्दर दबा दीजिये। घण्टे दो घण्टे बाद उसे निकालकर निचोड़ डालिये। बस स्वरस निकल आवेगा। इसे छानकर प्रयोग कीजिये।

2. Cowdung is a strong germicide, I am astonished that the Hindus knew it long before for they have been using it in their kitchenes to clean them.

(Dr. A. P. Rudolf C. I. E., P. H. D.)

अर्थात् गोबर प्रबल कीटाणुनाशक है किंतु मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होगा कि हिन्दू इस रहस्य को चिरकाल से जानते थे क्योंकि वह अपने भोजनालयों को स्वच्छ रखने के लिए इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग करते आ रहे हैं।

वक्तव्य—

गाय कितना उपयोगी पशु है जिसका गोबर प्रबल कीटाणु नाशक (*Strong disinfectant*) है, मूत्र उदर रोगों के लिए रामबाण है। घी, दूध, दही तो सभी के उपयोगी होते हैं अतएव वेद भगवान ने इसे 'अघ्न्या' कहा है और इसीलिए प्रत्येक हिन्दू के घर में पहली रोटी गाय की रोटी होती है।

औषधि प्रयोग—

(१) गोमयादि लेप—

गोबर को पानी में पकाकर लेप करने से शिरःशूल शान्त होता है। (वृद्ध वैद्याधर)

(२) गोमय तैल—

गवां शकृत क्वाथविपक्वमुत्तमम्,
हितंच तैलं तिमिरेषु नस्यते ॥
—भैषज्य रत्नावली नेत्ररोगाधिकार

अर्थात्—तिल तैल ½ सेर और गोबर का स्वरस २ सेर इन दोनों को कढ़ाई में आग पर पका कर तैल मात्र शेष रहने पर छान कर नस्य लेवें। इससे नेत्रतिमिर रोग का नाश होता है।

(३) गोमयादि योग—

गौमयस्य रसं सघिगुडं तण्डुल वारि च।
पाण्डुरोगविनाशाय पाययेद्भिषगातुरम् ॥
—गद निग्रह

अर्थात्—वैद्य को चाहिए कि पाण्डु रोगी को गोबर स्वरस, घी, गुड़ और चावलों के पानी को एकत्र करके सेवन करावे।

प्रयोग विधि—चावलों का पानी १२ तोला अन्य सब १-१ तोला।

(४) भद्रादि तैल—

सरसों का तैल १ सेर, ब्राह्मी स्वरस, आक के पत्तों का स्वरस तथा गोबर स्वरस ४-४ सेर।

कल्क द्रव्य—चन्दन, देवदारु, मिर्चकाली, हल्दी, दारुहल्दी, निशोथ, नागर मोथा—प्रत्येक ४ तोला लेकर गोमूत्र में पीसें। फिर २ तोला संखिया विष मिलावें।

विधि—इन सबको कढ़ाई में डाल कर पकावें। जब तैल मात्र शेष रहे तब उतार कर छानलें।

प्रयोग—यह तैल पीने तथा लगाने से शीघ्र ही कोढ़, दुष्ट व्रण व नासूर को आराम कर देता है।

(५) गोमयपिण्डादि स्वेद—

स्वेदो गोमय पिण्डेन सक्तु नामलकेनच।
शतपुष्पेण वा कार्यो गुदजानां निवृत्तये ॥
—बंगसेन अर्शाधिकार

अर्थात्—गोबर की पिट्ठी, सत्तू, आमले की पिट्ठी, या सोये का कल्क इन सबकी पोटली बनाकर स्वेदन (सेक) करने से अर्श के मस्से नष्ट होते हैं।

(६) विषगर्भ तैल (योग चिन्तामणि)

(७) गोमयादि मरहम (वृद्ध वैद्याधार)—

स्वच्छ गोमय (गोबर) को वैशाख, जेठ की धूप में खूब सुखालें। इतना सुखावें कि नमी का नाम न रहे। पश्चात् उसका वस्त्रपूत (कपड़छन) चूर्ण करलें। फिर भी इस चूर्ण को लौह की कढ़ाई अथवा खरल में कम से कम ३ घंटा घिसें (मर्दनं गुण वर्द्धनं-अर्थात् जितना घिस जावेगा उतना ही गुणकारी होगा) अब चौगुने गोघृत अथवा वैसलीन छः गुनी में मिलाकर मरहम बनालें।

उपयोग—फोड़ा, फुंसी, खाज तथा साधारण (नवीन) दाद पर लाभकारी है।

(८) सिद्ध पिप्पली (वृद्ध वैद्याधार)—

वस्त्रपूत पिपल्ली (छोटी) चूर्ण ४ तोला, गोमूत्र स्वरस २० तोला में घिस कर सूख जाने पर अंजन करने से नक्तान्ध (रतौंधी) दूर होती है। यह योग परीक्षित है।

—श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य,
जनपथ, घंटाघर मार्ग, एटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद और तत्व

(Ayrvedic Phillosophy of Elements)

श्री बुद्धिप्रकाश जिज्ञासु

प्राचीन और नवीन तत्ववेताओं ने तत्वों के स्वरूप की विवेचना अपने अपने ढंग से की है। जैसे महात्मा बुद्ध ने केवल आकाश अथवा शून्य तत्व के अस्तित्व को ही स्वीकार किया है। स्वामी शंकराचार्य ने केवल ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है। स्वामी दयानन्द ने ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों को मूल तत्व माना है।

नवीन तत्ववेताओं में भी दो मत हैं। एक परमाणुवाद दूसरा आकाशवाद अथवा ईथरवाद (Etherism)। प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य आईंस्टीन परमाणुवाद के समर्थक हुए हैं और आधुनिक वैज्ञानिकों में आईंस्टीन के समर्थकों का बाहुल्य है। ईथरवादियों की संख्या बहुत कम है। परमाणुवादी खोज करते करते इस परिणाम पर पहुँचे कि मूल तत्व ९२ हैं, फिर कहने लगे कि तत्व ९२ से भी अधिक हैं और खोज करने पर ज्ञात हुआ कि सब (९२) तत्व इलैक्ट्रोन (Electron), प्रोटोन (Proton) और न्यूट्रोन (Neutron) इन तीन ही विद्युत कणिकाओं से बने हैं। फिर आईंस्टीन आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन तीनों विद्युत कणिकाओं को एक ही शक्ति में रूपान्तर किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणुवादी अभी कोई स्थायी निश्चय नहीं कर सके हैं। यही नहीं परमाणुवाद पर स्वयं वैज्ञानिकों की कई ऐसी आपत्तियां (समस्याएँ) हैं जिनका परमाणुवादियों के पास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं।

ईथरवादी भी बुद्ध तथा शंकर की तरह इस बात की घोषणा करते हैं कि ईथर (Ether) सर्व शक्तिमान और सर्व व्यापक है। सब संसार ईथर से ही बना है। यदि सब संसार को नष्ट कर दिया जावे तो भी ईथर स्वयं ही फिर से सारे संसार का रूप धारण कर सकता है। क्योंकि केवल एक तत्व में क्रिया होना सम्भव नहीं इसलिये अद्वैतवाद, शून्यवाद और ईथरवाद के ये तीनों मत असत्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार तत्वज्ञों के भिन्न भिन्न मत होने से हम एक उलझन में पड़ जाते हैं और फिर यह प्रश्न उठता है कि तत्वों का आधार क्या मानें (अर्थात् किसे तत्व मानें और किसे न मानें)। अब हमें यह सोचना है कि तत्व किसे कहते हैं। मेरे विचार से तत्व अथवा मूल तत्व की सबसे सरल और अकाट्य परिभाषा यह होनी चाहिये कि जिस पदार्थ का अस्तित्व किसी प्रकार भी किसी भी काल में नष्ट न हो सके और जिसकी अन्य तत्वों द्वारा रचना अथवा निर्माण भी न हो सके, वही मूल तत्व है।

आयुर्वेद ने पांच तत्व माने हैं। १-पृथ्वी २-जल ३-अग्नि ४-वायु ५-आकाश।

(१) पृथ्वी का अर्थ प्रकृति की स्थूल अवस्था }
(२) जल " " तरल " } प्रकृति (matter)-
(३) वायु " " सूक्ष्म " }
(४) अग्नि का अर्थ शक्ति (Energy)
(५) आकाश का अर्थ अवकाश अर्थात द्रव्य के भीतर और बाहर रिक्तस्थान (Space)

वैसे तो मूल तत्व तीन ही हैं अर्थात् १-प्रकृति (matter) २-अग्नि अथवा शक्ति (Energy) ३-आकाश अथवा अवकाश (Space)। परन्तु अग्नि प्रकृति को आकाश की सहायता से तीन अवस्थाओं में रूपान्तर करती है। १-स्थूल (Solid) अर्थात् पृथ्वी, २-तरल (Liquid) अर्थात् जल, ३-सूक्ष्म अर्थात् वायु, (Gas) और सृष्टि की रचना के लिए प्रकृति की तीनों अवस्थाओं का होना आवश्यक है। इसलिए हम तीन की बजाय पांच तत्व कहें तो कोई अत्योक्ति न होगी। ये पांच तत्व ऐसे हैं जिनका अस्तित्व कभी नहीं मिट सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे आकाश का गुण शब्द माना है। यदि आकाश न हो तो शब्द की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। शब्द का अर्थ ध्वनि (Sound) अर्थात् किसी पदार्थ में कम्पन होना जो कि आकाश या अवकाश के बिना सम्भव ही नहीं। इसलिये आकाश ही पर्याप्त नहीं, प्रत्युत पदार्थ और शक्ति भी चाहिए। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शब्द आकाश का गुण नहीं। एक कार्य के अन्तर्गत कई कारण हो सकते हैं और इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि आकाश का भावार्थ अवकाश ही है और कुछ नहीं।

अग्नि का अर्थ शक्ति है न कि किसी विशेष प्रकार की ज्वाला या लपट। आज के आचार्यों ने अनेक शक्तियां को दर्शाया है। यदि हम वास्तविकता की खोज करें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि सब शक्तियां अर्थात् (१) विद्युत (Electricity) (२) शब्द (Sound) (३) अग्नि (Heat) (४) तेज (Light) (५) चुम्बकीय शक्ति (magnetism) (६) रसायन शक्ति (Chemical Energy) (७) संचालन शक्ति (mechanical Energy) इत्यादि एक शक्ति अथवा अग्नि के ही रूपांतर हैं।

अब लीजिये वायु को--वायु का अर्थ किसी विशेष प्रकार की वायु अथवा (प्राण वायु) मानना न्याययुक्त नहीं। आयुर्वेदाचार्यों ने कई प्रकार के वायु माने हैं, जैसे कि उदान वायु, प्राण वायु, अपान वायु, व्यान और समान इत्यादि। इससे यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेदाचार्य वायु शब्द का क्या अर्थ लेते थे अर्थात् जो भी पदार्थ वायु रूप हो वही वायु समझा जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि हम पृथ्वी और जल तत्वों के भावार्थ को समझने का प्रयत्न करें तो इस मत की सत्यता सिद्ध हो जावेगी।

मैं यह नहीं कह सकता कि आयुर्वेद का ही मत पूर्णतया सत्य है। यदि हम निष्पक्ष होकर देखें और गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि इस मत में कितनी सत्यता है। यह हो सकता है कि प्राचीनकाल में आयुर्वेदाचार्यों के पास इतने साधन न हों जितने कि आधुनिक विज्ञानाचार्यों को उपलब्ध हैं। परन्तु केवल इस बात से यह आवश्यक नहीं हो जाता कि जो आधुनिक विज्ञानाचार्य ठीक समझें वही ठीक है, शेष सब निरर्थक। यदि हम पाचों तत्वों के अर्थ को समझने के लिए संकुचित अर्थ न लेकर भावार्थ लें तो हमें इस मत के रहस्य का शीघ्र ही ज्ञान हो जायगा।

लेख बड़ा हो जाने के डर से मैं दूसरे मतों पर अधिक टीका टिप्पणी नहीं करना चाहता। परन्तु यदि कोई विद्वान इससे संतुष्ट न हो और इस लेख पर या आयुर्वेद के पांच तत्वों के मत पर जो भी आपत्ति उठाना चाहे तो उसका (हृदय से) स्वागत किया जावेगा और संतोषजनक उत्तर देने का पूरा प्रयत्न किया जावेगा।

मेरा लक्ष्य प्राचीन दार्शनिक मतों (अद्वैतवाद, शून्यवाद और तृतीयवाद इत्यादि) के साथ न उलझ कर आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर कसकर उनकी महत्ता दिखाना है। मैं आधुनिक विज्ञान का विरोधी नहीं। प्रत्युत जितनी श्रद्धा मेरी आयुर्वेद में है उससे कहीं अधिक आधुनिक विज्ञान में है। मेरे विचारानुसार आधुनिक विज्ञान और प्राचीन आयुर्वेद के मत में इतना विरोध नहीं है जितना कि हम लोग समझते हैं। प्रत्युत आयुर्वेद के सिद्धान्तों को समझने में आधुनिक विज्ञान बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

यदि हम परमाणुवादियों की शैली के अनुसार ही सृष्टि की रचना पर गम्भीरता से विचार करें तो हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं।

[१] सारी सृष्टि की रचना—१-उद्जन (*Hydrogen*) २-उषमजन (*Oxygen*) ३-नत्रजन (*Nitrogen*) ४-अङ्गार (*Carbon*) ५-सोना ६-चांदी ७-ताम्बा ८-लोहा ९-चूना १०—गन्धक इत्यादि इत्यादि ९२ तत्वों से हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२] इन सब तत्वों के परमाणुओं की रचना–१–इलैक्ट्रोन (*Electron*) २–प्रोटोन (*Proton*) और ३–न्यूट्रोन (*Neutron*) इन तीन विद्युत कणिकाओं (*Particles*) से हुई है। परमाणु की रचना नीचे चित्र द्वारा समझाई गई है।

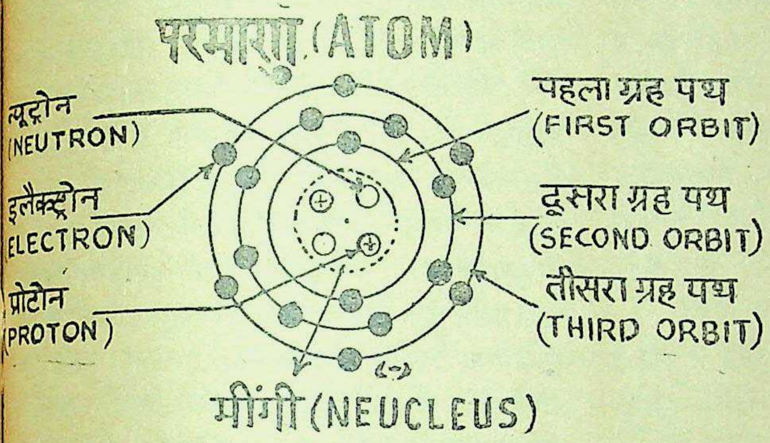

(१) इलैक्ट्रोन (*Electron*) में ऋण (*Negative*) बिजली होती है।

(२) प्रोटोन (*Proton*) में धन (*Positive*) बिजली होती है।

(३) न्यूट्रोन (*Neutron*) में कोई बिजली नहीं होती।

(४) प्रोटोन (*Proton*) इलैक्ट्रोन (*Electron*) से १८४६ गुणा भारी होता है परन्तु दोनों में बिजली की शक्ति (*Electric Charge*) समान होती है।

(५) प्रोटोन और न्यूट्रोन का भार समान होता है।

(६) प्रोटोन और न्यूट्रोन दोनों मींगी (*Nucleus*) में स्थित रहते हैं।

(७) इलैक्ट्रोन अपने अपने ग्रह पथ (*Orbit*) पर पृथ्वी आदि ग्रहों की भांति (*Like Solar System*) मींगी (*Nucleus*) की परिक्रमा (*Revolve*) करते रहते हैं।

(८) (क) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या पहले ग्रहपथ (*Orbit*) पर दो होती है।

(ख) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या दूसरे ग्रहपथ (*Orbit*) पर ८ होती है।

(ग) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या तीसरे ग्रहपथ (*Orbit*) पर १८ होती है।

(घ) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या चौथे ग्रहपथ (*Orbit*) पर ३२ होती है।

(च) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या पांचवें ग्रहपथ (*Orbit*) पर १८ होती है।

(छ) किसी भी ग्रहपथ (*Orbit*) पर इलैक्ट्रोन ३२ से अधिक नहीं हो सकते हैं।

(ज) रसायनिक क्रिया में परमाणुओं के बाह्य ग्रहपथ (Last Orbit) के इलैक्ट्रोनों (Electrons) में ही अदला बदली (Exchange) होती है और इसी क्रिया से योगिक बनते और टूटते रहते हैं।

(३) यदि हम इन तीनों कणिकाओं (१-इलैक्ट्रोन २- प्रोटोन और ३–न्यूट्रोन) की रचना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम, इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इन तीनों कणिकाओं की रचना १–प्रकृति (Matter) २–अग्नि अथवा शक्ति (Energy) ३–आकाश (Space) इन तीन ही मूल तत्वों से हुई है।

किसी तत्व या पदार्थ का सच्चा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के साधन चाहिये। जैसे १–पांच ज्ञानेन्द्रियां २–साधारण यान्त्रिक प्रयोग ३–सूक्ष्म यान्त्रिक प्रयोग ४–गणित (Mathematics) ५–अन्तर्बोध (Intuition from deep meditation)

हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो अनुभव करते हैं उससे हमें कई बार भ्रम हो जाता है जिसकी सत्यता का निश्चय करने के लिए हम साधारण

—शेषांश पृष्ठ ३८ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग)

कविराज श्री अवधविहारी मिश्र शास्त्री

प्राय: सभी रोग भयङ्कर होते हैं। पर कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ सबसे अधिक जघन्य माना जाता है। जिस पुरुष पर इसका प्रकोप होता है, वह समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। कोढ़ी के साथ खाना पीना, उठना बैठना तो क्या उससे कोई ठीक से दो बातें भी नहीं करना चाहता। किन्तु खेद इस बात का है कि इस महारोग से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या अपने देश में बढ़ती जा रही है। और सरकार इस ओर कुछ ध्यान ही नहीं दे रही।

आयुर्वेद मतानुसार इसकी गणना कुष्ठ में नहीं है क्योंकि कुष्ठ स्रावयुक्त होता है —'यत्किञ्चित्कुष्ठा-वितत्कुष्ठं' किन्तु श्वेत कुष्ठ में, वह किसी अवस्था में क्यों न हो, किसी प्रकार का स्राव नहीं होता अर्थात् इससे किसी तरह की पतली और चिकनी चीज नहीं निकलती, साफ सफेद दाग ही रहते हैं। किन्तु कुष्ठ पापजन्य है। और यह भी पापजन्य है इसलिए इसकी गणना भी कुष्ठ में ही की जाती है। संस्कृत में इसे किलास कहते हैं। अंग्रेजी में इसका नाम ल्यूकोडर्मा (Leueoderma) है। आयुर्वेद के मतानुसार मनुष्य की देह में त्वचाओं के छ: पर्त होते हैं। श्वेत कुष्ठ की उत्पत्ति तीसरी त्वचा से मानी है।

उत्पत्ति के कारण –

वचान्स्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दा सुराणां गुरुघर्षणं च।
पापक्रिया पूर्व कृतञ्च कर्म हेतु किलासस्य विरोधिचान्नम्॥
–चरक

अर्थात् असत्य बोलना, कृतघ्नता, देवताओं की निन्दा, गुरुओं का तिरस्कार, पापाचरण, पूर्वजन्म कृत कुकर्म तथा विरोधि पदार्थों के सेवन से किलास उत्पन्न होता है। चरक संहिता में विरोधी भोज्य-पदार्थों के सम्बन्ध में यह बतलाया गया है कि प्रकृति को दूषित करने वाले द्रव्यों से शरीर के रसादि सात धातु या वातादि दोष बिगड़ जाते हैं। इन द्रव्यों में कुछ द्रव्य परस्पर गुणों से, कुछ संयोग से और कुछ संस्कार से, कुछ देश, काल, मात्रा से और कुछ स्वभाव से ही विरोधी गुण वाले होते हैं। उदाहरणार्थ परस्पर विरुद्ध-जैसे मछलियों को दूध के साथ खाना। संयोग विरुद्ध जैसे पके हुये बड़हल को उड़द में मिलाकर खाना। संस्कार विरुद्ध—जैसे कबूतर को सरसों के तैल में भूनकर खाना। देशकाल मात्रा—स्वभाव विरुद्ध राख और धूल मिला भोजन खाना, गरम शहद खाना, मकोय का बासी साग खाना, बराबर वजन का शहद और घी मिलाकर खाना, मूली लहसुन, सहिजन, राई, तुलसी, मछली आदि को दूध के साथ खाना। उपर्युक्त विरोधी खान-पान से कुष्ठ, तथा अन्य भयंकर रोगों के होने का डर रहता है।

पाश्चात्य (एलोपैथी) चिकित्सकों के मत के अनुसार चर्म को रंगने वाले पदार्थों की कमी से यह रोग उत्पन्न होता है। इसके प्रधान कारण उपदंश (Syphilis) आतशक आदि रोग हैं।

श्वेत कुष्ठ के भेद एवं चिकित्सा—

श्वेत कुष्ठ के तीन भेद हैं (१)दारुण-रंग लाल तांबे के समान होता है। (२) वारुण-इसका रंग कमल दल के समान आस-पास सफेद और बीच में लाल होता है। (३) श्वित्र—यह बिलकुल चमेली के फूल के समान श्वेत होता है।

इस रोग की चिकित्सा कुष्ठ से भी कठिन होती है। पश्चिमी (एलोपैथी) चिकित्सकों के अनुसार तो यह रोग बिलकुल असाध्य होता है। डाक्टरी पुस्तकों में तो यह सलाह दी जाती है कि सफेद दागों में पाउडर आदि शृंगार सामग्री चुपड़कर ढ़के रखना चाहिए। किन्तु आयुर्वेद में इसकी चिकित्सा का समुचित विधान है। आयुर्वेद के प्रधानतम आचार्य महर्षि पतञ्जलि का कथन है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धया शोणित मोचौर्विरुक्षयौभंचवैश्च सक्तूनां ।
श्वित्रकस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीण पापस्य ॥

अर्थात जिस पुरुष के पापों का नाश हो जाता है उसे विरेचन तथा संशोधन से शुद्ध कर यह अच्छा किया जा सकता है। अन्यथा यह असाध्य है।

एक ओर तो महर्षि पतञ्जलि ने इस रोग को इतना भयंकर बतलाया है; इसकी दूसरी ओर आजकल विज्ञापन बाज एक दिन के अन्दर तीन बार या तीन दिन तक दवा लेप करके इसे अच्छा कर देने का दम भरते हैं! पाठकगण विचार कर देखें कि दोनों में कौन ठीक हो सकता है। ऐसे कठिन रोग से बहुत सुगमता, शीघ्रता एवं सामान्य औषधियों से छुटकारा पाना संभव नहीं है। यह रोग तो महर्षियों द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा प्रणाली के द्वारा ही निर्मूल किया जा सकता है। इस रोग के लिए जो बाजारू लेप इत्यादि हैं, उनके लगाने से कभी कभी दागों का रंग बदलता हुआ दीख पड़ता है। पर इससे स्थाई लाभ कदापि नहीं होता। या तो कुछ समय बाद ज्यों के त्यों हो जाते हैं। अथवा शरीर के किसी दूसरे स्थान पर निकल आते हैं। क्योंकि लेप से रक्तगत दोष शुद्ध नहीं हो सकता।

श्वेत कुष्ठ में सोमराजी (वाकुची), कठगूलर तथा शरपुंखा आदि वनस्पतियों का प्रयोग उत्तम लाभकारी है। लाभ भले ही कुछ अधिक समय में हो किन्तु इनसे किसी प्रकार की हानि नहीं होसकती। कुछ अन्य अप्रसिद्ध जड़ियां भी हैं जो श्वेत कुष्ठ पर अच्छा काम करती हैं।

रस चिकित्सा —

दैवी (रस) चिकित्सा में ही यह सामर्थ्य है कि इस पापज रोग का समूल नाश हो कर रोगी को नवजीवन प्राप्त हो जाय।

चिकित्सा में प्रधान पारद है। शास्त्रों में सुवर्ण में लाख गुण, हीरा में कोटि गुण तथा पारद में असंख्य गुण लिखे हैं। पारद कुष्ठदा अर्थात् कोढ को नाश करने में अमोघ-शक्ति रखता है। श्री गोविन्द मिश्र अपने रस हृदय ग्रन्थ में लिखते हैं—

सुरगुरु गोद्विज हिंसा पापकलापोद्भवं किलासाध्यं ।
चित्रं तदपि च शमयति कोऽन्यस्मात् पवित्र तरः ॥

अर्थात् देवता, गुरु, गाय, ब्राह्मण आदि की हत्याओं से उत्पन्न असाध्य श्वेत कुष्ठ को पारद अच्छा कर देता है। अतएव पारे में भगवान शंकर का अनिवर्चनीय प्रादुर्भाव आज भी देखने को मिलता है। नहीं तो इसके विलास मात्र से ही इतना बड़ा पापज रोग श्वेत कुष्ठ कैसे ठीक हो जाता? रसेन्दु मंगल ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि सौ अश्वमेघ यज्ञ करने का पुण्य, करोड़ गौदान का पुण्य, सुवर्ण भूमिदान का पुण्य, सारे पुण्य केवल पारद के दर्शन से ही मिलते हैं। और भी लिखा है—

कन्या कोटि प्रदानेन गङ्गायां पितृ तपणे।
वृषोत्सर्गे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं कुष्ठनाशने ॥

कुष्ठ के सम्बन्ध में तो शास्त्रकारों का यह मत है कि—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत्।
अतो निन्दित रोगोयं कष्टं कुष्ठ प्रकीर्तितम् ॥
एत.वता कुष्ठिनां कदापि न विश्रान्तव्यं ॥

अर्थात् कुष्ठ का रोगी मरने के बाद जब जन्म लेता है तब भी कोढ़ी होता है। इसलिए इसकी चिकित्सा निरन्तर कराते रहना चाहिए। हो सकता है कि संयोगवश सुयोग्य चिकित्सक और उत्तम औषध के संयोग के द्वारा इस कठिन रोग से छुटकारा मिल जाय।

हमारा तो यह पूर्ण विश्वास है कि यदि नियमपूर्वक पूरे परहेज के साथ औषध सेवन की जाय तो इस रोग का अच्छा होना केवल सम्भव ही नहीं वरन् सुनिश्चित है। अनेक वर्षों के हमारे अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है।

—श्री अवधबिहारी मिश्र वैद्यशास्त्री,
बिन्दकी (फतेहपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वर और उसकी अनुभूत चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा

(१) जीरकाद्य अवलेह--

जीरा भुना २ मासे, छोटी इलायची के दाने २ मासे, बंशलोचन २ मासे ये सब वस्तुएं खूब बारीक पीस लें। बेल पत्र (बेल पत्र के हरे पत्ते) ५ नग, बिना पानी डाले चकले पर लोड़ी से चटनी की तरह पीसकर उक्त चूर्ण में पिलावें। इन सबको १ तोले शहद में मिलाकर रखलें और रोगी को २-२ घंटे बाद १।। मासे चटावें। इससे दस्त रुक जाते हैं, आंतों के घाव भरते हैं, हृदय को बल मिलता है। यदि दस्त में शक्कर, मधु जाने लगा है जैसा कि अधिकांश सन्निपात ज्वर में देखा जाता है, तो यह अवलेह लाभ करता है। मोतीझला के दस्तों में भी लाभ करता है। ज्वर की तीव्रता और घबराहट को कम करता है।

(२) गृहणी कपाट वटी--

हींग भुनी १ तोला, शुद्ध अफीम १ तोला, जीरा सफेद भुना १ तोला, गोंद बबूल ३ मासे। सबको पानी के साथ खूब घोटकर चने के बराबर गोलियां बनालें। मात्रा १-२ वटी। अनुपान--जल से या थोड़ा सा जायफल और सोंठ पानी में घिसकर उसमें गोली मिलाकर चटादें। इससे दस्त भी बन्द हो जाते हैं, हवा खुलती रहती है, अफरा होने का भय नहीं रहता।

(३) बेलगिरि २ रत्ती, जायफल २ रत्ती, जीरा १ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, पानी के सहारे चकले पर घिसकर चटाने से अतिसार का उपद्रव ठीक होता है।

(४) शुक्तादि योग -

प्याज की गांठें कूटकर निचोड़ा हुआ स्वरस १ पाव, पोदीने को कूटकर निचोड़ा रस १ पाव, सिरका १ पाव। मात्रा १-१ तोला २-२ घंटे पर।

सिमाक दाना पाव भर, नीम की छाल पाव भर इन दोनों वस्तुओं को ३ सेर पानी में औटावें जब १ सेर शेष रह जाय उतार कर छान लें।

एक तोला कपूर लेकर उसमें १ तोला शराब मिलाकर हल करलें। सिरके में १ तोला शुद्ध अफीम घोल लें।

प्याजादि अर्क, क्वाथ, कपूर और अफीम का घोल सबको एक बोतल में भरकर रखलें।

मात्रा --३ से ६ माशे तक। यह योग दस्त, कै में लाभदायी है। इससे ज्वर तीव्र नहीं होता।

(५) पंचमूल्यादि क्वाथ--

पंचमूल (सरवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू) खरैटी, बेल का गूदा, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ़, चिरायता, नेत्रवाला, कुड़े की छाल और इन्द्रजौ ये सब वस्तुएं समान भाग लेकर जौकुट करलें। इसमें से २।। तोला औषधि पावभर पानी में औटावें। जब १ छटांक रह जाय उतारकर थोड़ा रोगी को पिलावें। इस क्वाथ से सब प्रकार के अतिसार ज्वर, वमन दूर होते हैं। अतिसार के साथ सन्निपात ज्वर में जब वमन, पेट में दर्द, खांसी और श्वासादि उपद्रव हों उस समय पर यह क्वाथ बड़ा लाभदायी रहता है।

(६) सिद्ध प्राणेश्वर रस--

शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला सज्जी, सुहागा चौकिया फुलाया हुआ, जवाखार, पांचों लवण, त्रिफला (हरड़ का बक्कल, बहेड़े का बक्कल, आंवला गुठलीरहित), त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), इन्द्रजौ, काला जीरा, सफेद जीरा, चित्रक, अजवायन, हींग भुनी हुई, बायबिडंग, सौंफ इन सबको कपड़छन किए हुए चूर्ण ३-३ माशे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पारे और गंधक को खरल में डालकर घोटें। जब दोनों मिलकर काली कज्जली बन जाय तब अभ्रक मिला कर घोटें। इसके बाद शेष चूर्ण को मिलाकर खरल कर रखलें।

मात्रा--१-२ रत्ती । पान के रस, गर्म जल अथवा ऊपर बताये हुए अथवा नं. ३ के योग के साथ देने से घोर त्रिदोषज अतिसार अथवा सन्निपात ज्वरों में हुए उपद्रवयुक्त अतिसार, रक्तस्राव में लाभदायी है। ज्वर, संग्रहणी, उदरशूल, परिणाम शूल (भोजन पचने पर होने वाला पेट का दर्द) वायु के रोगों में भी विशेष उपयोगी है।

(७) कनक सुन्दर रस--

शुद्ध हिंगुल, काली मिर्च का चूर्ण, पीपल छोटी पिसी हुई, शुद्ध मीठा तेलिया पिसा हुआ, शुद्ध धत्तूरे के बीज का चूर्ण, सब वस्तुओं को बराबर लेकर खरल में डालकर भांग के रस या काढ़े में ३-४ घण्टे लगातार खूब खरल कर चने के प्रमाण वटी बनावें।

मात्रा-१-२ गोली। अनुपान-पूर्ववत्।

इसके सेवन कराने से सन्निपात ज्वर अतिसार सहित शीघ्र शमन होता है। यह रस मंदाग्नि, संग्रहणी और विषम ज्वर में भी लाभदायी है। खांसी, श्वास में भी लाभ करता है।

एक सावधानी की बात

यदि आप रोगी को दूध दे रहे हों तो अतिसार, अफरा होने की दशा में आप दूध देना कतई बन्द कर दीजिये। यदि आपको दूध देना अनिवार्य ही हो तो आप १० तोले दूध में १ तोला 'सुधासलिल' अवश्य पिला दीजिए।

(८) सुधा सलिल--

चूना कलई बिना बुझा लेकर दस गुने पानी में डालकर एक लकड़ी के डंडे से चला दें और उसे ढककर रख दें। ४-५ दिन बाद चूना पानी में बैठ जायगा। आप ऊपर से निथरा हुआ जल ले लें।

यह अग्निवर्द्धक, आमशूल नाशक, वमन, विरेचन में उपयोगी है। दूध में मिलाकर देने से दूध पच जाता है। बच्चों के कै, दस्तों को बन्द करता है। बच्चों को हमेशा दूध में मिलाकर दीजिए। नीचे हम इसका उपयोगी योग देते हैं–

(९) इसमेद सुधा–

बबूल का गोंद पिसा हुआ ½ तोला, शुद्ध अफीम १ रत्ती, सुधा सलिल १५ तोले।

एक पत्थर या चीनी अथवा कांच के प्याले में थोड़ा सा सुधा सलिल डालकर उसमें पहिले अफीम घोल लें। जब अफीम घुल जाय तब उसमें गोंद घोल लें। फिर शेष सुधा सलिल मिलाकर एक शीशी में भर कर रख दें।

मात्रा-२॥-२॥ तोले। ४-४ घण्टे बाद देने से सब प्रकार के दस्त, मरोड़, आम, रक्तातिसार, खूनी दस्त या पेचिश में लाभ करता है। अधोगत रक्तपित्त में विशेष लाभकारी है। आंतों के घावों को भरता है। सन्निपात ज्वर में उत्पन्न हुए अतिसार में निश्चय लाभ करता है। दीपन, पाचन है।

(१०) पिच्छिल बस्ति—

निशास्ते को पानी में घोल दें साथ ही १ रत्ती अफीम भी घोलकर बस्ति देने से दस्त शीघ्र बंद हो जाते हैं।

विड्ग्रह (कब्ज)

सन्निपात ज्वरों में रोगी को प्रायः मलबन्ध [कब्ज] रहता है, कई कई दिन तक दस्त ही नहीं होता। जब रोगी को लंघन, उपवास हो रहे हों तो कब्ज का हो जाना एक स्वाभाविक बात है। जब चक्की में कुछ गिरता ही नहीं तब निकले भी क्या? मल विसर्जन में खाये हुए भोजन का दबाव भी सहायता देता है। इसलिये जब अतिसार (दस्त) हो रहे हों तब कुछ भोजन न देने से आंतों में स्थित मल को वहां रुके रहने का अवसर मिल जाता है और आंतों के रसांकुर भोजन में से रस को अधिक चूस लेते हैं, फलतः मल गाढ़ा हो जाता है। अधिक समय तक मल के आंतों में रुके रहने से मल गाढ़ा होकर गांठें बन जाती हैं। ये गांठें कभी बड़ी स्थूल [मोटी], खुश्क, कड़ी हो जाती हैं और इनके निकलते समय रोगी को बड़ा बल लगाना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे अनेक बार मलद्वार तड़क जाता है और उससे रक्तस्राव होने लगता है। अनेक बार तो रोगी की गुदा में अंगुली डाल मल के टुकड़े टुकड़े कर निकालने की आवश्यकता पड़ जाती है।

कब्ज लंघन, अल्पाहार देने से ही होता हो, सो बात नहीं है, बात प्रधान दोषों और रूक्ष आहार से भी मल बंध जाता है।

यद्यपि 'मलायत्तम् पुंसाम्' मल के आश्रित मनुष्यों को बल होता है। सन्निपात ज्वरों में यह कहावत बिल्कुल ठीक ही होती है कि 'मलबन्ध रोगी और दलबंद राजा का कुछ नहीं बिगड़ता' यदि राजा शत्रु से युद्ध में हार भी गया है, परन्तु उसका दल [सेना] बरकरार है तो वह उसके बल पर फिर शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार यदि रोगी के शरीर में मल है तो उसमें बल अवश्य है। बल के सहारे वह खड़ा हो सकता है। मल के टूट जाने, दस्तादि के द्वारा अधिक मल के शरीर से निकल जाने पर वह दुर्बल और दुस्साध्य हो जाता है। किंतु यह सब कुछ होते हुए भी मल का विशेष संचय कष्टंकर होता है। यदि रोगी को दूध, फलों का रस, यवयूष [बारली वाटर] आदि हल्का आहार दिया जा रहा है, किंतु रोगी को कई दिन तक दस्त नहीं हो रहा है। दस्त होने की हाजत भी नहीं होती, साथ ही रोगी को कब्ज से कोई कष्ट भी प्रतीत नहीं हो रहा है तो कब्ज का बना रहना ही अच्छा है। उसे जबरदस्ती, छेड़छाड़कर निकालना हानिकारक है। हां जब देखते हैं कि रोगी को कई दिन से दस्त नहीं हुआ है, पेट गुड़गुड़ाता, पेट में वायु इधर से उधर घूमता है परन्तु निःसारित (खारिज) नहीं होता। अफरा और शूल प्रतीत होता है, दस्त की हाजत तो होती है पर उतरता नहीं, अटक जाता है तो ऐसे समय सन्निपात ज्वर में अवश्य मल निकालने, कब्ज हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सन्निपात ज्वरों में मल निकालने के लिए तीव्र रेचन (दस्तावर दवा) का सहारा लेना भयानक है। इस कार्य के लिए अन्तः परिमार्जन (भीतरी सफाई, खाने की औषधि देने) की अपेक्षा बहिःपरिमार्जन (बाहरी प्रयोग) उत्तम रहते हैं।

१–यदि रोगी को कई दिन से दस्त नहीं हुआ है और उतरते उतरते रुक जाता है, मल के उतरते समय रोगी की गुदा में तर्रामन, दर्द अनुभव करता है और दर्द तथा गुदा चिरने के भय से गुदा को संकुचित कर दस्त को रोकता है तो ऐसी दशा में थोड़ा घी या वैसलीन अथवा मीठा तेल लेकर उसे जरा गर्म कर गुदा और उसके आसपास लगा दीजिये। इससे गुदा और उसके आसपास का प्रदेश मुलायम-चिकना हो जायगा और मल उतरते समय आसानी से अधिक चौड़ जायगा, चटकेगा नहीं। यह क्रिया सावधानी के तौर पर यदि दस्त कराने के पहिले सदा बरती जाय तो बहुत ही उत्तम है। इससे दस्त आसानी से हो जाता है।

रेचन वर्ति

रेचन वर्ति–दस्त कराने की बत्ती, ग्लेसरीन सपोजीटरी का प्रयोग करना उत्तम है। इससे मलद्वार के आसपास का पक्का, कर्रा, सूखा मल ही बाहर निकलता है, कच्चा मल नहीं निकलता। केवल एक ही दस्त होता है, कभी कभी एक बार में गांठें नहीं निकल पातीं तो दूसरा एक दस्त और भी हो जाता है। परन्तु इससे रोगी निर्बलता अनुभव नहीं करता जैसा कि खाने की किसी औषधि से दस्त कराने के बाद अनुभव करता है। यदि रेचन वर्ती के प्रयोग से दस्त नहीं होता तो आप—

अनुवासन वर्ति

तेल या ग्लेसरीन की पिचकारी से दीजिए। इससे गांठें चिकनी हो जाती हैं और गुदा में चिकनाहट, फिसलन पैदा हो जाने से गांठें आसानी से फिसलकर बाहर आ जाती हैं। परन्तु अनेक बार देखा गया है कि जब गांठें बड़ी मल शुष्क होता है तो अनुवासन वस्ति से भी दस्त नहीं होता उस समय–

निरूहण वस्ति

काढ़े की वस्ति (अनीमा-डूस) से विशेष लाभ होता है। क्वाथ के जल में मल घुलकर पतला हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है और वह आसानी से गुदद्वार से बाहर निकल आता है। जितना जल अनीमा के द्वारा पेट में पहुंचाया जाता है, वह सब वापस नहीं निकलता उसका कुछ भाग सोख लेता है, कुछ आंतें चूस लेती है, शेष बाहर आ जाता है। जल तथा स्नेह के आंतों द्वारा शोषण होने से लाभ ही होता है, कोई हानि नहीं होती। निरूह वस्ति के देने पर भी यदि दस्त होने में विशेष बिलम्ब होता दीखे तो आप फलवर्ती लगा दीजिये। निश्चय तत्काल दस्त हो जाएगा।

फलवर्ती

मैनफल, पीपल, कूठ, बच, सफेद सरसों और जवाखार १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें, फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहें। जब बर्ती बांधने लायक हो जाय तब कनिष्ठका से कुछ पतली और नोंक वाली वर्ती (बत्तियां) बनालें। इस वर्ती पर थोड़ा घी वाला हाथ लगाकर गुदा में चढ़ाने से मलावरोध जनित उदावर्त रोग का शमन होता है, उसी समय रुकी हुई अधोवायु निकल कर अफरा दूर हो जाता है। यदि मल सूख कर गुद नलिका में फंस गया हो तो वह निकल जाता है और फिर ऊपर में रही हुई अपान वायु सरलता से बाहर निकल जाती है। इसी प्रकार—

फेनक फलवर्ति

का भी प्रयोग किया जाता है। एक साबुन की चकती में चाकू से छोटी अंगुली जैसा मोटा टुकड़ा काटकर चाकू से चारों ओर से छील छुआरे की गुठली की तरह एक ओर नोकीला रक्खें। दूसरी ओर नोक रहित और मोटा रक्खें। इसे मीठे तेल और पानी में डुबोकर या शहद में डुबा ऊपर से महीन नमक छिड़क कर नोकीली ओर से धीरे धीरे रोगी की गुदा में प्रविष्ट करें। यदि इसकी लम्बाई छः अंगुल हो तो इसका प्रभाव गुदा की तीनों वलियों से भी ऊपर होता है और वहां से मल को निकालती है अन्यथा प्रकृति को मल को बाहर निकालने की ओर लगा देती है। इससे सरलता से नीचे का मल निकल जाता है और ऊपर का मल नीचे धसक कर उसकी जगह आ जाता है। दस्त के साथ संचित दूषित वायु भी निकल जाती है।

ग्लेसरीन सपोजिटरी

ग्लेसरीन की बत्तियां अंग्रेजी सब दवा बेचने वालों के यहां बनी बनाई मिल जाती हैं। ये बच्चों और बड़ों में व्यवहार करने के लिये छोटी और बड़ी दो प्रकार की बाजार में मिलती है। ये भीतर जाकर घुल जाती हैं, मल मार्ग को स्निग्ध कर मल को निकलने में सहायता पहुँचाती हैं।

अनुवासन वस्ति

विरेचन, ग्लेसरीन आदि चिकनाई गुदा द्वारा आंत में पहुंचाने का नाम अनुवासन या स्नेह वस्ति है।

प्राचीनकाल में गुदा के मार्ग से औषधि प्रवेश करने के लिए जो यन्त्र बनाया जाता था, वह बकरी-बकरे, गाय-बैल आदि जानवरों की वस्ति (मूत्राशय, मसाने, मूत्र इकट्ठा होने की थैली) से बनाया जाता था इसलिए उसे वस्ति यंत्र कहते थे। वह ऐसे बनता था—

कसाई से मसाने को मंगा साफ कर उसके तीन छेदों में से दो को बांध देते थे। तीसरे छेद से उसमें औषध भर इस छेद में एक बांस या लकड़ी की खरादी बढ़ई से खरदवाई हुई चिकनी नली जिसका कि छेद करीब मूंग के बराबर चौड़ा होता था लगा देते थे। इस नली को चिकनी कर धीरे धीरे गुदा में प्रविष्ट कर मसाने को दबाकर औषधि भीतर प्रविष्ट कर देते थे। इस विधि को यूनानी हकीम 'हुकना' कहते हैं।

इसके बाद में शृङ्गिकोष यानी पिचकारी में भर कर औषध भीतर प्रविष्ट करने लगे। परन्तु नाम वस्ति ही लेते रहे हैं। आजकल धातु शीशी की बनी हुई पिचकारी आती है, इन्हें 'ग्लेसरीन सिरिंज' (Glycerine Syringe) कहते हैं।

प्रवेश विधि

रोगी बाईं करवट से लिटाकर बायां पैर लम्बा पसार दें, दाहिना पैर सिकोड़ कर पेट के पास ले आवें। रोगी का बायां हाथ उसके सिर के नीचे तकिये की तरह रखादें। रोगी का सिरहाना पायत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नीचे रखना अच्छा है ताकि तरल को प्रविष्ट होने में सरलता रहे। यदि आवश्यकता समझें तो रोगी के नितम्ब के नीचे तकिया लगाकर ऊंचा कर दें। बस्ति नलिका या पिचकारी (नोजिल Nozle) तैल से तरकर गुदा में हाथ के सहारे से धीरे धीरे भीतर करके बायें हाथ से नली दबायें, दाहिने हाथ से न तो बहुत जल्द जल्द जोर से और न बहुत धीरे बस्ति को दबावें। पिचकारी के छल्ले, पैट्रिन को दबाकर औषध भीतर प्रविष्ट कर दें, बस्ति पिचकारी में भरे सारे द्रव को भीतर प्रविष्ट इसलिए नहीं किया जाता है कि बस्ति में की वायु गुदा में प्रविष्ट न हो जाय।

तैल वस्ति देने के बाद रोगी का दूसरा पैर भी सकोड़ दें और दोनों नितम्बों को मिला थोड़ी देर दबाये रहें ताकि स्नेह कुछ देर भीतर रुका रहे और अपना कार्य अच्छी तरह कर सके। क्योंकि वस्ति लगाते ही वह निकलने का प्रयास करता है।

यदि आप वस्ति-डूस सैट से दे रहे हैं तो पात्र को इतना ऊंचा रखिये कि द्रव की गति अधिक न हो।

कभी कभी गुदा में आधा ही द्रव प्रविष्ट होने पर ही रोगी को मल या वायु के त्याग की इच्छा होती है, उस समय वस्ति का तैल निकाल लेना चाहिए और रोगी के मल वायु निःस्सारण कर लेने के पश्चात फिर बाकी द्रव की वस्ति दे देनी चाहिए।

कभी कभी ऐसा होता है कि रोगी की गुदा में अर्श के मस्से होते हैं या करी मल ही अड़ा होता है जिससे वस्ति का नेत्र आगे नहीं बढ़ता। ऐसी दशा में नेत्र पीछे आगे सरका कर मार्ग कर लेना चाहिए। कभी कभी मल के नेत्र (छिद्र) में घुस जाने से भी द्रव भीतर जाना रुक जाता है। ऐसी दशा में वस्ति नेत्र को बाहर निकाल उसका पिष्टन दबाकर थोड़ा सा द्रव गिरा देने से खुल जाता है, तब उसे फिर प्रविष्ट कर देना चाहिए।

—रसवैद्य श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य,
जैन धर्मार्थ चिकित्सालय,
कीठम पो. रैपुरा जाट (मथुरा)

:: पृष्ठ ३१ का शेषांश ::

यंत्र प्रयोग में लाते हैं। कई बार साधारण यांत्रिक प्रयोग भी हमें अपूर्ण ज्ञान की ओर अग्रसर करते हैं जैसे मोमबत्ती और गत्ते के टुकड़े से हम तेज (Light) का जो प्रयोग करते हैं, उससे यह आशय निकालते हैं कि प्रकाश की किरणें सीधी रेखाओं के समान चलती हैं परन्तु जब हम सूक्ष्म यन्त्र (Cathode ray tube) में प्रकाश का प्रयोग करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तेज की गति धारावाही है।

ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की सीमाओं का अन्त भी शीघ्र ही आ जाता है। फिर हम गणित का सहारा लेते हैं। गणित भी हमें पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। गणित से आगे का और अन्तिम साधन जो हमारे पास है वह है अन्तर्बोध।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अधिकतर निष्कर्षों के आधारभूत साधन पांच ज्ञानेन्द्रियों से लेकर गणित तक ही सीमित हैं, जबकि आयुर्वेद के पांच तत्वों के मत का प्रतिपादन प्राचीन ऋषियों ने उच्चतम साधन अन्तर्बोध द्वारा किया है। इसमें यदि किसी विद्वान को संशय हो तो तर्क की कसौटी पर कस कर देख लें। (शेष आगामी अङ्क में)

—श्री बुद्धि प्रकाश जिज्ञासु,
हरियाना प्रेस फार्मेसी, सोनीपत।

पैन टार्च

यह टार्च जेब में पैन की तरह लगाई जाती है। इसमें बहुत पतले दो सैल पड़ते हैं। चिकित्सकों के लिए गले नाक आदि की परीक्षा करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य केवल ६.००

इसी टार्च पर गले व जबान देखने, कान तथा नाक देखने की कांच की ठोस नली फिट हो जाती हैं जिनसे इन अङ्गों को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढ़े एक बक्स में रखे पूरे सैट का मूल्य केवल २४.००

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण सूक्तियों में आरोग्य और स्वावलम्बन चर्चा

श्री गोपालदास अग्रवाल

इस प्रगतिशील युग में आज भी हमारे ग्रामीण भाई भले ही उच्च शिक्षा प्राप्त करके उपाधि न प्राप्त कर सके हों किन्तु ज्ञान की गहराई का पता शिक्षित व्यक्ति लगावें, तब यह तो मानना ही पड़ेगा कि शहरों से दूर बसने वाला किसान जो आशक्षित है, आज के युग में एक शिक्षित व्यक्ति से कहीं श्रेष्ठ है। यह सच है कि हम सैद्धांतिक विषय पर तो ज्ञान कर लेते हैं किंतु व्यावहारिक रूप में हमारा ज्ञान न्यून व छिछला होता है और जब हम कर्मक्षेत्र में उतरते हैं तभी हमारी शिक्षा की पोल खुल जाती है।

ग्रामीण साहित्य, ग्रामीण लोकोक्तियां एवं सूक्तियां जन कल्याण कर सकने व पथ प्रशस्त कर सकने में समर्थ हैं। ग्रामीण कवियों की वाणी में ओज, सत्य, वास्तविकता और भविष्य की जानकारी देखते और सुनते ही बनती है। यही कारण है कि लोक कवियों ने जो कुछ भी कहा अथवा लिखा वे मंत्रवत् बन गई। इसका कारण यही है कि इन कवियों ने प्रत्यक्ष दर्शन, अनुभव एवं विवेक के द्वारा जो कुछ भी कहा है उनकी वाणी सत्य ही निकली है।

लोक कवियों में घाघ, भड्डरी, डंक, बेजू आदि की पद्यात्मक सूक्तियां निःसन्देह अनुभवसिद्ध हैं। यही कारण है कि ग्रामीणों के दैनिक जीवन में उनकी वाणी समाहित हो गई है और वे आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इन लोक कवियों की सूक्तियां खेती, स्वावलम्बन, आरोग्य, हल, बैल, पशु, सिंचाई, निराई, खाद आदि के सम्बन्ध में किसानों का पथ प्रदर्शन कर रही हैं। किसानों ने भांति भांति की अपूर्व बातें अनुभव से ज्ञात की हैं जो गूढ़ कहावतों में ही देखने को मिलती हैं। ग्रामीण सूक्तियों में प्रत्येक सदस्य का समाधान निहित है। हम यहां पर आरोग्य और स्वावलम्बन पर प्रकाश डालने वाली कुछ सूक्तियां दे रहे हैं।

आरोग्य सम्बन्धी कुछ सूक्तियां इस प्रकार हैं—

रहे निरोगो जो कम खाय। बिगरै सो गम खाय॥

अर्थ—जो कम खाता है अर्थात् अल्पाहारी है वह निरोगी स्वस्थ रहता है और कार्य बिगड़ जाने पर गम खाना या धैर्य से काम लेना चाहिए।

आयुर्वेद संबन्धी कुछ अनमोल सूक्तियां दर्शनीय हैं—

खाइ के मूते सूते बांऊ। काहे को वैद बसावै गाऊं॥

अर्थ—भोजन करने बाद पेशाब करना चाहिए, और थोड़ी देर के लिए बांयी करवट लेट जाना चाहिए। इतना करते रहने पर फिर वैद्य को गांव में रहने की क्या आवश्यकता है।

सूक्तियों में प्रातःकालीन ऊषा पान का भी निर्देश देखते ही बनता है—

प्रातःकाल खटिया से उठि के, पियहिं तुरतै पानी॥
कबहूं घर में वैद न अइहै, बात घाघ कै जानी॥

अर्थ—यह बात लोक कवि घाघ की आजमाइश की हुई है कि यदि प्रत्येक दिन नियमित रूप से प्रातः काल उठते ही स्वच्छ जल पी लिया जाय तो कभी भी घर में वैद्य नहीं आयेगा अर्थात् स्वास्थ्य ठीक रहेगा, बीमारी पास न फटक सकेगी।

किस वस्तु का सेवन किस ऋतु में करना चाहिए और कौन सी वस्तु ऋतु विशेष में न खानी चाहिए, इस सम्बन्ध में शहर के लोगों को भले ही ज्ञान न हो किन्तु हमारे ग्रामीण भाइयों को आरोग्य के अनमोल नुसखे सदा याद रहते हैं—

चैते गुड़, बैसाखे तेल, जेठे के पंथ, असाढ़ के बेल।
सावन साग न भादों दही, क्वार करेला, न कातिक मही॥
अगहन जीरा, पुसे धना, माघे मिश्री, फागुन चना॥

अर्थ—तात्पर्य यह कि निम्न महीनों में इन वस्तुओं का सेवन वर्जित है। जैसे चैत में गुड़, बैशाख में तेल, जेठ में राह चलना, असाढ़ में बेल, सावन में साग, भादों में दही, क्वार में करेला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्तिक में मट्ठा में या छाछ, अगहन में जीरा, पौस में धनियां, माघ में मिश्री और फाल्गुन में चने का सेवन करना स्वास्थ्य के विपरीत है।

एक ओर उपर्युक्त सुक्तियों में जहां यह बताया गया कि किस मास में किस वस्तु का सेवन न करना चाहिए, नीचे की सूक्ति में लाभ पहुँचाने वाली वस्तुओं का वर्णन इस प्रकार से है-

सावन हर्रे, भादों चीत। क्वार मास गुड खायऊ मीत॥
कातिक मूली, अगहन तेल। पूस में करे दूध से मेल॥
माघ मास घिउ खिचरी खाय। फाल्गुन उठके प्रातःनहाय॥
चैत मास में नीम बेसहनी। बैसाखे में खाय जडहनी॥
जेठ मास जो दिन में सोवे। ओकर जई असाढ में रोवे॥

कुछ अन्य सूक्तियां इस प्रकार से हैं-

सामन घोड़ी भादों गाय। माघ मास जो भैंस विआय॥
कहै घाघ यह सांची बात। आप मरै कि मालिकै खाय॥

अर्थ—अगर सावन में घोड़ी, भादों में गाय, माघ में भैंस व्यायगी तब यह निश्चय मानिए कि या तो वह खुद मर जायगी अथवा उसका मालिक ही मरेगा।

ऊपर आरोग्य से सम्बन्धित कुछ सूक्तियों का वर्णन किया गया है। स्वावलम्बन की संदेशवाहिनी कुछ महत्वपूर्ण सूक्तियां इस प्रकार से हैं। जैसे-

आलस नींद किसानें नासै, चोर नासै खांसी।
अंखियां लीवर वैश्या नासै, बाबै नासै दासी॥

अर्थ-तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आलस्य करने और सोते रहने से किसान का नाश होता है या नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार चोर का खांसी, वैश्या का कीचड़ से भरी आंखें और बाबा का दासी शीघ्र ही नाश या अन्त कर देती है। और भी कहा है-

'खेती वग्या सैती'

अर्थ-जमीन का मालिक मेहनत करे तभी खेती होती है। खेती के साथ ही साथ खेती सम्बन्धी नीति का संदेश इस सूक्ति में सुनिये—

पर हथ वनिज संदेसे खेती,
बिन बर देखे व्याहै बेटी।
द्वार पराये गाडे थाती,
ये चारों मिल पीटैं छाती॥

अर्थ—यह सत्य है कि दूसरे के भरोसे व्यापार करने वाला, संदेशों के बल पर ही खेती करने वाला, बिना वर देखे बेटी का व्याह करने वाला और दूसरे के द्वार पर धरोहर गाड़ने वाला ये चारों छाती पीट पीट कर पछताते और रोते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि संदेशों से भी कहीं खेती होती है।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें हमें स्वयं पूरा करना चाहिए—

खेती, पाती, बीनती, और घोड़े की तङ्ग।
अपने हाथ संवारिये, लाख लोग हों सङ्ग॥

अर्थ-कृषि कार्य, पत्र व्यवहार, विनय और घोड़े की तङ्ग उपर्युक्त सभी कार्य लाख सेवकों या सहायकों के होने पर भी अपने आप ही करने चाहिए।

खेती की उपादेयता के सम्बन्ध में निम्न सूक्ति कितनी सत्य है, इस ओर ध्यान देना चाहिए-

नौकरी न कीजै यार, घास खोद खाइये।
और खोदें आसपास, आप दूर जाइये॥

अर्थ-सूक्ति कर्ता का उपदेश है कि मित्र नौकरी करने से घास खोदकर आजीविका चलाना अच्छा है। दूसरे लोग यदि आसपास खोद रहे हों, कार्य कर रहे हों तो तुम्हें दूर अन्यत्र जाकर खोदना या कार्य करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन यापन के लिए आज भी किसानों के पास काफी सामग्री सुरक्षित है। इन ग्रामीण सूक्तियों से हम और आप भी बहुत कुछ सीख कर लाभ उठा सकते हैं।

—श्री गोपालदास अग्रवाल,
अजयगढ़ (म. प्र.)

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपास

श्री ओमप्रकाश शर्मा बी० आई० एम० एस०

यूं तो कपास भी २-३ प्रकार की होती है उसका महत्व भी प्रथक है, फिर मूल, पत्र, पुष्प, फल, छाल का प्रयोग प्रथक-प्रथक है, कपास अमृत है। इसके विभिन्न अङ्ग वायु एवं रक्त के रोग, कर्ण पीड़ा, कर्ण पिड़िका, कुष्ठ, क्षत, प्रदर, प्रमेह, अतिसार, अपची, विष, शोथ, लूता एवं वृश्चिक विष, अश्मरी, मूत्र कृच्छ, मूर्च्छा, संग्रहणी, नष्टार्तव, बन्ध्यत्व, पक्षाघात, संधिवात, न्युमोनियां आदि रोगों में प्रयुक्त होते हैं।

चिकित्सक के परामर्श के बिना ही ग्रामीण लोग व्रण एवं कर्ण पिड़िका, कर्ण शूल में, बच्चों के श्वसनक ज्वर में इसके पत्तों का प्रयोग करते एवं स्वस्थ भी होते हैं।

मुझे अपने चिकित्साकाल में स्त्री रोगों पर इसके प्रयोग से (प्रायः) सर्वत्र सफलता मिली है। साधारणतः ग्रामोत्पन्न कपास ही मैंने प्रयोग में ली थी, पर एक बार गुरेण फार्म के मालिक श्रीदत्त जी गौड़ ने कपास मूल भेजा था (जो शायद नर सेना ग्राम का था) उससे चमत्कारिक एवं इन्जैक्शन के समान सफलता मिली।

प्रदर (श्वेत या पीत) —

स्वच्छ कपास की जड़ का चूर्ण १-१ माशा जल अथवा तण्डुलोदक से।

रजावरोध —

कपास मूलत्वक् २ तोला का क्वाथ रजःकाल से ३ दिन पूर्व से प्रातः सायं १ मात्रा।

सन्तान प्राप्त्यर्थ —

तीन मास ब्रह्मचर्य (स्त्री-पुरुष दोनों) के उपरान्त रजःश्राव के प्रथम ४ दिन छोड़कर १ सप्ताह तक उसके कच्चे फलों को गाय के दूध में कल्क बना प्रयोग करने से।

दुग्धवृद्धि एवं प्रमेह—

कपास बीज (बिनौला) का चूर्ण दूध में लेने से यदि गाय दूध में बिनौला की खीर बनाकर प्रयोग की जाये तो यह बाजीकरण एवं पौष्टिक होता है। साथ ही मूत्र वृद्धि निस्सारक एवं धातुस्राव-नाशक एवं वीर्यवर्धक होती है। स्त्रियों का प्रदर नष्ट करती है। सद्यप्रसवा में शक्ति के साथ दुग्ध की वृद्धि भी करती है।

प्रसव—

सबसे अच्छा लाभ इसमें मिला। पर कपास मूल गुरेण फार्म की थी। इस प्रयोग से पूर्व में इसके स्थान पर विविध अवस्थाओं में अरबालिन, अर्गोमेट्रीन एक्सट्रैक्ट, कुनीन, पिच्युट्रीन का प्रयोग करता था पर पिछले २ वर्ष से इनका प्रयोग नहीं किया, और इनके बिना नीचे के प्रयोग से ही सफलता प्राप्त की—

कपास मूल की त्वचा ५ तोला जल २॥ सेर, क्वाथ शेष १। सेर प्रसव वेदना न होने पर तथा विलम्ब में ५ तोले की १ मात्रा प्रत्येक आधा से १ घंटे के अन्तर से दें। प्रसव होने के बाद प्रथम दिन प्रातः सायं २ मात्रा ५-५ तोले की फिर ५ तो. की १ मात्रा प्रतिदिन या २॥-२॥ तोले की मात्रा प्रतिदिन जब तक आवश्यकता हो दें।

श्री ओमप्रकाश शर्मा *B. I. M. S.*
राजकीय आयु० चिकित्सालय,
नौगवां (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी सफल चिकित्सा-विधि

असाध्य रोग पर—

कौड़ी की करामात

बदल कर आये मुझे कुछ ही दिन हुये थे। एक दिन सायं पांच बजे के लगभग परिचित मास्टर साहब एक लड़के को लेकर आये। रोगी को देखते ही पाण्डु का भान हुआ। किन्तु जब कहानी सुनी तो बड़ा दुःख हुआ। संक्षेप में इस प्रकार है–

मेरा नाम शिवलाल है। मेरे मां बाप ने बड़ी कठिनता से पढ़ाया तथा बड़ी तमन्ना से कालिज में प्रविष्ट करवाया। आर्थिक संकटों के बावजूद भी वे मेरा व्यय वहन करते रहे। अब मैं द्वितीय वर्ष में से पढ़ाई छोड़ चुका हूं। रोग के कारण जीवन से निराश हो गया हूँ।

२४ अक्टूबर १६५८ को अचानक दोपहर बाद मुझे मरोड़ लग गये। कालिज के डाक्टर को दिखाया गया। उन्होंने एक Caster oil युक्त mixture दिया जिससे दस्त और भी अधिक हो गये। बुखार एवं वमन भी शुरू हो गये। फिर डाक्टर साहब ने Intraviaform की गोलियां शुरू कीं जो एक सप्ताह में १५० के लगभग खाईं। गोलियों के साथ साथ कई तरह के mixtures का प्रयोग होता रहा। किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। न बुखार उतरा न दस्त और वमन बन्द हुए। फिर Terramycin के दो Injection दिये गये। उनसे बुखार, दस्त तथा वमन सब कुछ ठीक हो गया किन्तु शौच आना बन्द। फिर अनेक डाक्टरों से चिकित्सा करवाई जिन्होंने कुछ मेरी स्मरण शक्ति के अनुसार निम्न औषधियां प्रयुक्त की—

1. Imetin hydrochloride 6 injections 2. Caster oil in musin का प्रयोग 3. Campolin के 5 Injection 4. Streptomycin के 20 inj 5. Vitamin B के असंख्य। इनके अतिरिक्त अन्य अनेकों औषधियां अंग्रेजी आयुर्वेदिक होमियोपैथिक तथा यूनानी की प्रयुक्त कीं। कुछ दिन पूर्व अमुक प्रसिद्ध हकीम के पास गया था उसने असाध्य कहकर औषधी से मना करदी है। और मैदा बहुत कमजोर बताया है।

अब लगभग एक वर्ष से दही का प्रयोग कर रहा हूं। कोई दूसरी चीज खालूं तो दर्द, अफारा आदि शुरू हो जाते हैं शौच एक समय जाता हूं। शौच के साथ मटमैली लिसलिसी सी बलगम आती है। गर्म या वातकारक वस्तु चावलादि हानि करते हैं।

ज्यादा समय तक बैठा या खड़ा नहीं रह सकता। मुंह पर काफी दिन से शोथ हो गई है। रोगी को उसी समय—

१. हिंग्वाष्टक ३ माशा २. कर्पूरासव ५ बूंद

समशीतोष्ण जल के साथ दिया तथा प्रातः ही आने के लिए कह विदा किया।

प्रातः ही दोनों आये। परीक्षा की। निदान किया आंत्रव्रण। उदर दबाने से शूल बढ़ जाता था आन्त्रों में शोथ थी। रक्त औषधी से शूल बहुत हुआ था ऐसा बताया।

आंत्रव्रण की अनेक औषधियों की कल्पना की। अन्त में धन्वन्तरि गुप्रसिद्ध प्रयोगांक का एक योग अचानक स्मरण आ गया। योग आयुर्वेद रत्न श्री दौलतराम जी सोनी का है जो इस प्रकार है-

१. कपर्द भस्म ३ रत्ती २. सोंठ का चूर्ण १ रत्ती ऐसी ४ मात्रायें, घी शक्कर के साथ एक दिन में दें।

किन्तु मैंने घी शक्कर के स्थान पर उष्णोदक का अनुपान रखा। सो रोगी की निर्बलता के कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम दिवस दो, द्वितीय दिवस तीन, तृतीय दिवस चार मात्रायें दी गईं। रोगी प्रथम दिन ही अन्तर अनुभव करने लग गया। तीन दिन दो समय आता रहा। चतुर्थ दिवस वह घर जाने लगा। मैंने एक सप्ताह की दवाई दे दी सप्ताहान्त में फिर आया। बड़ा प्रसन्न था। मुख पर शोथ शेष थी सो एक गोली आरोग्यवर्धनी की और मिला दी।

पहले बिना मलाई की दही फिर मूंग यूष इस प्रकार बढ़ाते रहे। ६ दिन में बिल्कुल ठीक हो गया। अब वह फिर पढ़ने लग गया है। वह ठीक है। उदर में शूल, आध्मान कुछ नहीं रहा फिर भी खुराक हल्की खाने की सलाह दी है।

श्री नन्दलाल शर्मा वैद्य
राजकीय आयुर्वेदीय चिकित्सालय
कोडवा खुर्द (अम्बाला)

प्रमेह पिड़िका पर मेरा अनुभव

बुद्धो मुसलमान आयु लगभग ४२ वर्ष स्थान बरौदिया नौनागर, दिनांक ४-६-५६ को अपने लड़के बाबू खां के साथ हमारे दवाखाने में आई। रोगिणी से विदित हुआ कि उसे ४-५ दिन से अचानक ही एक फोड़ा पीठ में हुआ है और ना पकता है ना बैठ ही रहा है। देखने पर मालूम हुआ कि फोड़ा के कारण दर्द असहनीय है। जलन बहुत है। दर्द के कारण १०१ बुखार भी था। प्यास बार बार लगा करती थी। मूत्र भी थोड़ा थोड़ा कई बार होता था। रोगिणी मेदाश्वी थी, शरीर से हृष्ट पुष्ट होने के कारण आयु में लगभग ३० वर्ष की स्त्री जैसी प्रतीत होती थी।

फोड़ा देखने पर कछुये की पीठ सदृश अत्यंत दाहजनित दिखा। अतः मुझे कच्छपिका प्रमेह पिड़िका का भ्रम हुआ। इसके लिए मैंने मूत्र परीक्षा भी की। पेशाब परीक्षा से शक्कर का आना मालूम हुआ। अतः मधुमेह का निदान किया। ग्रन्थों में वर्णित मधुमेह प्रकरण के अनुसार पीठ वा कन्धों के मर्म स्थानों में अत्यन्त पिड़िकायें असाध्य होती हैं। ऐसा सोचकर कोई चिकित्सा न कर रोगी को नजदीक के शहर के एलोपैथ डाक्टरों के पास जाने की सलाह दी। रोगिणी के लड़कों से मेरा विशेष विश्वास और प्रेम होने के कारण मुझे भी साथ जाना पड़ा। शहर में सबसे पूर्व में एक वयोवृद्ध डाक्टर साहब जो हमारे परिचित थे उनके पास रोगिणी को ले गया। डाक्टर साहब ने भी पेशाब परीक्षा कर मधुमेह पिड़िका बताया और कोई चिकित्सा न कर असाध्य कह कर भोपाल हास्पिटल जाने का परामर्श दिया। मैं भी भोपाल जाने की सलाह देकर अपने घर वापस चला आया। रोगिणी को भोपाल न लेजाकर शहर के प्रसिद्ध शल्यकर्त्ता जो अपनी सफल चिकित्सा तथा उच्च डिग्री के कारण जिला प्रसिद्ध हैं के पास ले गये। आपने मूत्र परीक्षा, एक्स-रे परीक्षा की और फिर शल्य कर्म भी किया। रोगिणी आपके अ पताल में १२-१३ दिन रही, व्रण का मवाद आदि साफ हो जाने से ठीक सा हो गया। मामूली जख्म रहने पर कुछ दवाइयां मलहम आदि देकर स्वस्थ कहकर रोगिणी को घर विदा कर दिया था। रोगिणी अपने घर आ गई और २०-२५ दिन के बाद पुनः व्रण ने वही उग्र रूप धारण कर लिया। अब मुझे फिर चिकित्सा के लिए बाध्य किया गया। स्ट्रेप्टोपेनसिलन के कई इन्जेक्शन तथा सल्फाडाईजिन की गोलियां खाते खाते रोगिणी चिकित्सा से ऊब चुकी थी और अब कोई इलाज ना कराने और मरना ही श्रेष्ठ समझ रही थी। सान्त्वना देने से बड़ी मुश्किल से चिकित्सा कराने पर तैयार हुई। दिनांक ८-७-५६ को निम्न औषधि व्यवस्था की। खाने के लिए—

शिलाजत्वादि वटी (पुरुष रोगाङ्क पृष्ठ २११ से), शुद्ध शिलाजीत ६ माशे, नागभस्म १ माशे, प्रवालभस्म ४ माशे, गुड़मार चूर्ण, बबूल की फली का चूर्ण, जामुन की मिंगी का चूर्ण प्रत्येक १८ माशा, उत्तम रससिंदूर ३ माशे।

विधि—सबको कूट पीस छानकर गुड़मार काढ़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भावना देकर बबूल गोंद के सहयोग से २-२ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर रख लें।

प्रयोग विधि-१ गोली सुबह, एक गोली शाम को आंवला चूर्ण २ माशा के साथ जल के अनुपान से दीं।

मलहम लगाने के लिए-राब, मुर्दासंग, सिंदूर, कत्था को बारीक पीसकर रख लिया। फिर एक एलूमोनियम के बर्तन में घी डालकर मन्द अग्नि जलाकर चूल्हे पर रख दिया। जब घी पिघल गया तब मोंम मिला दिया। मोंम को अच्छी तरह मिल जाने पर सब दवाइयां मिला दी और बिल्कुल धीमी आंच रखी, जब थोड़ी ही देर बाद मलहम की रंगत काली सी हो गई तब उतार कर शीतल पानी भरे बर्तन में ठंडा होने के लिए दवाई का बर्तन रख दिया और लोहे की सींक से दवाइयां मिलाते रहे। ठंडी होने पर मलहम सी बन गई और एक डब्बी में रख दी।

प्रयोग विधि-व्रण को पहले प्रतिदिन सुबह साधारण शल्य क्रिया से मवाद आदि साफ कर देते थे और मरक्यूरोक्रोम लोशन से धो दिया करते थे फिर यह मलहम लाकर पट्टी कर दिया करते थे।

पथ्य-खाने के लिए यह व्यवस्था की। रोगी के यहां एक गाय थी और दूध भी दिया करती थी। उस गाय को रोजाना ४-५ सेर जौ खिलाते और उसके गोबर में से जो जौ निकला करते थे उन्हें ही अच्छी तरह साफ करवाकर, धुलवाकर, छिलका अलग कर, सुखाकर, पिसाकर रोटीबनाकर दी। इसी गाय के दूध के साथ कभी कभी कच्चे पपीते की साग, कैथ की चटनी, पका पपीता, उपरोक्त आटे का ही आंवले से बना आंवलिया (एक साग बनती है) तथा पके जामुन फल भी यदाकदा दे दिया करते थे। इस प्रकार अदल बदल कर भोजन का प्रबन्ध किया।

यह चिकित्सा क्रम ८-७-५६ से २४-७-५६ तक चालू रखा। व्रण ठीक होता जा रहा था मवाद आना बिल्कुल बन्द थी, पेशाब में शर्करा नहीं, बार बार प्यास और बार बार मूत्र वेग भी न था। रुग्णा हर प्रकार से स्वस्थ होती जा रही थी। भोजन में जौ का उपरोक्त किस्म से तैयार आटे की रोटी खाते खाते ऊब सी गई थी अतः उसकी इच्छानुसार दिनांक २५-७-५६ से गेहूँ, चना की रोटी आदि भी शुरू करदी। दिनांक ३०-७-५६ को रोगिणी हर तरह से स्वस्थ थी। व्रण ठीक होकर नया चमड़ा आ गया था अतः लगाने की दवा बंद कर सिर्फ कुछ दिन नवनीत १०१ बार जल से धुलाकर व्रण पर लगवाते रहे, परन्तु शिलाजत्वादि वटी बनाकर दूध के साथ १०-१-६० तक सुबह शाम चालू रखी। धन्वन्तरि कृपा से अब तक रोगिणी पूर्ण स्वस्थ है सिर्फ व्रण के स्थान पर काला स्थान अब भी अपनी याद दिलाता है। दर्द आदि नहीं होता है। यह है आयुर्वेद का चमत्कार।

-श्री डा० शिवकुमार शर्मा

बरौदिया नौनागर (सागर) म० प्र०

तोलने की मशीन

कल्प कराने से पूर्व या क्षय आदि जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक है कि रोगी का वजन ले लिया जाय तथा चिकित्साकाल के बीच में भी प्रति सप्ताह उसका वजन ज्ञात करते रहें जिससे यह मालूम हो सके कि रोगी के भार में वृद्धि हो रही है। हमारे यहां स्टाक में तोलने की बढ़िया जर्मनी मशीनें आ गई हैं। इनसे आप पौण्ड तथा किलोग्राम में दोनों प्रकार से वजन ज्ञात कर सकते हैं। रोगी को मशीन पर खड़ा कीजिये और वजन ज्ञात हो जायगा। इनसे आप २८० पौंड तक का वजन ले सकते हैं।

मूल्य केवल ६५.००, अन्य व्यय पृथक।

नोट—आर्डर भेजते समय अपने पास का रेलवे स्टेशन अवश्य लिखें। १०.०० रु० एडवांस अवश्य भेजें।

पता-दाऊ मैडीकल स्टोर्स

विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध प्रयोग

श्वेत प्रदर नाशक प्रयोग—

श्वेत प्रदर की एक अभूत पूर्व रोगिणी जिसकी अवस्था लगभग ३० वर्ष की थी उसे श्वेत प्रदर की शिकायत थी। सुबह बिछावन से उठते ही प्रदर का स्राव बढ़ जाया करता था और दुर्बलता अधिक बढ़ गई थी जिसके कारण शिर तथा कमर में भी दर्द रहा करता था। और वह जीवन से हताश थी क्योंकि कई वर्षों से उसकी हालत खराब चल रही थी। एक दिन मेरे पास आई। मैंने उसकी चिकित्सा इस प्रकार करना प्रारम्भ किया—

(१) बृ० सोमनाथ रस, लवंग भस्म, प्रदरान्तक लौह, तीनों को एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की मात्रा-सुबह, शाम शहद से खाने का आदेश दिया।

(२) पुष्यानुग चूर्ण—१० बजे दिन में ३ माशा शहद से चटाकर ऊपर से चावल का धोवन पीने को कहा और ४ बजे दिन में भी यही आदेश दिया।

(३) लोध्रासव, चन्दनासव, दोनों एक में मिलाकर २-२ तोला जल के साथ भोजन के ५ मिनट बाद दिन में दो बार।

(४) सुपारी पाक आधा तोला, चन्द्रप्रभा वटी १ गोली दोनों को मिलाकर गाय के दूध के साथ रात्रि को सोते समय दिया गया और दो हफ्ते तक यही क्रम चालू रक्खा गया। रोगिणी बिल्कुल स्वस्थ हो गई परन्तु रोग पुराना होने के नाते एक मास तक दिया गया और कब्ज रहने पर पंचसकार चूर्ण या अन्य विरेचक दवायें दूसरे दिन देते रहे। रोगिणी स्वस्थ हो गई।

—श्री हरीराम मिश्र वैद्य आयुर्वेद विशारद
जनता हितैषी औषधालय
फुटक पो० लोटन (बस्ती)

दन्त शूल नाशक—

काले धतूरे के बीज ६ माशा, काली मिर्च ३ नग, अपामार्ग की जड़ ६ माशा।

निर्माण तथा प्रयोग--सबका कपड़छन चूर्ण कर शीशी में रखलें। २ रत्ती दवा जिस दांत में दर्द हो उसके विपरीत कान में पानी में घोलकर डालना चाहिए। कुछ ही देर में दांत का दर्द दूर हो जायेगा।

अर्धावभेदक (आधा शीशी) पर—

गिलोय सत्व १ माशे से २ माशा तक गर्म दूध के साथ ८-१० दिन लेने से यह रोग कई वर्षों को छूट जाता है। ९ रोगियों पर प्रयोग किया सभी ने लाभ प्राप्त किया। एक रोगी साल में ३-४ बार ८-१० दिन तक इस दुष्ट रोग से परेशान रहता था लेकिन अब २ वर्ष से बिल्कुल ठीक है।

कफ संहारक भस्म—

मयूर पंख के केवल सुनहरी रेशे लेकर माचिस की तीली से जलाकर भस्म बनालें और प्रातः, मध्याह्न, सायं शहद में मिलाकर चाटें। ३-४ दिन के प्रयोग से ही कफ का नामोनिशान भी न रहेगा और रोगी स्वस्थ होता नजर आयेगा। मात्रा-- ३-३ रत्ती।

डा. ओमपाल आर्य *H. L. M. S., A. S. V.*
कोहनूर आयुर्वेदिक औषधालय
हजरतपुर पूठरी, डा. मीरपुर (बुलन्दशहर)

\+ \+ \+

(१) प्रस्राविका गुटी -

एलुआ २॥ तोला, उलटकम्बल मूल १छटांक, गुंजन बीज १ छटांक, अपामार्ग पंचाग ढ़ाई सेर, पलाशमूलत्वक् आध सेर, मूली बीज १ छटांक, द्रावक आधा पाव, दशमूल आध सेर, मैंथी बीज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो छटांक। बिनौले की मज्जा दो छटांक, द्रावक एलबालुक तथा बिनौला मज्जा को छोड़ सब द्रव्यों को यवकुटकर १६ गुणा पानी में पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर बस्त्रपूत कर कढ़ाही में पुनः पकाते हुए घनसत्व प्रस्तुत करें और ४-४ रत्ती की गोली बना उल्लिखित विधि से प्रस्रावक कषायानुपान से प्रयोग करें।

सावधानी—

प्रस्राविका गुटी का सगर्भावस्था में भूल कर भी कदापि प्रयोग न करें। यतः प्रस्राविका का स्रावण कार्य में आशुकारी होने के कारण ही स्राविका नाम करण किया गया है। यह मासिक धर्म संबंधित सब प्रकार की विकृतियों को ठीक करने के साथ साथ गर्भसंग (प्रसव बिलम्ब) में भी जब कि "एलोपैथिक चिकित्सक अर्गट पिट्यूटी आदि के प्रयोग से निराश होकर शल्य क्रिया (आंप्रेशन) के लिए उद्यत होता है" ४-६ मात्राओं में भी आश्चर्यजनक कार्य करती है अतः ध्यान में रखकर ही इसे प्रयोग में लें।

(२) प्रस्राविक क्वाथ–

इन्द्रायण बीज, उशवा, मकोय, सोया, शरपुंखा, सौंफ की जड़, शाहतरा, लटजीरा, कलौंजी, हंसराज, मंजीष्ठा, काले तिल। सब द्रव्य समान भाग लेकर यवकुटकर रखें। मात्रा ६-६ माशा कषाय कल्पना विधि से प्रयोग करें। १ मात्रा में २ तोला पुराना गुड़ भी डालें।

(३) नारीकल्पतरु–

कासीस भस्म ३ तोला, रामठ २ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २ तोला, कीकर निर्यास २॥ तोले, अभ्रक भस्म शतपुटी १ तोले, कान्तलौहभस्म १ तोले, एलबालुक २ तोले, ताम्रभस्म १ तोला। कीकर निर्यास रामठ एलबालुक को कुमार्यासव, दशमूलारिष्ट और अशोकारिष्ट १-१ तोला में खरल कर शेष सब भस्मों को मिलाकर उक्त आसवारिष्टा की ३ प्रहर तक भावना दे घोटते रहें। तत्पश्चात् २॥ रत्ती की गोली बना छाया में सुखा लें। उल्लिखित विधि से इन तीनों योगों का प्रयोग महिलाओं के लिए उत्तम सिद्ध हुआ है।

—आचार्य श्री रामकृष्ण शर्मा 'कौशिक'
चिकित्साधिकारी आयुर्वेद महनपुर (बातसूर)
अलवर राजस्थान

श्वेत एवं रक्त प्रदर पर–

अरहर जिसकी हम दाल बनाकर खाते हैं उसी पौधे की हरी पत्ती १ तोला लेकर १ छटांक जल में पीसकर कपड़े से छान लें और उस शरबत में अगर श्वेत हो तो शुद्ध गाय के घी की ७ या ६ बूंद डाल दें रोज सुबह शाम दें। अगर रक्त प्रदर हो तो उस शरबत में शुद्ध सरसों का तैल ७ या ६ बूंद डाल दें। यह दोनों प्रदरों को एक सप्ताह के भीतर ठीक करता है। तेल गरम मसाला अम्ल एवं उष्ण तथा वातज चीजों से परहेज रक्खें।

—श्री रामकुमार मिश्र G. A. M. S.
सतानन्द औषधालय चौक डुमरांवा, शाहाबाद।

विषकटा पर—

यह हाथ की उंगलियों में होता है। उंगली में जोरदार जलन, चटका चलना, नींद नहीं आने देना उंगली मोटी हो जाती है। निम्न दवा अनुभूत है-

बावची ६ माशे ठन्डे पानी में भिगो दें। २ घंटे भीगने पर वह फूलकर लाल से सफेद हो जायेगी। उसको सुबह शाम नीम अजवायन के उबाले हुए पानी से साफ करके पट्टी बांध दें। ३-४ दिन में फायदा नजर आ जायगा और करीब १ सप्ताह में बिलकुल ठीक हो जावेगा।

—श्री वैद्य चिरञ्जीलाल गर्ग,
घूंघरी (अजमेर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार एवं सूचनायें

४३ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन में पारित कतिपय प्रमुख प्रस्ताव

२८, २९, ३० अप्रैल को दहली में सम्पन्न होने वाले आयुर्वेद महासम्मेलन का संक्षिप्त समाचार गतांक में प्रकाशित कर चुके हैं। उसमें ३३ प्रस्ताव पारित हुए हैं। इन सभी को स्थानभाव के कारण प्रकाशित न करते हुए कतिपय प्रमुख प्रस्ताव यहां प्रकाशित कर रहे हैं।

—सम्पादक

This 43rd Session of the All India Ayurvedio Congress earnestly urges the Central Government of India-

(a) That Ayurveda should immediately be declared a recognised System of Medicine;

(b) That a Central Ayurvedic Council should be constituted without further delay and care should be taken so that only the graduates of Ayuryeda are eligible for its membership;

(c) That the policy of uniformity in the Teaching, Practice and Administration of Ayurved all over the country should be accepted and declared by the Government and given effect to;

(d) That a model Ayurvedic University with a model full-fledged Ayurvedic Hospital should also be urgently established;

(e) That the Administration of Ayuveda should be free from the bands ot Allopaths and be given to Ayurvedists themselvs. For this purpose separate departments and or Directorates should be established at the Centre and in such of the States Where it has not already been done;

(f) That allotment for Ayurveda should be separate and distinct from those for Allopathy in the Union and State Budgets, and;

(g) That an increased allotment for Ayurveda, more realitic and more commensurate with its importance and needs o the country, should be made under the Third Five Year Plan.

● जामनगर की तरह सभी प्रदेशों में भारत सरकार से शत प्रतिशत सहायता प्राप्त आयुर्वेद अनुसंधान एवं स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जावें। राजस्थान सरकार द्वारा प्रस्तावित स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान योजना को शीघ्र प्रारम्भ किया जावे।

● जीवन बीमा विभाग, नगरपालिकाओं, रेलवे, पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ, मिलेट्री आदि सभी केन्द्रीय विभागों में आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति अपनाने की नीति भारत सरकार स्थिर करे।

● अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४३ वां अधिवेशन नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा संचालित परीक्षाओं, प्रमाणपत्रों एवं उपाधियों तथा विद्यापीठ महाविद्यालय के दिल्ली क्षेत्र में संचालित करने पर आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी चिकित्सा पद्धति बोर्ड दिल्ली के के द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाने एवं विद्यापीठ को समाप्त करने के प्रयत्नों को अनुचित एवं निन्दनीय समझता है तथा बोर्ड के इस प्रकार के कार्य का सबल विरोध करता है।

● आयुर्वेद एवं अन्य चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सकों और शिक्षकों के मध्य वेतन क्रमों एवं अधिकारों में जो अन्तर है उसे तुरन्त दूर किया जाये जिससे आयुर्वेद चिकित्सकों के प्रति जनता में उच्च भावना जागृत हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित किये जाने वाले स्वास्थ्य केन्द्रों में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली को स्थान न दिये जाने की घोर निन्दा करता है।

● अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४३ वां अधिवेशन भारत सरकार से साग्रह अनुरोध करता है कि क्योंकि आयुर्वेदीय आसव अरिष्टों का मद्य के विकल्प-रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता और न ये किसी प्रकार का मादक प्रभाव ही रखते हैं और वह विभिन्न रोगों की तत्तत् प्रकरणोक्त आयुर्वेदीय औषधियां हैं अतः इन्हें मेडिसिनल प्रीप्रेशन तथा एक्साइज ड्यूटी एक्ट के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखा जाय, (२) एरंड तैल, गंधक, फिटकरी, कपूर, गोदन्ती, पारद आदि औषधियां पूर्णतया आयुर्वेदीय औषधियां घोषित की जायें और उनको अंग्रेजी नामकरण द्वारा एलीपैथी में सम्मलित कर वैद्यों पर उनके प्रयोग का प्रतिबन्ध न लगाया जाय, (३) कृत्रिम कच्ची तथा निर्मित औषधियों के विक्रय पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया जाय, (४) सरकार रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर्स की परिभाषा पर पुनर्विचार कर सभी रजिस्टर्ड वैद्यों को रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर्स घोषित करे तथा उन्हें तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किये जायें, (५) ड्रग्ज एण्ड मेजिक रेमेडीज आब्जेक्शनेबल एडवर-टाइजमेन्ट में आवश्यक संशोधन कर उसे वैद्यों के अनुकूल बनाया जाय।

● देश के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों एवं चिकित्सा अधिष्ठानों में आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र खोले जायें और एतदर्थ पर्याप्त धनराशि स्वीकृत की जावे जिससे आयुर्वेद रूपी सागर से बहुमूल्य रत्नों की खोज हो सके।

● आयुर्वेद में जिन औषधियों का वर्णन है, उन्हें आयुर्वेदिक औषधियां घोषित किया जाये तथा उन्हें आयुर्वेदिक भाषा में ही भारत में प्रचलित किया जाये और उनके प्रयोग का अधिकार केवल वैद्य एवं हकीमों को ही हो, अवैद्यों को नहीं। यथा गन्धक (सलफर), कपूर (कैम्फर), पारद, (मर्करी), एरण्ड तैल (कैस्टर आयल) इत्यादि को आंग्ल भाषा अथवा लैटिन भाषा में प्रचलित न करके उन्हें स्वदेशी आयुर्वेदिक भाषा में ही प्रचलित किया जाय।

● अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से मांग करता है कि वे आयुर्वेद के स्नातकों को स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् विदेशों में जाकर विशेष विज्ञान एवं योग्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करें।

● महासम्मेलनका यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार तथा सभी प्रांतीय सरकारों से यह आग्रहपूर्वक निवेदन करता है कि वे भारतीय औषधि निर्माण में प्रोत्साहन देने के लिए (अ) मेडिसिन और टायलेट प्रिपरेशनज एक्ट लाइसेन्स फीस २५.०० (ब) मद्य निर्माण एक्ट लाइसेन्स ५०.०० (स) फार्मेसी लाइसेन्स ५०.०० (द) एक्साइज ड्यूटी एक्ट प्रति गैलन १.७५ (य) केन्द्रीय एक्साइज ड्यूटी १० प्रतिशत इत्यादि करों एवं लाईसेन्सों को शीघ्र हटाने में सहायता दिखायें।

● ४३ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन उ० प्र० के शुद्ध पाठ्यक्रमानुसार संचालित ६ आयुर्वेदिक कालेजों के तोड़े जाने पर अत्यन्त खेद प्रकट करता है और अनुभव करता है कि सरकार की इस प्रकार की नीति आयुर्वेद के विनाश का कारण है जिसके कारण आयुर्वेद का उद्धार सम्भव नहीं है। आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन उ० प्र० सरकार से सानुरोध मांग करता है कि साधनों के अभाव के कारण बन्द किये गए इन कालेजों को पर्याप्त सहायता देकर सम्पन्न बनाये और पुनः संचालित कराये।

● अ० भा० आयु० महासम्मेलन के अन्तर्गत एक आयुर्वेदीय स्वास्थ्य विभाग की स्थापना की जाय तथा उक्त विभाग के अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति रहें। यह विभाग महासम्मेलन की स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित करें।

डा० ए० लक्ष्मीपति इस विभाग का कार्य चन्दे द्वारा धन एकत्र करके करें। यह भी निश्चय हुआ कि निम्न सदस्यों की एक समिति इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए बनायी जाये।

समिति के सदस्य—

१—श्री ए० लक्ष्मीपति, मद्रास संयोजक
२—श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग
३—श्री रामनाथ जी शास्त्री, गुरुकुल कांगड़ी
४—श्री बाबूराम जी मिश्र, हापुड़
५—श्री मुन्शीराम जी, भटिण्डा
६—श्री गुलराज जी शर्मा मिश्र, नागपुर
७—श्री काशीराम शर्मा, रायपुर
८—श्री कमलाप्रसादमणि त्रिपाठी, पटना
९—श्री पार्थ नारायण जी पण्डित, बंगलौर
१०—श्री स्वामी मंगलदास जी, जयपुर
११—श्री सीताराम जी मिश्र, जयपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के निर्विरोध निर्वाचित पदाधिकारी

अध्यक्ष--आयुर्वेदाचार्य, मीमांसा प्रवीण-साहित्य शिरोमणि, राष्ट्र भाषा रत्न, कविराज पं० श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा एम० ए०, पी० ओ० एल० बहरामपुर (उड़ीसा)

उपाध्यक्ष---१-आयुर्वेदाचार्य पं० बदरी विशाल त्रिपाठी धनकुट्टी कानपुर।

२-कविराज प्राणनाथ पुस्करणा सब्जी मंडी देहली।

प्रधान मन्त्री-भिषगाचार्य धन्वन्तरि कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल दरियागंज देहली।

संयुक्त मन्त्री---आयुर्वेदाचार्य श्री स्वामी रामप्रकाश जी जयपुर।

सहायक मन्त्री-कविराज मदनमोहन पाठक देहली।

प्रचार मन्त्री---१-वैद्य रामेश्वर सिंह जालन्धर
२---वैद्य प्रभाकर मिश्र हापुड़
३---वैद्य वेंकट शास्त्री हैदराबाद
४---वैद्य सूर्यनारायण जोशी इन्दौर
कोषाध्यक्ष-वैद्य शिवनाथ शर्मा देहली

× × ×

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के निर्विरोध निर्वाचित पदाधिकारी

अध्यक्ष-कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी भिषगाचार्य-काव्य व्याकरण सांख्यतीर्थ-सांख्य सागर भू० पू० प्रिंसिपल आयुर्वेद यूनानी तिब्बिया कालेज देहली।

उपाध्यक्ष---१-आचार्य बाबूराम जी मिश्र हापुड़।

२-वैद्य मोहनलाल शास्त्री देहली

प्रधान मन्त्री-आयुर्वेदाचार्य पं० सीताराम जी मिश्र जयपुर

सम्पादक 'जय आयुर्वेद' जोधपुर

सहायक सम्पादक-वैद्य नित्यानन्द शर्मा देहली

संस्कृत विभाग सम्पादक-वैद्य योगेश्वर शास्त्री देहली

उप मन्त्री-वैद्य बाबूराम शर्मा बरनाला

पत्रिका के प्रधान सम्पादक-वैद्य अम्बालाल जोशी

× × × ×

आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सकों द्वारा सल्फा ड्रग्स व स्ट्रेप्टोमाइसिन का प्रयोग

आपके पत्र संख्या ११ एफ. १६७० दिनाङ्क २१ जनवरी सन् १९५३ के सन्दर्भ में मुझे कहने के लिए आदेश दिया गया है कि राज्यपाल को सलाह दी गई है कि इण्डियन मेडिसिन एक्ट सन १९३९ की धारा ३९ (१) तथा ४२ (२) के अन्तर्गत आयुर्वेदिक और यूनानी प्रेक्टिश्नर्स वही स्टेट्स (पद) रखते हैं जैसा कि एलोपैथिक रजिस्टर्ड प्रेक्टिश्नर्स (चिकित्सक) रखते हैं। इसके अन्तर्गत बने हुए भारतीय नियमों के अनुसार कोई ऐसी धारा नहीं है जो रजिस्टर्ड आयुर्वेदिक तथा यूनानी प्रेक्टिश्नर्स (चिकित्सा) को सल्फा ड्रग्स या स्ट्रेप्टोमाइसिन प्रयोग करने से वंचित करती हो।

इसी के अनुसार राज्यपाल ने आदेश दिया है कि सं० ३३६६ बी. पी. । १९१।५० दिनाङ्क ४ सितम्बर १९५१ को रद्द समझा जाय और वैद्य तथा हकीमों द्वारा उनके मरीजों की चिकित्सा करने में सल्फा ड्रग्स स्टेप्ट्रो माइसिन या दूसरी एलोपैथिक दवाइयों और ड्रग्स के प्रयोग करने पर किसी प्रकार का एतराज न किया जाय।

(२) स्टेट के आयुर्वेदिक तथा यूनानी दातव्य औषधालयों में इनके प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि उनमें ये ड्रग्स वहां सप्लाई नहीं किये जाते हैं। किन्तु इनके इन्चार्ज वैद्य तथा हकीम यदि वे चाहें तो औषधालयों के बाहरी मरीजों पर इनका प्रयोग कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदिक एवं यूनानी स्नातकों की–

मांगों पर विचार करने के लिए पांच सदस्यीय समिति नियुक्त

लखनऊ, १६ मई। उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश से सम्बद्ध राज्य के आयुर्वेदिक एवं यूनानी कालेजों के स्नातकों की मांगों पर विचार करने के लिये चिकित्सा उपसचिव श्री के० सी० जोशी की अध्यक्षता में एक पांच सदस्यीय समिति नियुक्त की है।

समिति के अन्य सदस्य हैं–श्री एम० एल० द्विवेदी, उपनिर्देशक आयुर्वेद, डा० डी० एन० शर्मा, अधीक्षक बलरामपुर अस्पताल, डाक्टर बी० बी० भाटिया और दरबारी लाल शर्मा अध्यक्ष भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश।

समिति को इस बात की जांच करने का कार्य सौंपा गया है कि उपर्युक्त कालेजों के स्नातकों को सरकारी सेवा में लिये जाने पर प्रदेशीय चिकित्सा सेवा द्वितीय का वेतन-क्रम दिया जाना चाहिये या नहीं। समिति इन कालेजों के शिक्षण स्तर पर भी विचार करेगी और इस आधार पर आगरा विश्वविद्यालय से सम्बन्धित करने के लिये आयुर्वेदिक तथा यूनानी कालेजों के नामों की सिफारिश करेगी।

× × ×

हाल ही में प्रकाशित एक समाचार से विदित हुआ है कि उ० प्र० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड से सम्बन्धित आयुर्वेद व यूनानी के कालेजों को सरकार आगरा यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध करने जा रही है। इस निमित्त सरकार ने एक कमेटी भी बना दी है जोकि तुरन्त ही अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत करेगी।

× × ×

लखनऊ में आयुर्वेदिक कालेज के नाम पर ठगी करने वाले

दिल्ली के दो जालिए गिरफ्तार

लखनऊ, २४ मई। उत्तर प्रदेश की खुफिया पुलिस ने हैदराबाद स्थित एक मकान पर छापा मार कर सुखदेव राज 'आनन्द' और उसके भाई ओमप्रकाश को गिरफ्तार कर लिया है। इनके पास से एक आयुर्वेदिक कालेज की नकली मुहरें, कागजात तथा मनिआर्डर की रसीदें भी बरामद की गयीं हैं।

दोनों अभियुक्त दिल्ली के रहने वाले हैं जो यहां न्यू हैदराबाद में रहकर 'भारतीय आयुर्वेदिक कालेज, नामक एक नकली संस्था चलाते हैं।

इन लोगों ने अपने मकान के सामने 'अशोका-सेल्फ एजेन्सी' नामक एक साइनबोर्ड भी लागू कर रखा था।

इन लोगों ने विज्ञप्त किया था कि उनके उक्त कालेज में प्रति छात्र ६५.०० फीस देने के बाद तीन महीने के अन्दर पूरा डाक्टर बन जायगा और उसे एम. एस सी. आयुर्वेदाचार्य की डिग्री दे दी जायगी। इन्होंने यह भी प्रचारित किया था कि उनका कालेज इंडियन मैडिसिन बोर्ड से स्वीकृत है।

सी. आई. डी. द्वारा पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि २५००. रु० के मनिआर्डर अभियुक्तों ने अब तक प्रवेशार्थियों से प्राप्त किये हैं और न्यू हैदराबाद में न कहीं उनका कालेज है न उन्हें इंडियन मेडिसिन बोर्ड से मान्यता ही प्राप्त है।

× × +

आयुर्वेद विज्ञान परिषद् का सम्मेलन

हरिद्वार–आयुर्वेद विज्ञान परिषद् का द्वितीय अधिवेशन २१ मई को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के डायरेक्टर श्रीरामनारायण जी शर्मा ने किया। सभापतित्व गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज के प्रिंसीपल श्रीमान् जयरामदास जी ने किया। प्रमुख वक्ता के रूप में राजस्थान सरकार के इण्डियन मेडीसिन बार्ड के चैयरमैन श्री मंगलदास जी तथा झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्रीमान जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आदि भारत प्रसिद्ध विद्वानों के भाषण हुए। सभा में वैद्यगणों की भारी उपस्थिति रही। म्युनिसिपल कमिश्नर, चैयरमैन और पत्रकार गण भी उपस्थित थे। —संयोजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद मंडल कोटकपूरा मण्डी का

वार्षिक निर्वाचन

आज दिनांक १४-५-६१ रविवार को दिन के २॥ बजे गांधी मैमोरियल स्कूल में शिवायुर्वेद विद्यालय के प्रिंसीपल पं. नवलकिशोर जी की अध्यक्षता में सर्व सम्मति से निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये —

प्रधान—श्री स्वामी कृष्णानन्द जी वैद्य

उपप्रधान—१. वैद्य कुन्दनलाल आयुर्वेद विशारद
२. डा० हरपाल सिंह जी

मन्त्री—डा० हरीसिंह जी

उपमंत्री—वैद्य दीनदयाल जी शर्मा

प्रचार मंत्री—(१) वैद्य पूर्ण सिंह जी (२) वैद्य रूपचन्द जी (३) वैद्य सरदारसिंह जी दुग्गल

इसके अतिरिक्त १२ कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित किये गए। —मंत्री

× × ×

जिला आयुर्वेद मण्डल के पदाधिकारियों का

निर्वाचन—

प्रदर्शनी के ऐतिहासिक अवसर पर प्रदर्शनी मंडल में दिनांक १८ मार्च सन् १९६१ ई० को आयोजित जिला आयुर्वेद मण्डल मैनपुरी के वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर निम्न पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ—

प्रधान—पं. अंजनीकुमार जी मिश्र वैद्य शास्त्री

प्रधान मंत्री—श्री मुरारीलाल जी गौड़ आयु.

कोषाध्यक्ष—श्री पं. रामगोपाल शुक्ल आयु.

प्रचार मंत्री—श्री पं. दीनानाथ दीक्षित वैद्य

उपमण्डल मैनपुरी तहसील

प्रधान—श्री राजकुमार जी वैद्य, कुचेला।

प्रधान मंत्री—श्री देवदत्त डी. आई. एम. एस.

सहमंत्री—श्री भवदेव शर्मा वैद्य, कुरावली।

उपमंडल भोगांव तहसील

प्रधान—श्री रामदुलारे जी मिश्र वैद्य, अजीतगंज।

उपप्रधान—श्री ब्रह्मदत्त जी वैद्य, भोगांव।

प्रधान मंत्री—श्री भगवानदास जी वैद्य, मेवेपुर

उपमंडल जसराना तहसील

प्रधान—श्री जीवनसिंह जी वैद्य, कनवारा

उपमंडल करहल तहसील

प्रधान—श्री वेदप्रकाश जी वैद्य, सदल।

उपमण्डल शिकोहाबाद तहसील

प्रधान—श्री इन्द्रदत्त जी गर्ग वैद्य, शिकोहाबाद।

यह भी निश्चित हुआ कि उपमंडलों के प्रधान अपने अपने उपमंडलों के पदाधिकारियों का मंडल के प्रधान जी की सम्मत्यानुसार चुनाव कर जिला कार्यालय को सूचित करें। —प्रधान मंत्री

× × ×

गांधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर

नया सत्र ७ जुलाई १९६१ से आरम्भ होगा। निम्नलिखित कक्षाओं में भर्ती होने वाले छात्र आवेदन पत्र शीघ्र प्रिंसीपल के पते पर भेजें। नियमावलियां श्री रजिस्ट्रार, आयुर्वेद विभागीय परीक्षाएं राजस्थान, अजमेर से मंगावें।

१. भिषग्वर पाठ्यक्रम—इसमें संस्कृत की प्रवेशिका, प्रथमा, मध्यमा, हाईस्कूल मय संस्कृत अथवा हाई स्कूल उत्तीर्ण छात्र प्रवेश पा सकेंगे, जिनको संस्कृत का सामान्य ज्ञान हो। परन्तु ऐसे छात्रों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त एक पृथक पत्र संस्कृत का अध्ययन करना एवं उसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य होगा।

२. भिषगाचार्य पाठ्यक्रम—इसमें भिषग्वर एवं तत्सम परीक्षा उत्तीर्ण छात्र प्रवेश पा सकेंगे।

३. विशेष योग्यता पाठ्यक्रम—इसमें राजकीय वैद्य, मान्यता प्राप्त संस्थाओं से उत्तीर्ण वैद्य एवं सरकार द्वारा पंजीकृत वैद्य प्रवेश पा सकेंगे।

योग्य एवं निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियां भी दी जावेंगी। —प्रिंसीपल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों के प्रश्न

पायरियानाशक स्वानुभूत सफल मञ्जन का प्रयोग लिखें ?

कतिपय मंजनों के प्रयोग जो धन्वन्तरि में यदा-कदा प्रकाशित हुए बनाकर व्यवहार किए। बाजारू मंजनों की अपेक्षा उत्तम हैं लेकिन पायरिया पर विशेष लाभ नहीं हुआ, अतएव अनुभवी व्यक्तियों से सफल प्रमाणित पायरिया नाशक मंजन के प्रयोग लिखने की प्रार्थना है। —एक ग्राहक

मोतियाबिन्दु नाशक खाने या लगाने की विश्वस्त अनुभूत दवा का प्रयोग लिखें। प्रयोग हरताल, तूतिया, गंधक, नवसादर रहित होना चाहिए। —श्री चौधरी राजराजेश्वर प्रसादसिंह

जमुनाबाबू के फूलबारी,बेगूसराय (मुंगेर)

(१) सिर में अरुंसिका नामक फुन्सियों का विकार होता है। पीली फुन्सियां होकर फूटती हैं और उनमें से पानी झरता है। वे चिरस्थायी हो जाती हैं। उनकी सफल चिकित्सा लिखें।

(२) पुराने सुजाक रोग की सफल और सुलभ चिकित्सा लिखें। —श्री रामकृष्ण चौधरी

२१६, डेरे बिल्डिंग, खालीडकर रोड, मुंबई ४

शंकाओं का समाधान

गत नवम्बर मास के धन्वन्तरि के अंक में वैद्य साधूराम पाठक ने लिखा है कि सादा 'स्वर्णदल' औषधियों के लिए लाभ नहीं करते तथा वह शुद्ध नहीं होते ऐसा विचार प्रकट किया है।

उत्तर में निवेदन है कि जब स्वर्णदल बनाने से पहिले वह स्वर्ण को लवण द्वारा अनेक बार लिप्त करते हैं और उसके पत्तों को पुनः पुनः आग देकर कुन्दन तैयार हो जाने पर उसके छोटे छोटे टुकड़े करके दधकाते हैं तब स्वर्ण दल तैयार होते हैं। इस उक्त क्रिया के बिना सोना इतना बारीक कभी नहीं हो सकता, क्योंकि साधारण स्वर्ण में कई एक धातु मिली रहती हैं। अतः इन स्वर्ण पाक करने वालों की यह पहिली क्रिया होती है कि स्वर्ण को शोधन करके ही कुन्दन बनाते हैं।

स्वर्ण दलों का प्रयोग आज से नहीं कई शत वर्ष पूर्व के विद्वान वैद्य प्रयोग करते रहे हैं तथा कई प्रयोगों में स्वर्ण दलों का वर्णन आता है। क्या वह सब शुद्धाशुद्ध स्वर्ण के गुणों से अनभिज्ञ थे जो सद्यःजन्म लेने वाले बालक को स्वर्णदल चूर्ण मधु सर्पि सहित चाटते थे।

उक्तञ्च सुश्रुते—

"जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्त चूर्णमंगुल्याऽनामिकया लेह्येत् इति।

वृद्धवाग्भट्टेऽपि—ऐन्द्री ब्राह्मी शङ्खपुष्पी बचा-कल्कं मधुघृतोपेतं हरेणुमात्रं कुशाभिमन्त्रितं सौवर्णेन। स्वथपत्रेन मेधाऽऽयुर्बल जननं प्राशयेत्। ब्राह्मी वचाऽनन्ता शतावर्यन्यतम् चूर्णम्" इति।

इन वाक्यों द्वारा सद्यः जात शिशु को स्वर्ण का प्रयोग करना वर्णन किया है वह इस समय स्वर्ण दल का ही प्रयोग किया जाता है। इससे आज तक कोई क्षति दृष्टिगोचर नहीं हुई।

अतः स्वर्ण दल शुद्ध होते हैं। इति सिद्धान्तः प्राचीनानाम् इति मे मति।

शोक समाचार

अत्यन्य दुख है कि बिलासपुर जिला वैद्य सभा के प्रधानमन्त्री श्री पं. शांतिस्वरूप जी मिश्र का गत ६-५-६१ को ५५ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। आप सन् १९४८ से लेकर अब तक उक्त पद पर रहते हुए आयुर्वेद की सेवा करते रहे।

बिलासपुर जिला वैद्य सभा द्वारा एक शोक प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी विनम्र अपील

धन्वन्तरि का इस वर्ष का विशेषांक-"वनौषधि विशेषांक" का आपने अध्ययन किया होगा। इस वर्ष के विशेषांक के निर्माण में विशेष सम्पादक एवं प्रकाशकों द्वारा कितना परिश्रम एवं धन व्यय किया गया है आप इस विशेषांक से अवश्य समझ सकेंगे। हमारी अभिलाषा है कि भविष्य में धन्वन्तरि के विशेषांक और भी अधिक विशाल और अत्युपयोगी साहित्यपूर्ण प्रकाशित किए जांय। लेकिन वर्तमान में ही जैसा हम प्रकाशित कर रहे हैं उसी में हमको बहुत अधिक घाटा रहता है। कतिपय कृपालु ग्राहकों का सुझाव है कि धन्वन्तरि के वार्षिक मूल्य में वृद्धि करके इस घाटे की पूर्ति करें और अधिक उत्तम विशेषांक प्रकाशित करें। लेकिन हम वार्षिक मूल्य में वृद्धि करना उचित नहीं समझते हैं। मूल्य वृद्धि करने से सम्भव है अनेक पाठक इसके ग्राहक न रहें, उस दशा में आयुर्वेद प्रचार में बाधा होगी। हम चाहते हैं कि धन्वन्तरि की ग्राहक संख्या अधिक से अधिक बढ़े। ग्राहक संख्या बढ़ने से मूल्य में वृद्धि किये बिना भी हमारे घाटे की पूर्ति होना सम्भव है। अतएव हम अपने प्रत्येक ग्राहक से सानुरोध अपील करते हैं कि धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का भरसक प्रयत्न करें और सभी ग्राहक कम से कम २ नवीन ग्राहक बनाने का दृढ़ संकल्प कर लें। धन्वन्तरि के विशेषांक तथा मासिक अङ्क इतने विशाल, इतने उपयोगी होते हैं कि जो भी चिकित्सक या आयुर्वेद प्रेमी इनको देखेगा-पढ़ेगा वह धन्वन्तरि का ग्राहक अवश्य बनना चाहेगा। आपको केवल विशेषांक तथा अङ्क दिखाकर थोड़ा प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। स्थानीय वैद्य सभाओं में या अन्य समय में जब कभी अन्य चिकित्सकों से मिलने का अवसर आपको मिले आप धन्वन्तरि का परिचय वैद्यों को दीजिये और ग्राहक बनने का आग्रह कीजिये। इस प्रकार आप २-४ ग्राहक न बना सकें यह कभी सम्भव नहीं है।

नवीन ग्राहक बनने वाले सज्जन से आप ५.५० मनिआर्डर से भिजवा दीजियेगा। कूपन में 'नवीन ग्राहक बन रहे हैं' यह अवश्य लिख दें तथा नवीन ग्राहक का पूरा पता भी लिख दें। यदि किसी कारण वी. पी. से ही मंगाना पसंद करें तो हमको पत्र द्वारा नवीन ग्राहक का पूरा पता लिखकर वैसा लिखदें।

जनवरी के अङ्क में प्रकाशित निवेदन के उत्तर में अनेक ग्राहकों ने नवीन ग्राहक बनाए, उनके हम हृदय से आभारी हैं। कतिपय सज्जन ग्राहक बनाने के लिये कमीशन या पारिश्रमिक देने के लिये आग्रह करते हैं, उनकी सेवा में निवेदन है कि हम लागत से भी बहुत कम ग्राहक से प्राप्त करते हैं ऐसी दशा में पारिश्रमिक देना हमारे लिये सम्भव नहीं है। यह प्रयत्न तो आपको धन्वन्तरि द्वारा आयुर्वेद का प्रचार प्रसार होगा इसलिए धन्वन्तरि को सहायता देनी है, इस भावना से करना है। हमको विश्वास है कि हमारी इस अपील पर आप अवश्य ध्यान देंगे और नवीन ग्राहक बनाने का प्रयत्न करेंगे। हम आपकी इस कृपा के लिये अत्यधिक आभारी रहेंगे।

भवदीय
वैद्य देवीशरण गर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद विद्वानों की सम्मतियां

धन्वन्तरि के इस वर्ष के विशेषांक—वनौषधि-विशेषांक के विषय में सैंकड़ों-हजारों सम्मतियां प्राप्त हुई हैं तथा प्रत्येक डाक से मिल रही हैं। उन सबको अविकलरूप से प्रकाशित करना नितान्त असम्भव है एवं व्ययसाध्य है, अतएव कुछेक सम्मतियां यहां प्रकाशित कर रहे हैं, इन सम्मतियों से आप भलीभांति इस विशेषांक की विशालता एवं महान् उपयोगिता समझ सकेंगे।

१. श्री पं० दरबारीलाल जी शर्मा बी० ए०, अध्यक्ष-भारतीय चिकित्सा परिषद् उ. प्र. लखनऊ

प्रिय सम्पादक जी,

"धन्वन्तरि" का वनौषधि विशेषाङ्क प्राप्त हुआ। यह विशेषांक विशेष परिश्रम से प्रकाशित किया गया है। विशेषांक जितना वैद्य हकीमों के लिए उपयोगी है उतना ही आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए भी। पारिभाषिक शब्द विवरण ने विशेषांक का महत्व और भी बढ़ा दिया है। अ से औ तक वर्ण क्रमानुसार व्यवहृत होने वाली औषधियों के विभिन्न भाषाओं में नाम, प्राप्ति स्थान, स्वरूप, पहचान, शाखा, पत्र, पुष्प, फल आदि के विस्तृत विवरण, असली नकली की पहिचान, गुणधर्म, प्रभाव, प्रयोग एवं सरल भाषा में वर्णन विशेषांक की विशेषता है। औषधियों का शरीर पर प्रभाव और अनेक रोगों में अनेक योग रूप में व्यवहार के वर्णन और चित्रों से अङ्क की उपादेयता बहुत बढ़ गई है। सम्पादक महोदय के अथक परिश्रम की प्रशंसा परिश्रमी और अध्ययनशील वैद्य ही कर सकेंगे। विशेषांक प्रत्येक वैद्य की आवश्यकता और व्यवसायिक दृष्टि से अत्यन्तोपयोगी है।

× × × ×

२. श्री आचार्य नित्यानन्द जी, अध्यक्ष-बिड़ला आयुर्वेद संग्रहालय, पिलानी (भू. पू. अध्यक्ष-राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन)

'धन्वन्तरि' के वनौषधि विशेषांक की प्रतीक्षा कर रहा था। आते ही वनौषधियों के महत्वपूर्ण अंश पढ़ गया हूं। इसके द्वारा वनौषधियों जैसा जटिल विषय भी हस्तामलक हो गया है। इस प्रकार सर्वाङ्ग-सुन्दर विशेषांक के लिये मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। मेरे दृष्टिकोण से यह विशेषांक वैद्यों को ही नहीं अपितु छात्रों और आयुर्वेद हितैषियों के लिए भी संग्रह के योग्य है।

3. Kaviraj S. N. Bose L. A. M. S., D. Sc. A., Bhisgaratna.
Principal--Dayanand Ay. College, Jullundur.

Thanks for your complimentary copy of 'Vanaushadhi Visheshanka' & happy to find the issue as a great contribution to the Ayurvedic Science. This time also, Dhanwantari has maintained its great tradition in offering a very rich and useful literature to the Ayurvedic world as its annual present and I am sure, it will be hailed by all the Ayurvedists, students, teachers, matures or movices alike. Your intention to complete the work in 5 or 6 annnal issues is a very encouraging statement and it will, no doubt, be eagerly awaited. By bringing out such a valuable literature as your annual issue, you have filled in a great gap bitween money and knowledge. Such step should serve as an example to other Magazines to propagate and popularise this neglected national medical science of India amongst the so-called modernised people of our country. Pt. Krishna Prasad Trivedi B. A. Ayurvedacharya, the vaterian Ayurvedist of Madhy Pradesh deserves to be congratulated for the tough labour he had to undergo to complete the special issue.

× × × ×

४. श्री वैद्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य, प्रिंसिपल-आयुर्वेद विश्वभारती, सरदारशहर :—

आपका भेजा हुआ बनौषधि विशेषांक मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्यवाद। इसे मैंने सरसरी तौर पर देखा है। समय मिलने पर आद्योपांत पढ़ूंगा। यह विशेषांक वैद्य संसार के लिये अत्युपयोगी होगा। हमारे में सबसे बड़ी कमी औषधि ज्ञानाभाव की है। हम इस अंक के सहारे औषधियों का परिचय भलीभांति कर सकते हैं।

× × × ×

आचार्य पं. अनन्तराम शर्मा, बी. आई. एम. एस.

प्रोफेसर ऋ. आयुर्वेद कालेज, हरिद्वार

आपके द्वारा प्रेषित "वनौषधि-विशेषांक" प्राप्त हुआ। "धन्वन्तरि" का प्रत्येक अंक, विशेषतः विशेषांक आयुर्वेद के प्रचार में बहुमूल्य सहयोग प्रदान कर रहा है। इसकी संक्षिप्त तथा सरल शैली इसे सर्वप्रिय बनाने में परम सहायक है। प्रस्तुत अंक 'वनौषधि विशेषाङ्क' में भी ये सब विशेषतायें हैं और प्रस्तुत विषय के अध्ययन के उपरांत कोई विशेष ज्ञेय शेष नहीं रह जाता।

मेरी यह प्रारम्भ से ही कामना रही है कि इस पत्रिका द्वारा वैद्य वर्ग तथा वैद्यविद्या का बहुविध प्रचार हो।

× × ×

आचार्य पं. रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी *A. M. S.*

प्रोफेसर-क्रिया शारीर आयु. महाविद्या., जामनगर,

सुप्रसिद्ध धन्वन्तरि का चिरप्रतीक्षित वनौषधि विशेषांक प्राप्त कर, जिसका सम्पादन धन्वन्तरि परिवार के अन्यतम वयोवृद्ध घटक सुप्रसिद्ध श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी जी ने किया है, मुझे जो हार्दिक प्रसन्नता हुई है उसका वर्णन शब्दशः करना मेरे लिए नितान्त कठिन है। कारण उसका यह है कि यह विशेषांक धन्वन्तरि विशेषाङ्क परम्परा का अनमोलरत्न है। आयुर्वेदजगत उसका स्वागत करेगा ही। जिन १५० वनस्पतियों का इसमें विस्तृत विवेचन किया है उनमें अनेक के सम्बन्ध में नवीनज्ञान का जो विशाल भंडार त्रिवेदी जी ने संजोया है वह अन्यत्र एक स्थल पर सर्वथा असम्भव है। औषधों के जो प्रयोग उन्होंने दिये हैं वे सप्रमाण तो हैं ही। विद्वानों के लिए अन्वेषण का नया मार्ग और वैद्यों के लिए चिकित्सा के सरल साधन सहज रूप में उपस्थित करके आयुर्वेदज्ञों को ऐसी उपयोगी सामग्री भेंट की गई है जो उनका मार्गदर्शन करेगी ही।

इन ४६० पृष्ठों में मुझे असंख्य नई बातें मिली हैं। औषधों का सचित्र परिचय, इतिहास, उनसे बनने वाले योग और गुण धर्म की सामग्री कितने विपुल स्रोतों से एकत्र की है इस वृद्धावस्था में आचार्य श्रेष्ठ की इस खरी साधना के प्रति नतमस्तक होजाना पड़ता है। दन्त पीड़ा में अकरकरा, दद्रु में अखरोट की गिरी का प्रयोग, उदर्द में अगर की छाल, अगस्तपुष्प द्वारा रतिरोधक शक्ति का विकास प्लेग की गिल्टी पर अङ्कोल की जड़ का प्रयोग, अत्यधिक जागरण से उत्पन्न नेत्रों की उष्णता में द्राक्षा, प्रसूत ज्वर में अजगुर, टाइफाइड में अजमोद, जुकाम में नाक बहने पर अजवायन, कृमिदन्त में अजोमूत, मधुमेह में अंजीर, कच्छू में वासापत्र, अश्मरी में अरण्डखर्बूजे की जड़, सूखा रोग में अतीस, बहुमूत्र में आर्द्रक, नेफ्राइटिस में अनन्तमूल, कामला में अनन्नास, कास में अनार पुष्प, कर्णशूल पर अनासफल, हूपिंग कफ पर अन्तमूल, पेशाब की जलन पर अन्धाहूली, टांसिल फूलने पर अपराजिता पत्र, श्वास वेग की तीव्रता में अपामार्ग का धूम्रपान, अपस्मार में अफसन्तीन, वृश्चिकदंश पर अमरकन्द, वेदना होने पर अमरबेल, बच्चों के गुदभ्रंश में अमरूद की जड़ की छाल, भिलावाविष विकृति शमन में अमलतास पत्र, शीतपित्त में अरनीपुष्प, नासूर में अरहर, अस्थिभंग में अर्जुन, छाती की पीड़ा में अलसी, गर्भधारणार्थ अश्वगंधा, अपस्मारार्थ आक का टिड्डा, रतौंधी में आबनूस का अंजन, तपेदिक में पक्वआम्ररस प्रयोग, योनिदाह में आमला, ब्राइट्स रोग पर आल नं० २, उपदंश-सुजाकजन्य क्षतों पर आलू बालू के बीजों की गिरी, ब्लडप्रैशर पर आलू बुखारा, आयुवृद्धि पर इन्द्रायण की जड़, मूत्रदाह में इमलीपत्र, शुक्रमेह में ईसबगोल, विषमज्वर पर ईसरमूल, छींक लाने के लिए ईरसा, गंज में उड़द, शोथ में उदरपुंछी, गर्भस्थापना में उलट कम्बल की जड़का प्रयोग, कम्प तथा हृद्द्रव में उस्तखुद्दूस, सुखप्रसवार्थ ऊंटकटारा मूल का प्रयोग, मूत्रावरोध पर ओखराडी तथा वीर्यनाश पर औंधफली के जो प्रयोग हैं उनको करके देखने से क्या होता है इस ओर भी वैद्यगण ध्यान दें और लेख प्रसिद्ध करें तो हमारा शास्त्र कितना आगे बढ़ेगा। अगणित प्रयोग इस विशेषांक में हैं।

यह विशेषांक न केवल प्रत्येक वैद्य को खरीदना ही चाहिए इसका विधिवत् अध्ययन और प्रयोग कर अपनी ज्ञानवृद्धि भी करनी चाहिए।

इस कार्य के लिए श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी का वैद्य जगत चिरऋणी रहेगा। धन्वन्तरि कार्यालय को स्वपरम्परानुकूल कार्य करने के लिए शतशः बधाई।

× × ×

श्री वैद्य श्रीनिवास शास्त्री

चिकित्सक-श्रीविशुद्धानन्द स. मा. अस्पताल, कलकत्ता।

आयुर्वेदीय सत्साहित्य प्रसार में धन्वन्तरि का प्रथम स्थान है। धन्वन्तरि का बनौषधि विशेषांक तो परम स्तुत्य प्रयास है। भय है कहीं यह संस्करण शीघ्र न बिक जाय और वैद्य बन्धुओं को निराश होना पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षों की साधना और लाखों रुपये के व्यय से होने वाले इस कार्य को धन्वन्तरि ही ४.५० में सुलभ कर सका पारिभाषिक शब्दों तथा वनस्पतियों का विवेचन उपयुक्त है। विश्वास है कि वैद्य इसे अपने पास रखकर अतुल ज्ञान राशि का अर्जन करेंगे।

× × ×

श्री डा० ताराचन्द जी लोढ़ा,
किशनगढ़ (राज०)

वनस्पतियों के वर्णन से भरपूर ५६० पृष्ठ का विशाल अङ्क चित्रों के साथ आयुर्वेद जगत को अपनी अनुपम देन है। अङ्कावलोकन से मालूम हुआ कि वनस्पति वर्णन में छोटी छोटी बातों पर भी पूरा ध्यान दिया गया है। कुल मिलाकर आपका प्रयत्न स्तुत्य है एवं यह अलभ्य देन चिरस्मरणीय रहेगी। ईश्वर आपको शक्ति दे कि ऐसे और अङ्क निकाल कर पीड़ित मानव की अधिकाधिक सेवा आप कर सकें। इस अङ्क की सहायता से आर्तजन अपने रोगों से बड़ी आसानी से व सस्ते में छूट सकेंगे।

× × ×

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक-'कल्याण'

चिकित्सा क्षेत्र में वनौषधियों का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु अपने देश में सर्वत्र सुलभ वनौषधियों से भी प्रायः अधिकांश लोग अपरिचित हैं। ऐसी स्थिति में आपने १४७ वनस्पतियों का सचित्र विवरण बृहदाकार अङ्क में प्रकाशित कर आयुर्वेद जगत का ही नहीं सामान्य लोगों का भी विशेष उपकार किया है। इस अत्यन्त उपयोगी विषय को आपने भविष्य में ५-६ विशेषांकों में पूरा करने का संकल्प किया है। यह प्रसन्नता की बात है। आपके श्रम एवं अध्यवसाय से आयुर्वेद का बड़ा उपकार हो रहा है एतदर्थ दीर्घकाल तक वैद्य समाज आपका उपकृत रहेगा।

× × ×

श्री गिरिजादत्त पाठक वैद्य, साहित्यायुर्वेदाचार्यस्य
बक्सर शाहबाद (विहार)

चित्र प्रयोग परिपूरितमेतदङ्कं;
कृष्णप्रसादभिषजा रचितं समीक्ष्य।
धन्वन्तरेर्मम तु मासिक पत्रकस्य,
चेतश्चमत्कृतमभुद्भृद्विचारः॥ १॥
दिव्यौषधिप्रभवचारू गुणानुविद्ध-
-मायुर्विचार सुवचःसुमनोभिरिद्धम्॥
कृष्णप्रसादविबुधोऽवसरे समर्प्य,
हारंहरत्यतुलगं भिषजां मनांसि॥ २॥
नूत्नैः प्रयोग शतकैः समयोपयोगिनः;
संगृह्य साम्प्रतिकमार्षव चौभिराहतम्
दिव्यौषधस्य गुण योग विवेकशालिनो-
धन्वन्तरेसु दसभूप्रसमीक्ष्य चाङ्कम्॥ ३॥

× × ×

श्री ब्रह्मानन्दत्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्यःवाराणसी

श्रीमत्प्रेषितो "वनौषधि विशेषांकः" प्राप्तो दृष्टः पठितश्च। अद्य विशेषाङ्कमिमं दृग्गोचरीकृत्य नितान्तं मोमुद्यतेऽन्तरङ्गमस्मदीयम्। आयुर्वेदस्य रक्षणार्थं संवर्धनार्थञ्च भृशं प्रयत्यत इत्यपि विलोक्य सविशेषं प्रसीदामि। आयुर्वेदोद्धरणे बद्धपरिकराणां भवतां वर्धिष्णुमुत्कर्षं तथा च भारतवर्षस्य यत् प्राचीनं वेदशास्त्रपरम्परारक्षणात्मकं वैभवं तेनाऽयं प्रतिवर्षं विषयभेदेन धन्वन्तरे-विशेषाङ्क प्रकाशनरूपः प्रशंसार्हः प्रयासः सर्वदा विद्योतताममिति श्री शारदाचन्द्रमौलीश्वर चरणपरिसरेऽनवरतमभ्यर्थये।

× × ×

श्री पं. मनोहरलाल जी वैद्यराज
श्री धन्वन्तरि औषधालय, दहली-

विशेषांक अनुपम है। औषधियों का विवरण तथा चित्र अति सुन्दर, लाभप्रद, अत्युपयोगी, वैद्य समाज में आदर्णीय है।

× × ×

श्री पं. शिवकुमार जी व्यास आयुर्वेदाचार्य
देवनगर, करौल बाग, दहली-

यों तो धन्वन्तरि के सभी विशेषाङ्क अपनी विशिष्टता साथ लिए होते हैं—उनमें से यह और भी अधिक उपादेय सिद्ध होगा। औषधियों का परिचय जो वनस्पति शास्त्र के आधार पर दिया है उससे उनको पहिचानने में सरलता रहेगी। उनके गुणों का वर्णन और साथ ही साथ उनके विशिष्ट योग दे कर इस अंक को और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। रोगावस्थानुसार द्रव्य का जो प्रयोग लिखा है वह आयुर्वेदिक चिकित्सकों को चिकित्सा के लिए एक सन्मार्ग दिखा रहा है कि एकौषधि चिकित्सा की जाए।

× × ×

श्री पं. महेन्द्रनाथ जी पांडेय आयुर्वेदाचार्य
M. Sc. A., महेन्द्र रसायनशाला, इलाहाबाद-

वनौषधि विशेषांक का भव्य अंक प्राप्त हुआ। यह अंक अत्यन्त रमणीय और उपयोगी है। इस अंक से न केवल वैद्य समाज का बल्कि सामान्य जनता का भी कल्याण होगा। औषधियों का विवरण पूर्ण जानकारी के आधार पर आधिकारिक रूप से तैयार किया गया है। अन्य भाषाओं के नाम दे देने से अन्य प्रान्तों में वैद्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी काम की चीज बन गई है। औषधियों की प्रयोग विधि गुणधर्म विवेचन और अन्य विद्वानों की खोजों के परिणामों को समाविष्ट करके विशेषांक को अधिक उपयुक्त बना दिया गया है। यह विशेषांक धन्वन्तरि परम्परा के अनुकूल निकला है और सम्पादक और प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

× × × ×

श्री पं. नानकचंद वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
राणा प्रताप बाग, दहली —

आपका प्रेषित 'बनौषधि विशेषांक' प्राप्त हुआ जिसे अध्ययन किया गया। इसमें जो कुछ आपने संगृहीत किया है वह विशेष प्रशंसा केयोग्य है। इससे आयुर्वेद की उन्नति में तो कोई सन्देह है ही नहीं वरन् यह विशेषांक वैद्यों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा मत है।

× × × ×

न्यायायुर्वेदाचार्य पं. चंद्रशेखर जैन शास्त्री
सम्पादक—आयुर्वेद चिकित्सक, जबलपुर—

आपका विशालकाय ठोस सामग्री वाला बनौषधि विशेषांक प्राप्त हुआ। आपने इस बार जो प्रयत्न किया है, वह सदा स्मरणीय रहेगा। १४६ औषधों के स्वर-विशेषक इस निघण्टु से भारतीय चिकित्सक अपना मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे। डाक्टरों को आयुर्वेदीय ज्ञान देने और वैद्यों को उभय पद्धतिविज्ञ बनाने में यह आपका पुण्य प्रयास अवश्य सफल होगा। मेरा और मेरे साथियों का कोटिशः धन्यवाद स्वीकार करें।

× × × ×

आचार्य डा. एम. पी. रंजन विद्यावाचस्पति
लहेरिया सराय (दरभंगा)—

विविध विषयों पर प्रति वर्ष 'कल्याण' (गोरखपुर) की भांति एक विशालकाय एवं अभूतपूर्व विशेषांक का प्रकाशन अब तो धन्वन्तरि की एक पुरानी परम्परा सी हो गई है यह प्रयास आयुर्वेद जगत् में सर्वथा क्रांतिकारी, नवीन, आदर्श स्वरूप एवं अनुकरणीय है।

संक्षेप में, प्रस्तुत विशेषांक में बनौषधि सम्बन्धी एक वैद्य के जानने योग्य सभी बातों का पूर्ण समावेश किया गया है इसके विद्वत्तापूर्ण सम्पादन, संकलन एवं नयनाभिराम उत्कृष्ट मुद्रण प्रकाशन के लिये सम्पादक तथा प्रकाशक धन्यवादार्ह हैं।

× × × ×

श्री पं. गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य
वैद्य मार्तण्ड, भिवानी—

इसमें औषधि का सर्वाङ्गिक वर्णन, औषधियों के अङ्ग विशेष की उपादेयता एवं चित्रों का प्रकाशन अतीव सौष्ठव एवं सुचारु रूप से किया गया है यह विशेषांक आयुर्वेद में औषधियों के गुण और उनके प्रयोग बताने वाले एक महान् ग्रंथ की पूर्ति कर रहा है।

× × × ×

डा. पद्मदेवनारायण सिंह M. B. B. S.
बंगला नं. F 40, सिंदरी (धनबाद)—

यह आपका अद्भुत और अपूर्व प्रकाशन बन पड़ा है। इसकी उपादेयता और ज्ञानवर्धन के विषय में क्या कहना यह विशेषांक अपने विषय का सर्वाङ्गपूर्ण एवं अलभ्य सामग्रीयुक्त अत्युपयोगी है।

× × × ×

वैद्य पं. महावीरप्रसाद जोशी आयुर्वेदाचार्य
सादुलपुर—

बनौषधि के विषय में इस तरह उच्च स्तर की सर्वाङ्गीण सामग्री छापने के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ स्वीकार करें। निश्चय ही यह विशेषांक आयुर्वेद प्रेमियों के लिये प्रकाश स्तम्भ का काम देगा।

× × × ×

श्री डा. आर. सी. गर्ग A. M. M. S.
अनुसंधान सहायक केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय,
१५/१६ फैज बाजार, दहली—

इस संग्रह में अनेकों बनस्पतियों का विस्तृत वर्णन एवं विभिन्न रोगों पर सफल प्रयोग अति उत्तम रूप से प्रकाशित किये गए हैं। यह पुस्तक न केवल आयुर्वेद के छात्रों व चिकित्सकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी वरन् समस्त जनता इससे लाभ उठा सकेगी ऐसा मेरा विश्वास है। लेखक एवं सम्पादक मण्डल धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्य सैकड़ों प्रसंशापत्र स्थानाभाव के कारण प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंक में

अर्श	कविराज श्री बद्रीनारायण सेन	८
अर्श की चिकित्सा	श्री शिवकुमार व्यास	२१
गुलाबी, लाल, सफेद, ताम्रवर्णी चमड़ी के दाग—	—श्री डा० महावीर प्रसाद जैन	३३
बाल औषधालय	कविराज जगदम्बा प्रसाद	४१
मृत पारद	कविराज डा० श्रीराम शर्मा	४३
आयुर्वेद में देवों का रहस्यमय समाविष्ट—	—श्री मुरलीधर श्रीमाली	४५
मारा आपके परीक्षणों ने	—श्री पं. ठाकुरदत्त शर्मा 'अमृतधारा'	४६
षट्बिन्दु तैल के सद्गुणों का अनुभव	—वैद्य श्री मोतीशङ्कर वर्मा	४८
षट्बिन्दु तैल प्रयोग विपत्ति	—कविराज श्री रवीन्द्रनाथ चौधरी	४८
अपामार्ग का गर्भाशय पर प्रभाव	—श्री डा० रामचन्द्र झा	५१
गुप्त सिद्ध प्रयोग—	—श्री त्यागी त्रिवेणी दास	५३
	—श्री वैद्य मोहरसिंह 'हितैषी'	५३
	—श्री वैद्यराज भण्डारी लाल	५३
	—श्री शेख फय्याज खां	५४
समाचार एवं सूचनायें	... ...	५५

सम्पादकः- आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग.

ज्वालाप्रसाद अग्रवाल B.Sc. दाऊदयाल गर्ग A., M.B.S.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ --चरक सू० १-४०

भाग ३५ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ | मई
अङ्क ५ | का मुख पत्र | १९६१

स्वागत-गान

(रचयिता—आचार्य डा० एम० पी० रंजन, विद्यावाचस्पति, दरभंगा)

●

पधारो धन्वन्तरि भगवान ।
आधि-व्याधि सब मिटे जगत से, दो ऐसा वरदान ॥
सुधा-कलश लेकर आओ, दो हमें स्वास्थ्य का ज्ञान ।
नवजीवन संचार करो औ' भरो पुरातन शान ॥
एक तुम्हीं कर सकते हो इस, निखिल विश्व का त्राण ।
क्लीवों में पुरुषार्थ जगा कर, भर तो नूतन प्राण ॥
पुनः प्रतिष्ठित करो जगत में, निज आयुर्विज्ञान ।
मिले राजकीय संरक्षण औ' बढ़े वैद्य का मान ॥
रोग-सिन्धु से पार उतरने के हित यह जलयान ।
जगद्गुरु भारत का गौरव, आयुर्वेद महान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्श

कविराज लाला बदरीनारायण सेन G. A. M. S.

यह रोग अपान स्थान या गुदास्थान में होने वाला रोग है जिसमें तद्स्थानीय दोष दूषित हो इसके त्वचा मांस एवं मेद् को दुष्ट कर गुदाद्वार पर मांसांकुर उत्पन्न करते हैं। जैसा कि कहा भी है—

अर्शांसि षट् प्रकाराणि विद्याद् गुदवलित्रये ।
दोषास्त्वङ् मांस मेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन ।
मासांकुंरान अपानादौ कुर्वन्ति अर्शांसितान जगु ॥
—माधव ।

इस रोग में अपान स्थान में असह्य वेदना होती है और उससे रक्तस्राव होता है विशेष कर मल त्याग के समय। चूंकि यह रोग अपान स्थान का रोग है अतः इसके सम्यक् ज्ञान के लिए अपानस्थान से पूर्ण परिचित होना आवश्यक है अन्यथा सम्यक चिकित्सा की कल्पना संभव नहीं।

गुदनलिका या अपान स्थान—

गुदाद्वार से चार या पांच इंच ऊपर तक का भाग जो कि वृहदान्त्र का ही अन्तिम भाग है अपान स्थान या गुदनलिका (Rectum) कहाता है। उसके ऊपर का वृहदान्त्र का हिस्सा मलाशय (Pelvic colon) है और नीचे गुदाद्वार (Anus) है। जैसा कि कहा है--

तत्र स्थूलान्त्र प्रतिवद्धम् अर्धपंचांगुलं गुदमाहुः ॥
—सु० नि० २ अ०

यद्यपि यह वृहदान्त्र का ही एक भाग है तथापि अपनी कुछ विशेषताओं के कारण यह एक भिन्न अवयव बन गया है। सिवाय इसके वृहदान्त्र का कोई भी भाग कभी भी एकदम रिक्त नहीं होता; मगर यह सिवाय मलत्याग के समय के सर्वदा रिक्त ही रहा करता है। दूसरी विशेषता यह है कि आन्त्र में स्वतन्त्र रूप से एक निश्चित काल के अन्तर से एक गति होती रहती है जिसे आन्त्रगति (Persistalic movement) कहते हैं। इस पर किसी का नियन्त्रण नहीं हो सकता। यह स्वयं ही होता है रोका नहीं जा सकता। मगर गुदनलिका में एक तो एसी कोई गति नहीं दूसरे इसकी जो गति है उस पर हमारा नियन्त्रण है उसे हम रोक सकते हैं उत्तेजित कर सकते हैं। तीसरी विशेषता इसके निर्माण से है जिसका वर्णन् आगे किया जा रहा है।

गुदनलिका एवं वृहदान्त्र

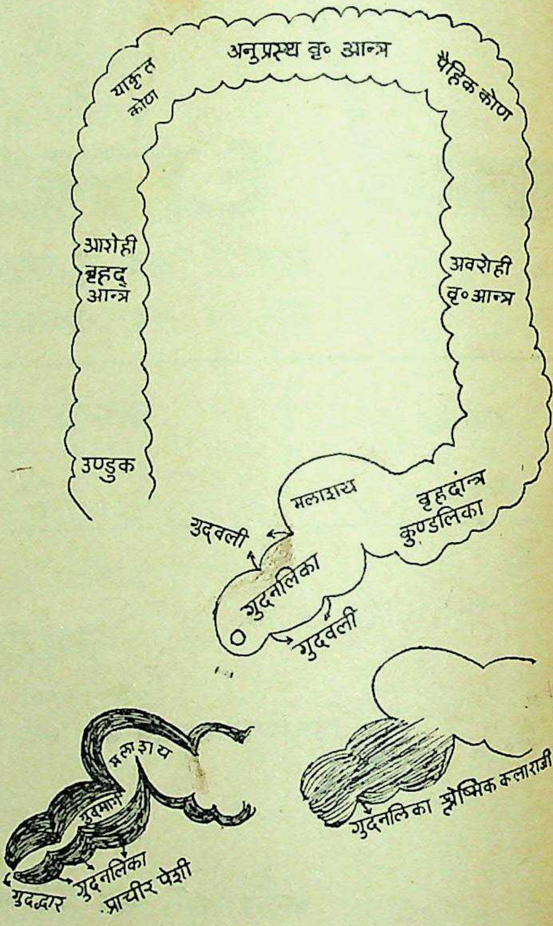

चित्र १

गुदनलिका का निर्माण एक मोटी तरगांकार नलिका जैसा है जिसका ऊपर का भाग अधिक विस्तृत एवं गुदद्वार के समीप का भाग संकुचित या अपेक्षाकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुदनलिका

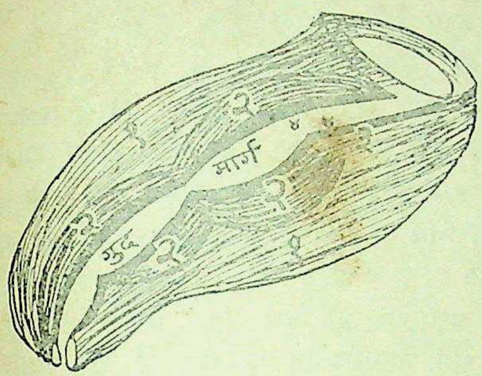

चित्र २

१. बाह्य प्राचीर (External Muscular Coat)
२. अन्तःप्राचीर (Internal Muscular Coat)
३. गुदत्वक्
४. श्लेष्मिक कला (Mucous memberane)

पतला होता है। इसके प्राचीर मांसल हैं याने पेशी तन्तुओं के संयोग से बने हैं। वर्णन सौकार्य्यार्थ इसके प्राचीर को हम दो भागों में रख सकते हैं एक बाहर वाला स्तर (External coat) जिसे बाह्य प्राचीर कहते हैं और दूसरा भीतर वाला स्तर जिसे अन्तः प्राचीर ((Internal coat) कहते हैं। बाह्य प्राचीर लम्बे सीधे परिवर्द्धनशील एवं आकुञ्चन प्रसारण गुण धर्म युक्त सौत्रिक तन्तुओं से बना है और अन्तः प्राचीर अर्धचन्द्राकार (Semilunar), कड़े परिवर्द्धन शील एवं आकुञ्चन प्रसारण गुणधर्म युक्त सौत्रिक तन्तुओं से बना है जो तन कर सीधी लम्बी हो जाती है और आकुञ्चित हो अर्धचन्द्राकार। दोनों प्राचीर के तन्तु अनुलम्ब रूप से सम्बद्ध हो स्तर का निर्माण करती हैं। बाह्य प्राचीर के स्तरों पर से अन्तः प्राचीर का स्तर पड़ा है। इस निर्माण विशेषता से गुदा नलिका बाहर से तो सीधी सी मालूम पड़ती है मगर भीतर से यह यत्र तत्र उभरी (आगे की ओर) रहती है। यह उभार दो अर्धचन्द्राकार (आगे पीछे अनुलम्ब रूप से) तन्तुओं के छोरों के दो ओर से मिलने के कारण बनता है।

ये उभार अनुप्रस्थ रूप से (Transverse) से बन जाते है चूंकि तन्तु अनुलम्ब रूप से जुटते हैं। उभारों के नाम गुदबली (Rectal transverse folds) हैं। ये गुदबलियां संख्या में तीन होती हैं। इसमें प्रथम को जो कि मलाशय एवं गुदानलिका के सन्धि स्थल के समीप है प्रवाहणी कहते हैं और इससे ३/४ इंच नीचे द्वितीय और से द्वितीय से प्रायः १/२ इंच नीचे तृतीय है। द्वितीय को विसर्जनी एवं तृतीय को संवरणी कहते हैं। इसमें प्रथम गुदनलिका के दाहिनी ओर, द्वितीय बाईं ओर और तृतीय सामने की ओर है। किसी किसी में इनकी संख्या चार भी होती है और किसी में दो भी रहती हैं। मगर अधिकतर यह

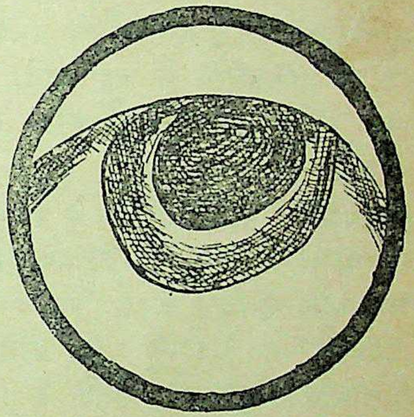

चित्र ३—गुदबलियां

तीन की ही संख्या में रहती है। जिस में चार होती हैं उसमें तृतीय से १/४ इंच नीचे सामने की ओर एक छोटी सी बली रहती है। जिसमें दो होती हैं उसमें द्वितीय बली नहीं रहती। मगर यह बहुत कम होता है अधिकरतर तीन ही रहती हैं। इसे ही सूत्र रूप में कहा है—

तस्मिन बलयस्तिस्रोऽध्यर्धागुंलान्तर संभूताः प्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति ॥
चतुरगुंलायताः सर्वस्तिर्यगेकागुंलोच्छ्रिता ।
शंखावर्त्तनिभाश्चापि उपर्युपरि संस्थिता ॥
सु० नि० २

अन्तः प्राचीर के ये अर्धचन्द्राकार तन्तु दृढ़, कठिन एवं आकुञ्चन प्रसारण गुण युक्त हैं अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाली अवस्था में इसके तन्तु सिकुड़ कर दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित रहते हैं। मलत्याग के समय दवाव पड़ने पर गुदा तन कर सीधी हो जाती है और एक मार्ग का निर्माण कर देती है जिसे गुदामार्ग (Anal Cannal) कहते है जिससे मल बाहर निकल जा पाता है। मल के निकल जाते ही ये पुनः दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित हो जाते हैं। और गुदमार्ग का पूर्णतया अवरोध हो जाया करता है। इस समय ये इतनी दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित रहती हैं कि तीनों बली मिल कर एक हो गये रहते हैं। उनका पृथक् पृथक् रहना मालूम नहीं पड़ता। यह इतनी दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित रहती हैं कि अंगुली को भीतर प्रविष्ट करना चाहें तो कठिनाई से प्रविष्ट होती है। यद्यपि कि ये वली अनुप्रस्थ रूप से इसके प्राचीर पर होते हैं मगर समूचे प्राचीर पर याने नलिका की पूरी परिधि में नहीं होते, आधे या इससे कम अधिक में रहते हैं और ड्योढे (तिर्यक) होते हैं।

अन्तः प्राचीर पर भीतर की ओर से एक पतली त्वचा और त्वचा पर से एक पतली श्लेष्मिक कला का आवरण चढ़ा रहता हैं जिसे क्रमशः गुदत्वक् एवं गुदमेदस कहते हैं। ये गुदत्वक् बहुत ढोले रूप से अन्तः प्राचीर से संयुक्त रहा करते हैं जिसके कारण इसमें अनुलम्ब रूप से अनेक सलवटें पड़ी रहती हैं। इन सिलवटों को गुदराजिका (Rectal columun) कहते हैं। ऐसा इस कारण रहता है कि जब अन्तः प्राचीर के चन्द्राकार तन्तु तन कर सीधी एवं परिवर्द्धित होती हैं तब ये सलवटें तन कर एक चिकने मार्ग का निर्माण कर सकें। ये गुदराजिका गुदाद्वार तक आती हैं और गुदौष्ठ का निर्माण करती हैं। ये इतनी ढीली ढाली रहती है कि मल त्याग के समय मल के दवाव से गुदद्वार के कुछ बाहर तक निकल आया करती हैं।

अन्तः प्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच तथा बहिःप्राचीर एवं अन्तः प्राचीर के बीच संयोजक तन्तु परमाणु (Connective cellular Tissue) सघन एवं दृढ़ नहीं हुआ करते हैं अतः ये बड़ी आसानी से स्व स्व स्थान च्युत (Prolapse) होने की प्रवृति युक्त हैं।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि गुदनलिका सिवाय मल त्याग के समय के बराबर खाली ही रहा करती है। इसमें मल का संचय नहीं होता। मल का संचय मलाशय (Pelvic colon) में हुआ करता है। चूंकि अपने अपने निर्माण वैचित्र्य के कारण यह हमेशा आकुञ्चित रहता है और मल के इसमें आगमन होते ही यह प्रसारित हो उसे बाहर निकाल फेंकता है और पुनः आकुञ्चित अवस्था में आ जाता है। आन्त्र में (समूची अन्न नलिका में याने कण्ठ से लेकर मलाशय तक) भुक्त आहार का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का कार्य आन्त्रगति (pere sistalic movment) द्वारा होता है मगर यह गति क्रम-क्रम से मन्द होती जाती है। कण्ठ से लेकर आमाशय तक इसकी गति तीव्र होती है जो कुछ ही मिनटों में अन्न को आमाशय तक पहुंचाती है। इसके बाद इसकी गति क्रम क्रम से मंद पड़ने लगती है। मुद्रिका द्वार (Pylorus) से पुरीषोण्डुक (Caecum) तक जिसकी दूरी लगभग २२ फीट है इसे आने में पांच घंटे का समय लगता है जब कि कंठ से आमाशय तक जिसकी दूरी लगभग आधी फुट है इसे कुछ क्षण मात्र ही लगते हैं। पुरीषोण्डुक (वृहदान्त्र का आरम्भिक स्थान) से इसकी गति और मन्द होने लगती है। पुरीषोण्डुक से याकृत कोण (Heptic Flexure) तक आने में दो घंटे का तथा याकृत कोण से प्लैहिक कोण (Splenic Flexure) तक आने में दो घंटे तक का समय लगता है यानी पुरीषोण्डुक से प्लैहिक कोण तक आने में चार घंटे का समय लगता है जबकि इसकी दूरी केवल दो ही फीट है। प्लैहिक कोण से अवरोही वृहदान्त्र तक फासला जो कि लगभग एक फीट से भी कम (२५ c.m.) है। इसे दो घंटे लगते है और वृहदान्त्र कुण्डली (Sigmoid) को पार कर मलाशय (Pelvic colon) में आने में इसे ६ घंटे का समय लगता है जबकि इसकी दूरी लगभग सवा फुट (·० c. m.) के ही है। मलाशय तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते आते इसकी गति अत्यन्त मन्द एवं क्षीण पड़ जाती है। यह इतनी मंद एवं क्षीण पड़ जाती है कि यह गुदनलिका की प्रथम बली (प्रवाहणी) को प्रसारित करने में समर्थ नहीं होती। प्रथम वली जो कि एक कपाटवत ही कार्य करती है इतनी दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित रहा करती है कि इस गति को अपने ऊपर रोक लेती है। उसे आगे नहीं बढ़ने देती। इस प्रकार मल याने भुक्त आहार का त्याज्य अंश मलाशय से एकत्रित होता रहता है। जब वह इतनी मात्रा में एकत्रित हो जाता है कि प्रथम बली पर एक अतिरिक्त दवाब डालता है तब आंत्र गति का प्रभाव इस पर होता है और यह प्रसारणोन्मुख होता है, मगर प्रसारित नहीं होता। यह इसकी प्रसारणोन्मुखावस्था मल त्याग करने की प्रवृति को उत्तेजना देती है और प्रवृति जब जाग्रत होती है तब प्रवाहण इच्छा होती है। प्रवाहण क्रिया द्वारा एक अतिरिक्त दवाब मलाशय पर और प्रसारण उत्तेजना प्रथम गुदवली पर साथ साथ पड़ती है जिससे गुदवलियों के अन्त: प्राचीर तन कर सीधे पड़ने लगते हैं और एक चिकनी मार्ग का निर्माण मल को बाहर निकल जाने को होता है।

ऐसी बात नहीं है कि समूचे मलाशय का सब मल निकल जाये। मल उतनी ही मात्रा में निकल जाता है जो प्रथम वली पर दवाब डालता रहता है, शेष मलाशय में रह जाया करता है। इस प्रकार गुदनलिका मल त्याग की क्रिया का सम्पादन करती है।

गुदनलिका में ६ विभिन्न रक्तस्रोत हैं जिनकी शाखा प्रशाखायें इसे सींचती हैं और वहां से रक्त को बहा ले जाती हैं। ये रक्त स्रोत इसमें अनुलम्ब रूप से अवस्थित हैं और अन्त: प्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच में मुख्य रूप से हैं। मगर इसे कोई मजबूत आधार नहीं होता है। यानी चारों ओर से यह आधार विहीन यानी प्राचीर तन्तुओं से सम्बद्ध विहीन रहता है और यह इसलिए कि जब प्राचीर तन्तु आकुञ्चित प्रसारित हों तो यह इसके प्रभाव से अछूता रहे। दूसरी विशेषता यह है कि इसकी सिराओं में विशेष कर गुदान्तिका सिरा उत्तरा जो कि प्रतिहारिणी सिरा की ही एक शाखा है, स्रोत-कपाट (Valve) नहीं होते। इसलिए इसमें प्रवाहित होते रहने वाले रक्त को लौट पड़ने एवं स्रोत-विस्फार (Varcosity) या सिरा कुटिलता (Prolapse) आदि की आशङ्का बराबर बनी रहती है और यही अर्श रोग का मुख्य अवयव है। अत: इसके सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन आवश्यक है। गुदनलिका से होकर गुजरने वाले निम्नलिखित रक्तस्रोत हैं।

१. गुदांतिका	धमनी	उत्तरा
२.	,,	मध्यमा
३.	,,	अधरा
४.	सिरा	उत्तरा
५.	,,	मध्यमा
६.	,,	अधरा

गुदान्तिका धमनी उत्तरा (चित्र नं.४)

यह अवरान्त्रकी धमनी (Inferior Mesentric Artery) की एक शाखा है। यह गुदवली प्रथमा के समीप सामने की ओर से गुदनलिका में प्रविष्ट हुई है। यह गुदनलिका प्राचीर का भेदन करती हुई अन्त: प्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच आती और गुदत्वक के नीचे नीचे यह सीधा नीचे की ओर चली आती है और गुद द्वार से लगभग $\frac{1}{3}$ इन्च (१० c. m.) ऊपर तक आकर समाप्त हो जाती है। यहां आकर यह धमनी जालकों (Cappillaries) में परिणत हो जाती है। इस स्रोत के ऊपर के हिस्से से अनेक शाखा प्रशाखायें फूट कर निकलती हैं और अन्त: प्राचीर तथा गुदत्वक् की ओर जाती हैं। गुदत्वक् की ओर जाने वाली शाखायें गुदत्वक् एवं श्लेष्मिक कला में फैल कर उन्हें सींचती हैं। पोषण प्रदान करती है। अन्त: प्राचीर की ओर जाने वाली शाखायें अन्त: प्राचीर के ऊपरी स्तरों को सींचती एवं पोषण देती हैं। बाह्य प्राचीर की ओर इसकी शाखायें एकदम नहीं गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुदनलिका की धमनियां

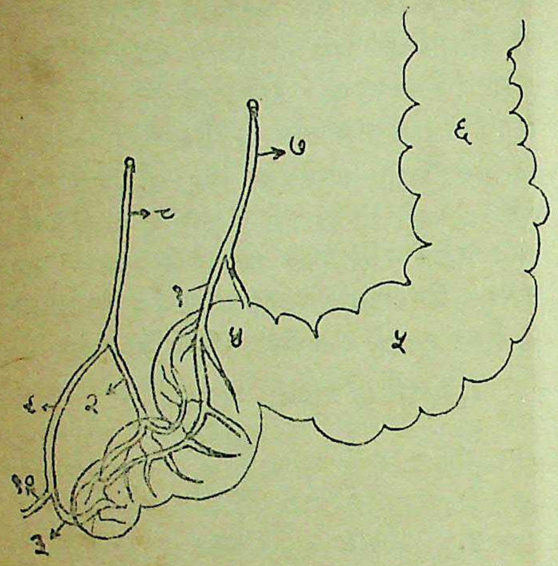

चित्र ४

१. उत्तरा गुदान्तिका धमनी (Superior Haemorrhoidal Artery)
२. मध्यमा गुदान्तिका धमनी (Middle Haemorrhoidal Artery)
३. अधरा गुदान्तिका धमनी (Inferior Haemorrhoidal Artery)
४. मलाशय (Pelvic Colon)
५. बृहदान्त्र कुण्डलिका (Sigmoid Colon)
६. अवरोही बृहदान्त्र (Descending Colon)
७. अधरान्त्रकी धमनी (Inferior Mesentric Artery)
८. अधिश्रोणिका धमनी (Hypogastric Artery)
९. अधरावस्तिका धमनी (Inferior Vesical Artery)
१०. गुदोपस्थिका धमनी (Internal Pudendal Artery)

गुदान्तिका धमनी मध्यमा (चित्र नं४.)

यह अधिश्रोणिक धमनी की एक शाखा है। यह अधिश्रोणिक धमनी (Hypogastric Artery) से निकल प्रथम वली के पास दाहिनी ओर वह गुदनलिका प्राचीर का भेदन कर गुदनलिका में प्रविष्ट होती है और बाह्य प्राचीर तथा अंतःप्राचीर के बीच अंतःप्राचीर के नीचे नीचे यह सीधे अनुलम्ब रूप से नीचे की ओर चली आती है और गुद द्वार से ३/४ इन्च ऊपर तक आकर अन्तःप्राचीर का भेदन कर अन्तः प्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच उस स्थान पर निकल आती है जहां पर गुदन्तिका धमनी उत्तरा आकर समाप्त हुई है। यहां पर आकर यह भी समाप्त हो धमनी जालकों में परिणत हो गुदान्तिका धमनी उत्तरा के जालकों में आ मिलती है। इसके ऊपर के हिस्से से यानी मुख्य स्रोत से अनेक शाखा प्रशाखायें फूटती हैं जो बाह्य प्राचीर एवं अन्तः प्राचीर की ओर जाती हैं और उन्हें सींचती हैं। यह गुदत्वक् या श्लेष्मिक कला को एकदम नहीं सींचती है।

गुदान्तिका धमनी अधरा (चित्र नं.४)

गुदांतिका धमनी उत्तरा एवं मध्यमा गुद द्वार से ३/४ इंच ऊपर के गुदनलिका को सींचती है। इससे इसकी शाखायें नीचे नहीं गई हैं। गुद नलिका के इस नीचे के भाग को गुदांतिका धमनी अधरा सींचती है। गुदांतिका धमनी अधरा गुदोपस्थिका धमनी (Internal Pudendal Artery) की एक शाखा है। यह गुद द्वार से किंचित ऊपर गुदनलिका प्राचीर का भेदन कर गुदनलिका में प्रविष्ट हो ऊपर की ओर चलती है। इससे अनेक शाखा प्रशाखायें निकल कर बाह्य प्राचीर, अन्तः प्राचीर तथा गुदत्वक श्लेष्मिककला की ओर गई हैं और गुद द्वार से ३/४ इंच ऊपर तक के भाग तक आकर इन्हें सींचती है। यह गुद प्राचीर का भेदन करती हुई गुदत्वक् एवं अंतः प्राचीर के बीच उस स्थान तक आती है जहां पर गुदांतिका सिरा उत्तरा एवं मध्यमा आकर समाप्त होती हैं। इस स्थान तक आकर यह भी समाप्त हो जाती हैं और जालकों में परिणत हो गुदान्तिका धमनी उत्तरा एवं मध्यमा के जालकों में मिल जाती है।

गुदांतिका सिरा उत्तरा (चित्र नं०५)—

गुदांतिका सिरा उत्तरा गुदांतिका धमनी उत्तरा के उन जालकों से निकलती है जो गुद द्वार से ३/४ इन्च ऊपर आकर समाप्त हुई है। यहां से निकल यह गुद प्राचीर अन्तः का भेदन करती हुई बाह्य प्राचीर में प्रविष्ट हो ऊपर की ओर गई है और द्वितीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुद नलिका की सिरायें

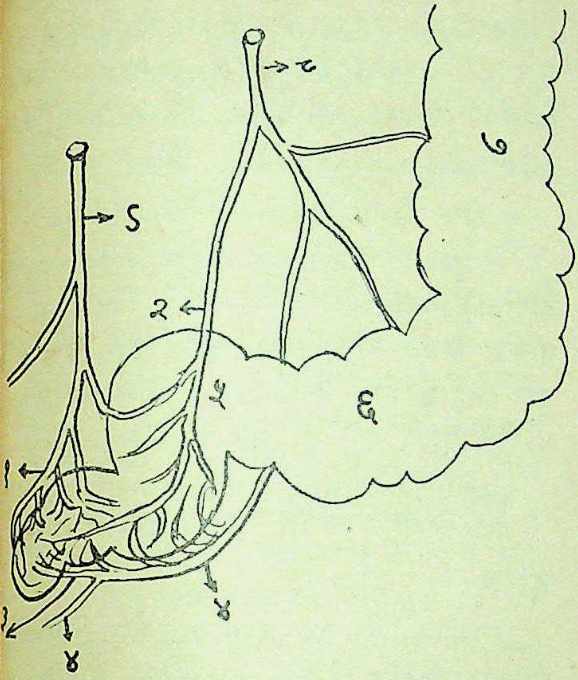

चित्र ५

१. उत्तरा गुदान्तिका सिरा (Superior Haemorrhoidal Vein)
२. मध्यमा गुदान्तिका सिरा (Middle Haemorrhoidal Vein)
३. अधरा गुदान्तिका सिरा (Inferior Haemorrhoidal Vein)
४. गुदोपस्थिका सिरा (Internal Pudendal Vein)
५. मलाशय (Pelvic Colon)
६. बृहदान्त्र कुण्डलिका (Sigmoid Colon)
७. आरोही बृहदान्त्र (Discending Colon)
८. अधिश्रोणिका सिरा (Hypogastric Vein)
९. अधरान्त्रिकी सिरा (Inferior Mesentric Vein)

बली के सामने गुदनलिका से दाहिनी ओर बाहर निकलती है और अधरान्त्रकी सिरा (Inferior Mesentric Vein) जो कि प्रतिहारणी सिरा (Portal Vein) की एक शाखा है उसमें आकर मिल गई है। इसमें स्रोत कपाट (Valves) नहीं रहती है। इसमें स्थान स्थान पर बाह्य प्राचीर एवं अन्तः प्राचीर से निकले सिरा स्रोत जो कि गुदांतिका धमनी मध्यमा एवं उत्तरा के शाखा प्रशाखाओं के जालकों से निकलते हैं आकर मिलते गये हैं।

गुदांतिका सिरा मध्यमा (चित्र नं. ५)-

यह भी उसी स्थान से यानी गुद द्वार से $\frac{1}{3}$ इन्च ऊपर गुदत्वक् एवं अन्तःप्राचीर के बीच के स्थान से जहां गुदांतिका धमनी मध्यमा आकर समाप्त हो जालकों में परिणत होती है उन्हीं जालकों से निकलती है और अन्तःप्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच बीच से गुदत्वक् के नीचे नीचे ऊपर की ओर चली जाती है और गुद प्राचीर का भेदन कर प्रथम बली के समीप सामने से निकल आती है और आगे बढ़ अधिश्रोणिक सिरा (Hypogastric Vein) जो कि अधरा महा सिरा (Inferi or Vena Cava) की एक शाखा है आकर मिल जाती है। इसमें अन्तःप्राचीर एवं गुदत्वक् तथा श्लेष्मिक कला की ओर से आये अनेक सिरा स्रोत जो कि गुदांतिका धमनी उत्तरा के शाखा प्रशाखा के जालकों से निकलती है आ मिलती है।

गुदांतिका सिरा अधरा (चित्र नं. ५)—

यह भी उसी स्थान से गुदांतिका धमनी अधरा के जालकों से निकलती है यानी गुदद्वार से $\frac{1}{3}$ इन्च ऊपर अन्तःप्राचीर एवं गुदत्वक् के बीच के स्थान से जहां गुदांतिका धमनी अधरा जालकों के रूप में आकर समाप्त हो जाती है। वहां से यह नीचे की ओर चलती है और गुद द्वार से तनिक ऊपर गुदनलिका से बाईं ओर बाहर निकलती है और गुदोपस्थिका सिरा (Internal Pudendal Vein) में आ मिलती है जो अधिश्रोणिक सिरा में आ मिलती है।

गुदवेष्टन चक्र एवं गुदवेष्टन सिरा चक्र (Ractal plexus and Haemorrhoidal plexus) (चित्र नं. ६)—

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि गुद द्वार से $\frac{1}{3}$ इन्च ऊपर गुदनलिका का भाग एक प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुदवेष्टन सिरा चक्र

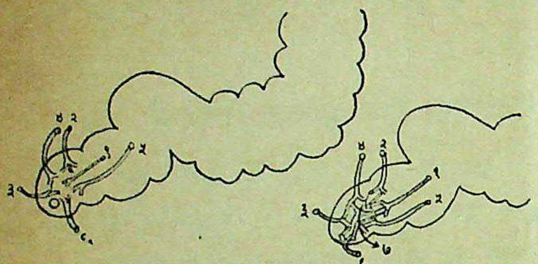

चित्र ६

१. उत्तरा गुदान्तिका धमनी (Superior Haemorrhoidal Artery)
२. मध्यमा गुदान्तिका धमनी (Middle Haemorrhoidal Artery)
३. अधरा गुदान्तिका धमनी (Inferior Haemorrhoidal Artery)
४. उत्तरा गुदान्तिका सिरा (Superior Haemorrhoidal Vein)
५. मध्यमा गुदान्तिका सिरा (Middle Haemorrhoidal Vein)
६. अधरा गुदान्तिका सिरा (Inferior Haemorrhoidal Vein)
७. गुदवेष्टन सिरा चक्र (Haemorrhoidal Plexus)

स्थान बन गया है । यह एक ऐसा स्थान है जहां पर तीनों गुदांतिका धमनी आकर समाप्त होती हैं । इस स्थान पर के पेशीतन्तु किंचित कुण्डलाकार (Dialated Potches) हो गई है अतः इस स्थान को गुद कुण्डली चक्र या गुदवेष्टन चक्र (Rectal Plexus) कहते हैं तथा इस स्थान के रक्त स्रोतों को गुदवेष्टन सिरा चक्र (Haemorrhoidal Plexus) कहते हैं । अर्श रोग का प्रमुख विकृति स्थान गुदवेष्टन चक्र एवं विकृति अवयव गुदवेष्टन सिरा चक्र तथा स्थानीय त्वक् मांस एवं मेदस् हैं । यद्यपि कि समूची गुदनलिका तथा उसके त्वक् मांस मेदस् इसके आधार हैं तथापि यह प्रमुख है ।

विकृति

अर्श रोग को हम दो मुख्य वर्ग में रख सकते हैं । एक जिसमें असह्य वेदना वेदना सह रक्तमिश्रित मल त्याग होता है और दूसरा जिसमें वेदना का होना कोई आवश्यक नहीं । किन्तु या तो मल त्याग के पहले या बाद में रक्तस्राव पर्याप्त मात्रा में होता है । इसका रक्त ताजे रक्त सा रहता है । किसी किसी में पिचकारी की तरह आजाता है । किसी किसी में बूंद बूंद कर टपकता है । इसमें प्रथम को शुष्कार्श (*Blind piles*) एवं दूसरे को परिश्रावी अर्श (*Bleeding piles*) कहते हैं । जैसाकि कहा है–

शुष्क परिश्राव विभेदाश्च द्विविधा ॥अष्टाङ्ग॥

ये मुख्यतः तीन कारणों से होते हैं एक स्थानीय दोषों की विकृति से, दूसरा रक्त के विकारों से एवं तीसरा जन्मजात विकृति से । इसमें दोषों की विकृति चार तरह की होती है-१.वातज,२. पित्तज,३. श्लेष्मज ४. त्रिदोषज । इसे ही सूत्र रूप में कहा है—

पृथक दोषैः समस्तैश्च शोणितात सहजानि च ।
अर्शांसि षट् प्रकाराणि विद्याद् गुदवलि त्रये ॥

दोषज –

स्वकारणों से जब स्थानीय दोष (वात पित्त श्लेष्मा) प्रकुपित हो जब गुदनलिका के रक्तस्रोत (प्रधान प्रधान) एवं गुदवलि प्राचीर को विकृत करता है तब यह रोग होता है । ऐसे कारणों से जो गुदनलिका प्राचीर पर दवाब डालें जैसे वस्तिगत अश्मरी, पौरुषग्रन्थि अभिवृद्धि (*Prostate enlargment*), गर्भ जलोदर आदि गुदनलिका प्राचीर पिहिता अवस्था में आता आता है या ऐसे कारण जिससे गुदनलिका प्राचीर शुष्क हो जाये जैसे कटु, कषाय, तिक्त, रूक्ष, शीत, तीक्ष्ण मद्य, मैथुन, शोक, चिन्ता एवं अत्यधिक राह चलना आदि का अत्यधिक सेवन से गुदनलिका प्राचीर स्वाभाविक रूप से न तो आकुञ्चित हो पाता है न प्रसारित हो पाता है । दबाव या शुष्कता के कारण यह स्वभाव की अपेक्षा अधिक दृढ़तापूर्वक आकुञ्चित रहता है इससे इन्हें प्रसारित करने के लिए प्रवाहन का दवाब अधिक जोर का देना होता है । ऐसी अवस्था में अधिक जोरदार प्रवाहण के कारण रक्तस्रोत फूल उठती है, उसमें रक्त अधिक भर उठता है और यदि पेशी तन्तुओं के दृढतापूर्वक आकुञ्चित रहने के कारण कोई रक्तस्रोत जो इनका भेदन करती हुई आई या गई है पिहित अवस्था में रहा तो रक्त का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहन बाधित हुआ रहता है जिससे रक्त आगे की ओर नहीं बढ़ पाता, पीछे ही रुका रहता है। और चूंकि रक्त स्रोतों का चारों ओर से कोई दृढ़ आधार नहीं होता इसलिए इस रक्त संचयाधिक्य से या तो फूल उठती (*Varicose*) हैं या स्थानच्युत (*Prolapse*) हो जाती हैं। फिर जब पेशी तन्तु प्रसारित होते हैं स्रोत की पीड़ितावस्था हटती है, रक्त संवाहित हो आगे बढ़ता है तब स्रोत पुनः स्वभाविक अवस्था में आजाता है। यदि यह क्रम अधिक दिनों तक चला तब स्रोत प्राचीर दुर्बल हो उठते हैं। बार-बार के फूलते पिचकते रहते रहने के कारण और तब स्थायी रूप से फूले के फूले रह जाते हैं—उसमें रक्त संचयाधिक्य रहता ही है चूंकि इसमें स्रोत कपाट नहीं होते हैं। धीरे धीरे इसके चारों ओर से आधार विहीन होने के कारण यही नीचे की ओर लटकने लगता है और समीपस्थ गुदत्वक को मय उसके श्लेष्मिक कला के लिये हुए लटकता है। इस प्रकार एक शृंग या अंकुर का निर्माण हो जाता है। धीरे धीरे इसके भीतर सौत्रिक तन्तु का निर्माण होने लगता है और यह अंकुर (*Capsule*) कड़ा होने लगता है। पहले तो ये लटककर गुदौष्ठ तक ही रहते हैं मगर धीरे धीरे ये गुदद्वार के बाहर तक आते हैं। इस प्रकार गुदत्वक एवं श्लेष्मक कला का कुछ अंश खिंच जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब गुद प्राचीर मलत्याग के समय प्रसारित होता है तो इसके अनुपात के अनुसार गुदत्वक प्रसारित नहीं हो पाता चूंकि इसका कुछ अंश खिंच गया रहता है। अतः मलत्याग के समय वेदना होती है और अधिक तनाव के कारण गुदत्वक यत्र तत्र से फट (*Crack*) जाती है जिससे रक्त मिश्रित मल का त्याग होता है। इसके अंकुर बड़े एवं छोटे से रहते हैं। अंकुर एक या इससे अधिक की संख्या में भी हो सकते हैं। यह रक्त स्रोतों के आक्रांत होने और गुदराजी के साथ लटकने की संख्या पर निर्भर करती है। इसे ही सूत्र रूप में कहा है।

प्रकुपिता दोषा प्रसृताः प्रधान धमनीरनुप्रपाद्यधो गत्वा गुदमागम्य प्रदुष्य गुदवलि मांसप्ररोहाञ्जनयन्ति ॥

—सु० नि० २

उपरोक्त कारणों से (कटु कषायादि) बहुधा मल काठिन्य भी हो जाया करता है जिसे निष्काषित करने में अधिकाधिक प्रवाहन दबाब डालना पड़ता है। इससे भी उपरोक्त तरह की विकृति आती है। इस वेदना के कारण एवं गुदत्वक के खिंच जाने के कारण गुदनलिका का प्रसारण भी सम्यक् रूप से नहीं होता। इससे मल त्याग पूर्ण रूप से नहीं होता। मलाशय में ये संचित हो सड़ने लगते हैं और एक स्वयंभू विष (*Auto-intoxication*) उत्पन्न होता है जिससे नाना प्रकार के उपद्रव उठ खड़े होते हैं जैसे—इन्द्रियदौर्बल्य, तन्द्रा, उद्गार, कुक्षि आटोप आदि—

विष्टम्भोन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षिः आटोप एव च।
कार्श्यमुद्गार बाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता॥
शिरःपार्श्वांसः कट्यूरूवंक्षणाद्याधिक व्यथाः।
क्षवथूद्गार विष्टम्भ हृद्ग्रहारोचक प्रदाः॥
कास श्वासाग्निवैषम्य कर्णनाद भ्रमापहा॥ माधव॥

यदि स्वकारणों से जैसे कटु, अम्ल, लवण, उष्ण आदि द्रव्यों के अत्यधिक सेवन से यदि गुदनलिका प्राचीर प्रदाहित हो जाये और अधिक दिनों तक या बार बार प्रदाहित हो तब इस दशा में भी वही होता है जैसा ऊपर लिख आये हैं। प्रदाह के कारण प्राचीर का आकुञ्चन प्रसारण अस्वाभाविक होजाता है जिससे रक्तस्रोत पर वही होता है जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। इसे ही सूत्र रूप में कहा है।

दाह पाक ज्वर स्वेद तृणमूर्च्छारुचि मोहदाः।
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीत रक्तामवर्चसः ॥माधव॥

यदि स्वकारणों से जैसे मधुर, स्निग्ध, शीतादि के अधिक सेवन से यदि गुदनलिका के त्वकादि सशोथ हो जाये तो भी वही होता है जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसे ही सूत्र रूप में कहा गया है।

श्लेष्मोल्वणा महामूला धना मन्दरुजा सिता।
उत्सन्नोपचित स्निग्धस्तब्ध वृत्तगुरुस्थिरा॥
श्वास कास हृल्लास प्रसेकारुचि पीनसा।
मेह कृच्छ्र शिरोजाड्य शिशिर ज्वरकारिणः॥

—माधव

इसमें रुक्षता के कारण उत्पन्न को वातज अर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं और इसमें मल के सड़ने से स्वयंभू विष के उपद्रव होते हैं–प्रदाह के कारण उत्पन्न को पित्तज अर्श कहते हैं और इसमें प्रदाह जनित स्वयंभू विष (*Toxin*) के उत्पन्न होने से तद्जनित उपद्रव होते हैं तथा शोथ जनित को श्लेष्मज कहते हैं और शोथ से उत्पन्न स्वयंभू विष (*Toxin*) जनित उपद्रव इसमें होते हैं।

शोथादि से यदि यह अधिक हुआ तब बहुधा अधि उपस्थिगा (शिश्नादि की ओर जाने वाली) नाड़ी सूत्र पर दबाव पड़ता है वे क्षुब्ध होती हैं और क्लैब्यादि उपद्रव भी होते हैं। चूंकि गुदवेष्टनचक्र एक मर्म स्थान है अतः इसके पीड़ित होने से ऐसे ऐसे अन्य उपद्रव भी होते हैं जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता। सूत्र रूप में इसे ही कहा है–

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफौ गुदवलित्रयम ।
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधि कराणि च ।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥माधव॥

रक्तज–

गुदान्तिका सिरा उत्तमा के शाखा प्रशाखा सभी शिरा कपाटविहीन है। प्रतिहारिणी शिरा की शाखा होने के कारण इस पर उसके विकारों का प्रभाव पड़ता है। यदि स्वकारणों से प्रतिहारणी सिरा दोषग्रस्त हो तो गुदान्तिका सिरा उत्तमा का मुख्य स्रोत अधिकतर प्रभावित होता है। रक्त संवहन यदि बाधित हुआ तो गुदवेष्टन शिरा चक्र के उस भाग में जहां से गुदान्तिका सिरा का आरम्भ होता है रक्तसंचयाधिक्य होता है। स्रोत कपाट विहीन होने के कारण ऊपर का रक्त लौट पड़ता है और अधोगति लेता है–गुदवेष्टन सिराचक्र चूंकि इसका सबसे निम्न भाग है अतः स्वभावतः रक्त लौट कर इसमें आ सकता है–धमनी की ओर से रक्त का आगमन जारी ही रहता है अतः वहां पर इसका संचय अधिक होता है। तमाम रक्त स्रोत (गुदवेष्टन सिराचक्र के) फूल उठते हैं। गुदत्वक उसे विस्तृत हो स्थान तो दे देता है मगर रक्त संचयाधिक्य इतनी तीव्ररूप से होती है कि स्रोत प्राचीर उस दवाव को बर्दाश्त नहीं कर पाते और सहसा फूट पड़ते हैं जिसके साथ तदस्थानीय गुदप्राचीर भी फट जाता है और तीव्र रूप से रक्तस्राव होता है–इसमें सिरा एवं धमनी दोनों ही के रक्त रक्त रहते हैं। जैसा कि सूत्र रूप से कहा भी है।

स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चाति प्रवृत्तितः ॥ माधव।

इसमें जरा सा भी प्रवाहण दबाब के पड़ने से स्रोत के फटे मुख से रक्तस्राव होने लगता है। चूंकि इसमें स्रोत कपाट नहीं होते अतः ऊपर का रक्त भी इस खुले मुख से गिरता है। मल त्याग के बाद गुदनलिका प्राचीर के आंकुचन से यह जब आंशिक रूप से कुछ पिहितावस्था में आता है तब और जब रक्त के निकल जाने से स्रोत स्वयं भी पिहित रूप का हो जाता है तब रक्तस्राव रुक जाता है मगर जैसे ही हल्का सा भी दवाब पड़ने से स्रोत में तनाव आया एवं प्राचीर प्रसारित हो स्रोत के दवाब को कम किया कि रक्तस्राव होने लगता है। इसमें अंकुरों का गुद द्वार तक आ जाना कोई आवश्यक नहीं चूंकि रक्त के निकल जाने से दवाब का अभाव रहता है। मस्से यदि रहे भी तो सिकुड़ जाते हैं। इसी कारण इसे परिस्रावी (Internal or Bleeding) अर्श कहते हैं। इसमें मल त्याग के पहले ही प्रवाहण के साथ जीवरक्त की तरह वा रक्तस्राव होता है और मल त्याग के बाद बूंद बूंद कर रक्त टपकता है। इसमें वेदना हो भी सकती है और नहीं भी होती है। यदि वेदना हुई भी तो वह साधारण तरह की होती है। इस रक्त के निकल जाने के कारण रक्ताल्पताजनित अनेक उपद्रव खड़े होते हैं जैसा कि सूत्र रूप में कहा है–

भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षय संभवैः ।
हीन बलवर्णोत्साहो हतौजसा कलुषेन्द्रियः ॥
—माधव

विटश्याव कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते।

सहज–

बहुधा जन्म से ही गुदनलिका के निर्माण में विकृतियां रहा करती हैं। किसी में परम्परागत सिरा कुटिलता (Varicosity) का दोष आया करता है। गुद प्राचीर या गुदत्वक् या गुद रक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रोत की रचना ही दोषयुक्त हुआ करती है और इनमें सहज ही इस रोग की ओर झुकने का झुकाव गुदनलिका का रहता है। इनमें उपरोक्त में से कोई एक या सभी एक साथ हो सकते हैं।

त्रिदोषज—

जब वातज, पित्तज और श्लेष्मज ये सभी विकृतियां एक साथ हों तो उन्हें त्रिदोषज (Malignant) कहते हैं।

साध्यासाध्यता—

यद्यपि कि उपरोक्त विकृतियां गुदनलिका के किसी भी भाग में हो सकती हैं तथापि ये अधिकतर गुदवेष्टन चक्र स्थान में ही होती हैं जो कि गुद द्वार से ¾ इन्च ऊपर तृतीय बली के समीप होती हैं। इस स्थान का हुआ अर्श वह भी यदि एक वर्ष से भी कम का पुराना है तब साध्य है। यदि वह एक दोषज है अन्यथा यह कष्ट साध्य है। द्वितीय या प्रथम बली के किसी भी स्थान में होने वाला एक दोषज भी कष्ट साध्य है। पुराना या त्रिदोषज तो असाध्य है ही। जैसा कि सूत्र रूप में कहा है—

बाह्यायां तु वलौ जातान्येक दोषोल्वणानि च।
अर्शांसि सुख साध्यानि न चिरोत्पत्तितानि च॥
द्वन्दजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च॥
सहजानि त्रिदोषाणि चाभ्यन्तरां वलिम्।
जायन्तेऽशसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत॥
—माधव

चिकित्सा—

चूंकि यह कृच्छ्र साध्य या याप्य रोग है। अतः इसमें एक लम्बे अरसे तक की चिकित्सा करनी चाहिए। हर प्रकार के अर्श में दो तीन बातों का ध्यान मौलिक रूप से रखना चाहिए—

१—मल काठिन्य एवं शुष्कता नहीं हो।

२—प्रवाहण क्रिया उग्र रूप से और सहसा नहीं की जाये।

३—गुदनलिका को स्निग्ध रखा जाये तथा श्लैष्मिक कला और गुदप्राचीर को स्वाभाविक अवस्था में रखा जाये।

मल काठिन्य और शुष्कता को बचाने के लिए तथा गुदनलिका को स्निग्ध रखने के लिए हर अवस्था में निम्नलिखित क्षीर सर्पी का प्रयोग प्रतिदिन दो बार करना चाहिए। द्राक्षा २ तोला, पानी १ पाव, दूध गाय का १ पाव, इन तीनों को मिलाकर उबाले। जब पानी सब जल जाय दूध मात्र बच रहे तब उतार कर छान लें। इस गर्म गर्म दूध में १ २ तोला चीनी तथा २-३ चुटकी पीपर का चूर्ण मिलाकर पी जावे। इसके जीर्ण होने के बाद ही कोई आहार ग्रहण करे।

प्रवाहन अधिक नहीं करना पड़े और मल त्याग ऐसा हो जो गुदनलिका प्राचीर पर अधिक दवाब न डाले ताकि प्राचीर पेशी तन्तुओं को अधिक प्रसारित नहीं होना पड़े, इसके लिए मल को कुछ ढीला रखना आवश्यक है जो वृहदान्त्र के स्रावों को किंचित् बढ़ाने से होता है। यद्यपि कि हरीतकी इसके लिए एक अत्यन्त उपयोगी द्रव्य है जो वृहदांत्र स्राव को बढ़ाकर मल को कुछ ढीला रखता है मगर सगर्भा के लिए यह बहुत अनुकूल नहीं पड़ता। जैतून का तैल (Olive oil) इसके लिए एक अच्छी चीज है इसे नियमित रूप से लेना चाहिए। जैतून के तैल के अभाव में १ तोला काले तिल का तैल व्यवहार करना चाहिए।

अर्श रोग में तक्र बहुत प्रशस्त है। दही का चतुर्थांश पानी मिलावे (यानी १ पाव दही में १ छटांक पानी) इस तरह विलोये कि न उससे मक्खन छूटकर निकले न दही का रवा रहे। इसमें भुना जीरा, कालानमक और भुनी हींग अन्दाज से मिलाये। एक ग्रास यही तक्र प्रतिदिन प्रातः नास्ते के स्थान पर लें। मगर यह पित्तज अर्श वाले तथा श्वास एवं फाइलेरिया रोग वाले के लिए खूब अनुकूल नहीं पड़ता। इससे नष्ट किया अर्श समूल नष्ट होता है।

दोषज और सहज अर्श की चिकित्सा समान रूप से होती है। चूंकि सहज में दोषानुसार ही यह रोग होता है अन्तर सिर्फ इतना ही रहता है कि सहज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले में तद्स्थानीय दोषों को तद्रूप में विकृति होने की एक स्वाभाविक प्रवृति होती है।

दोषज—

बाह्य प्रयोग—

यदि अर्श के अंकुर कई एक की संख्या में हो जाते हैं या बड़े हो जाते हैं तो वे गुद द्वार पर एक अवरोध सा उत्पन्न करते हैं जिससे मल त्याग के समय तो कठिनाई अनुभव होती ही है साथ ही गुदत्वक् के अधिक खिचाब तथा तनाव के कारण एक प्रकार की वेदना निरंतर बनी रहती है। आभ्यन्तर औषधयों से तो स्वभाविक रूप से धीरे धीरे लाभ होगा ही। साथ ही साथ सद्यः लाभ ऐसे बाह्य प्रयोगों से होता है जो बलात् अंकुरों को संकुचित करें। अंकुर यदि बलात संकुचित होते हैं तो इसके भीतर का रक्त स्रोत दवाब पाकर अपने में संचित रक्त को ऊपर की ओर संवाहित करता है और अधिक रक्त का संचय हो विस्फारित नहीं होने पाता। इस प्रकार गुदत्वक् पर जो तनाव निरन्तर पड़ता रहता है वह दूर होता है मगर बहुत पुराने अंकुर जिसके भीतर सौत्रिक तन्तु जमकर एकदम कड़े पड़ जाते हैं उनके लिए या तो शस्त्र क्रिया की आवश्यकता होती है या ऐसे बाह्य प्रयोगों की आवश्यकता होती है जो उन सौत्रिक तन्तुओं को विलीन करते हुए अंकुरों पर संकोचक प्रभाव डालें। इसके लिए निम्नलिखित योगों का व्यवहार किया जा सकता है—

१—कड़वी तुम्बी बीज एवं पागां नमक दोनों को समान भाग लें और कांजी से पीस कनिष्ट अंगुली के समान गोदुम्बाकार १-१ इंच लम्बी बत्ती बनाकर सुखालें। गुद द्वार को किंचित ऊपर तक गौघृत या एरण्ड तैल से चुपड़ कर यह बर्त्ति प्रविष्ट करें और इसे धारण किये रहें।

२—उपरोक्त विधि से कड़वी तुम्बी के गूदे-बीज को गुड़ के साथ मिला कांजी से पीस बर्त्ति बना कर प्रयोग करें।

इन दोनों प्रयोगों से अंकुरों पर संकोचक प्रभाव पड़ता है जिससे गुदत्वक् के तनाव में कमी आती है।

३—हरीतकी चूर्ण, कड़वी तुम्बी चूर्ण और समुद्रफेन, इन्हें समभाग में मिला बर्त्ति बनाकर प्रयोग करें।

४—पीपर, सेंधव, कूठ तथा सिरिस बीज, इसे समभाग में ले और सब के बराबर कड़वी तुंबी का चूर्ण लें, जल से पीस बत्ति बना प्रयोग करें।

५—सूरण का चूर्ण, हल्दी, चित्रकमूल, टंकण भस्म तथा गुड़ समभाग में लें। कांजी के साथ पीस बर्त्ति बनाकर प्रयोग करें।

उपरोक्त तीनों योग सौत्रिक तन्तुओं को भी बिलीन करते हैं। वृ० काशीशादि तैल का पिचु धारण भी यही कार्य करता है। बल्कि यह सबसे निरापद प्रयोग है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

(१) अजवायन का चूर्ण १ तोले, खुरासानी अजवायन का चूर्ण १ तोला, कालानमक १ तोला, भांग के पत्तों का चूर्ण ½ तोला। मिलाकर इसमें ५० मात्रा बनायें। एक बार में १ से २ मात्रा तक एक साथ खायें। एक ग्लास तक्र के साथ या कोषण जल के साथ। इससे मल काठिन्य नहीं होता और वेदना का प्रशमन होता है, नींद आती है। २४ घण्टे में २-३ मात्रा दें।

२. काला तिल ८ तोला लेकर हर्रे के क्वाथ में इसे खूब खरल करें इतना कि इसका छिलका तक पिस कर लीन हो जाये। इसे धूप में सूखा कर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण में चित्रकमूल चूर्ण १ तोला, हर्र २ तोला और गुड़ दो तोला मिला कर इसमें ५० मात्रा बनायें। अनुपान कोष्ण जल। इससे मल काठिन्य नहीं होता और प्रतिहारणी सिरा का रक्त संवहन व्यवस्थित होता है जिससे गुदनलिका के रक्त स्रोतों का दबाव कम होता है। मगर यह सगर्भा के लिये निश्चित रूप से हानिकर है।

३. सूरण चूर्ण-चित्रक मूल चूर्ण, हर्र चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, भांग के पत्तों का चूर्ण, अजवाईन चूर्ण सभी सम भाग मिलावें। मात्रा दो आने भर से चार आने भर तक (चाय के चम्मच से १ से २ चम्मच तक) तक्र के साथ प्रयोग करें। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गुदनलिका के रक्त स्रोतों का संवहन कार्य सुव्यवस्थित होता है मल काठिन्य नहीं होता। गुदनलिका के प्राचीर पेशी मुलायम होते हैं और वृहदान्त्र की गति जोरदार एवं व्यवस्थित होती है।

इसके अतिरिक्त भैषज्यरत्नावली का रस गुटिका (वात प्रधान लक्षणों में) नित्योदित रस (कफ प्रधान लक्षणों में) और तीक्ष्णमुख रस (पित्त प्रधान लक्षणों में तथा त्रिदोषज में) प्रशस्त हैं। तीक्ष्णमुख रस स्वयं भू विषों का शामक एवं प्रदाहनाशक होने से सबसे अधिक अच्छा है यह सगर्भावस्था में भी अत्यन्त उपयोगी है। चन्द्रप्रभावटी भी इसीके अनुरूप लाभदायक है।

अर्श से उत्पन्न रक्ताल्पता, हीन वर्ण बल ओज आदि को दूर करने के लिये चक्राख्य रस उत्तम है। अत्यधिक रक्तस्राव से बहुधा रक्तचाप इतना अधिक गिर गया रहता है कि सर में चक्कर, तनिक परिश्रम से भी आंखों के नीचे अन्धकार आदि होता है उसमें यह रामबाण सा सिद्ध होता है। इसका प्रयोग तीव्र वेदना के साथ अनुकूल नहीं पड़ता या तीव्रावस्था में विशेष कर रक्तज में खूब अनुकूल नहीं।

चक्राख्य रस (भै० र०)

रस सिन्दूर, अभ्रक, वैक्रान्त, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, लौह भस्म, प्रत्येक १५-१५ ग्रेन।

भल्लातक मज्जा	२०० ग्रेन (१ तोला)
चित्रक मूल	२०० ग्रेन (१ तोला)

इसे खूब खरल करें और पानी से पीस इसमें १०० गोलियां बनायें।

इसके अतिरिक्त जीर्ण शुष्कार्श में लेखक निम्न लिखित एक योग का व्यवहार सफलतापूर्वक कर रहा है। सिवाय रक्तज एवं गर्भिणी के अर्श के सभी अर्शों में इसका प्रयोग लेखक कर रहा है। रक्तज अर्श में भी इसका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है मगर रक्तज अर्श में पहले सिरा क्षत को दूर कर उन्हें संधानित करने के बाद इसका प्रयोग यदि किया जाये तो फिर सिराक्षत का अवसर नहीं आता।

भल्लातक योग—

भिलावे की मींग	२ तोला
चित्रकमूल	१ तोला
अर्कमूल	१/२ तोला
ताम्र	१/४ तोला
लौह	१/४ तोला

सूरण जल से (सूरण स्वरस से) खरल कर इसमें १०० गोलियां बनावें। एक गोली सुबह और एक सायं कोष्ण दूध से दें।

उपयोग—यह सिरा कुटिलता (Varicosity) सिरा अवरोध एवं स्रोतों में जमे दोषों को दूर करता है यकृत को सबल बनाता है। याकृती परमाणुओं (Liver cells) को पुष्ट कर उन्हें उत्तेजना देता है। समूचे याकृती संवहन को सुव्यवस्थित एवं उत्तेजित कर गुदान्तिका सिरा उत्तमा के दवाव को दूर करता है। सिरा कुटिलता को रोक तथा गुदान्तिका सिरा उत्तमा पर किसी प्रकार के भी दवाब को नहीं आने दे यह गुदवेष्टन सिरा चक्र की किसी भी सिरा में न तो यह सिराकुटिलता आने देता है न उन्हें स्थानच्युत होने का ही अवसर देता है। इस प्रकार यह समस्त अर्श पर लाभदायक है।

रक्तार्श—

पहले लिखा जा चुका है कि इसमें अधिक दबाव के कारण रक्तस्रोत एकबारगी ही फूट पड़ता है और उस क्षत स्थान से रक्त का प्रवाह होने लगता है। इसकी चिकित्सा दोषज से कुछ भिन्न है। इसमें सर्व प्रथम क्षत स्थान का सन्धान करना चाहिए और उसे इतना अवसर देना चाहिए कि संधान दृढ़ हो जाये। इसके बचाने के लिये कि उस पर किसी भी प्रकार का दबाव तब तक नहीं पड़े जब तक क्षतस्थान दृढ़तापूर्वक संधानित न हो जाये। रोगी को एकदम आराम से रखना चाहिए और केवल दुग्धाहार पर रखना चाहिए। रक्तसंवहन चाप को भी यथा संभव नियन्त्रित रूप से कम रखना चाहिए ताकि प्रवाह दबाव यथासम्भव कम रखा जाये। यदि मल त्याग क्रिया कुछ नियन्त्रित काल तक रोकी जाये तो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा है चूंकि इससे प्रवाहन दबाव नहीं होगा। इसके लिए अल्पमात्रा में अहिफेन का प्रयोग एवं केवल दुग्धाहार पर रखना अच्छा है। अहिफेन का प्रयोग केवल एक या दो दिन तक करना चाहिए-मगर दुग्धाहार ४-५ दिनों तक रखना चाहिए। इसके बाद मल काठिन्य को दूर करने वाली उन औषधों का जिनका वर्णन दोषज अर्शों की चिकित्सा में किया गया है-करना चाहिए। चूंकि अहिफेन के प्रयोग से मलकाठिन्य हो जाया करता है। यह सिर्फ इसलिए करना चाहिए कि १-२ दिन मलत्याग न हो और गुदनलिका के सिरा क्षत को दृढ़तापूर्वक संधानित होने का अवसर मिल जाये। सिराक्षत को संधानित करने के लिये निम्नलिखित बाह्य प्रयोग सद्यः प्रभावकारी हैं।

बाह्य प्रयोग—

१-घृतकुमारी का मोटा गूदा छिलका रहित कर दो अढ़ाई इंच लम्बा लें। इसे धीरे धीरे गुदा मार्ग में प्रविष्ट कर दें और गुदा द्वार पर रुई (*Absorbant cotton*) की मोटी तह कर दृढ़तापूर्वक बांध दें ताकि गूदा बाहर न निकल आये। हर ८ घंटे पर गूदा नया लगा दें और पहला हटा दें। २४ घंटे में यह शिरा क्षत को दृढ़तापूर्वक संधानित कर देता है।

२-गूलर की छाल एवं पत्तों का स्वरस, वाकस के पत्तों का स्वरस-एवं विशल्यकर्णी के पत्तों के स्वरस में रुई या कपड़ा तर कर उपरोक्त विधि से प्रयोग करें। इन तीनों में कोई एक के पत्तों का स्वरस या तीनों के पत्तों के स्वरस को एक साथ मिलाकर उसमें रुई या कपड़ा तर कर व्यवहार करना चाहिए।

३-गूलर, वाकस एवं विशल्यकर्णी के स्वरसों को अलग अलग वाष्पयन्त्र द्वारा शुष्क कर घनसत्व बनालें-तीनों घनसत्वों को समान भाग में लेकर बर्ति बनायें-कनिष्ठिका अंगुली जैसी मोटी और दो-अढ़ाई इन्च लम्बी बर्तिवत् इसका प्रयोग करें।

उक्त तीनों योग क्षत सिराओं को एवं क्षत स्थान को ठीक करते हैं।

आभ्यन्तर प्रयोग—

इसमें ऐसी औषधों का प्रयोग करना चाहिए जो रक्त संवहन चाप को नियमित रखें और रक्त में जमने वाली शक्ति को बढ़ायें। साथ साथ रोपक (व्रण रोपक) योगों का भी प्रयोग करें। इस निमित्त निम्नलिखित योगों का व्यवहार करना चाहिए। इसमें सर्व प्रथम रक्तपित्त के आधार पर काम करे बाद में अर्श के आधार पर चिकित्सा करे। अर्श पर चिकित्सा करते हुए रक्तक्षय के कारण हुए विकारों का भी ध्यान रखे।

१-सर्पगन्धामूल चूर्ण, फालसे की छाल का चूर्ण और लाक्षा चूर्ण-तीनों समान भाग लेकर मिलावें। इस चूर्ण में से १२ ग्रेन चूर्ण (एक आना भर) २४ घण्टे में दो या तीन बार पानी से दें। इससे रक्त संवहन का दबाव कम रहता है। साथ ही यह देखते रहना चाहिए कि रक्तचाप ११०/७५ से कम नहीं हो। कम की ओर जाने पर इसकी मात्रा कम करें।

२-कहरुवा पिष्टी ४ ग्रेन, लाक्षा २ ग्रेन, मुक्ता भस्म १ ग्रेन, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ ग्रेन इन सबों को मिला १ मात्रा बनायें। वाकस के पत्तों के स्वरस से प्रति २-२ घण्टे पर देना चाहिए। इससे रक्त में जमने वाली शक्ति आती है। साथ ही साथ रोपण गुण भी आता है।

४८ घण्टे तक रक्तस्राव जब नहीं हो तब मलकाठिन्य दूर करने वाली औषधि का प्रयोग करें और रक्तस्राव रहित मल त्याग होने के बाद ही अन्य आहार पर लायें अन्यथा तरल आहार या दुग्धाहार पर रखें और तब कोई अन्य अर्शनाशक योगों का व्यवहार करें। इसके लिए अर्शनाशक योगों में निम्नलिखित या अन्य उचित योगों का व्यवहार करें-

१. कुटज, नीलोत्पल, लोध्र, लाल चन्दन एवं मजीठ समभाग में मिलाकर तक्र से सेवन करायें।

२. नागकेशर, अनारकली, धाय पुष्प, प्रियगु पुष्प समभाग, सबका आधा कुटज चूर्ण मिलाकर तक्र से सेवन करायें।

—शेषांश पृष्ठ २२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय पुरुष्कार प्राप्त लेख—

अर्श की चिकित्सा

श्री शिवकुमार व्यास ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरेधातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजांस्मृतम् ॥
—च० सू० १६/३३

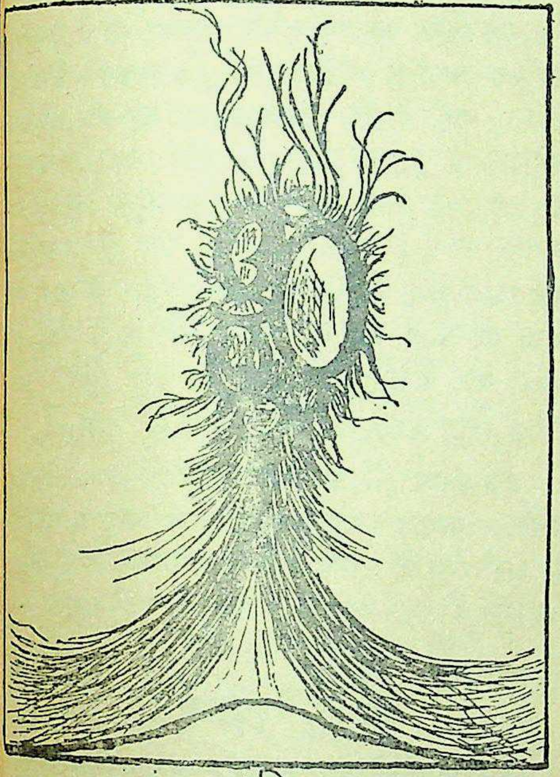

अर्शांकुर

इस आचार्योक्त सूत्र को पढ़ते ही चिकित्सा की वास्तविक रूपरेखा सामने आ जाती है और एक धुन्धली सी वह रेखा दूर दूर हटती जाती है कि औषधि देना मात्र ही चिकित्सा है। अर्श की चिकित्सा को लिखते समय यह सूत्र आरम्भ में देने का विशेष प्रयोजन है। कारण कि यह एक ऐसी व्याधि है जिसका कोई एक उपचार नहीं। ऐसी सम्भावना कदापि नहीं की जा सकती कि अमुक द्रव्य अथवा अमुक योग इस रोग से परितप्त मनुष्य को अवश्य ही लाभ करेगा। अतः निश्चित हो जाता है कि शास्त्राज्ञानुसार ही चिकित्सा में प्रवृत्त होना पड़ेगा।

आयुर्वेदोक्त अर्श --

आयुर्वेद में अर्श एक व्यापक अर्थ रखता है जिसके अधिष्ठान के विषय में लिखते हुए हम यह नहीं कह सकते कि अमुक स्थान में यह होता है। नासा अर्श आदि कई होते हुए भी हमारा प्रयोजन चरक में लिखे अनुसार केवल गुदज अर्श से ही है। वहां लिखा है—

"तदस्त्यधिमांस देशतया गुदवलि-
जानित्वर्शासीति संज्ञा तन्त्रेस्मिन् ॥"
—च० चि० १४

अतः गुदा में होने वाला रोग अर्श की संज्ञा से यहां लिखा जा रहा है। गुदा एक ऐसा स्थान है जिसको विश्राम मिलना सम्भव नहीं, मल त्याग एक ऐसा वेग है जो अधारणीय है अतः प्रतिदिन मल की प्रवृति होने पर गुदा पर जोर पड़ेगा और रोगावस्था में अङ्ग को विश्राम मिले बिना आराम होना सम्भव नहीं। अतः इस रोग के हो जाने पर चिकित्सा में कठिनाई होती है। स्वस्थावस्था में ही नियम पालन कर इससे बचना श्रेयष्कर है। अतः प्रथम प्रतिषेधात्मक चिकित्सा के विषय में लिख रहे हैं और फिर प्रशमनार्थ चिकित्सा का विस्तार से वर्णन करेंगे।

प्रतिषेधात्मक चिकित्सा

निदान वर्जन—

अर्श किन कारणों से होता है उसका विस्तार से वर्णन करते हुए चरक चिकित्सा स्थान अ. १४ में लिखा है कि सहज अर्श तो जन्म लेने के पूर्व से ही माता के शोणित एवं पिता के शुक्र की विगुणता के कारण गर्भावस्था में ही हो जाता है और जन्मोत्तर कालीन अर्श गुरु मधुर शीतल आदि आहार एवं विषमाचार के कारण होते हैं। उन सभी कारणों को देखते हुए हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पाचन संस्थान की क्रिया का उचित रूप में कार्यकर रहना अर्श को उत्पन्न नहीं होने देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर की पाचकाग्नि का सुचारु रूप से कार्य करना ही स्वस्थ रख सकता है। अतः प्रतिषेध के लिए प्रथम जो नियम है वह है निदान परिवर्जन। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य का कर्त्तव्य है कि स्वस्थ रहने के लिए उन कारणों को न आने दे जो कि अर्श उत्पादक बताये हैं। अतः कारणों से बचाव करना प्रथम उपाय हुआ।

भ्रमण—

स्वस्थ मनुष्य के लिये आवश्यक है कि स्वस्थवृत में लिखे अनुसार नियम पालन करे और इस रोग से बचने के लिए भ्रमण एक आवश्यक कार्य समझे। हर समय बैठने एवं लेटने वालों को यह रोग अधिक होता है। अतः घूमना इससे बचने में सहायक है।

आसन—

कुछ ऐसे आसन हैं जिनको अभ्यास करते हुए नित्य करते रहना पाचन के लिये लाभदायक है। पाचन ठीक रखते हुए वे आसन अर्श रोग से बचाते हैं। अतः आसन की क्रियाओं को सीख कर उनको करना लाभप्रद रहेगा। कल्याण योग विशेषाङ्क में कुछ ऐसे आसनों का वर्णन है उनमें से कुछ के नाम हम यहां देते हैं जिन की क्रियाओं को कार्यकुशल व्यक्ति से सीख लेना चाहिए। तदर्थ एकपादकन्दरासन, उत्थित द्विपादासन, शीर्षासन, चतुष्पादासन, मयूरासन आदि का अभ्यास लाभप्रद रहता है।

तक्रादि पाचन प्रयोग—

जैसा कि स्पष्ट भी किया है और निदान बताते समय भी लिखा मिलता है कि जठराग्नि की क्रिया को ठीक रहना इस व्याधि से बचा सकता है। अन्य आहार भी स्वस्थवृतानुसार सेवन करें परन्तु उस अर्श को नाश कर देने वाले तक्र को अवश्य ही प्रयोग में लाएं जो अर्श की उत्पत्ति के बाद उस को नष्ट कर देती है। तक्र कितनी लाभकारी वस्तु है इस बात को तो हम चिकित्सा के लिखने के बाद लिखे आहार विधान में विस्तार से बतायेंगे तो भी यहां तक्र की महिमा में एक कवि भी दो पंक्तियां उद्धृत कर रहे हैं। लिखा है—

"न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्,
न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं हिताय,
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥"

अतः यों तो इस भू लोक के अमृत का पान सभी को करना चाहिये तो भी यह ध्यान रहे कि अर्श से बचने के लिये यह बहुत ही उत्तम आहार होता है।

गणेश चिकित्सा—

इस क्रिया का नित्य प्रति प्रयोग करने वाला व्यक्ति अर्श से पीड़ित नहीं हो सकता। इसका विधान यह है कि शौचोपरांत अपनी तर्जनी अंगुली को गुदा में प्रवेश कर इधर उधर से सारा मल साफ कर लेना चाहिए। यह अंगुली गुदा के आकार की है। इसके प्रवेश के बाद पुनः थोड़ा मल त्याग होता है और इस प्रकार गुदा के भाग में थोड़ा भी मल नहीं रह सकता जो अर्शोत्पत्ति में कारण बन सके। अतः रोज ही इस क्रिया को प्रत्येक स्वस्थ पुरुष करे और अर्श से बचा रहे।

इस प्रकार इन ऊपर के नियमों को जानता हुआ सभी का पालन करते हुए एक स्वस्थ मनुष्य अपने को अर्श रोग के उपन्न होने से बचा सकता है और इस महा कष्टकर व्याधि के पाश में नहीं फंसता।

:: पृष्ठ २० का शेषांश ::

उपरोक्त दोनों योग रक्तस्राव की पुनरावृत्ति को रोकते हैं। साधारण रक्तस्रावनाशक हैं। इसके लिए निम्नलिखित औषधियों का भी प्रयोग करें-

कुटजावलेह, अग्निमुख लौह, चन्द्रप्रभा गुटिका, (भैषज्य रत्नावली) ये औषधि रक्तार्श के लिए उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त दोषज अर्श वर्णित भल्लातक योग का उपयोग दो बार रोज नागकेशर के चूर्ण एवं मधु से करना चाहिए। यक्ष्मा अधिकारोक्त शिलाजत्वादि लौह रक्त वृद्धि के लिए अति उत्तम योग है। रक्तपित्त रोगाधिकारोक्त महा पित्तान्तक रस भी इसमें अत्यन्त उपयोगी है।

—श्री कविराज लाला बदरीनारायण सेन
G. A. M. S.
मोतीझील, मुजफ्फरपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशमनात्मक चिकित्सा

चतुर्विध साधनोपाय—

"चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः ।
तद्यथा भैषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति ॥"—सु० चि० अ० ६

कह कर चार प्रकार के उपाय सुश्रुत में बताये हैं। इन चारों की प्रयोगावस्थाओं का भी वर्णन है—तदनुसार अल्प समय से उत्पन्न वातादि दोषों के लक्षण एवं उपद्रव अल्प हों—वे अर्श भैषज्य साध्य होती हैं। कोमल फूले हुए कठोर और जो कुछ ऊंचे हो गये हैं वे क्षार साध्य होते हैं। तीक्ष्ण, दृढ़, कठोर और मोटे मस्से अग्निकर्म साध्य हैं। पतली जड़ वाले, ऊंचे और क्लेदयुक्त मस्से शस्त्रकर्म साध्य हैं।

'अस्त्येतदभ्रितन्त्रेण धीमता दृष्ट कर्मणा ।
क्रियते त्रिविधं कर्म भ्रंशस्तत्र सुदारुणः ॥
पुंस्त्वोपघातः श्वयथुर्गुदे वेगविनिग्रहः ।
आध्मानं दारुणं शूलं व्यथा रक्तातिवर्तनम् ॥
पुनर्निरोहो रूढानां क्लेदो भ्रंशो गुदस्य च ।
मरणं वा भवेच्छीघ्रं शस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ॥
युक्त कर्म सुखोपायमल्पभ्रंशदारुणम् ।
तदर्शसां प्रवक्ष्यामि समूलना निवृत्तये ॥"
(च० चि० अ० १४)

अर्थात्—यह तीन प्रकार का कर्म (शस्त्र, क्षार, अग्नि) बहुत शास्त्र पारंगत, शस्त्रकर्म जिसने देखे हैं, बुद्धिमान वैद्य से किया जाता है। उसमें भूल करना अत्यन्त भयङ्कर होता है। शस्त्र, क्षार, अग्निकर्म में विभ्रम होने से पुंस्त्वनाश, गुदशोथ, मलादि वेगरोध, आध्मान, उदरशूल, पीड़ा, रक्त की अतिशय प्रवृत्ति, अर्शों की पुनरुत्पत्ति, भरे हुए अर्शों का क्लेद, गुद भ्रंश अथवा मृत्यु भी शीघ्र हो सकती है। अर्शों की समूल निवृत्ति के लिये जो चिकित्सा सुखसाध्य, अल्पभ्रंश करने वाली और अदारुण है वह मैं कहूंगा।

इसी प्रकार सुश्रुत में देखिए—

'क्षाराग्नि शस्त्र साध्यानान्तु विधानमुच्यमानम्।'

अर्थात्—अब क्षार, अग्नि और शस्त्र साध्य रोगों का विधान कहते हैं।

अतः ऊपर के दोनों वर्णन भिन्न भिन्न सम्प्रदाय वादियों के हैं। चरक काय चिकित्सा प्रधान ग्रंथ है अतः वह शल्य शास्त्र के विधान में अपनी सम्मति न दे कर केवल इतना ही संकेत कर रहा है कि ये तीनों कर्म कितनी सावधानी से हो सकते हैं—अन्यथा मृत्यु तक हो सकती है—अतः वह अपना अधिकार ही उपयोग में लाते हुए केवल औषध द्वारा चिकित्सा का ही वर्णन करता है जिसकी ऊपर लिखी विशेषतायें हैं। और दूसरी ओर सुश्रुत शल्य प्रधान ग्रंथ होने से क्षार, अग्नि शस्त्र का ही विधान बताता है। औषधि का विधान दूसरे सम्प्रदाय का होने से उनका अधिकार नहीं छीनता अतः हम चारों का ही विधिवत वर्णन करेंगे।

औषधोपचार—

'वातश्लेष्मोल्वणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसि तद्विदः।
प्रस्राबीणि तथार्द्राणि रक्तपित्तोल्वणानि च ॥'
—च० चि० अ० १४

कह कर चिकित्सा करते समय चरक ने अर्श के केवल दो ही रूप कर लिए हैं प्रथम शुष्कार्श और द्वितीय परिस्रावी। अतः इनका क्रमशः अलग अलग वर्णन करते हैं।

शुष्कार्श—

पिण्ड स्वेद—

चरक ने शोथ-शूलयुक्त स्तब्ध अर्श के रोगी को सर्व प्रथम स्वेदन करने की आज्ञा दी है। पिण्ड स्वेद करने को बताते समय चरक ने निम्न योग बताये हैं—वहां पर कहा है चित्रक, यवक्षार, बेल से सिद्ध तैल लगाकर निम्न वस्तुओं में से किसी का पिण्ड बनाकर स्वेद देवें—

(१) जौ, उड़द, कुलथी, पुलाक की पोटलियों से, (२) गाय, गधा, घोड़ा की मल पिण्डों से, (३) तिल कल्कों से, (४) भुसी से, (५) वच, सौंफ के पिण्डों से, (६) सक्तुपिण्डों से, (७) स्नेहयुक्त सुहाते गरम सूखी मूली के पिण्डों से, (८) सहजन मूलत्वक पिण्डों से, (९) रास्ना पिण्डों से एवं (१०) हाऊ बेर के पिण्डों से स्वेदन करें।

कुष्ठ से सिद्ध तैल से चुपड़ कर ईंट खुरासानी अजवायन या गाजर के शाकों से पिण्ड बनाकर स्वेदन करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषेक—

वासा आक, एरण्ड, बेल के पत्तों के क्वाथ से परिषेक करें। परिषेक कुम्भी, वर्षलिका अथवा पुनाठी में क्वाथ भरकर किया जाता है। इन यन्त्रों से उस क्वाथ को सीधे शरीरावयव पर डाला जाता है।

अवगाह—

मूली, हरड़, बहेड़ा, आवला, वांस, वरुण, अरणी, संहजन तथा अश्मन्तक के पत्तों को जल में उबाल कर भले प्रकार तेल से चुपड़े शूलयुक्त अर्श वाले का अवगाह करावें।

बेर के उत्क्वाथ में, गुनगुने सौवीरक तुषोदक में, बेल के काथ में, तक्र में, दधि मण्ड, खट्टी कांजी, या गोमूत्र में स्नेह भावित अवगाह करे।

(परिषेक, अवगाह का विधान लेखक की 'पञ्च कर्म विज्ञान' पृष्ठ ५५ पर देखें)

धूपन—

रोगी को दो ईंटों पर मल त्यागने की स्थिति में बिठा देवें। उसके नीचे अंगारे रख कर निम्न योगों में से किसी का चूर्ण डालकर धूपन देना चाहिए।

(१) काला सांप, सूअर, ऊंट, चमगादड़, बिलौटा इनकी वसा का अभ्यङ्ग देवें तथा धूपन करें।

(२) धनिया, बिडंग, देवदारू, जौ, घी, बडी कटेरी तथा अश्वगंधा के चूर्ण का।

(३) पीपल, तुलसी, घृत, सूअर और बैल के गोबर का।

(४) सत्तू और घी का।

(५) हाथी की लीद, राल तथा घृत का धूपन करना चाहिए। —चरक

प्रलेप—

अर्श पर लेप करने का विधान बहुत लाभदायक है। इन प्रलेपों से संचित हुआ दुष्ट रक्त निकल जाता है, कण्डु शांत हो जाती है। अर्शों का पातन भी हो जाता है। हम नीचे शास्त्रोक्त योग देते हैं—

(१) सेहुण्ड दूध हल्दी के चूर्ण में मिलाकर लेप करना चाहिए।

(२) हल्दी और पिप्पली को गाय के पित्ते में मिलाकर लेपन करें।

(३) सिरस के बीज, कूठ, पिप्पलियां, सेंधा नमक, गुड़, आक का दूध, सेहुण्ड का दूध तथा त्रिफला का प्रलेप करें।

(४) पिप्पली, चित्रक, निशोथ काली, किराव, मदनफल के बीज, मुर्गे की बीट, हल्दी, गुड़ मिला कर प्रलेप करें।

(५) दन्ती, काली निशोथ, तूतिया, कबूतर की बीट, गुड़, हाथी की हड्डी, नीम तथा भिलावे का लेपन करें।

(६) ऊंट की वसायुक्त अथवा मगर की वसायुक्त हरताल का गुनगुना लेप करें।

(७) आक का दूध, सेहुण्ड का तना, कड़वी लौकी, करंज के पत्ते और बकरे के मूत्र का लेपन करना चाहिए। —चरक से।

(८) रजनी लेप—हल्दी के चूर्ण को थूहर के दूध में मिला कर लेप करें।

(९) पिप्पल्यादि लेप—पीपल, सैंधव, कूठ और सिरस के बीज के चूर्ण को थूहर के अथवा आक के दूध में पीस कर लेप करें।

(१०) हरिद्रादि लेप—हल्दी और कड़वी तोरई का चूर्ण कर के सरसों के तैल में मिला कर लेप करें।

—भावप्रकाश से

रक्तावसेचन—

ऊपर लिखी सभी क्रियाओं को कर लेने के बाद दुष्ट रक्त को निकालने के लिए रक्तावसेचन का विधान बताया है। रक्तदुष्टि होने पर शीत उष्ण स्निग्ध, रूक्ष उपचारों से व्याधि शांत नहीं होती है—अतः रक्तावसेचन कराना चाहिए। जोंक लगा कर, सूईयों से या शस्त्र आदि से रक्त निकाला जाए। दूषित रक्त के निकल जाने पर शूल, शोथ आदि की निवृत्ति हो जाती है। सुश्रुत सूत्र अ. १३ में रक्तावसेचन का विधान देखना चाहिए। यदि अर्श कठोर हों तो अभ्यङ्ग आदि कर उन्हें कोमल कर लेना चाहिए फिर रक्तावसेचन हो जाएगा।

औषध—

गुड़ सहित हरीतकी भोजन पूर्व खिलावें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिफला के रस में निशोथ चूर्ण मिलाकर पिलावें। गौमूत्र में एक रात भिगोई गई हरीतकी का प्रयोग गुड़ से करावें। तक्र के साथ हरड़ या त्रिफला का सेवन करावें। सोंठ, चित्रक सीधु मिलाकर प्रयोग करें। जीरे के साथ चित्रक तथा चव्य मिलाकर सीधु को देवें। हाऊवेर, पाठा, कालानमक सुरा के साथ पिलावें। त्र्युषणादि चूर्ण का प्रयोग करें। कैथ और बेल, चित्रक और भल्लातक अथवा बेल, सोंठ और अजवायन के साथ तक्रप्रधान तर्पण देवें।

—च. चि. अ. १४

तक्र प्रयोग–

शुष्कार्श की चिकित्सा लिखते समय तक्र प्रयोग का वर्णन न करना चिकित्सा विषय की अपूर्णता है। वातार्श में स्नेह सहित तथा कफार्श में स्नेहरहित तक्र का प्रयोग कराना चाहिए। चरक ने स्पष्ट कहा है—

"वातश्लेष्मार्शसां तक्रात् परं नास्तीह भेषजम्।
तत् प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा॥"

—च. चि. अ० १४

तक्र प्रयोग का विधान बताते समय दोष, बल तथा काल का विचार कर यथाविधि सात दिन, पन्द्रह दिन अथवा अधिक से अधिक एक मास तक तक्र प्रयोग कराने का विधान चरक ने बताया है। जिस रोगी की पाचकाग्नि मन्द पड़ गई हो उसको केवल तक्र पर ही रखना चाहिए। अन्न का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। कुछ अग्नि अपेक्षाकृत तीक्ष्ण होने पर प्रातःकाल तक्र और सायंकाल लाजा से सत्तुओं का बनाया गया अवलेह देना चाहिए। अपेक्षाकृत अग्नि के और तीव्र होने पर तक्र के साथ घृतादि स्नेह एवं भात खाने को देवें। भोजनोपरांत तृष्णा की शान्ति के लिये तक्र का ही प्रयोग करना चाहिये। तक्र के साथ मिलाकर यूष अथवा मांस रस का भोजन करावें।

इस प्रकार तक्र का जो प्रयोग चरक ने बताया है वह एक तक्र कल्प की रूप रेखा है। इसी से आचार्य आगे कहते हैं कि तक्र का प्रयोग एकदम बन्द न किया जाए। शनैः शनैः थोड़ा थोड़ा कम करते हुये छोड़ना चाहिए। यथाविधि किये गये इस कल्प से रोगी शक्तियुक्त, तीव्राग्नि, पुष्ट तथा शुभ्रवर्ण युक्त हो जाता है तथा इसके द्वारा ठीक हुए अर्श की पुनः उत्पत्ति की सम्भावना नहींरहती।

तक्र के प्रयोग विधान के साथ ही साथ चरक में लिखे तक्रारिष्ट के महत्व को भी कम न समझना चाहिए। इस दीपक, अनुलोमक अरिष्ट के प्रयोग से अर्श में लाभ होता है। तक्र को विशेष औषध साधित करने के लिये चरक में बताया गया है कि चित्रक मूल त्वक को पीस कर घड़े में लेप करें और उस लिप्त घड़े में दूध को जमा कर दही तैयार करें। इस दही का बना तक्र इस रोग के लिये विशेष उपयोगी है।

स्नेह—

शुष्कार्श से पीड़ित उन रोगियों को जिनको अत्यन्त गाढ़ा पुरीष निकलता है स्नेहन चिकिसा देनी पड़ती है। चरक में इसके लिये निम्न स्नेहों का वर्णन किया है–

१—पिप्पल्यादि घृत (चरक चि. अ. १४)
२—चव्यादि घृत („ „)
३—नागरादि घृत („ „)

इनके साथ ही साथ अनुवासन करने को भी चरक ने कहा है। वहां लिखा है—

"उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः।
विलोमवाताः शूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम्॥"

—च. चि. अ. १४

और इन लक्षणों से युक्त रोगी को पिप्पल्यानुवासन के प्रयोग के लिये चरक में लिखा है।

(अनुवासन के विषय में विशेष वर्णन लेखक की 'पंचकर्म विज्ञान' पृष्ठ १५१ पर देखें)

शास्त्रोक्त योग–

शुष्कार्श की चिकित्सा करते समय जो प्रसिद्ध शास्त्रोक्त योग हैं उनके नाम मात्र हम नीचे देते हैं–

१. अभयारिष्ट (चरक अर्श)
२. दन्त्यारिष्ट „
३. फलारिष्ट „

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. शर्करासव (चरक अर्श)
५. कनकारिष्ट ,,
६. समशर्कर चूर्ण (भावप्रकाश अर्श)
७. विजय चूर्ण ,,
८. लघु सूरण मोदक ,,
९. वृहत्सूरण मोदक ,,
१०. श्री बाहुशाल गुड़ ,,
११. तिलादि मोदक ,,
१२. सगुड़ाभया ,,
१३. शङ्कर लोह ,,
१४. हिंग्वादि चूर्ण (सु० चि०)
१५. काकांयन मोदक (भै० र०)

इसके अतिरिक्त रसोषधियों का भी प्रयोग अर्श की चिकित्सा में किया जाता है। इन सभी योगों के द्रव्य एवं गुण आदि का वर्णन न करने का यह कारण है कि लेख का आकार बहुत बढ़ जाएगा। अतः विद्वान मूल ग्रन्थ में ही अवलोकन करें।

पथ्य—

आहार पर विशेष ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है जो कि चिकित्सक अवस्था विशेष में स्वयं ही निर्णय कर सकता है। तो भी मलावरोध एवं वातावरोध में निम्न आहार का निर्देश शास्त्र में किया है—

(१) मोर, तीतर, लावा, मुर्गा और बटेर का मांस रस अम्लीकृत (अनारादि से) करके आहारार्थ देवें।

(२) निशोथ, दन्ती, पलाश, चांगेरी और चित्रक के पत्तों को घृत एवं तैल में भूनकर दही में मिलाकर खाने को देवें।

(३) पोई का शाक, चौलाई, शतावर, बथुआ, ब्राह्मी, यवशाक, मकोय, मानकन्द, कचूर शलगम, गाजर, लाल लहसुन आदि शाकों को घृत एवं तैल में भूनकर दही के साथ देवें।

(४) अनुपान मदिरा, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, दही का पानी, षडांगनीय जल पीने को देना चाहिये।

ऊपर जितनी औषधि, तक्र, शास्त्रोक्त योग एवं पथ्य के विषय में बातें लिखी हैं उनका आधार केवल एक ही है कि अर्श के रोगी की पाचकाग्नि को तीव्र रक्खा जाये। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो इन सभी योगों में मुख्यरूप से चित्रक, पिप्पलीमूल, पाठा, बेल, कालीमिर्च, गुड़, यवक्षार, सोंठ, चव्य, हाऊबेर, अजवायन, हरीतकी एवं निशोथ का विशेष भाग है। यह सब द्रव्य वात एवं मल विबन्धनाशक हैं। अग्नि को दीप्त करने वाले हैं। अग्नि दीप्त होना ही अर्श का ठीक होना है जैसा कि लिखा भी है—

"तस्मदाग्निरबलं त्र्यमेषु त्रिषु विशेषतः॥"

अर्थात्—तीनों में (अर्श, अतिसार एवं ग्रहणी) विशेष रूप से अग्नि बल की रक्षा होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के आधार पर ही सारी उपर्युक्त चिकित्सा का वर्णन है।

पाश्चात्य मतानुसार—

शुष्कार्श की चिकित्सा के विषय में ऐलोपैथी के ग्रन्थों का अवलोकन करें तो ऐसा लगता है कि उनकी पुस्तकों में चरक द्वारा प्रतिपादित विषय को ज्यों का त्यों रख दिया है। यों तो आरम्भ में लिखे चारों उपचार पाश्चात्य शास्त्रों में वर्णित हैं और वह ठीक आयुर्वेदवत् ही हैं जिनका वर्णन हम प्रत्येक के साथ करेंगे। यहां शुष्कार्श की चिकित्सा में देखिये आयुर्वेदानुसार स्वेद अवगाह आदि का जो विधान हम बता आए हैं वही विधान शोथयुक्त अर्श के लिये सैबल साहब ने लिखा है—

"Inflamed piles are very painfull and are best treated by warm hip baths, frequent bathing, warm fomentation with opium-belladona and cocaine."

(System of Clinical Medicines)

इसी प्रकार जितना भी प्रलेप आदि का वर्णन हम कर आये हैं उसी प्रकार इन पुस्तकों में भी स्थानिक द्रव्यों (Local ayplication) का विधान है। इन सभी औषधियों के गुण संग्राही और संज्ञानाशक (Astriogents and Anodynes) होती हैं। इन योगों से शूल तथा शोथ तो कम हो जाती है परन्तु आयुर्वेदोक्त लेपवत अर्शों का पातन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता। हैडंसा (Hedensa), एनाथीना (Anathena), रेक्टोसीरोल (Recto-serol) आदि पेटेन्ट औषधियों के अतिरिक्त बैलाडोना, मार्फिन, आइडोफार्म आदि द्रव्यों की वर्तियों का प्रयोग भी किया जाता है। यह सभी एक विशेष वस्तिनेत्र (nozzle) द्वारा प्रयोग की जाती हैं।

स्थानिक लेप के अतिरिक्त औषधोपचार का सिद्धान्त भी लगभग एक समान ही है। यह चिकित्सक कब्ज दूर करने पर विशेष जोर देते हैं। हां एक बात है कि आयुर्वेदिक अर्शनाशक जिन औषधि योगों का चरक आदि में वर्णन है उस प्रकार की औषधियों के विषय में अभी तक आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों (ऐलोपैथों) के पास कुछ भी नहीं है। एक भी मुख द्वारा सेवनीय ऐसा द्रव्य नहीं जिसे कहा जा सके कि इसका प्रभाव शुष्कार्श पर होता है।

अपथ्य —

वाताश के रोगी को मैथुन, रूक्ष भोजन, कसैली वस्तुएं, श्रम, मद्यपान, दाहकारक द्रव्य, जल में तैर कर स्नान, अत्यन्त सामने की वायु एवं अति गरिष्ठ पदार्थों का भोजन छोड़ देना चाहिए।

परिस्रावी अर्श —

परिस्राविक रक्त की उपेक्षा—

चरक ने शुष्कार्श और परिस्रावी अर्श दो प्रकार कर रखे हैं। उनमें से शुष्कार्श का वर्णन तो हमने कर दिया अब दूसरे का वर्णन कर रहे हैं। सर्व प्रथम जो नियम आचार्य ने बताया है वह है दूषित रक्त के स्राव की उपेक्षा करना। चरक में लिखा है-"निदान, लक्षण, कालवेत्ता, बल, वर्ण तथा रक्तवेत्ता वैद्य जब तक रोगी गम्भीरावस्था को न प्राप्त हो जाये तब तक दूषित रक्त के स्राव की उपेक्षा करे। दुष्ट रक्त की स्रुति के पश्चात् अग्नि संदीपन, रक्तसंग्रहण तथा दोष पाचन के लिये तिक्त द्रव्यों से उपचार करे।"

परिस्रावी अर्श में बहते हुये रक्त को देख कर उसे एक बार बंद करने वाले चिकित्सकों के लिये यह नियम ध्यान देने योग्य हैं। यदि इस दुष्टरक्त का अवरोध किया जाय तो अवश्य ही यह अनेक रोग उत्पादक होगा। इस विषय में आचार्य के शब्दों को देखिये-

'आरम्भ में जो अर्शों से निकलते हुये अत्यन्त दूषित रक्त को रोकता है तो वह रुका हुआ रक्त अनेक रोगों को यथा रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा, अग्निमांद्य, अरोचक, कामला, शोथ, गुदसंश्रित शूल, वंक्षण संश्रितशूल, कण्डू, व्रण, कोठ, पिडिका, कुष्ठ, पाण्डु नामक रोग, वातमूत्र पुरीष का विबंध, शिरःशूल, स्तैमित्यम्, गुरुता तथा अन्य रक्तजन्य विकार उत्पन्न करता है। अतः दुष्ट रक्त के निकल जाने के बाद रक्त स्तम्भन करना चाहिये।"

चिकित्सा की दृष्टि से चरक ने परिस्रावी अर्श का अनुबन्ध वात से एवं कफ से बताया है। यदि परिस्रावी अर्श का वातानुबन्ध हो तो स्निग्ध शीतोपचार करना चाहिये। एतदर्थ स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन का प्रयोग हितकर कहा गया है। यदि कफानुबन्ध रहे तो रूक्ष शीतोपचार करना चाहिये। रक्त स्तम्भनार्थ कुछ योग नीचे लिखते हैं-

१. कुटजत्वक क्वाथ शुण्ठी के साथ
२. दाडिमत्वक ,, ,, ,,
३. चन्दन का ,, ,, ,,
४. चंदन चिरायता दुरालभा का क्वाथ शुण्ठी के साथ
५ दारुहल्दी, खस और नींम का क्वाथ शुण्ठी के साथ
६. कुटजत्वक का क्वाथ रसौत के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. इन्द्र जौ रसौत मधु में मिलाकर तण्डुलोदक के साथ

८. कुटजादि रसक्रिया अजा दूध से

९. नीलोफर, मजीठ, मोचरस, चंदन, तिल, लोध्र, बकरी के दूध से पीस कर उसी के दूध से शाली भात के साथ खावे।

१०. बथुआ के साथ बकरी का दूध तथा जांगल पशु पक्षियों का मांस रस खटाई के साथ प्रयोग करना चाहिये।

सशूल रक्तस्राव पर-

जब रक्तस्राव के साथ ही साथ शूल भी होती हो तो चरक ने निम्न योग बताये हैं—

१. पाठादि चूर्ण

२. दारुहल्दी, चिरायता, मोथा, दुरालभा साधित घृत।

३. इद्रजौ, कुटजत्वक्, नागकेशर, नीलोफर, लोध के पुष्पों से भावित घृत।

४. अनार रस तथा यवक्षार से भावित घृत।

५. चक्रिका, नागकेशर, नीलोफर, बला और पृश्नपर्णी से सिद्ध खीलों की पेया।

६. सुगंधवाला, बेल, सौंठ के क्वाथ से साधित मक्खन सहित पेया।

७. अजा दुग्ध से निकला मक्खन, अजामांस, शालि और सांठी का भात और सुरामण्ड का प्रयोग करना चाहिए।

८. तक्र से सिद्ध प्याज का शाक, बेर की खटाई से सिद्ध पोई शाक, मसूर की दाल तथा खट्टा मठा।

९. मुर्गा, मोर, तीतर, ऊंट एवं लोमड़ी के मांस रस से भावित शालिभात।

१०. ताजा घृत, बकरे का मांस, शाली के चावल, ताजा सुरामण्ड तथा ताजी शराब का प्रयोग रक्तस्राव एवं शूलनाशक है।

परिषेक-

अत्यधिक रक्त प्रवृति को रोकने के लिए आचार्य ने बाह्योपचार बताया है। परिषेक का विधान बताते समय वहां बताया गया है कि-पञ्चकल्क, मुलहठी, बेर की छाल, गूलर, धव, पटोलपत्र, वासा, अर्जुन एवं धमासा के क्वाथ का प्रयोग करें। इनके क्वाथ का प्रयोग अत्यधिक उष्णता रहने तक न कर के शीतल होने पर करना चाहिए। सुखोष्ण दूध, घृत तथा तैल के द्वारा परिषेक करने को आचार्य ने कहा है।

अवगाह--

शीतल तैल से अभ्यङ्ग किये रोगी को शीतल जल, ईख के रस में, मुलहठी और वेतस के शीतल हुए क्वाथ में अवगाह करना चाहिए। मुलहठी, कमलनाल, पद्माख, चन्दन, कुश, कांस के शीतल कषाय में अवगाह करें।

शिशिर धारा---

शिशिर जल (बर्फ का पानी) की धारा का प्रयोग रक्त को रोकता है। आचार्य ने बताया है कि घी में मिश्री मिलाकर उपस्थेन्द्रिय, गुद तथा त्रिक पर लेपन करें फिर यह धारा डालें!

लेपन-

कुछ ऐसे द्रव्य बताए गए हैं जिनका लेपन करने से रक्त का अवरोध होता है। उनके विषय में बताते हुए चरक में बताया गया है, कि मजीठ एवं मुलहठी युक्त घृत का, रसौत मिलित घृत का, शहद और घी का, चन्दन सहित कमल नाल और घृत का लेप करें। शतधौत घृत एवं सहस्राधौत घृत का प्रयोग लेपनार्थ किया जाता है।

पिच्छावस्ति—

चरक ने रक्तार्श के लिए पिच्छावस्ति का प्रयोग करना बताया है। जवासा, कुश, कास आदि औषधियां बताई है जिनको घृत, तैल एवं मधु आदि के साथ संयोग पिच्छाबस्ति दी जाती है। इसका बहुत महत्व है। पिच्छा बस्ति का विधान देखने के लिए लेखक की 'पंचकर्म विज्ञान' पुस्तक देखिए।

परिस्रावी अर्श की चिकित्सा समाप्त करने से पूर्व हम कुछ शास्त्रोक्त योग देना चाहते हैं।

शास्त्रोक्तयोग—

१. कुटजावलेह (अ. हृ.)

२. चक्रेश्वर रस (र० सा० स०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. चंद्रप्रभावटी (र० सा० स०)
४. बोल पर्पटी
५. लाक्षादि प्रयोग

इस प्रकार औषधोपचार का विस्तार से वर्णन किया है। यदि चाहें तो केवल औषधोपचार पर ही एक ग्रंथ बन जाए परन्तु यहां इससे अधिक विस्तार अपेक्षित नहीं। अवशेष तीनों प्रकार के उपचारों का वर्णन करते हैं।

क्षार प्रयोग--

उन अर्शों पर जिनको पीछे क्षार-साध्य कह आये हैं क्षार के द्वारा ठीक किया जाता है। क्षार के कर्म में हम प्रतिसारिणीय क्षारों का प्रयोग करते हैं। नियम यह है कि वातकफजन्य शुष्कार्शों में तीक्ष्ण क्षार का प्रयोग करें और परिस्रावी अर्श में मृदु क्षारों का प्रयोग करें। क्षार का प्रयोग विधान दो प्रकार का है। अतः उनको अलग २ लिखते हैं—
१. क्षार प्रलेप। २. क्षार सूत्र।

क्षार प्रलेप--

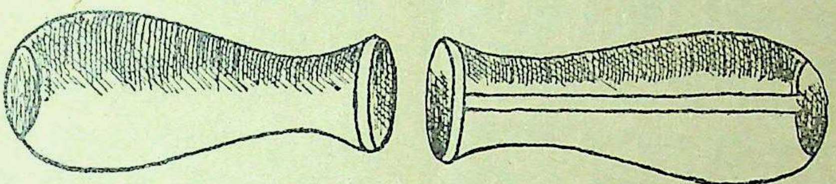

दर्शन के लिये क्षार कर्म के लिये

अर्शो यन्त्र का सम्भावित रूप

क्षार के प्रलेप का विधान बताते हुए सुश्रुत में विशेष अवस्था में लेटने का विधान बताया है और यन्त्र विशेष द्वारा गुदा में अर्शों को देखने के लिए कहा गया है। इससे पूर्व के कर्म के विषय में लिखा है—"बलवान रोगी को जो अर्श रोग से पीड़ित है उसे स्नेहन और स्वेदन के अनन्तर वात जनित वेदना वृद्धि की शांति के लिये चिकनाई युक्त गर्म और थोड़ा पतला भोजन करावें। अब साफ और

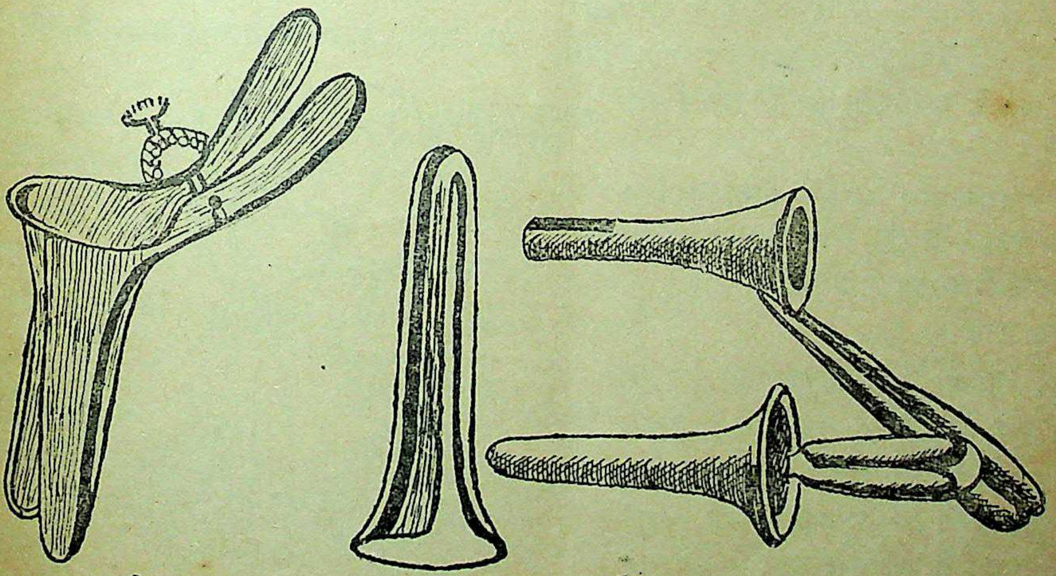

विभिन्न प्रकार के प्रोक्टसकोप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान भूमि पर तख्त या खाट बिछा कर लिटावें। ध्यान रहे कि उस दिन मेह बादल कुछ न हो। दूसरे पुरुष की गोद में उसका सिर रखकर सूर्य की ओर अभिमुख उसकी गुदा करावें। कमर कुछ ऊंची रहे और अगला धड़ कुछ नीचा रहे। अब उसे कपड़े की पट्टी आदि से बांध देवें और परिचारकों के द्वारा पकड़ कर रखवावें ताकि वह हिल न सके।"

ऐसी अवस्था के बाद यन्त्र द्वारा जो अर्श दृष्टि लभ्य है उस अर्श पर क्षार प्रलेप के लिए कहा गया हैं। आचार्य ने सर्व प्रथम दाहिनी ओर के अर्श पर क्षार लगावें। इसके व्रण के रोपण के बाद लगभग एक सप्ताह बाद बाईं ओर के अर्श पर और इसके बाद पीठ की तरफ के तथा अन्त में आगे की तरफ के अर्श पर लेप करने का विधान है। होता ऐसा है कि योग्य अर्श को कूर्च अथवा शलाका से उठा कर रूई से स्वच्छ कर लिया जाता है और क्षार लेपन किया जाता है। लगभग आधा मिनट तक लगा रहने के बाद क्षार को पोंछ दिया जाता है। रोगी एवं व्याधि के बलानुसार पुनः ऐसा ही किया जाता है जब तक कि अर्श पके जामुन के रंग के, दबे हुए एवं थोड़े झुके हुए न हो जायें। ऐसी अवस्था में अर्शों को धान्याम्ल, मस्तु, शुक्ति, बिजौरारस आदि से धो डाला जाता है। अब उस स्थान पर घृत में मुलहठी लगा कर जलन शान्ति के लिए लेपन किया जाता है। इतना सब विधान कर के अर्शोयन्त्र को निकाल लिया जाता है।

क्षार द्वारा दग्ध सम्यक् होना चाहिए अन्यथा उपद्रव हो जाते हैं। हम यहां सम्यक् दग्ध आदि के लक्षण बताते हैं।

सम्यक् दग्ध —

पूर्व लिखित पके जामुन के फल के समान झुके हुए एवं दबे हुए होंगे। दोषानुसार बताते हुए वर्ण अलग अलग प्रकार के बताते हुए लिखा है—वातार्श में पक्व जामुनवत, पित्तार्श में मृग और मयूर के कंठ वत एवं कफार्श में वृहती पुष्प के वर्णवत होता है। साथ ही साथ वातानुलोमन एवं पाचन के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

हीनदग्ध —

हीन दग्ध में अर्श का वर्ण कृष्ण पड़ जाता है। व्रण का रोपण नहीं होता, कण्डु, वायु की विपरीतता एवं इन्द्रियों की अप्रसन्नता रहती है। तथा व्याधि ज्यों की त्यों बनी रहती है।

अतिदग्ध —

यदि अधिक दग्ध हो गया हो तो गुदा में जलन, चिरमिराहट, मूर्च्छा, ताप, तृष्णा, और अधिक रक्तस्रावजन्य उपद्रव हो जाते हैं।

क्षार सूत्र—

क्षार सूत्र बनाने का विधान बताते हुए लिखा है कि कपास के सूत्र को समभाग मिले थूहर के दूध एवं हरिद्राचूर्ण की इक्कीस भावनायें दें। सूख जाने पर प्रयोग करें।

इसका प्रयोग करते समय भी पूर्व लिखित पूर्व कर्म करा अर्शोयन्त्र डाल कर अभिप्रेत अर्श की जड़ को उंगुली से उठा कर इस क्षार सूत्र को बांध दिया जाता है। हर तीसरे दिन नया क्षार सूत्र बांध देना चाहिए। प्रायः १५ दिन में वह अर्श कट कर गिर जाता है। कभी कभी एक मास भी लग जाता है। क्षार सूत्र बांधने से रक्त उस अर्श में रहने से वह सूज जाता है और यदि

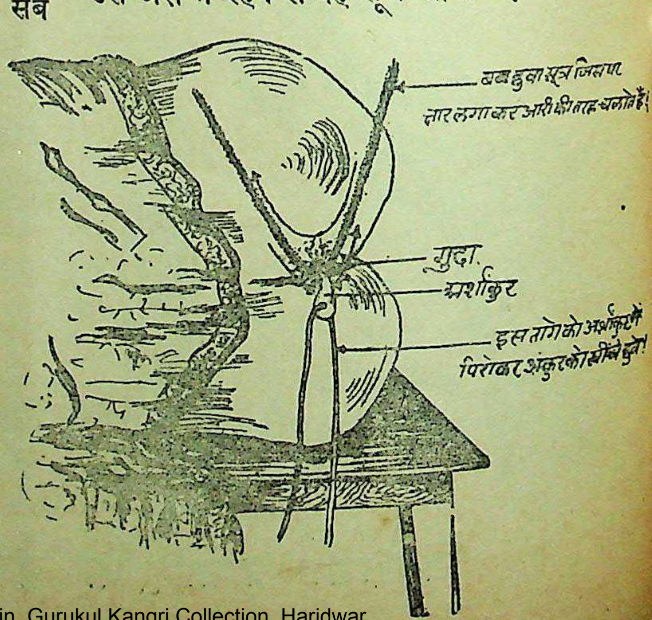

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब्ज रहा तो वह अतिकष्टकर होता है यों तो थोड़ा बहुत दर्द वैसे इस सूत्र के बांधने पर होता ही है तो भी मृदुरेचन देते रहना चाहिए।

जब अर्श गिर जाय तब प्रलेपवत घृत मुलहठी लेपन एवं अन्य व्रण रोपण कार्य करना चाहिए।

पाश्चात्य मत—

एलोपैथ भी अर्श चिकित्सा में इसी सिद्धान्त पर चलते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार हम पाते हैं कि क्षार आदि का लेपन आदि न करके इंजेक्शन द्वारा औषधि को मस्से में पहुंचाते हैं। उस सूचिवेध विधि का विशेष विस्तार तो हमें अपेक्षित नहीं तो भी हम उस विषय में कुछ जानकारी अवश्य देना चाहते हैं।

एतर्थ अर्श सूचीवेध यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इनके आकार ५ एवं १० सी. सी. के होते हैं। मुख्यरूप से जो द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं उनमें एसिड कार्बोलिक ग्लिसरीन में मिलाकर या बादाम के तैल में मिलाकर किया जाता है। इसमें भी सिद्धांत काम करता है चाहे वह द्रव्य का लेपन करके न करते हों तो भी तत्सम द्रव्य को मस्से के अन्दर प्रवेश करते हैं। साथ ही साथ सूत्र क्रिया का भी प्रयोग किया जाता है, चाहे वह आयुर्वेदज्ञ क्षार सूत्र न हो। होता यह है कि चिमटी से अर्श को पकड़कर उसकी श्लेष्मिक कलाको हटा कर केटगट से बांध देते हैं।

वास्तव में देखा जाये तो आयुर्वेदोक्त क्षार कर्म पर आधारित कर्म ही पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में वर्णित है, जिन सबका प्रयोजन इस अर्श में सिरावरोध पैदा करना है। जब रक्त ही वहां तक नहीं आयेगा तो फिर वह अपने आप मृत हो नष्ट हो जाएगी।

अग्निकर्म -

अर्श चिकित्सा में अग्निकर्म का प्रयोग औषधोपचार एवं क्षार प्रयोग (इन्जेक्शन) आदि की अपेक्षा बहुत कम होता है तो भी अर्श की चिकित्सा में इसका विशेष महत्व है अतः इसका वर्णन करना आवश्यक है। अग्निकर्म के महत्व को बताते हुये लिखा है कि अन्य औषध क्षार आदि से भी जिन अर्शों का नाश नहीं हो सकता उनको अग्नि कर्म से किया गया उपचार लाभ करता है। अग्निकर्म से जो अर्श ठीक हो जाते हैं वह पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं। इस कर्म के करते समय रक्त स्राव भी नहीं होता और न पूयोत्पत्ति की ही सम्भावना रहती है। अतः अन्य उपचारों की अपेक्षा यह विशेष महत्वपूर्ण है।

अग्निकर्म किस अवस्था के अर्शों के लिए लाभप्रद है यह पीछे बता आये हैं। वह अर्श जो कठोर मोटी मूठ वाले, स्थिर और कर्कश होते हैं वह अग्निकर्म द्वारा साध्य होते हैं।

त्रिविध कर्म—

अग्निकर्म में पूर्व कर्म, प्रधानकर्म और पश्चात् कर्म का वर्णन करना होगा। पूर्व कर्म में क्षारवत् ही शोधन आदि कराकर अर्श यन्त्र द्वारा मस्से को दृष्टिलम्भ कर लिया जाता है। रोगी विशेष अवस्था में लिटा लिया जाता है। उस रोगी को हिलने न दिया जाए एतद् भी प्रबन्ध किया जाता है।

प्रधान कर्म में अग्निकर्म योग्य अर्श शस्त्र द्वारा छेदन करके लौह जाम्बौष्ठ यंत्र विशेष के द्वारा दहन कर दिया जाता है। यह यन्त्र अंगा में लाल तपा हुआ होना चाहिये। सम्यक् दग्ध के चिह्न देखकर अर्थात् श्याम वर्ण, उभार एवं रक्तस्रावावरोध होने पर दहन सम्यक् समझना चाहिए।

पश्चात् कर्म में अग्नि के द्वारा दग्ध हुये अर्श के व्रण को भरने के लिये और वेदना तथा दाह की शांति के लिये मधु और घृत का अभ्यंग करना चाहिये। मुलहठी एवं शालिमूलादि का लेप लाभ करता है।

दग्ध की अवस्थाओं का ज्ञान क्षारवत ही समझना चाहिये। हीन दग्ध और अतिदग्ध होना वास्तव में ही रोगी के लिये अहितकर है।

पाश्चात्य मत—

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के ज्ञाता चिकित्सक भी इस कर्म को किसी न किसी रूप में करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वास्तविक दहन (actual) अथवा विद्युत दहन का प्रयोग करते हैं। इनका सिद्धान्त भी ठीक आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार ही है कि उस स्थान पर फाइब्रस कोष पैदा किये जायें ताकि वह संकुचित रहे और अर्श का रूप उन सिराओं का न बने।

शस्त्रकर्म--

आयुर्वेद में अर्श चिकित्सा का जो चतुर्थ उपचार है वह है शस्त्र कर्म। पूर्ववर्णित पतले मूल वाले, क्लेदयुक्त और उठे हुये अर्शों को शस्त्र साध्य कहा है परन्तु किसी प्रकार का विस्तृत विधान सुश्रुत में नहीं लिखा कि किस प्रकार से किया जाये। इसका एक मात्र कारण यह लगता है कि शस्त्र के छेदन भेदन आदि कर्मों का आचार्य ने दूसरे अध्यायों में विस्तार से वर्णन किया है अतः इस अर्श के प्रसंग में उनकी पुनरावृति करना शास्त्र की दृष्टि से उचित नहीं, इसलिये केवल शल्यकर्म का निर्देश कर दिया है।

आधुनिक समय में भी अर्श का आप्रेशन किया जाता है। इसके लिये जो विधान है उसका नाम ह्वाइट हैड विधि (Whitehead's method) है। इस विधान के द्वारा आज भी शल्यकर्म किसी न किसी रूप में चल ही रहा है।

उपसंहार--

अतः हम पाते हैं कि अर्श की चिकित्सा का औषधादि चार प्रकार का उपचार बताकर आयुर्वेद ने इस महाकष्टकर व्याधि से छुटकारा पाने के लिए बहुत ही उपादेय वर्णन किया है। जितनी फलप्रद औषधि चिकित्सा को पाने के लिये अभी कई दशक तक अनुसंधान करने की आवश्यकता है। सुश्रुत वर्णित क्षारकर्म आदि की तुलना आधुनिक चिकित्सा में वर्णित सूचीवेध भी नहीं कर सकते तो भी हम इतना मान सकते हैं कि उस चिकित्सा सिद्धांतों का प्रतिबिम्ब मात्र आधुनिक चिकित्सा शास्त्रों में भी भासित होता है।

—श्री शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य
५ देवनगर, करौलबाग, नई दिल्ली

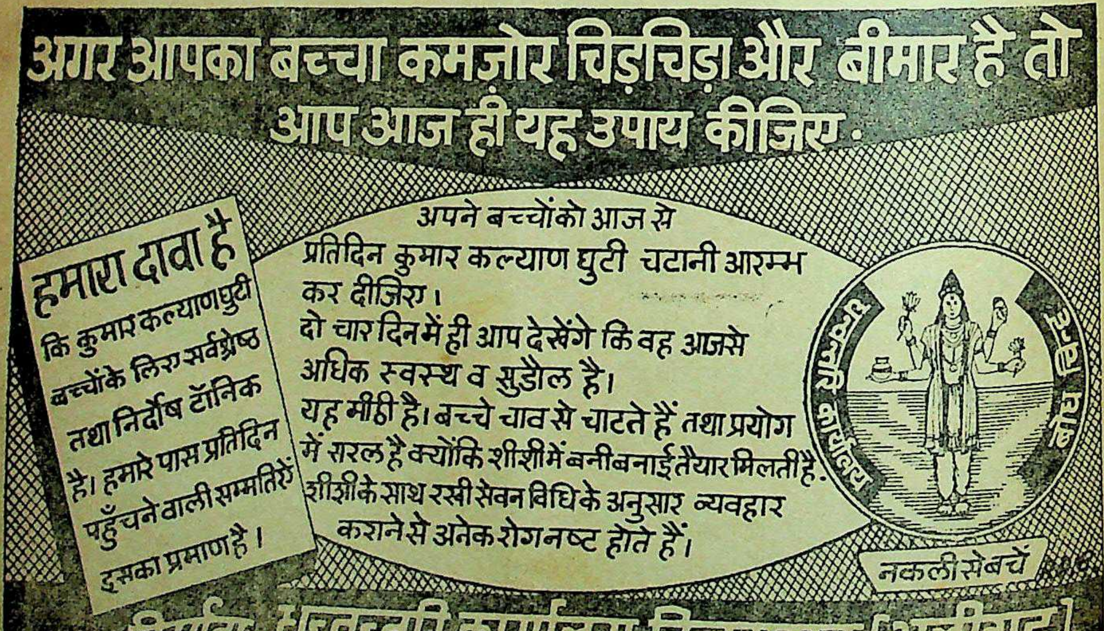

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाबी, लाल, सफेद, ताम्रवर्णी—

चमड़ी के दाग़

आयुर्वेदाचार्य डा० महावीर प्रसाद जैन बी. आई. एम. एस.

सफेद दाग को श्वित्र, धवलकुष्ठ, कच्चा कोढ़, सफेद दाग, फूल, फूलबहरी, वर्तमुन्तशिर चित्री, वगातिपलिल, पाटराडाग, ल्यूकोडर्मा (*Lukodermah or Leucoderma*) ह्वाइट पेचेज आफ दी स्कीन (*white Patches of the skin*) ल्यूकोडरमिया (*Leucodermia*) विटिलिगो (*Vitiligo or Vitil-i-go*) और मिलोनोडरमिया (*Melanodermia*) आदि नामों से पुकारा जाता है।

यह स्त्री पुरुषों की किसी भी उम्र में बाल युवावस्था एवं वृद्धावस्था में भी देखा जाता है। शरीर के अनेक हिस्सों पर सफेद रंग के दाग पाये जाते हैं जो कि बिल्कुल छोटे बिन्दु के आकार के हो सकते हैं। अथवा शरीर के अनेक अवयवों पर आकार में विभिन्न बड़े बड़े दाग भी हो सकते हैं। दागों के किनारे अनियमित (*Irregular*) होते हैं। जिनके आसपास की त्वचा अति श्याम वर्ण की होजाती है।

रुग्ण व्यक्ति का शरीर अत्यन्त सुन्दर व दर्शनीय होते हुए भी श्वित्र कुष्ठ का जरा सा भी दाग पड़ जाने से वही व्यक्ति घृणित दृष्टिगोचर होता है। इसका लेख लौकिक साहित्य काव्यों में भी निम्न प्रकार मिलता है—

तदल्पमपिनोपेच्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमथि श्वित्रिण केन दुर्भगम्॥''

यूनानी मत के अनुसार—

यह खाल की एक प्रकार की गाढ़ी सफेदी होती है जो खाल की ऊपरी तह पर पैदा होती है। कभी एक ही अंग में वा कभी कभी तो सारे शरीर पर फैल जाती है।

श्वित्र को बाह्य कुष्ठ के नाम से भी कहा है। इसीलिए इस रोग की उत्पत्ति में कारण कुष्ठ रोग की उत्पत्ति के कारण हैं। जैसा कि 'आचार्य श्री वाग्भट्ट ने' अष्टांगहृदयम् में कहा भी है।

कुष्ठैक सम्भवं श्वित्रं। —अ० हृ० नि० स्था०

पूर्वजन्म के किए हुए पाप कर्म और इस जन्म में भी पापकर्म वा दुष्कर्म की ओर प्रवृत्ति वा भाव, झूठ बोलना, कृतघ्नता, देवताओं वा गुरु जनों की की निन्दा करना वा उनका तिरस्कार करना आदि से प्रेरित हुए वातादि दोष तिर्यग्गामी शिराओं (*Veins*) में पहुँचकर त्वचा (*Skin*) लसीका (*lymph*) खून (*Blood*) और मांस *Muscular tissue*) को खराब करते हैं। बाद में बाहर निकले हुए ये दूषित दोष खाल में विवर्णता पैदाकर देते हैं।

मूली, लहसन, सहजना, पोदीना, बनतुलसी, सफेद तुलसी, काली तुलसी उनको खाकर दूध का सेवन करने वाले को कोढ़ हो जाता है।

क्रमागत रीति से ठण्डी एवं गरम चीजों को खाना-ठण्डी चीज खाने के बाद एकदम गरम पदार्थ का सेवन करना या गरम के बाद सहसा शीतपदार्थ का सेवन करना या जिस जिस काल में शीत का सेवन करना है तब उष्ण और जब उष्ण पदार्थों का सेवन करना है तब शीत अथवा वात कफ में शीत और पित्त में उष्ण का सेवन करने वालों के यह रोग हो जाता है।

शहद, गुड़ की राव, मछली, मूली, मकोय, हल्दी, तिल इन सबको तादाद से ज्यादा सेवन करने वाले के अथवा मिथ्या आहार और बिहार विशेष कर संयोग विरुद्ध आहार लेने वालों को यह रोग होता है।

परस्पर संयोग विरुद्ध द्रव्यों को एक साथ मिला कर प्रयोग करने से एक तीसरी मारक वस्तु तय्यार हो जाती है जिससे प्राणीमात्र को भयायक हानि उठानी पड़ती है। संयोग विरुद्ध द्रव्य जैसे दूध के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ मछली, मांस, नमक, खटाई, सत्तू या शहद का प्रयोग, मछली के साथ—खांड, मिश्री, चीनी, गुड़ और शहद का प्रयोग।

केले के साथ—मट्ठा, दही तथा बेल के फल का उपयोग।

गरम पानी व वर्षा जल के साथ—भिलावा, शहद का प्रयोग।

कांसे के बरतन में १० दिन तक रक्खे हुए घी का प्रयोग वा बराबर का घी शहद का मिले हुए का उपयोग जो कि असर में जहर की तरह हो जाता है।

खीर के साथ—खिचड़ी का भी उपयोग करने से यह रोग हो जाता है।

संयोग विरुद्ध आहार जैसे मछली और दूध का एक साथ खाना क्यों कि मछली उष्णवीर्य होती है और दूध शीतवीर्य होता है। यह वीर्य की परस्पर विरोधिता के कारण ही खून को दूषित करते हैं। इसमें भी

"विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः"

अ० हृ० सू० स्था०

अर्थात् विशेषकर चिलीचिम नामक मछली को तो कभी भी दूध के साथ न खावें, यह मछली एक झिल्ली (*Mucous membrane*) से ढ़की रहती है। और उसके सारे शरीर पर लाल रंग की धारियां होती हैं। देखने में यह रोहू मछली के समान मालूम होती है। प्रायः यह जमीन पर रेंगा करती है। इस मछली को दूध के साथ प्रयोग करने पर खून अथवा कब्ज से होने वाली वा अन्य कोई बीमारियां पैदा होती है। यहां तक कि कभी कभी मृत्यु तक हो जाती है।

अनुभवों से यह भी निष्कर्ष निकला है कि सफेद गुलाबी लाल ताम्रवर्णी चमड़ी के दाग रक्त की कमी होने से रक्त में विकार हो जाने के परिणाम स्वरूप भी होते हैं। जैसे किसी किसी के मोतीझरा, पेचिश, खूनी बबासीर, उपदंश (गर्मी) आदि के बाद भी रोगियों में पाये गये हैं।

इस रोग में दोषों के कुपित करने में सहायक कारण दिन में सोना, कसरत, स्त्रीप्रसंग का अत्यन्त सेवन करना, प्रकृति विरूद्ध वेग उल्टी, पेशाब तथा मल को धारण करना, डर, मेहनत और गर्मी से पीड़ित व्यक्ति का अचानक ठण्डा जल पीना और ठण्डी वायु का सेवन करना, पतले चिकने और अति गरिष्ठ पदार्थों का प्रयोग करना, खाद्य पदार्थों में नमक वा खटाई का ज्यादा उपयोग करना, विरुद्ध अन्न (जैसे मछली खाकर दूध पीलेना) अथवा दूध के ऊपर खटाई जैसे शाक, अचार, या नींबू खा लेना, उद्दालक (जंगली कोदों), जौ आदि नये अन्नों को दूध दही, मट्ठा, बेर, कुलत्थी, उड़द की दाल, अलसी का यूष मिला हुआ खाना या ऐसे ही अन्नों का पेट भर खाना सहायक कारण हैं।

खुजली, फुन्सी, कोढ़, वेदना, पित्त और चर्मदलादि रोग जो कि त्वचा से सम्बन्धित हैं रक्त के विकृत होने से ही होते हैं। सफेद दाग भी कुष्ठ का ही विभेद है जिसको बाह्य कुष्ठ भी कहा गया है। इसका उत्पत्ति कारण भी एकसा है जिसमें शरीर पर सफेद दाग दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यह त्वचा में रञ्जक वर्ण की कमी या अभाव से होते हैं।

सफेद दाग में होता यह है कि खून की केशिकाओं में विकार होने पर कोष आकार में बढ़ जाते हैं और इनके समीपस्थ वर्णोत्पादक कोषा भी ढ़ीले पड़ जाते हैं जिससे उनका तनाव घट जाता है। और त्वग्वर्णोत्पादक कोषाओं के कार्य में मन्दता या कमी आजाने पर रजंक द्रव्य कम बनने से बह फैल नहीं पाता है और उस स्थान पर रजंक वर्ण की कमी या अभाव से त्वचा का वर्ण वैवर्ण्य अर्थात् सफेद पड़ जाता है जिसे कि हम सफेद दाग कहते हैं। यदि उचित उपचार न मिल पावे और रोग हुए काफी समय हो चुका हो तो उन स्थानों के वालों के रजंक कण भी कम होने लगते हैं वा नष्ट हो जाते हैं। जिससे उन स्थानों के बालों का वर्ण भी सफेद हो जाता है।

श्वेत कुष्ठ भेद—

श्वित्र कुष्ठ दो प्रकार के होते हैं। १—किलास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३-दारुण महर्षि "चरक" के मतानुसार तीस प्रकार अरुण नामक भी माना जाता है। "भोज" ने श्वित्र को दो भागों में बांटा हैं।

१-व्रणज जो किसी व्रण के मिथ्या उपचार के फलस्वरूप होता है। व्रणज श्वित्र के अन्तर्गत अग्नि से जले हुए सफेद दाग का भी आविर्भाव हो जाता है।

२-दोषज श्वित्र को पुनः दो भागों में विभक्त किया है। (१) आत्मज (२) परज के अन्तर्गत उपदंशज श्वित्र का भी समावेश होता है। चूंकि यह एक दूसरे के संस्कार वा स्पर्श से होता है इसी लिए यह परज कहलाता है।

भालुकि तन्त्र के मत के अनुसार धात्वाश्रित के विभेद से किलास को ३ भागों में विभक्त किया है। जब किलास का आश्रय मांस धातु होती है तब उसको वारुण कहते हैं। जब किलास का आश्रय मेदो धातु होती हैं तब उस श्वित्र कहते हैं और जब यह रक्ताश्रित रहता है तब उसे दारुण कहते हैं।

महर्षि चरक ने भी धात्वाश्रित वर्ण विभेद से कुष्ठ को ३ भागों में बांटा है।

(१) वायु के कारण श्वित्र रक्त धातु में आश्रित रहता है। यह रूक्ष और लाल वर्ण होता है।

(२) पित्त के कारण श्वित्र कुष्ठ मांस धातु में समाश्रित रहता है। यह कमल के पत्तों की तरह ताम्र रङ्ग का होता है। इसमें जलन भी होती है। यह रोमनाशक स्वभाव का होता है।

(३) कफ के कारण मेदो धातु में आश्रित रहता है। यह भारी होता है और इसमें खुजली भी आती है।

सफेद दाग	सीप
१. दोषानुरूप क्रमशः पृथक् पृथक् धातु में आश्रित रहता है।	१. यह सिर्फ ऊपरी त्वचा में ही होता है। रङ्ग सफेद दाग से हलका होता है।
२. प्रारम्भ में एक दाग ही शरीर के किसी भाग पर नजर आता है।	२. प्रारंभ में अनेक दाग विशेषतः छाती पर नजर आते हैं।
३. धीरे धीरे शरीर के अन्य हिस्सों पर भी नये निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं।	३. दाग जल्दी जल्दी बढ़ते हैं जो छाती तथा गर्दन की ओर फैलने लगते हैं।
४. दाग स्थान के बाल रोग पुराना हो जाने पर सफेद रङ्ग के प्रकट होते हैं।	४. दाग स्थान के बाल काले ही रहते हैं।
५. दागों के किनारे अनियमित शकल के होते हैं।	५. बहुधा गोल रूप में होते हैं।
६. उचित उपचार मिल जाने पर भी देरी से फायदा होता है।	६. उचित उपचार हो जाने पर जल्दी ही ठीक हो जाते हैं।

सफेद दाग	कोढ़
१. यह दोषानुसार ३ प्रकार का होता है तथा धात्वाश्रित विभेद से भी ३ प्रकार का होता है।	१. यह १८ प्रकार का होता है जिसमें से ७ महा कुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ होते हैं।
२. इसमें दोष पृथक् पृथक् दूषित होते हैं।	२. इसमें तीनों दोष दूषित होते हैं।
३. यह रक्त, मांस, मेद धातु को ही विकृत करता है।	३. यह लसीका (Lymph) रक्त तथा मांस के साथ साथ खाल को दूषित करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेद दाग	कोढ़
४. इसके कीटाणु का अभी तक पता नहीं चला है।	४. इसके कीटाणु का पता सन् १८७४ में लग गया था जिसको कुष्ठदण्डाणु (Mycobacterium Laprae) कहते हैं।
५. यह उतना तीव्र स्पर्श संचारी नहीं है।	५. यह स्पर्श संचारी तो है ही साथ ही उग्ररूप धारण कर लेने पर संक्रामक भी हो जाता है।
६. पूर्वजन्मों के पापकर्मों के फलस्वरूप ही बंशज होता है।	६. रोग ग्रहण करने की आनुवंशिकता प्राय: पाई जाती है अर्थात् कोढ़ी की संतान को होने का डर रहता है।
७. स्थान शून्यता प्राय: नहीं होती है।	७. स्थान शून्यता हो जाती है। सूई चुभोने पर भी ज्ञान नहीं होता है।
८. प्राय: ऐसा नहीं होता है।	८. कुष्ठ स्थान स्वेद रहित हो जाता है।
९. सूजन किसी किसी में ही देखने में आती है।	९. रोगी के हाथ, पांव, नाक, कान सूज जाते हैं।
१०. कोई अङ्ग गलकर नहीं गिरता है।	१०. हाथ, पांव की अंगुलियों में घाव हो होकर अङ्ग गल गलकर गिरने लगते हैं।
११. सूक्ष्म शारीर शास्त्र की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं दीखता है।	११. श्लेष्मिक झिल्ली(Mucous membrane) और वाततन्तुओं में गांठ पैदा हो जाती है।
१२. यह प्राय: शुष्क होता है।	१२. कुष्ठ पीड़ित स्थान से रस, खून तथा मवाद आदि आता है।
१३. दोषानुसार दाग स्थान पर त्वचा का वर्ण श्वेत, अरुण वा ताम्र रंग का होता है जो देखने में भद्दा मालूम होता है।	१३. कुष्ठ स्थान का वर्ण श्वेत रंग का नहीं होता है। हां कुष्ठ पीड़ित स्थान भद्दा होने के साथ साथ व्रणित दृष्टिगोचर होता है।
१४. रोग पुराना हो जाने पर दाग स्थान के बालों का रंग भी सफेद हो जाता है।	१४. ऐसा नहीं होता है।
१५. दाग स्थान पर रंजक कणों की अल्पता होती है।	१५. प्राय: ऐसा नहीं होता है।
१६. दाग स्थान के किनारों पर वर्णाधिक्यता होती है।	१६. ऐसा नहीं होता है।
१७. प्राय: बंशवृद्धि की शक्ति नष्ट नहीं होती है।	१७. बंशवृद्धि की शक्ति नष्ट होने लगती है।
१८. दाग पीड़ित व्यक्ति शादी कर सकता है।	१८. कुष्ठ पीड़ित व्यक्ति को तब तक शादी नहीं करनी चाहिये जब तक कि इस रोग के कीटाणु पूर्णत: नष्ट न हो जावें।

रोग की साध्यासाध्यता–

वायु के कारण उत्पन्न सफेद दागों से पित्त से उत्पन्न सफेद दाग कष्ट साध्य होता है। पित्त के कारण उत्पन्न सफेद दागों से कफजन्य सफेद दाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति कष्टसाध्य होता है।

इसी प्रकार रक्ताश्रित सफेद दागों से मांसों में आश्रित सफेद दाग कष्टसाध्य होता है और मांसाश्रित सफेद दागों से चर्बी के आश्रित सफेद दाग अतिशय कष्ट साध्य होता है।

तीनों रंग के सफेद दागों में लाल से ताम्रवर्ण और ताम्र से श्वेत वर्ण का दाग कष्टसाध्य होता है।

जिस सफेद दाग के बाल सफेद न हुये हो, जो कि बहुत मोटा न हो अर्थात् ज्यादा गहरा अपना असर न रखता हो, प्रत्येक दाग एक दूसरे से अलग अलग हो तथा ज्यादा पुराना न हो साथ ही वह स्थान अग्नि से जलाया गया न हो तो वह श्वित्र साध्य होता है।

इनके अतिरिक्त जननेन्द्रिय अङ्ग हथेली तथा होठ में उत्पन्न थोड़े दिन का भी श्वित्र असाध्य होता है। जैसा कि कहा भी है—

अशुक्ल रोम बहलमसंसृष्टमिथो नवम्।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं बर्ज्यतोऽन्यथा॥
गुह्य पाणी तलौष्ठेपु जातमप्य चिरन्तनम्॥
—अ० हृ० चि० स्था०

यूनानी मतानुसार -

जब दाग स्थान पर लालिमा प्रतीत हो, दाग स्थान के बाल सफेद न हों और दाग स्थान ज्यादा सख्त न हो तो वह उपचार के योग्य है। यदि बहुत पुराना है और निरन्तर बढ़ रहा है तो उस स्थान को कष्टसाध्य जानना चाहिए।

इनमें जो असाध्य कहे हैं वह तो असाध्य हैं ही परन्तु जो साध्य होता है वह बदपरहेज करने से अथवा उसका उचित इलाज न होने पर या विपरीत चिकित्सा करने से अर्थात् दोषानुसार चिकित्सा न करने से वह भी असाध्य हो जाता है।

रोग की भयानकता--

कुष्ठ जो कि जल्दी ही असाध्य हो जाता है उसकी शांति के लिए जल्दी से जल्दी उपाय करना चाहिए जैसे कि जलते हुए घर को बुझाने के लिए तुरन्त कोशिश करते हैं।

इसलिए जो पुरुष रोग के प्रकट होने से पहले ही अथवा रोग की शुरूआत या नवीनावस्था में ही इलाज करा लेता है वह चिरकाल तक निरोगी रहता है।

जिस प्रकार छोटा सा पेड़ थोड़ी सी कोशिश से काटा जा सकता है उसी प्रकार नया रोग भी आसानी से थोड़े समय में ही ठीक हो जाता है। वही छोटा सा पेड़ यदि बढ़ जाय तो उसे काटने के लिए बहुत कोशिशें करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार जब रोग बढ़ जाता है तो वह कठिनता से ठीक हो पाता है यहां तक कि वह कभी कभी तो असाध्य हो जाता है।

चिकित्सा--

इस रोग से ग्रसित रोगी को रोग मुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि रोग के उत्पत्ति कारणों को ध्यान में रखकर अपना आहार विहार क्रिया कर्म ठीक रखें और जो इसमें पथ्य हो उसका अवश्य प्रयोग करें और जो अपथ्य रोग उत्पन्न करने में सहायक कारण हो उसका उपयोग न करें।

प्रभु में ध्यान रख अपना आहार विहार क्रिया-कर्म का पूरा ध्यान भी परमावश्यक है। क्योंकि हम जो भोजन करते हैं उसका शोषण ११ फुट लम्बी आंतों के अन्दर होता है। यह भोजन सर्वप्रथम मुख में चबाया जाता है। मुख की लाला ग्रन्थियां भोजन पचाने के समय अपना लाला रस भोजन के रस में मिला देती हैं और भोजन अन्न प्रणाली के द्वारा आमाशय में पहुँचता है। अन्न-प्रणाली १५ इंच लम्बी होती है। अन्नप्रणाली आमाशय के संगमस्थान पर एक छिद्र होता है जिसके चारों ओर कुछ पेशी तन्तु अपने संकोच से छिद्र बन्द कर देते हैं और भोजन के आने के समय वह छिद्र खुल जाता है। परिणामस्वरूप भोजन आमाशय में पहुँचता है। आमाशय शरीर के बाईं ओर एक मशक के थैले की भांति स्थित है जो पाचन कर्म का प्रधान अंग है। आमाशयगत रसों के द्वारा भोजन का पाचन होता है। इसके बाद भोजन पक्वाशय में आता है जहां कि अग्नाशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस उसमें मिलता है। इस प्रकार यहां पाचक रसों से सम्मलित भोजन जब छोटी अन्त्र में पहुँचता है वहां इसका चूषण होकर रस से रक्त बनने के लिये यकृत में चला जाता है और शेष भाग मल रूप में उत्सर्जित होता है।

इन सब बातों के बताने का कारण यह है कि यदि हमारा भोजन सात्विक है और इसके पाचक अंग सब ठीक हैं तो इसका साधारण रूप में पाचन होकर उसका शुद्ध खून बनता है। और यदि हमारा आहार शुद्ध नहीं है तो उसका रस भी शुद्ध न होने के कारण खून का वर्ण भी विवर्ण हो जाता है। उस वर्ण की अद्भुतता के कारण शरीर की खाल के नीचे स्थित रक्तवाहिनियों के द्वारा उनका पोषण होने के कारण वह विकृत रूप त्वचा पर दृष्टि-गोचर होता है। और खाल पर दाग विकृत दोषानुरूप लाल, ताम्र वर्ण वा शफेद चित्तियां पड़ जाती हैं।

इन दागों से बचाना और पड़ी हुई चित्तियों या दागों को मिटाकर असली रूप में लाना साधारण चिकित्सक की सामर्थ्य के बाहर है। और यह भी ध्यान रहे कि ऐसे विषम रोग से छुटकारा न केवल खाने की दवा से होगा और न ही केवल लगाने की दवा से ही होगा।

आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा—अतः प्रयोगार्थ जो दवाइयां प्रयोग में आती हैं वह प्रचूषित होकर शरीर में रक्त वाहिनियों के द्वारा पहुंचती हैं। और जहां जहां विकृति होती है उनका वहीं वहीं असर होना प्रारम्भ हो जाता है। और रोग अन्दर से बाहर आने के साथ साथ रोग आगे बढ़ने से रुक जाता है और नष्ट होता जाता है।

जो दवाइयां बाह्य प्रयोगार्थ प्रयुक्त होती हैं वह बाहर आये हुए रोग को नष्ट करने में सहायक होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तः प्रयुक्त औषधियां रोग विमुक्त करने के साथ साथ रोग को आगे बढ़ने से रोकती हैं। इसके उपरांत ही रोग से छुटकारा दिलाती हैं।

इस रोग से ग्रसित रोगी को वह दवायें जो कुष्ठ रोग में व्यवहृत होती हैं वह सब ही दोषानुसार अथवा अवस्थानुसार इस रोग के रोगी के लिए लाभदायक सिद्ध होती हैं।

मानव सृष्टि की रचना के साथ साथ रोग से बचने, रक्षार्थ औषधियां आदि और आयुर्वेद की रचना भी समकालीन है। प्राचीन काल में जहां कुष्ठ रोग था वहां श्वित्रकुष्ठ का भी बोलबाला रहा है। और इसको पूर्वजन्मकृत दोषज मानकर इसकी उपाय शान्ति के लिए वेदों के मन्त्र सिद्धकर उनका उच्चारण किया जाता था। साथ ही दवाइयां भी शुभतिथि,शुभ नक्षत्र, शुभवार, घड़ी मुहूर्त में विधि विधानपूर्वक तैयार कर तब ही प्रयोग में लाई जाती थीं। जिनसे रोगी को पूर्ण आरोग्य लाभ मिलता था। वेदों में श्वित्र कुष्ठ सम्बन्धी अनेकों श्रुतियां तथा लेख पाये जाते हैं—

"आकाशपति! बृहस्पति! दिशाओं के स्वामी! अपने वर्षारूपी बाणों के द्वारा श्वित्रकुष्ठ से हमारी रक्षा करें।
—अथर्ववेद

इससे यह स्पष्ट है कि जब वर्षा होती है तब तरह तरह के विष अमृत पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं। अलग अलग नक्षत्रों में वर्षा की बूंदों के बरसने का विशेष महत्व होता है। जैसे स्वाति नक्षत्र में जब पानी बरसता है तब उसकी बूंदें यदि हाथी के मस्तक पर पड़ जाती है तो वह गजमुक्ता बन जाती है। सांप के मस्तक पर पड़ने पर वही सर्पमणि और मेंढ़क के मुख में पड़ जाने से वही बूंद दादुर-मणि बन जाती है। और वही बूंद अगर मछली के मुख में पड़ जाय तो वह मुक्ता बन जाती है।

इसी प्रकार वर्षा से विभिन्न प्रकार की बनस्पतियां, काष्ठादिक औषधियां उत्पन्न होती हैं। उनमें से कुछ ऐसी होती हैं जिनमें श्वेतकुष्ठ को नष्ट करने की अतुल्य शक्ति होती है। सभी औषधियों को शुभ तिथि, बार, नक्षत्र में ब्राह्म मुहूर्त में लाकर ही औषधियां प्रस्तुत की जाती हैं। कुष्ठनाशक औषधियां प्रायः चन्द्रकिरणों में और स्वातिनक्षत्र में ही सिद्ध होती हैं। साथ ही यह चन्द्रकिरणों और ओस के प्रभाव से सुसंस्कृत होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणकारी सिद्ध होती हैं। इसका विधान आयुर्वेद ग्रन्थों में भरा पड़ा है जिससे उनका रोगनाशक प्रभाव कम नहीं हो पाता है और वह गुणकारी रहती हैं। अथर्ववेद में भी कहा है–

हे राम (हे हल्दी)। हे कृष्ण (हे भृङ्गराज) हे इन्द्रवारुणी (हे रंगने वाली औषधियां)। तुम इस किलास (श्वित्र कुष्ठ का प्रकारान्तर) और पलित (श्वेतकेशों) को रंग दो। प्राचीन काल में श्वित्रकुष्ठ की चिकित्सा में वैद्यों में सर्वोपरि कुशल 'आसुरी' नामक पवन देश की स्त्री थी। वह श्वित्र कुष्ठ (किलास)को नाश करके त्वचा की विवर्णता को मिटा देती थी, जिसका उद्धरण अथर्ववेद में भी मिलता है।

'आसुरीचक्रे प्रथमेदं किलासं भेषजं किलास नाशनम्।
अनिशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचाम्॥

सफेद दाग (फूलबहरी), कोढ़ में प्रयुक्त होने वाली आयुर्वेदिक औषधियां जो कि विभिन्न प्रकृति, लक्षण, कारण विकृति में विभिन्न प्रकार के मिश्रण प्रयोग से रोग को जड़मूल से नष्ट करने में सहायक होती हैं। निम्नलिखित हैं।

अभ्रक असगन्ध

आक--इसमें पीले रंग का राल जैसा पदार्थ रहता है। इसकी प्रधान वस्तु मुडेरीन (Muderine) नामक है जो कि ईथर व शराब में घुल सकती है। जल एवं जैतून के तेल में नहीं घुलती है। इसका प्रयोग कुष्ठ, क्षत, सफेद दाग और दूसरे चर्म रोगों में होता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इन्डिया)

बबूल बहेड़ा बाबची—इसके दाने कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ, क्षारीय प्रतिक्रिया युक्त वर्मोनाइन नामक वस्तु, एक प्रकार का तेल और ७० प्रतिशत मैंगनीज रहित से मिलकर बने हैं। (फार्माकोग्राफिया आफ इन्डिया-वोल्यूम सेकिंड) वृहद्दन्ती, चकमर्द (पवाड़) यदि उसके पत्तों का विश्लेषण किया जाय तो इसमें कैथार्टिन की तरह की वस्तु तथा एक प्रकार की लालरंगने वाली वस्तु जैसी कि सनाय के पत्तों में होती है तथा कुछ खाने के पदार्थ भी पाये जाते हैं। यह विविध प्रकार के चर्म रोग, कुष्ठरोग, Psonasis आदि में लाभकारी है।

चालमोगरा--मालिश से त्वचा को लाल बनाने वाला खाने एवं लगाने से कुष्ठ एवं चर्मरोगों में लाभप्रद है।

चित्रक—चित्रकमूल का प्रयोग कुष्ठ में उत्तेजक प्रयोगों के रूप में होता है।

चिरायता चोक दुर्गन्धखैर द्विगुण गन्धक जारित पारद,

देवदारु--यह पुराने चर्मरोगों में तथा अधिक मात्रा में कोढ़ में दिया जाता है। और क्षतस्थान पर भी प्रयुक्त होता है।

धत्तूरा एरण्ड फिटकरी विशुद्ध गन्धक गाण्डरदूब (गण्डदूर्वा) गुञ्जा (चिरमिटी) गूगल घियाकंरज हरताल हिंगुल सिंगरफ हिंगोट हीरावोल हुलहुल इन्द्रजौ इन्द्रायण जटामांसी जवादिकस्तूरी।

कचनार—इसकी छाल में टैनिन रहता है। इसकी जड़ की छाल का तैयार किया हुआ काढ़ा विविध चर्म-रोग कुष्ठ और व्रणों में लाभदायक है। (मेटेरिया मेडिका आफ इंडिया)।

कचूर कटभी कठगूलर कनेर करंज कलिहारी कसीस कांतलौह कालानिशोथ—निशोथ की जड़ हरड़ के साथ कुष्ठरोग में हितप्रद है। (मैटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

कालीजीरी कुटकी कूठ कुड़ा खर्पर खैर लक्ष्मीविलासरस नारदीय लाख लोहभस्म मंजीठ मंडूर लौह मल्ल महानीम (बकायन)—इसमें राल जैसा पदार्थ शर्करा तथा टैनिन रहता है।

इसके पत्तों का स्वरस कुष्ठमें सेवन किया जाता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

मल्ल चंद्रोदय मुर्रा (मरोड़फली) कुष्ठरोग में हितप्रद है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

मैनफल नखीनली नागकेशर निर्मली बीदा निम्बतेल—तिक्त रस वाला, कृमिनाशक और उष्ण होता है जो कोढ़, पेट के कीड़े, बवासीर और पेशाब सम्बन्धी रोगों में किया जाता है। दूसरे तेलों के साथ मिश्रित कर इसे चर्मरोग गलित कोढ़ के जख्मों पर प्रयुक्त किया जाता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलातूतिया पद्माख पारद विशुद्ध पाठा पिप्पली भिलावा भूरी छरीला रसमाणिक्य राई रूपामाखी सम्हालू सिन्दूर सिङ्गलक सोनामाखी स्रोतोंजन शिला सिंदूर शिलाजीत शीशम ताम्रभस्म तालसिंदूर त्रिफला–(हरड़, बहेड़ा, आमला) तुम्बरु वनहल्दी बंशलोचन वासा विषयोग मिश्रित चंद्रोदयादिरस।

रोग के उत्पन्न होते ही इलाज प्रारम्भ कर देना चाहिये। चूंकि कर्ज और मर्ज दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। इसलिये ध्यान रखना चाहिये कि रोग के उचित इलाज में भी देरी न होनी चाहिये वर्ना रोग के विनष्ट होने से भी उतनी देरी के साथ साथ आर्थिक व्यय भी अधिक होता है।

बहुत से अज्ञानी तीक्ष्ण दवाइयां, दागना आदि प्रक्रियाओं से उपाड़, जख्म आदि कर लेते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थानों पर होने पर चिकित्सकों को ढूंढते हैं। विज्ञापनीय संसार में पड़कर धन, समय, आशा, विश्वास से भी हाथ धो बैठते हैं और इधर रोग बढ़ता हुआ सर्वाङ्ग श्वेत हो जाता है।

बहुत से अज्ञानी लोग केवल बावची, गंधक, चाल मोगरा, मिरच, कुछ जहरीली दवाइयों से रोग शान्त करने का दम भरते हैं। वह सब मिथ्या मृग मरीचिका है।

औषधि सागर के निदान चिकित्सा सागर में आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथिक (Homeopathic), बायोकैमिक (Biochemic), एलोपैथिक (Allopathic), नेचूरो पैथिक (Naturo pathy), जल, फल आदि चिकित्सा पद्धतियों में गोते खाते, भ्रमण कर खोज, अनुभव हजारों रुपयों के व्यय पर सैंकड़ों दवाइयों के मिश्रण तैयार कर प्रयोग कराते कराते मिश्रित तैयार होगया। इन औषधियों को विभिन्न रोगियों पर विभिन्न दागों पर अनेक औषधियां मिश्रित कर प्रयोग करने पर पूर्ण सफलता मिली।

दवा के प्रयोग से खाल का रंग लालिमायुक्त (Reddish) हो जायगा। घबड़ाना नहीं चाहिये। इससे दाग स्थान के रक्त का दौरा बढ़कर रोग जड़ से मिटाकर आरोग्य लाभ प्राप्त होगा।

खून की कमजोरी वा सहनशीलता की कमी होने पर किसी किसी में किसी स्थान पर जलन, छाला सूजन अथवा लालिमा हो जाय तो घबड़ाना नहीं चाहिये। अपितु २-४ दिन के लिये औषधि प्रयोग रोक कर नारियल के तेल १ तोला में कपूर ३ माशा मिलाकर लगाना चाहिये। उपरांत औषधि प्रयोग निरन्तर जारी रखना चाहिये। इसका प्रत्यक्ष फल यह सामने आता है कि औषधि प्रयोग से दाग स्थान की खाल का रंग बदलता है और धीरे धीरे चित्तियां पड़कर खाल अपने असली रूप में आ जाती है।

पथ्य –

हल्के पदार्थ, पुराने जौ, पुराने गेहूँ, पुराने शालि चावल, मूंग की दाल, अरहर की दाल, मसूर की दाल, असली शहद, तीखे रस वाले शाक, परवल, तोरी, कड़वी तोरई, ककड़ी, खीरा, बड़ी करेली के फल, मकोय, नीम के पत्ते, लहसन, वाराहीकन्द, हुलहुल का शाक, पुनर्नवा, मेढ़ासिंगी, पवाड़ के पत्ते, पके हुये ताड़ के फल, खैर, चित्रक, केशर, नागकेशर, जायफल, जबादि कस्तूरी, श्वेत चंदन, करंज, पुराना घी, तिल, सरसों, नीम और हिंगोट का तेल, धूप सरल, देवदारु और अगर का तेल, गाय, गधा, भैंस, घोड़ा और ऊंट का पेशाव, क्षार कर्म, धूप का सेवन करना दोषानुसार हितकर हैं।

अपथ्य -

पापकर्म, वैश्यागमन, गुरुओं की निन्दा अथवा तिरस्कार करना, परस्पर स्वभाव विरुद्ध भोजन का प्रयोग करना, दिन में सोना, खूब गरम धूप का सेवन करना, विषम अन्नपान, पसीना लेना, स्त्री प्रसंग करना, टट्टी, पेशाब, वीर्य, अधोवायु, छींक, उल्टी, डकार के वेग लगने पर भी उनको रोकना, गन्ने के रस को पीना, कसरत करना, खट्टे पदार्थों का सेवन करना, तिल, उड़द की दाल, पतले

—शेषांश पृष्ठ ४२ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-औषधालय

कविराज जगदम्बा प्रसाद

(१) ज्वर–गोदन्तीभस्म १-२ रत्ती, दूध या बताशा से।

(२) हठीला ज्वर—रत्नगिरी रस ४-८ चावल दूध या बताशा से।

(३) विषम ज्वर मलावरोध-कालीमिर्च १ भाग, मुनक्का २ भाग, तुलसीपत्र ३ भाग रगड़कर १ माशा तक दें।

(४) पित्त युक्त ज्वर—प्रवालपिष्टी १ रत्ती बताशे में रखकर।

(५) आम कफज्वर, उदरशूल, अजीर्ण, अतिसार, मुक्ता ज्वर, वायुरोध–संजीवनी वटी [शा. सं.] २-४ चावल उष्णजल से या दूध से। यदि लाभ न हो तो कुमारकल्याण घुटी १० बूंद साथ में दें।

(६) सर्व ज्वर, शूल, दुग्ध वमन, उदर कृमि यकृत वृद्धि—कुमार कल्याण घुटी १० बूंद जल या दूध में मिला पिलावें।

(७) बाल शोष, पारिगर्भिक—कल्याण रस, कुमार रस या कुमारकल्याण रस २-४ चावल मधु से।

(८) अस्थि मार्दव–सुधाषट्कयोग १-२ रत्ती मधु से या स्वर्ण माक्षिक, सितोपलादि, प्रवालपिष्टी, गोदन्ती भस्म मिलित १-२ रत्ती मधु से।

(९) उदर कृमि, शूल, वायुरोध, मलरोध, अपचन, श्वानविष, शीतांगता—अग्नितुण्डी वटी २-४ चावल उष्णजल, दूध या बताशा या मधु से। अधिक प्रयोग न करें।

(१०) बुद्धि मन्दता—सारस्वतारिष्ट ३-३ माशे दुग्ध से।

(११) ग्रहणी, अतिसार, शूल–कुटजारिष्ट २-३ माशे दुग्ध से या कनकसुन्दर रस २-४ चावल मधु से या दूध से।

(१२) यकृत प्लीहा, मलरोध शूल–भर्जित कुटकी १-२ रत्ती मधु से। स्वर्णमाक्षिक २-४ चावल मधु से। मण्डूरवटी २-४ चावल।

(१३) ज्वर, अपचन, उदरशूल, विषूचिका, वमन अतिसार, अपचन-अमृतधारा १ बूंद बताशा पर डाल ३-४ मात्रायें बनालें।

(१४) कृशता—मण्डूर वटी १ रत्ती+अश्वगन्धा चूर्ण २ रत्ती+च्यवनप्राश १ माशा यह दो मात्रायें हैं।

(१५) बुद्धिमन्दता–कल्याण रस या कुमार रस २-४ रत्ती चावल+ब्राह्मी घृत १ माशा।

(१६) काली कास—शृङ्गभस्म २-४ चावल। हरतालगोदन्ती भस्म २-४ चावल, चन्द्रामृतरस ४-८ चावल मधु से।

(१७) धनुर्वात ज्वर, अतिसार–लक्ष्मीनारायण रस ४-८ चावल मधु।

(१८) अतिसार, शूल—१ रत्ती जायफल दूध में घिस कर पिलावें या २ रत्ती उदर पर लेप करें। २-४ चावल हींग दूध में घिसकर पिलावें या २ रत्ती उदर पर लेप करें।

(१९) मुखपाक–पीपल की छाल, गूलर की छाल, चमेली की पत्ती, बरगद छाल, आंवला की छाल, तुलसी पंचाङ्ग–सब द्रव्य समभाग ले चूर्ण करें। अति महीन चूर्ण कपड़छन किया हुआ २-३ रत्ती मधु में मिला मुख में छालों पर लेप करें। उदर में जाने से ज्वर, अतिसार, रक्तस्राव को रोकता है।

(२०) मुखपाक–कत्था, सुहागा फूला, संगजराहत इन दोनों का चूर्ण उक्तविधि से लगावें। उदर में आने से कफ, कास, रक्त स्राव को रोकता है।

(२१) उदर शूल, आध्मान, अजीर्ण, विसूचिका, अतिसार, ग्रहणी, मन्दाग्नि–हिंग्वाष्टक चूर्ण १-२ रत्ती दूध से। शरदऋतु पित्त विकार वर्षाऋतु में न दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२) मलरोध, शूल, उदर में भारीपन, आम-नाराच चूर्ण २-३ रत्ती मधु से अर्थात् मिश्री ४ रत्ती निशोथ ४ रत्ती, छोटी पीपल १ रत्ती मिला रखें।

(२३) उदर कृमि-करञ्ज की गिरी, पलाश के बीज, अजवाइन, कबीला, वायबिडङ्ग। इनका चूर्ण २-३ रत्ती समभाग गुड़ में मिलादें। दूसरे दिन दूध में ३-६ माशे अरण्डी तेल मिला पिलावें। बड़ों को मात्रा बड़ी दें।

(२४) उदरशूल, ज्वर, मलरोध, डब्बा रोग-भुनी करंज की गिरी २-३ रत्ती मधु या उष्ण जल या दूध से दें। इससे १-२ वमन और १-२ अतिसार होते हैं। बाद में एकदम कफ निकल जाता है।

(२५) कब्ज, मल संचय, आम, शिरो शूल, अजीर्ण पित्तरोग, उदरशूल-सोंठ, सौंफ, सनाय, सेंधानमक, बड़ी हर्र, गुठली रहित समभाग ले चूर्ण करें। यह पंचस्कार चूर्ण है बड़ों की मात्रा ६ माशे तक है। बच्चों की मात्रा २-३ रत्ती उष्ण जल या दुग्ध से दें। १ मुनक्का के रस से दें या मधु से चटावें।

(२६) कब्ज मलरोध—पीली हर्र २ रत्ती घिस कर दूध से दें। १-२ मुनक्का दूध में पकाकर पिलावें।

(२७) अजीर्ण, शूल, आध्मान—पीपल, काला नमक, हर्र का चूर्ण २-३ रत्ती।

(२८) ज्वर, वमन, अतिसार-अतीस, काकड़ासिंगी, तुलसी का चूर्ण २-३ रत्ती।

(२९) वमन, ज्वर, रक्तातिसार-पीपल, मुलहठी, आम, जामुन की कोपल का चूर्ण २-४ रत्ती।

(३०) श्वास कास, हिक्का-मोरचन्द्रिका भस्म, पीपल का चूर्ण १ रत्ती मधु से।

७ वर्ष के बालक के लिए उक्त ३० योग पूर्ण परीक्षित अहानिकारी हैं। अनुपान में बताशा दूध या मधु ठीक रहता है। मात्रा पर विचार रखें। माताएँ उक्त प्रयोग बनाकर घर में रखें। शीतला, डिफ्थीरिया, उत्फुल्लिका आदि की चिकित्सा यहां नहीं लिखी। ८ चावल = १ रत्ती।

—श्री जगदम्बाप्रसाद वैद्य
महदेवा पो. अरौल (कानपुर)

:: पृष्ठ ४० का शेषांश ::

पदार्थ, मुश्किल से हजम होने वाले अन्न, नये अनाज (नये गेहूं, नये जौ) का प्रयोग, पेट में जलन पैदा करने वाले वा कब्ज करने वाले द्रव्यों का प्रयोग करना, मूली, सह्याचल और विन्ध्याचल पहाड़ से निकली हुई नदियों का पानी मांस, दही, मछली, दूध, शराब और गुड़ आदि सब अपथ्य पदार्थ दोषानुसार कुष्ठ रोगी को त्याग देने चाहिये।

सफेद दाग वाले रोगियों के लिये भी उपरोक्त ही पथ्यापथ्य है।

—आयुर्वेदा. डा. महावीरप्रसाद जैन B. I. M. S.
सुखदा फार्मेसी, सदर, मेरठ।

सर्व प्रकार की वनौषधियां, जड़ी बूटियां, कच्चे द्रव्य, खनिज पदार्थ एवं केशर, कस्तूरी, अम्बर, मोती, सीप, शिलाजीत प्रवाल आदि के लिए सम्पर्क स्थापित करें।

मैसर्स नत्थीमल रुग्गनमल

किराना व्यापारी

(विभिन्न प्रकार के कच्चे द्रव्य तथा जड़ी बूटियों का प्राप्ति स्थान)

खाड़ी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत पारद

कविराज डा० श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०

पारद एक तरल धातु है। इसे तरल चांदी भी कहते हैं। बाजारू पारद में सीसा, रांग, जस्ता आदि धातुऐं मिली रहती हैं। जब तक पारद के दोष दूर न किये जायें तब तक यह देह सिद्धि और लोह सिद्धि (छोटी धातु को बड़ी धातुओं में बदलना) के लिए कोई कार्य नहीं कर सकता। यदि दोष युक्त पारद काम में लाया जाये तो शरीर में तरह तरह के बिकार उत्पन्न करता है। शुद्ध मृत पारद अमृत है। अठारह, उन्नीस और बीस संस्कार आचार्यों के भिन्न भिन्न मतानुसार पुस्तकों में दिये हुए हैं। किसी किसी आचार्य के मतानुसार केवल चार संस्कार करने पर ही पारद सभी कार्य कर सकता है।

शोधन—मूर्च्छन-बन्धन-मारण—क्योंकि हिंगुल से निकला हुआ पारद शुद्ध माना गया है। इसलिए हिंगुल से निकला हुआ पारद ही चार संस्कार करने पर देह सिद्धि और लोह सिद्धि आदि सर्व कार्य करता है।

हिंगुल से निकले हुए पारद पर साधु सन्तों के मतानुसार यह चार संस्कार भी नहीं करने पड़ते क्योंकि जड़ी बूटियों द्वारा केवल बूटी के पत्तों में रख कर अल्प पुट देने से (भूधर यंत्र द्वारा) ही पारद स्वर्ण में परिणत हो जाता है। कई बूटियों द्वारा एक पुट में ही भस्म तैयार हो जाती है।

रतनागर ग्रंथ के मतानुसार पारद चार प्रकार का होता है।

१-ब्रह्म श्वेत (२) क्षत्री लाल (३) वैश्य पीत जातियों भूआल (४) श्याम शूद्र सबसे श्रेष्ठ पारद श्वेत होता है। उसके पश्चात् लाल और पीला पारद। काला पारद सब से निकृष्ट माना गया है। रस कर्म के लिए हिंगुल से निकला हुआ शुद्ध पारद लेना चाहिए। अष्टादश संस्करित पारद प्रचंड पारद कहलाता है जो देह सिद्धि तथा लोह सिद्धि के लिए कार्य में लाया जाता है। जब पारद धातुओं को ग्रास करने लगता है तो वह बुभुक्षित पारद छोटी धातुओं को ऊंची धातुओं में बदलने लगता है।

इसके लिए आचार्य और मुनियों का मत है—
जो हमें सत गुणों चराई। ताको गुण नहीं वरणों जाई॥

पारद की चार प्रकार की भस्म रसरत्न समुच्चय में लिखी है। १--श्वेत भस्म, रस कपूर २-पारे की लाल भस्म, रस सिन्दूर ३-पीली भस्म-सर्वाङ्ग सुन्दर रस ४-कृष्णा भस्म, इनमें काली भस्म श्रेष्ठ मानी है।

यह ही नहीं कि मनुष्य पुराने ढांचे पर चलता रहे कि इन चार प्रकार की भस्मों के अतिरिक्त और भस्म तैयार ही नहीं होती। जड़ी बूटियों द्वारा अनेक प्रकार की भस्में तैयार होती हैं। जैसे भी सिद्ध आचार्य हुए अपनी बुद्धि के अनुसार मृत पारद तैयार करते रहे। और देह सिद्धि और लोह सिद्धि दोनों कार्य करते रहे।

मृत सूतस्य गुणः—

मृत (भस्म किया हुआ) पारद तीव्रतर अग्नि में कितनी ही देर रखने पर भी निष्कम्प वेग अर्थात् स्थिर स्वभाव रहता है। इसके सेवन से आयु वृद्धि तथा शरीर में नीरोगता हो जाती है। जड़ी बूटियों द्वारा पारद भस्म (मृत पारद) तैयार होती है जो देह को अजर अमर करती है। और भाग्य से ही किसी साधु सन्यासी द्वारा या हस्तलिखित पुस्तकों द्वारा इस विद्या का ज्ञान प्राप्त होता है। यही मृत पारद जड़ को चैतन्य और मृत को जीवित कर देता है। पारद को बुभुक्षित करना इतना कठिन नहीं जितना कठिन मृत पारद तैयार करना है। टोडरानन्द ने लिखा है कि जो पारद मृत है वह जड़ को चेतन्य कैसे कर सकता है उसने पारद भस्म तैयार करके परीक्षण नहीं किया। और असम्भवता के कारण ऐसा लिखा। नागार्जुन के समय में देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धि के अतिरिक्त लोह सिद्ध का अधिक प्रचार रहा। और आज पारद यंत्रों, उपदंश रोग आदि और मरहमों में काम आता है। पारद भस्म बनाने वाले भारतवर्ष में बहुत कम आदमी मिलेंगे। इनमें अधिक साधुओं को ज्ञान होता है। वह किसी को बोलते नहीं अतः यह विद्या लुप्त हो गई है। बहुत से विद्वान पारद अनुसन्धान का कार्य कर रहे हैं। उन्हें अवश्य कामयाबी होगी। यदि वह अपने कार्य पर जुटे रहे और हस्तलिखित ग्रथों के आधार पर परिश्रम करते रहे।

पारद पर आचार्यों ने बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे और इसकी शक्ति का प्रचार लोगों तक फैलाया। इनमें प्रत्यक्ष कर दिखाने वालों में कृष्णपाल वैद्य शास्त्री का नाम सराहनीय है जिन्होंने सन १९४१-४२ में कई चमत्कार बड़े बड़े राजाओं, महात्माओं, सेठों को दिखलाये। उस समय एक अंग्रेज मि. विलसन ने भी पारद से सोना बनाने की क्रिया अपने सामने देखी। यह सब कुछ श्री जुगलकिशोर विरला की कृपा से हुआ। जिसके बारे में लक्ष्मी नारायण मन्दिर (बिड़ला मंदिर नई देहली) में पीछे की तरफ हवन कुंड बना हुआ है। वाटिका में हवन कुंड वाले कमरे की दीवार पर कृष्णपाल जी का फोटो और लेख आर्य जाति के गौरव के हित श्री जुगलकिशोर विरला जी ने लिखवाया हुआ है। ऊपर लिखा है—

सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।

रस की सिद्धी करने पर मैं संसार को दरिद्रता से रहित कर दूंगा। कृष्णपाल शास्त्री ने २७ मई १९४१ में विरला भवन में पारद से सोना बनाया। उस समय महादेव देसाई, गोस्वामी गणेशदत्त और जुगलकिशोर विरला थे। १९४२ में १८ सेर सोना ऋषिकेश में पारद से :बूटी द्वारा तैयार करके श्री जुगलकिशोर विरला को दिया है जो उन्होंने दान कर दिया। फोटो और लेख बाहर से आने वाले सज्जन बिरला मंदिर नई दिल्ली में हवन कुंड वाली दीवार पर स्वयं देखें। अमृतलाल वि० ठक्कर, सीताराम खेमका, श्री वियोग हरि ने भी स्वर्ण निमार्ण चमत्कार देखा। ऐसे आदमी आज भी कहीं कहीं भारत में पाये जाते हैं। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जो भी विधियां पारद भस्म, बुभुक्षित पारद की दी हैं वह सारी सत्य हैं। हमारे बनाने में त्रुटियां रह जाती हैं और पूर्ण ज्ञान न होने से हम उन्हें स्वयं अपनी त्रुटियों के कारण पूरा नहीं कर पाते। ग्रन्थों का इसका कोई दोष नहीं।

शारङ्गधर संहिता में पारद मुखकरण और भस्म बनाने के जो सरल योग हैं थोड़ी सी मेहनत से उनको तैयार कर लेना कठिन कार्य नहीं।

हिंगुल शुद्धि–हिंगुल को नींम या नींबू के रस में एक पहर (३ घण्टे) खरल करके टिकिया बना कर सुखालें और इन टिकियों से पारद निकाल लें। पारद निकालने के बाद मोटे कपड़े को चार तह करके उसमें से पारद छान लें। यह शुद्ध पारद होगा। इसे सर्व कार्यों में बरतें।

पारद मुखकर्ण—

शारङ्गधर संहिता द्वितीय खण्ड अध्याय १२–पारे के मुख कर्ण और पक्ष छेदन का दूसरा प्रकार इस प्रकार है—

अथवा बिंदुली कीटै रसो मर्द्यं त्रि वासरम्।
लवणाम्लै मुखं तस्य जायते धातु घमस्मरम्॥

इन्द्रवधू या विंदुली कीट–यह कीड़ा चातुर्मास्य में होता है। इसे तीज कहते हैं। यूनानी वाले वीर बहूटी कहते हैं। उसे लाकर पारे के साथ तीन दिन तप्त खरल में मर्दन करें और पश्चात् सैंधानमक और नींबू का रस डालकर तीनों को मर्दन करें तो पारे के मुख होवें। धातुओं को खा जावे। परन्तु यह मर्दन कार्य लगातार तीन दिन रात करना चाहिये। औषध तोल इस प्रकार है।

पारा १ तोला, वीर बहूटी १ तोला, सैंधानमक १ तोला, नींबू का रस १ तोला।

कई आचार्य इस प्रकार तोल लेते हैं–

पारा १ तोला, वीर बहूटी ३ माशे, सैंधानमक ३ माशे, नींबू का रस १ तोला या कुछ अधिक।

मृत पारद—(पारद भस्म) तैयार करना। द्वितीय खण्ड अध्याय १२।

—शेषांश पृष्ठ ४७ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद में देवों का रहस्यमय समाविष्ट

वैद्य श्री मुरलीधर श्रीमाली "साधक" बीकानेर।

प्राचीन काल से रोगों के हेतु व उसके उपचार देवी देवताओं का सम्बन्ध रहा है, और आज ी लोग ऐसा विश्वास रखते हैं। लेकिन यह ाज के बढ़ते हुये भौतिक विज्ञान के चकाचौंध काश में ओझल सा होता जा रहा है और अन्ध-श्वास की धारणा को लेकर इसकी उपेक्षा की रही है। लेकिन इसका किसी भी प्रकार से न्वेषण कर सत्य असत्य का निर्णय कर नवीन रूप हीं दिया गया। स्थिति यह हो गई है कि ग्रामों में छ एक अशिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित रहकर दैव के लिये बिदाई की ओर प्रयाण की तैयारी हैं। आप लोगों को आश्चर्य अवश्य होगा कि ह बाबा आदम के युग का लेखक मालूम दे रहा ।समय बहुत ही आगे बढ़ चुका है और यह उन वहीन मुर्दों को कब्र से निकालने लगा है।

मेरा विश्वास तो यह है कि आज से सैकड़ों र्षों से लोप हो कर भूमिगत अनेकों ही ऐसे ल है, जहां संसार का कितना ही विज्ञान सोया आ है, जो अमूल्य निधि के रूप में हैं। लेकिन ाज के अहंकार युग में केवल यही धारणा बन ुकी है कि वैज्ञानिक युग का तो प्रादुर्भाव ही अब रहा है। चाहे आप प्राचीनता के उपासक समझें किन आज प्राचीनता के ऐसे अनेकों ही उदाहरण यक्ष है जो आश्चर्यप्रद हैं।

लेकिन यहां केवल चर्चा है वह देवों को लेकर ी की जा रही है। तथा चिकित्सा की दृष्टि से न्हें जहां केन्द्रित किया गया है। वहां है—लता, ता, पौधे और क्षुप पर आश्रित अर्थात् इन्हीं में वी देवताओं का निवास माना गया है। आस्तिक ोगों ने इनकी परिक्रमा जलसीचन, उस वृक्ष के ाष्ठ की माला धारण करना और आज भी चीन तीर्थों में कई एक प्रतिमायें काष्ठ की देखने आती है। तथा भक्तगण उनकी उपासना रते हैं।

आयुर्वेद के निघण्टुओं में अनेकों ही ऐसी बनौषधि हैं, जिनको देवी-देवताओं के नाम से सम्बोधित किया है। तो क्या यह माना जा सकता है कि उपासना काण्ड में जो देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ ली गई हैं वे उन्हीं बन औषधियों के काष्ठ से निर्मित हैं? यह जब विचार उठते हैं तो एक रहस्यपूर्ण लेकिन सत्य आभास मिलता हैं। अनेकों ही बार पढ़ने व सुनने में आता है कि जिस व्यक्ति को कुष्ठ जैसी भयानक पातक व्याधि हो जाती है तो उसे गायत्री की उपासना करनी चाहिए, कहा जाता है कि जिस व्यक्ति को कुष्ठ होता है, तो पतित पावनी देवी गायत्री की आराधना से रोग मुक्त हो सकता हैं। सत्य है। बिलकुल सत्य॥ निघण्टुकार ने खदिर को ही गायत्री कहा है जिससे वैद्य बन्धु चिर परिचित हैं। यह रक्तशोधक और कुष्ठनाशक है। इस प्रकार अनेकों ही बनौषधियों के नाम देवियों के रूप में और रोग निवारण के लिए लिखे गये हैं जिनके सेवन करने से मनुष्य रोगमुक्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा एक संग्रहित पद्य रचना के रूप में छोटी सी पुस्तक है जिसको "बनौषधि गूढ़ शब्दावली" नाम से प्रकाशित कराने का विचार है। इसके प्रथम मंगला चरण (स्तवः) का एक पद रूप यहां दे रहा हूँ जो इस बिषय से सम्बधित है।

पद्मोवती[1] पथरी विनाशक, गायत्री[2] चित्रित कुष्ठ हरे।
पार्वती[3] रक्तदोषानाशक, विसर्प रोग शांभवी हरे[4]॥
शारदा[5] है त्रिदो ब्रह्म[6] चारणी ज्ञान प्रदान करे।
वारुणी[7] है प्लीहा नासक, काली[8] केशों को सुन्दर करे॥

(१) स्थल कमल (२) खैर (३) धाय के फूल (४) नीलदुर्वा ५) सफेद सारिबा (६) ब्राह्मी (७) इन्द्रायण और (८) नीली। इस प्रकार इसमें तीन्न देवियों के क्रमशः नाम दिये गये हैं। तथा

—शेषांश पृष्ठ ५० पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारा आपके परीक्षणों ने

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य 'अमृतधारा'

विदेशों के औषधियां तैयार करने वाले व्यापारी भी हैं और विज्ञापन देने वाले प्रथम श्रेणी के हैं। वह जो औषधि निकालते हैं दिल खोलकर उसका मूल्य लेते है और ऐसे ढंग से विज्ञापन देते हैं कि दूसरे डाक्टर विशेषकर भारत आदि देशों के झट उनके परीक्षण आरम्भ कर देते हैं। हमारी सरकार भी तो कोई रुकावट इन औषधियों के लिए नहीं करती। जिस पर विदेश की मोहर लग जाती है वह लोग अपनी औषधियों की ऐसी प्रशंसा करते हैं कि यदि यहां के औषधालय अपनी औषधियों की वैसी प्रशंसा करें तो वह मैजिक मैडिसन ऐक्ट में पकड़े जाते। आजकल तो इन्जेक्शन की औषधियों का बोलबाला है और जनता को भी इन्जेक्शन लेने का इतना शौक बढ़ा दिया गया है कि साधारण सा कोई ग्रामीण भी चिकित्सक के पास जाता है तो रोग का जिक्र करके स्वयं ही कहता है कि मुझे इन्जेक्शन लगा दें। यदि खाने की औषधि दी, तो वह दोबारा प्रायः यही कहेगा कि भली प्रकार आराम नहीं हुआ आप इन्जेकशन लगा दें। कई चिकित्सक तो केवल डिस्टल्ड वाटर (Distilled Water) उनकी तसल्ली के लिए रख छोड़ते हैं और दवाई अलग देते जाते हैं। इन्जेक्शन प्रणाली में एक अजीब जबरदस्ती भी होती है। किसी बच्चे को पोलियो रोग हुआ आप सब बच्चों को टीका लगवा दो। किसी स्थान पर हैजे का कोई केस हुआ वहां जाने वाले सबको टीका लगवा कर जाना होगा। मैं एक बार हरिद्वार कुम्भ के मेले में जा रहा था रास्ते में रोका गया कि टीका लगवाना होगा। मैंने कहा "वैद्य हूं मेरे पास औषधियां हैं टीके की कोई आवश्यकता नहीं" परन्तु माने कौन, सरकार की आज्ञा है। अन्ततःबिना मेला देखे लौट आया। कोई भी टीका हो आखिर उसमें भी कुछ विष है। अकारण क्यों शरीर में विष प्रविष्ट करें परन्तु उनको तो अपना परीक्षण करना है।

बिलायत के एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टर डडले व्हाइट (Dudley White) ने मैक गिल (M. Gill.) यूनिवर्सिटी में लैक्चर देते हुए कहा कि आप सारे राष्ट्र को बचाने के लिए क्यों इन्जेक्शन आरम्भ कर देते हैं जबकि कदाचित् ५ प्रतिशत इस रोग में ग्रस्त हो सकते हों। क्यों नहीं यह पता लगाने का प्रयत्न करते कि किसी मनुष्य के भीतर इस रोग से ग्रस्त होने का भय है। इस समय तक मेडिकल जो अनुसंधान हुआ है वह सब यह है कि अमुक कीटाणु से अमुक रोग होता है। इन कीटाणुओं का नाश करने की यह औषधि है। परन्तु विज्ञान यह मालूम करने का प्रयत्न नहीं करता कि क्यों कुछ मनुष्यों पर एक रोग का प्रभाव होता है परन्तु दूसरों पर नहीं होता।"

एक डाक्टर एच. सी. पारकर (H. C. parkar) लिखते हैं कि अनुमान लगाया है कि २५ हजार में एक को पोलियो रोग का भय है परन्तु इन्जेक्शन सारे राष्ट्र को लगाना आरम्भ कर दिया जाता है यही अवस्था और कई रोगों में है।

इन्जेक्शन हमेशा लाभदायक ही होते हैं यह भी कहना कठिन हैं। पेन्सिलीन जब निकली तो सब के मुंह पर पेन्सिलीन ही थी। परन्तु इस पेन्सिलीन से मौतें भी काफी हुई हैं और कइयों को बेकार भी इसने किया है। यह तो स्वयं डाक्टर भी मानते हैं कि किसी किसी में एलर्जी ऐसी होती है कि वह पेन्सिलीन को सहन नहीं कर सकते। यह तो सबने अपनी प्रैक्टिस में देखा है कि इन्जेक्शन लगाते ही कोई अचेत हो जाता है किसी को कै आरम्भ हो जाती है या कोई पीड़ा होती है। इसी समय दूसरा इन्जेक्शन इसके प्रभाव को रोकने का दे देने से हालत ठीक हो जाती है परंतु कोई तो उसी समय समाप्त भी हो जाते हैं। एक संसद सदस्य महोदय का किस्सा तो सबने सुना होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्होंने इन्जेक्शन लगाते ही प्राण त्याग दिए।

एक समाचार-पत्र सितम्बर में १६६० में तपुर के कुछ केश छपे। डाक्टर सब हैरान थे पेन्सिलीन इतना उलटा प्रभाव क्यों करती है। डाक्टर के कम्पाउण्डर ने एक स्त्री को इन्जेक्शन या। ५ मिनट में उसका शरीर लाल नीला हो काला हो गया और २४ घन्टे तक अचेत रही। डाक्टरों के प्रयत्न से उसको चेतना आई। ही एक डी० ए० वी० कालिज के प्रोफेसर ने सिलीन की टिकियां एक डाक्टर की राय से खाई र ऐसे ही लक्षण पैदा हुये। शीघ्र ही उसकी कित्सा की गई और बच गया। एक और क्टर ने ३० वर्षीय युवक को पेन्सिलीन का जेक्शन दिया और उसकी हालत बिगड़ गई। क्सीजन देनी पड़ी तब बचाव हुआ। एक बच्चे पेन्सिलीन इन्जेक्शन से बेहोशी हुई और रंग ला हो गया। एक अवस्था में मृत्यु भी हो गई।

ऐसी औषधियां और इन्जेक्शन परीक्षण के धार पर निकाले जाते हैं। इनमें क्योंकि व्यापा- क लाभ भी होते हैं इसलिए अधिक इच्छा यही ता है कि शीघ्र आराम करे। बुखार, सरदर्द दि की कितनी ही औषधियां निकली हैं और व इस विचार से कि बस एक दो गोली खाओ र सिर पीड़ा बन्द, बुखार पसीना आकर टूट ने, दर्द बन्द होवे। चाहे अगले दिन या कुछ न बाद फिर शुरू जावे इन औषधियों से रोग ता नहीं दब जाता है। और दिन प्रतिदिन पीड़ा ती जाती है! मुझे एक स्वामी जी का हाल लूम है जिनको ऐस्प्रीन यहां तक दी गई कि तिदिन १०-१० गोली भी खाते रहे।

डाक्टर ए० के० डान (A. K. done) स्टेन- र्ड यूनिवर्सिटी अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर खते हैं जब बच्चों को कोई भी रोग हो तो को ज्वर तो हो ही जाता है और चिकित्सक सब पहले ज्वर उतारने का प्रयत्न करता है और कड़ों औषधियां ज्वर को फौरन उतारने वाली में कई देता है अर्थात् वह लक्षण पर आक्रमण कर रहा है असली रोग पर नहीं जोकि हानिकारक है। ज्वर कुछ दिन १०४° डिग्री या अधिक भी रहे तो कोई हानि नहीं होगी। असली रोग का पता लगाना चाहिए।

आजकल वैद्य, हकीम भी इस ओर चल पड़े हैं क्योंकि रोगी डिमांड ही यह करते हैं कि हमको शीघ्र आराम आ जावे। बस वह भी इन्हीं परी- क्षणों पर लगे हैं। कोई कोई होम्योपैथी के डाक्टर भी कुछ ऐसी ही भूल में पड़ रहे हैं।

जब कभी इस प्रकार की बातें देखता या सुनता हूँ तो मेरे मुंह से तो यही निकला करता है:—

"मारा आपके परीक्षणों ने"

कवि विनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य,
अमृतधारा भवन, देहरादून।

:: पृष्ठ ४४ का शेषांश ::

नाग बल्ली रसै घृष्टैः कर्कोटी कन्द गर्भितः।
मृन्मूषा सम्पुटो पक्त्वा सूतो यात्यव भस्मताम्॥

अर्थ-पारे को नागरबेल पान के रस में खरल करें और ककोड़े के कंद (जड़) में रखकर उसीकी डाट लगाकर उस पर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखावें और मिट्टी के सराव सम्पुट में बन्द करके उस पर भी कपड़मिट्टी करें और सुखालें। जंगली अरनों की हलकी पुट दें तो पारे की अवश्य भस्म होवे। यह भस्म सर्व कार्यों में बरतें। अग्नि भूधर यंत्र द्वारा दी जानी चाहिये।

नोट—ककोड़े का कन्द सा होता है। यह बांझ ककोड़े जङ्गली करेले की जड़ होती है, यह मोटी शकलकन्दी के समान होती है, ऊपर से लाल सा रङ्ग और अन्दर से सफेद होती है। गाय-भैंस चराने वाले ग्वाले इसे जानते हैं।

बूटियों द्वारा जो रस सिद्धि (पारद भस्म आदि) की जाती है वही रस अर्थात् पारद 'पार करने वाला' दुःखों को मिटाकर सुख देता है और असाध्य रोगों को जड़ से नष्ट करके शरीर को बलवान बनाता है। बूटी द्वारा फूंका हुआ पारद श्वेत उज्ज्वल और हलका होता है।

—कवि० डा० श्रीराम शर्मा एल. ए. एम. एस.,
१५५६/२६ नाईबाला, करौल बाग, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षट्बिन्दु तैल के सद्गुणों का अनुभव

वैद्य मोतीशङ्कर वर्मा

मैंने धन्वन्तरि में वैद्य श्री रूपनारायण जी कोठारी का लिखा हुआ एक लेख पढ़ा उसमें षट् बिन्दु तैल का उल्टा अवगुण का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "मेरे औषधालय में एक रोगी आया और मैंने षड् बिन्दु तैल की २-३ बूंद उस रोगी की नाक में डाल दीं। ज्यों ही मैंने तैल डाला तो रोगी की नाक में जलन और बेचैनी बढ़ने लगी। यह बेचैनी कई उपचार करने पर भी ठीक न हो सकी" यह उनका लिखने का अभिप्राय ठीक है।

(१) षट् बिन्दु तैल में कोई अवगुण नहीं हैं और न कोई फार्मेसी का ही दोष है। मैंने भी इस तैल का काफी अनुभव किया है। यह नूतन प्रतिश्याय के अन्दर काम अच्छा करता है। पुराने प्रतिश्याय जिसे दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं जो कि बहुत पुराना होता है उसमें यह उपयोगी नहीं।

(२) मैं करीब ३-४ वर्ष पहले प्रतिश्याय रोग से पीड़ित था। एक दिन मैंने भी इस तैल की २-३ बूंद नांक में डाली। ज्यों ही मैंने नाक में तैल डाला तो मेरी भी यही हालत हुई जैसी वैद्यराज के बीमार की हालत हुई थी। बेचैनी बहुत बढ़ने लगी। मैंने तुरन्त एक गीला कपड़ा ललाटास्थि पर रक्खा और नाक में २-३ बंद बादाम रोगन की डाल लीं। २०-२५ मिनट बाद मुझे बिल्कुल आराम हो गया और दर्द तथा बेचैनी फौरन दूर हो गई।

(३) मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पुराने प्रतिश्याय से दिमाग में व्रण हो गए हैं और इसके कारण ही मेरी यह हालत हुई है। १ या २ माह से जिस रोगी को यह रोग हो जाता है तो उसकी यह हालत नहीं होती है। मैं भी इसका प्रयोग करता हूँ। जलन का खास कारण यह है कि षड् बिन्दु तैल के अन्दर 'सोंठ व सैंधानमक' मिला देने के कारण यह व्रण के अन्दर जलन पैदा करता है। यही कारण है कि बीमार को बेचैनी महसूस होती है क्योंकि सोंठ कटु रस है और सैंधानमक क्षार है अतः यह तैल बहुत अच्छा साबित हुआ। क्योंकि

(४) एक बच्ची जिसकी उम्र १२-१३ वर्ष की थी मेरे औषधालय में आकर कहती है कि मुझे नाक से सांस आती है और मैं २-३ वर्ष से मुंह से श्वास लेती हूं। मैंने यन्त्र द्वारा नासिका की जांच की तो श्लेष्म कला फूली हुई थी। जिसके कारण वह बच्ची श्वास नहीं ले सकती थी। मैंने इसी तैल का प्रयोग किया तो ६-७ दिन के बाद वह लड़की ठीक हो गई और आराम से नाक के द्वारा श्वास लेने लग गई। इस बात को करीब १॥ वर्ष हो गया है। जबकि डाक्टर लोग इस बच्ची के आपरेशन के लिये कहते थे। लेकिन घर वाले आपरेशन नहीं करवाना चाहते थे। षट्बिन्दु तैल ने रामबाण जैसा कार्य कर दिखाया।

वैद्य बन्धुओं से निवेदन है कि दुष्ट प्रतिश्याय (पुराना प्रतिश्याय) रोग में इस तैल का प्रयोग न करें।

—वैद्य श्री मोती शंकर वर्मा आयुर्वेद रत्न
महेश आयुर्वेदिक चिकित्सालय
बावड़ी रोड, बूंदी (राज०)

षड्बिन्दु तैल प्रयोग विपत्ति

कविराज रवीन्द्रनाथ चौधरी

नस–यह एक नाजुक वा Sensetive organ है। इसमें बाह्य उत्तेजक पदार्थों तथा उनके प्रभाव से बचने के लिये Cilia वा बाल तथा Ciliary membrane रहते हैं। उसमें अल्प उत्तेजना मिले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो छींकें आना शुरू होती हैं। आदमियों को बेहोश करने के लिए प्रधानतया नाक के द्वारा ही अधिकतया संज्ञानाशक द्रव्य प्रयोग किये जाते हैं।

नाक की *nerve-supply* प्रधानतया *fifth Cranial nerve* के *second division* द्वारा होती है। वह *spleno-palatine nerves* द्वारा *spheno-palatine gangtion* से सम्बन्धित है। यह *spheno-palatine ganglion* नाक का अधिकांश *sensory* कार्य का केन्द्र है। अग्रिम *(anterior)* व उपरिस्थ *(upper)* भाग *fifth cranial nerve* का *Ophthalmic division* का *nuso-ciliary branches* अर्थात् *anterior ethmoidal nerves* से नाड़ी प्रवाह प्राप्त होता है। वे *cribriform plate* से नाक के बहिर्भाग में आते हैं। *Carotid plexus* से *deep petrosal nerve spheno-palatine ganglion* से आकर *sympathetic supply* देता है।

गन्ध ग्रहण का कार्य *Olfactory nerve* से होता है जो *Cribriform plate* से नाक में आकर *nasal septum* के उपरिभाग व *superior Concha* की *medial wall* में आता है।

उपरियुक्त बातों से यह स्पष्ट है कि नासा विवर में जो नाड़ीतन्तु आते हैं अथवा यहां से मस्तिष्क में जाते हैं, उनका मस्तिष्क से अति निकट सम्बन्ध है। इसीलिये अगर नाक में कोई दवा प्रयोग की जाय तो वह शीघ्र ही Cranial sinuses में प्रभाव दर्शाती है जिसके कारण शिर के दर्द आदि में लाभ होता है तथा brain में उत्तेजना उत्पन्न होती है। मूर्च्छाग्रस्त रोगी को ज्ञान लाने के लिये नाक में शिरोविरेचन नस्य या smelling salts सूंघने के लिये दिया जाता है। इससे उत्तेजना उत्पन्न होकर शीघ्र संज्ञा लाने में सहायता होती है।

प्रस्तुत रोगी में षड़बिन्दु तैल की यह प्रक्रिया (reaction) निम्न कारणों से हो सकती है—

(१) रोगी के नासा-विवर में nasal septum या nasal turbinates inflamed वा hypertrophied वा ulcerated हो सकते हैं। इससे nerve filaments वा नाड़ी तन्तु exposed व अपावृत्त हो सकते हैं। इसके कारण इसमें कोई उत्तेजक पदार्थ पड़ने से मस्तिष्क में भी irritation वा क्षोभ हो सकता है जिससे रोगी को बेचैनी वा घबड़ाहट होती है। (२) रोगी allergic हो सकता है। अर्थात् रोगी की वातिक प्रकृति होने के कारण यह प्रतिक्रिया हो सकती है। रोगी को षटबिंदु तैल सहन करने की शक्ति नहीं है। किसी किसी रोगी को कोई कोई औषधि सहन करने की शक्ति नहीं होती है। (३) षट्बिंदु तैल दो अधिकार में पाया जाता है। एक कुष्ठाधिकार का है जो चर्म में लगाया जाता है। यह सरसों का तैल, घी, अर्क दुग्ध, गौमूत्र, हरताल, मीठा तेलिया, ईशलांगला, मैनसिल, कूठ, चितामूल, थूहर का दूध, सरसों, हिंग, गन्धक आदि तीक्ष्ण द्रव्यों के साथ पकाया जाता है। यह अतीव तीक्ष्ण औषधि है। स्वभावतः यह नाक में लगाने से तीव्र क्षोभ होगा। दूसरा षट्बिन्दु तैल इतना तीक्ष्ण नहीं है, परन्तु स्निग्ध है। यह शिरोरोग अधिकार का है। यह तिल तैल छागी दुग्ध, भृङ्गराज स्वरस, रास्ना, जीवन्ती, दालचीनी, मुलैठी आदि शामक औषधि से पकता है। यही नासा में नस्यरूप में प्रयुक्त होना चाहिए। वैद्य जी का प्रयुक्त षड़बिन्दु तैल कौन षड़बिन्दु तैल है—यह कुष्ठ रोगाधिकार का है या शिरो रोगाधिकार का है यह बात औषधि प्रस्तुतकारी संस्था से पता लगाना चाहिए। (४) षड़बिन्दु तैल शिरो रोगाधिकार का होते हुए अगर यह शीघ्रातिशीघ्र बनाया जाय तो इससे लाभ नहीं होगा तथा इसमें हानि वा प्रतिक्रिया होने की सम्भावना है। क्योंकि तैल, घी आदि बनाने में औषधियों का वीर्य अच्छी तरह तैल, घी में ग्रहण करने के लिये यथेष्ठ समय देना आवश्यक होता है। अतः औषधि प्रस्तुतकारी संस्था से यह पता लगाना चाहिए कि यह प्रस्तुत करने में कितने दिन वा समय लगा था। क्योंकि अगर यथेष्ठ समय न दिया होगा तो तैल उसे पूरी तौर पर ग्रहण नहीं करेगा तथा कल्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या क्वाथ द्रव्य तथा स्वरस व दूध हानि उत्पन्न करेगा। (५) प्रस्तुत रोगी में उपरियुक्त कारणों में से कोई कोई कारण हो सकते हैं।

इस प्रतिक्रिया की चिकित्सा में प्रथम चिकित्सा क्रम है—नाक के अन्दर जल सिञ्चन द्वारा यथा-शीघ्र प्रयुक्त तैल को बाहर निकालना चाहिए। मुझे इस प्रकार के दो रोगियों का अनुभव है। एक को प्रतिश्याय के लिये कट्फलादि नस्य दिया गया था। नस्य लेने के साथ ही साथ उसको बार बार छींकें आने लगी। इतनी मात्रा में छींकें आने लगी कि रोगी परेशान हो गया। उसको बार बार नासा विवर में जल सिञ्चन किया गया। उसीसे रोगी को आराम हुआ। दूसरा रोगी Liq. Ammonia fort. की शीशी खुलने के समय कुछ असावधान था, जिसने उसकी एकाएक बार्पी नाक में जाकर रोगी का श्वासावरोध उत्पन्न किया। उसमें भी रोगी को केवल जल सिञ्चन द्वारा शान्ति मिली। इसके अतिरिक्त षट्बिन्दु तैल तीक्ष्ण शिरो विरेचन रूप से कार्य करने के हेतु इसमें कुछ स्नेहन नस्य जैसे गाय का घी नाक में धारण उपयोगी है। सिर में ताजा घी देने से उतना लाभ नहीं होता है। इसके बजाय शतधौत पुरातन घृत या केवल पुराना घी प्रयोग भी हितकर है। गुलाब जल नाक में देने से और उत्तेजना बढ़ेगी, यह मेरी धारणा है। घबराहट को आशुप्रतिकार के लिये अर्जुनारिष्ट वा द्राक्षासव के बजाय बृ० वातचिन्तामणि व मकरध्वज या मोतीपिष्टी लाभदायक है। निद्राकारक औषधि भी लाभकारी हैं।

इस विषय में मैंने अपना विचार प्रकट किया है। वैद्य जी इससे बुरा न मानें यह मेरी विनम्र प्रार्थना है।

—श्री रवीन्द्रचन्द्र चौधरी
तिब्बिया कालेज, नई देहली

धन्वन्तरि
विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन है।

:: पृष्ठ ४५ शेषांश ::

इन औषधियों के उपरोक्त प्रकार से नाम व गुण भी दिये गए है। अन्य उद्देश्य न हो कर केवल प्रसंगवश इसका यहां उल्लेख किया गया है।

जिस प्रकार भक्तगण अपने इष्ट की उपसाना करते हैं। यदि वे वास्तविक ढंग से अपनी सिद्धि के निर्मित इन्हीं औषधि प्रतिमा, इसी वृक्ष का सिंचन, परिक्रमा, जाप, लेप और सेवन किया तो निश्चयत् फल की प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि इसमें वैज्ञानिक आधार मिलता है। मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति भ्रमवश इस ओर विमुख होते जा रहे हैं वे इसके महत्व को समझें। लेकिन उनके प्रयोग के ढंग को भी समझने के लिए प्रयत्न करना चाहिए जिससे देश में बनौषधियों के संरक्षण और उत्पत्ति में योग प्रदान कर सकेंगें। उनके द्वारा वायु में प्रसारित प्रभाव से वातावरण में एक प्रकार का परिवर्तन आरोग्यता के लिए श्रेष्ठतम् होगा।

वैद्य श्री मुरलीधर श्रीमाली साधक
गजनेर रोड (गिनानी का नाला), बीकानेर।

जीवतिक्त विमर्श या विटामिन तत्व

मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश सरकारों द्वारा विद्यालयों एवं पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत तथा पुरष्कृत अपने विषय की हिन्दी में अत्युत्तम-पुस्तक अनेकों चित्र एवं तालिकाओं के द्वारा विषय को सुबोध ग्रन्थ बना दिया है, चिकित्सकों एवं विद्यार्थियों के लिए अवश्य पठनीय। मूल्य ५.००

राजवैद्य डा० प्रभाकर चटर्जी आयुर्वेद वृहस्पति
द्वारा लिखित

-तीन अत्युपयोगी पुस्तकें-

राजयक्ष्मा चिकित्सा-क्षय (राजयक्ष्मा) का विस्तृत वर्णन, सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा। मू० १०.००

कैंसर रोग चिकित्सा—अपने विषय की हिन्दी में सर्वोत्तम पुस्तक। मूल्य ६.००

रस चिकित्सा। मूल्य ६.००

पता-धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषधि विवेचन

अपामार्ग का गर्भाशय पर प्रभाव

श्री डा० रामचन्द्र झा

बचपन से ही मैंने बराबर बूढे लोगों को देखा है कि बच्चा पैदा होने के समय अडौस पड़ौस से जड़ी मंगाकर गर्भिणी की कमर में बांध देते हैं या पीसकर काछ पर लगाते हैं। हिदायत कर दी जाती है कि खबरदार बच्चा पैदा हो जाने पर तुरन्त खुलवा देना अन्यथा गर्भाशय बाहर निकलने का भय बना रहता है।

उक्त रहस्यों को बराबर देखने का मौका मिला। पश्चात् वयस्क होने पर पता लगाया तो उस जड़ी का नाम अपामार्ग है। तत्पश्चात् उसके गुणों की खोज बराबर करने लगा। एक दमा के रोगी को मेरे भाई साहब चूड़ा दही के साथ एतवार को १० तोला रोगी के ही हाथ से पिसवा कर ६ मिरच (गोल) खिलाते आते हैं। पीसते समय किसी की छाया न लगे इसलिये सबेरे पुरब मुंह बैठाते हैं) बहुतों को आराम भी होते देखा। पं० रामकरण मिश्र आयुर्वेदाचार्य उप सभापति वैद्य सभा दरभंगा जिला ने कहा था कि अपामार्ग की जड़ को अच्छी तरह पिसवा कर हैजा में देता हूं जिससे उल्टी दस्त के अलावा उसकी नाड़ी की गति भी ठीक हो जाती है।

इन सब बातों को सोच कर मैंने झांसी की इन्जेक्शन बनाने वाली एक आयुर्वेदीय फार्मेसी को शुद्ध अपामार्ग का एम्पुल्स बनाकर भेजने का भी आर्डर दे दिया।

भावप्रकाश के निघण्टु खंड पर अम्बिकादत्त शास्त्री कृत आमयिक प्रयोग टीका में देखा कि सुख प्रसव तथा योनि शूल के लिये उत्तम प्रयोग किया गया है।

योनिशूले–पिष्ट्वा लिप्ते योनौ मूलं खर मंजरी पुनर्नवयोः।
नव सूताया शूलं योनि गतं सकलमपनयतः ॥
(वैद्य मनोरमा)

अपामार्ग पत्र द्वयं योनिमध्ये निविष्टः क्षणाद्योनि शूलं निहंति। सुदुर्वार मध्येवमेव प्रयुक्तोविद्ध्यात्

मूलं प्रत्यक पुष्पाः पाठायाश्च विनिवेतं।
गुह्ये स्त्रीणां दुस्प्रसवानां प्रसवं कुरुते सुखेनैव ।।

इन पंक्तियों को देख कर दृढविश्वास से मैंने अपामार्ग का प्रयोग सुख प्रसव के लिये प्रारम्भ कर दिया।

प्रथम अनुभव आज से तेरह वर्ष पहले अपनी स्त्री की तकलीफ पर किया जिन्हें तीन दिनों से कष्ट था

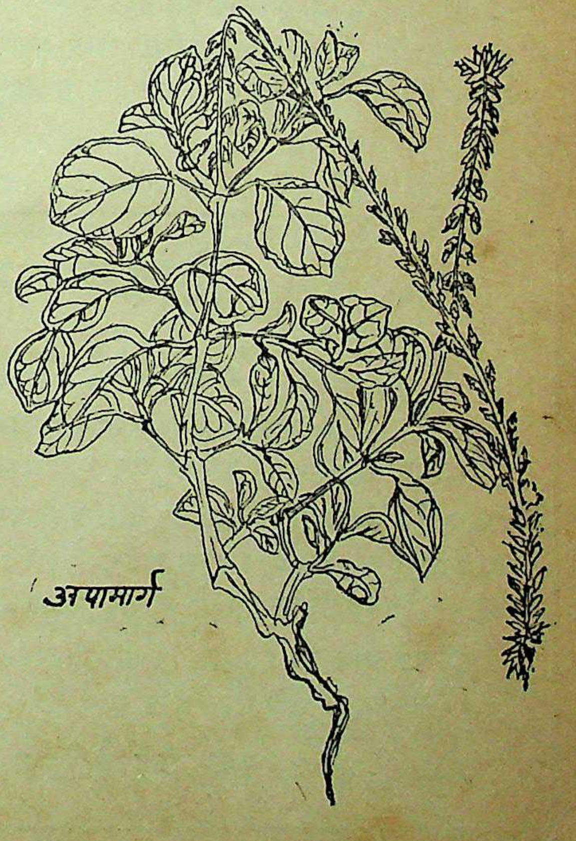

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. c.c. इन्ट्रावेनस दिया। २० मिनटों के बाद जाड़ा बुखार हुआ। उसके १० मिनटों के बाद बिना दर्द के लड़का पैदा हुआ। उसके हर प्रसव के समय उस सूई की इन्हें ख्वाइस रखती है। कष्ट को इस तरह दूर कर देता है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। हृदय की गति में मजबूती आजाती है। प्रसविनी को ऐसा मालूम होता है कि अभी बच्चा होगा ही नहीं। किन्तु बच्चा आहिस्ते से नीचे निकल पड़ता है। एलोपैथी में प्रसव कराने के लिये पिच्युट्रिन की सूई जो गर्भाशय मुख तीन अंगुल खुल जाने पर दिया जाता है सावधानी रखनी पड़ती है कि यदि तीन अंगुल से कम खुला रहेगा तो मूत्राशय आगे से संकुचित होने का भय बना रहता है और प्राण संकट आ सकता है। अपामार्ग में किसी तरह के संकट का सामना नहीं करना पड़ता है। सुन्दर सुख प्रसवकारक है। गर्भपात के लिये इसका प्रयोग निष्फल ही होता है बल्कि गर्भ की पोषण क्रिया बढ़ा देता है। मेरा अनुमान था कि पूरे नौ महीने बाद के प्रसव में ही काम करेगा किन्तु ऐसा नहीं है। ६ महीने या आठ महीने के भयंकर तकलीफ में भी प्रयोग किया और शान्ति पूर्ण फल पाया। मेरी पुत्रवधू का गत वर्ष ८ महीने के गर्भ नष्ट समय में प्राण संकट हो गया था। २ c.c. सूई देते ही सब कष्ट दूर हो गया और प्रसव हो गया। इस वर्ष उसके नौवे महीने के बाद मिथ्या प्रसव वेदना ६ दिनों तक था साथ साथ आंव पेचिस की शिकायत थी। एक सूई २ c.c. देते ही सब तकलीफ दूर हो गई और दो दिनों बाद सुख प्रसव स्वभाविक हुआ।

सहदेव ठाकुर मु० पो० छतौना की पत्नी को ६ वें महीने में ५ दिनों तक बहुत तकलीफ थी। २ c.c. सूई दिया! २ घंटों के बाद साधारण तकलीफ के साथ प्रसव हुआ।

नरसिंह ठाकुर हजाम मु० रसलपुर पो० छतौना की पहली पत्नी समस्तीपुर हौस्पीटल में औपरेसन से मर गई। उसकी दूसरी पत्नी को वैसा ही कष्ट हुआ। २ c.c. सूई देने के २० मिनटों के बाद सुख प्रसव हो गया। चरित्र सहनी मु० माधोपुर पो० छतौना की लड़की को प्रथम प्रसव कष्ट ३ दिनों से चल रहा था सूई देने के २० मिनटों के बाद सुख प्रसव हो गया।

—श्री रामचन्द्र झा शास्त्री I. M. B. I.
समस्तीपुर (दरभंगा) विहार

टिकिया बनाने की मशीन
Tablet making Machine

इस मशीन से आप स्वयं टिकिया (टेबलेट) बड़ी आसानी से बना सकेंगे। इस मशीन की सहायता से २ रत्ती, ४ रत्ती, ६ रत्ती के लगभग की टेबलेट बनाई जा सकती हैं। इसके लिए तीन डाई हैं जिस पर टेबलेट की गोलाई निर्भर करती है। टेबलेट की मोटाई आप प्रत्येक साईज में इच्छानुसार कम या अधिक कर सकते हैं। उन चिकित्सकों के लिए जो थोड़ी तादाद में लेकिन एक नाप की टेबलेट बनाना चाहते हैं, यह अत्युपयोगी मशीन है निकिल की हुई यह मशीन सस्ती होते हुए भी बड़े काम की है। एक घण्टे में २०० टिकिया आसानी से बन सकती हैं। रियायती मूल्य ११.०० रु० मात्र, पैकिंग एवं डाक खर्च १.२५ पृथक्।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसिद्ध प्रयोग

गर्भश्राव-गर्भपात–

(१) कल्बुलहज्र (पत्थर का दिल) १ रत्ती, चांदी वर्क १ नग, वंशलोचन १ माशा, मुक्तापिष्टी ½ रत्ती, मुनक्का २ नग यह १ मात्रा है।

विधि—प्रथम चार वस्तुओं को एक जीव बनालें फिर उसमें मुनक्का बीजरहित मिला गोली बनालें। इस गोली को १ गुठली निकले छुहारे में भरकर ऊपर से डोरा-धागा लपेट कर गाय का दूध आध सेर में डाल पकावें; आवश्यकतानुसार मिश्री मिलालें। जब छुहारा सिद्ध हो जाय तब उतार लें और ठण्डा होने पर छुहारे पर से डोरा प्रथक कर उसे खाकर ऊपर से दूध पीलें। बस एक बार सेवन करते ही गर्भश्राव या गर्भपात होते हुए रुक जायगा, फिर प्रतिमास इसी तरह बनाकर एक बार लिया करें, इस प्रयोग से रोग सदैव के लिये मिट जायगा। और साथ में गर्भाशय के सर्व विकार समाप्त हो गर्भाशय में बच्चे को पोषण में वृद्धि करके बच्चा बलिष्ठ उत्पन्न होगा।

(२) संगजराहत ६ माशा, बंशलोचन ६ माशा, छोटी एला ३ माशा, मुक्तापिष्टी ३ रत्ती, बारीक चूर्ण बनालें। समभाग मिश्री मिलालें।

मात्रा–१-१ माशा प्रति १-१ छटांक अन्तर से गाय के दूध की लस्सी के साथ सेवन करें, बस तीन मात्रा पर्याप्त होंगी। इससे शूल सहित गर्भश्राव या गर्भपात होते हुए रुक जायगा।

(३) नारंगी की छाल का क्वाथ बनालें और पीपल वृक्ष की अन्तःछाल का चूर्ण ६ माशा को फांक कर ऊपर वही क्वाथ पीलिया जाय। एक मात्रा ही पर्याप्त होगी। यदि आवश्यकता समझें तो १-२ मात्रा और दे सकते हैं।

(४) कुम्हार के हाथ में लगी माटी २ तोला, बकरी दूध २० तोला, शहद २ तोला मिलाकर पिलाया जाय। इससे भी शूलसहित गर्भश्राव या गर्भपात होते हुए रुक जायगा।

—श्री त्यागी त्रिवेदी दास,
चम्पागुफा, आबू।

सर्प विष पर अनुभूत—

अंकोल (अंकोर, ढेरा, अंकोली इत्यादि) की छाल को मूल की ओर से पकड़ कर ऊपर की ओर खींचते हुए उतार लें। इसका चूर्ण करलें। इस चूर्ण की मात्रा ४ माशा तक है।

गुण–यह चूर्ण केवल वमन करने के लिए दें।

अंकोल की छाल के ऊपर की ओर से पकड़कर नीचे की ओर खींचते हुए उतारलें। इसका भी चूर्ण करलें। इसकी मात्रा भी ६ माशा तक है।

गुण–यह चूर्ण केवल दस्त कराने के लिए दें।

यह तो रही अपनी विशेषता, अब योग विशेषतः सर्प विष पर-दोनों प्रकार के प्रयोगों को मिलाकर ६ माशा की मात्रा में जल में घोटकर १५-१५ मिनट में समभाग गौघृत मिलाकर पिलाते रहें। दस्त तथा वमन होकर विष निकल जायेगा। रोगी बच जायेगा।

२—अंकोल की छाल प्रथम विधि से उतारी हुई ६ माशा समभाग राई मिलाकर क्वाथ कर पिलाने से वमन होकर कफ निकल जाता है। इससे पुराना दमा तथा कास नष्ट हो जाते हैं। चावल घृत का पथ्य देना चाहिए। परम अनुभूत है।

—श्री वैद्य मौहरसिंह हितैषी
मिसरी (महेन्द्रगढ़)

त्रिधातु अंजन––

एक तोला यशद की खील करके उसे कांसी के कटोरे में ताम्र के (उब्बली) पैसे के साथ मर्दन करें। धीरे धीरे यशद नीले रंग में परिवर्तित हो जायेगा। बस अंजन तैयार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण—नेत्रस्राव, नेत्रशूल, अक्षिपुट पिटिका, नेत्रपूय, नेत्र रक्तिमा, नेत्राभिष्यन्द, पोथकी इन सब रोगों में शतशोऽनुभूत है।

रक्तप्रदरान्तक—

गेरू ३ माशा, अशुद्ध श्वेत फिटकिरी ३ माशा, काजनी ३ माशा। यह १ मात्रा है।

ऐसी तीन मात्रा प्रातः मध्यान्ह एवं सायं दही की लस्सी के साथ खावें। भयानक रक्तप्रदर, रक्तस्राव में लाभ होता है।

—श्री नन्दलाल शर्मा आयुर्वेदरत्नाचार्य
गवर्न. आयु० डिस्पेंसरी, कोरवाखुर्द (अम्बाला)

रसायन—

नं० १—त्रिफला सत, गिलोय सत, गोखरूसत, सतावर सत, असगंध सत प्रत्येक ५-५ तोला बनाकर रखलें।

नं० २—पुनः बीज बन्द, तुलसी बीज, बिधारा बीज, कौंच बीज, लजनी बीज या पत्र ३-३ तोला लेकर कूट कपड़छन कर चूर्ण करें और ऊपर नं० १ वाली सब दवा नं० २ में मिलाकर एक जीव करें और बोतल में रख काग लगादें। दवा तैयार है।

सेवन विधि—उपरोक्त मिश्रित दवा १ माशा, मिश्री १ तोला, गाय या बकरी का धारोष्ण दूध १ पाव सुबह शाम लेलें।

गुण—शारीरिक क्षीणता, कमजोरी, स्मृतिमंद, पुराना ज्वर, तपैदिक, मलावरोध, क्षुधामंद, पुराना ज्वर, खून की कमी आदि रोगों को नष्ट कर शरीर तथा सर्वाङ्गों को पुष्टकर, व्याधि रहित करके बजन और ताकत बढ़ाती है।

पथ्य—गेहूं, चावल, आलू, टमाटर, चौलाई या बथुआ का साग, दूध, घी, शक्कर आदि।

अपथ्य—गुड़, तैल, खटाई, लाल मिर्च नसे की चीजें।

नोट—इस योग में A. B. C. D. E. आदि विटामिनों की प्रचुर मात्रा है और आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार इसमें रसायन औषधियां डाली गई हैं। रसायन औषधियां जरा व्याधिनाशक होती हैं। यह दवा प्रत्येक मिजाज वाले स्त्री, बालक, वृद्ध तथा युवकों के हर मौसम में बराबर लाभ करती हैं।

—श्री वैद्यराज भण्डारीलाल बरही (जबलपुर)

मुख विरेचन—

इमली तोला सात मंगावो,
संध्या को जल सेर मिलावो।
प्रातः घोटकर छानो भाई,
गुलकन्द तोला चार मिलाई॥
त्रय माशा सनाय मिलावो,
इस रेचन सों कष्ट मिटावो।
उष्ण प्रकृति जन कष्ट मिटावो,
'फय्याज' पीकर सुख उपजावो॥

रक्तवर्द्धक—

नौ तोला लोह मैल पुराना,
त्रिफला भी ले यही समाना।
साफ कड़ाही में डलवाओ,
खट्टा दही ता पर गिरवावो॥
चार उंगली दही ऊपर आवे,
चार दिवस यों ही रखवावो।
डेढ़ तोला सोंठ मिलवाओ,
घुटते घुटते खुश्क कराओ॥
खट्टे दही की लस्सी बनाओ,
या चूरन त्रय माशा खाओ।
प्लीहा जिगर के दोष हटावे।
रक्त कमी इससे मिटजावे॥
कांति बढ़े कुन्दन सम सारी,
'फय्याज' या चूरन गुणकारी।

प्रमेहहर—

विषतिन्दुक मंगवाय के कारी मिरच मिलाय।
इन्हें झीनो पिसाय के रत्ती सम वटी बनाय॥
शीत प्रकृति प्रमेह में गोली चार नित खाय।
'फय्याज' भोजन भी पचे प्रमेह रोग भी जाय॥

—श्री शेख फय्याज खां
आयुर्वेद शास्त्री, एम. डी. एच. बिशारद,
भीनमाल (जालोर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार एवं सूचनाएं

आयुर्वेद महा सम्मेलन–

आयुर्वेद को एलोपैथी के समकक्ष मान्यता देने की मांग

नई दिल्ली, २९ अप्रैल 'यह बड़ी बिडम्बना है कि अपनी ही सरकार की छत्रछाया में आयुर्वेद को क्षति और आघात पहुँच रहा है। यदि यही अवस्था एक दशाब्दी और रही तब इस देश में आयुर्वेद का कोई नाम लेवा और पानी देवा भी नहीं रहेगा। और कोई भी व्यक्ति संस्कृत में लिखित आयुर्वेद के ग्रन्थों को समझने वाला ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।'

उक्त शब्द आज तिबिया कालेज में आयोजित अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३ वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कविराज अनन्त त्रिपाठी शर्मा ने कहे।

कविराज शर्मा ने कहा कि यह कितना वैचित्र्य है कि भारत सरकार ने समय समय पर दिखावटी रूप में आयुर्वेद के विकास के लिये जो भी समितियां गठित कीं उनमें आयुर्वेद जानने वाला एक भी व्यक्ति सदस्य नहीं रखा गया।

१८३५ में मैकाले ने इस देश पर एलोपैथी को बलन्त लादा तथा विद्यालयों में आयुर्वेद इस देश की परम्परागत चिकित्सा प्रणाली के पठन पाठन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तभी से इस देश में आयुर्वेद का पतन प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों के इस सौतेले व्यवहार के बावजूद आयुर्वेद की सत्ता बनी रही। १८३५ से लेकर अब तक पौने दो सौ वर्षों के बाद भी एलोपैथी से केवल २० प्रतिशत जनता ही लाभ उठा रही है। जबकि शेष जनता आयुर्वेद से ही स्वास्थ्य लाभ कर रही है।

आयुर्वेद के लिए एलोपैथ समितियां–

कविराज शर्मा ने कहा कि अंग्रेजों की आयुर्वेद के लिए जो भावना रही वह अभी तक जारी है। कांग्रेस संगठन द्वारा आयुर्वेद को देश की महत्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति घोषित करने के बावजूद कांग्रेस सरकार का रवैया बड़ी वफादारी के साथ ब्रिटिश कालीन परम्परा का ही अनुसरण कर रहा है। १९४७ की चोपड़ा कमेटी में १० सदस्यों में केवल एक ही वैद्य था। पण्डित कमेटी में भी जिसमें इतने ही सदस्य थे, केवल २ वैद्य थे। पुनः दवे कमेटी में जिसकी सदस्य संख्या भी काफी थी एक ही वैद्य लिया गया था। इसका स्पष्टतः परिणाम यह हुआ कि इसकी सिफारिशें आयुर्वेद के लाभ के लिए न होकर उसको क्षति पहुँचाने वाली ही हुईं। सरकार को यह सुबुद्धि कैसे आई कि आयुर्वेद विकास के लिए एलोपैथ डाक्टरों से परामर्श लिया जाय जो कि इस पद्धति के स्वभावतः विरोधी हैं।

इस बारे में कविराज शर्मा ने अखिल भारतीय मैडिकल कौंसिल के अध्यक्ष डा. सी. एस पटेल के उस अध्यक्षीय भाषण का उल्लेख किया जिसमें उन्होंने एलोपैथ डाक्टरों का प्रतिनिधित्व करते हुए सरकार से मांग की थी कि देश में केवल एलोपैथिक चिकित्सा के ही पठन पाठन की अनुमति दी जानी चाहिए। यह खेद की बात है कि भूतपूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृतकौर ने भी यह विचार व्यक्त किया था कि आयुर्वेद को यदि मान्यता दी जायगी तो सरकार का खर्चा अनावश्यक रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुगना हो जायगा ।

आयुर्वेद की मान्यता -

कविराज अनन्त त्रिपाठी शर्मा ने इस बात की प्रबल मांग की कि सरकार आयुर्वेद को मान्यता प्राप्त चिकित्सा पद्धति घोषित करे। उन्होंने यह भी मांग की कि सरकार अविलम्ब एक केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद की स्थापना करे तथा आयुर्वेद के विकास के लिए उसके परामर्श पर कार्य किया जाय। इस बात को भी सावधानी बरती जाय कि केवल आयुर्वेद के जानने वाले ही इस परिषद के सदस्य हों।

शुद्ध आयुर्वेद -

कविराज शर्मा ने कहा कि पयोमुख विष कुम्भ के समान आयुर्वेद के विकास के लिए निर्मित एलोपैथ डाक्टरों की समितियों के सुझाव पर देश में आयुर्वेद की शिक्षा के साथ एलोपैथी को भी जोड़ दिया गया है इससे देश में एक विभ्रम पैदा हो गया। इस प्रकार से ये लोग जहां दोनों ही पद्धतियों में अधूरे रहते हैं वहां वे सरकार द्वारा आयुर्वेद को समुचित और एलोपैथी के समकक्ष मान्यता न मिलने के कारण अपने को वैद्य कहलाने के बदले डाक्टर कहलाना पसन्द करते हैं। इसके साथ ही एलोपैथ भी उन्हें डाक्टर मानने को तैयार नहीं इस प्रकार इनकी स्थिति इतोभ्रष्टः ततो भ्रष्टः जैसी है।

उन्होंने यह सुझाव दिया कि ऐसी स्थिति में आयुर्वेद के विकास के लिए आवश्यक है कि आयुर्वेद कालेजों में 'शुद्ध' आयुर्वेद को ही पढ़ाया जाय। तथा आयुर्वेद के पाठन में सारे देश में एकरूपता रखी जाय।

आयुर्वेद के साथ भेदभाव-

कविराज शर्मा ने कहा कि देश में एलोपैथिक और आयुर्वेदिक डिस्पेंसरियां की संख्या समान है फिर भी इन पर व्यय होने वाली राशि का अनुमान क्रमशः ९५ प्रतिशत और ५ प्रतिशत है। ऐलोपैथी इतनी महंगी होने पर भी बहुत थोड़े व्यक्तियों को लाभ प्रदान करती है। कविराज शर्मा ने श्री मुरार जी देसाई के इन शब्दों को उद्धृत किया "सरकार एलोपैथी की तुलना में उसकी एक चौथाई राशि भी खर्चे और जितना एलोपैथी पर ध्यान देती है उसका दसमांश भी आयुर्वेद पर ध्यान दे तो मुझे विश्वास है कि एलोपैथी और आयुर्वेद का विवाद मिट जाएगा और आयुर्वेद की उत्कृष्टता स्वयं सिद्ध हो जायेगी।"

कविराज जी ने अपने भाषण में विस्तार से आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर भी प्रकाश डाला तथा कहा कि यह पंचम वेद है। उन्होंने यह भी मांग की कि आयुर्वेद का प्रशासन अलग और एलोपैथी के हाथ में नहीं होना चाहिए। वैद्यों के वेतन भी बढ़ाए जायें।

सम्मेलन में भारत और श्रीलंका के ४०० से अधिक प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं।

इससे पूर्व स्वागताध्यक्ष कविराज वैद्यनाथ सरकार ने अपना भाषण दिया। उन्होंने अपने भाषण में आयुर्वेद के विकास के लिए केन्द्रीय अनुसंधान परिषद की स्थापना पर बल दिया।

× × ×

भारत के लिए आयुर्वेद की उपयोगिता -

बीकानेर (डाक से)। आयुर्वेद कालेज के पारितोषिक वितरण समारोह में अमेरिका में नेपाल के राजदूत श्री मातृका प्रसाद कोइराला ने कहा कि आयुर्वेद में निदान और चिकित्सा का सामञ्जस्य होना जरूरी है। आपका भारत और मेरा नेपाल सम्पत्तिशाली देश नहीं है। जहां पहनने को वस्त्र खाने को भोजन और चिकित्सा के के लिए पैसे नहीं हैं उस देश के रहने वालों को आयुर्वेद की शरण लेनी पड़ेगी। आयुर्वेद से ही स्वल्प खर्च से बीमारियों से छुटकारा पा सकते हैं। अगर सरकार और समाज आयुर्वेद की कमी की पूर्ति कर सके तो यह विज्ञान आगे बढ़ सकता है।

× × ×

आयुर्वेदिक अनुसंधान केन्द्र का अनुदान वापिस मांगा गया

समाचार पत्रों से पता चला है कि भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार ने १६५८ के अन्त में कुछ रोगों के बारे में जो एलोपैथी में असाध्य रोग समझे जाते हैं, अनुसंधान कराने का फैसला किया था। एक असाध्य रोग जिगर की खराबी का था जो आमतौर पर शराब पीने से हो जाता है। यह तय हुआ था कि निगम के बल्लीमारान आयुर्वेदिक अस्पताल में इस रोग के बारे में अनुसंधान किया जाए और इसके लिए भारत सरकार तीन साल तक १२ हजार रुपया वार्षिक सहायता देगी। इसके लिए आयुर्वेदिक अस्पताल में आवश्यक स्टाफ रखा गया, एक प्रयोगशाला स्थापित गई और ६ पलंग ऐसे रोगियों के लिए सुरक्षित कर दिए गए। भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने ७ दिसम्बर १६६० को एक पत्र निगम को लिखा जिसमें यह कहा गया कि अनुसंधान कार्य बन्द कर दिया जाए और अनुदान की जो रकम बाकी बची हुई हो वह वापस करदी जाए।

सरकार ने यह भी लिखा है कि यदि अनुसंधान जारी रखना है तो किसी और रोग पर किया जाए और उसके अनुदान के लिए नया केस बनाकर भेजा जाए।

स्थायी समिति ने मेडिकल रिलीफ और पब्लिक हैल्थ कमेटी के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि भारत सरकार अनुदान बन्द करने और बची हुई रकम वापस मांगने के फैसले पर पुनर्विचार करे और तब तक अनुसंधान कार्य को जारी रखा जाए।

आयुर्वेद की सफलता—

श्री विजयकुमार मल्होत्रा (जनसंघ) ने स्वास्थ्य मंत्रालय के फैसले की कड़ी निन्दा की। उन्होंने कहा कि जिस रोग को एलोपैथी में असाध्य समझा जाता है उसे आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने साध्य करके दिखा दिया है। इससे जाहिर है कि भारत का स्वास्थ्य मंत्रालय देशी चिकित्सा पद्धति के प्रति क्या सलूक कर रहा है। उन्होंने कहा कि निगम को भारत सरकार के इस फैसले का कड़ा विरोध करना चाहिए और अनुसंधान कार्य जारी रखना चाहिए चाहे उसका खर्च निगम को ही क्यों न उठाना पड़े।

भारतीय चिकित्सा परिषद
(इण्डियन मैडीसन बोर्ड)

तीन विज्ञप्तियां

[१]

इस विज्ञप्ति द्वारा जनता को साधारणतः एवं आयुर्वेदज्ञों को विशेषतः सूचित किया जाता है कि भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश, लखनऊ तथा उक्त परिषद की फैकल्टी के निर्णय दिनांक १७-४-६१ के अनुसार अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय वाराणसी, अर्जुन दर्शनानन्द आयुर्वेद विद्यालय वाराणसी, मेरठ आयुर्वेदिक कालेज नौचन्दी मेरठ, बल्देव आयुर्वेद विद्यालय वाराणसी, आयुर्वेदिक कालेज देहरादून तथा आयुर्वेदिक कालेज अतर्रा (बांदा) में उपाधि पाठ्यक्रम के शिक्षण की उचित व्यवस्था कई वर्षों के उपरान्त भी नहीं हो पाई है और न निकट भविष्य में उपरोक्त विद्यालयों में आवश्यक सुविधायें होने की सम्भवना ही है।

अतः आयुर्वेद तथा उपाधि पाठ्य-क्रम के हित से फैकल्टी उपरोक्त संस्थाओं को नवीन सत्र १६६१-६२ तथा उसके आगे के लिए असम्बद्ध घोषित करती है तथा आदेश देती है कि उपरोक्त संस्थायें सन् १६६१-६२ के नवीन छात्रों को उपाधि पाठ्य-क्रम में प्रविष्ट न करें। साथ ही ललित-हरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत, ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार, गुरुकुल आयुर्वेदिक कालेज कांगड़ी तथा बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज झांसी को परामर्श देती है कि उपरोक्त छः विद्यालयों से आए हुए विद्यार्थियों को नियमानुसार तत् तत्कक्षाओं में प्रविष्ट होने कि सुविधा प्रदान करें।

[२]

भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश तथा तत् सम्बन्धित फैकल्टी ने अपनी बैठक दिनांक अप्रैल १७, १६६१ द्वारा राज्य सरकार से सिफारिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है कि सरकार बोर्ड के स्नातकों को भी पी० एम० एस० द्वितीय का ग्रेड देने पर सहानुभूति पूर्ण विचार करे जैसा कि राजकीय आयुर्वेदिक कालेज लखनऊ के बी० एम० बी० एस० स्नातकों को देने की घोषणा की है। इसके अतिरिक्त यह भी सिफारिस की है कि यद्यपि बोर्ड को उपाधि देने का पूर्ण अधिकार विधि द्वारा प्राप्त है तथापि यदि प्रादेशिक सरकार आयुर्वेदिक/यूनानी कालेजों का सम्बन्ध किसी मान्य विश्वविद्यालय से स्थापित कराने का प्रयत्न करे तो बोर्ड को कोई आपत्ति नहीं है।

[३]

धोखे से बचिये।

उत्तर प्रदेश इंडियन मेडिसिन बोर्ड के कार्यालय में आए हुए कतिपय पत्रों तथा बिभिन्न सूत्रों द्वारा विदित हुआ है कि लखनऊ से भारतीय आयुर्वेदिक कालेज न्यु हैदराबाद लखनऊ के नाम से एक ऐसा विज्ञापन देश के अनेक समाचार पत्रों तथा कुछ आयुर्वेदिक पत्रों द्वारा प्रसारित किया गया है जिसमें कि यह बताया गया है कि ६५) में घर बैठे एम. एस-सी. आयुर्वेदाचार्य की डिग्री दी जाती है। तथा इस उपाधि की शिक्षा डाक द्वारा तीन माह में दी जाती है। इसी के साथ इन कालेज वालों ने इस बोर्ड से रजिस्ट्रेशन करा देने की भी गारन्टी दी है और ६ महीने के अन्दर धारा ५० के खुल जाने की भी घोषणा की है।

इस विज्ञप्ति के द्वारा मैं समस्त वैद्य-हकीमों को सूचित कर रहा हूँ कि भारतीय आयुर्वेदिक कालेज नाम की कोई भी संस्था इस बोर्ड द्वारा मान्य नहीं है और न उसकी उपाधि ही मान्य है जिसके आधार पर वैद्य हकीमों का रजिस्ट्रेशन किया जा सके।

धारा ४ का रजिस्ट्रेशन १३ फरवरी १६५६ से बन्द हो चुका है। और धारा ५० के खुलवाने के लिए बोर्ड कई साल से निरन्तर प्रयास करता आ रहा है। किन्तु यह कब तक खुलेगी इसके लिए अभी कोई अवधि निर्धारित नहीं है।

अतः वैद्य हकीमों को इस विज्ञप्ति द्वारा सूचना दी जाती है कि वे ऐसी बोगस संस्था तथा उपाधि के चक्कर में न फंस कर व्यर्थ में अपने धन का दुरुपयोग न करें।

बोर्ड ने इस विद्यालय के सम्बन्ध में उचित कार्यवाही के लिए अधिकारियों को सूचना दे दी है जिससे कि वैद्य हकीमों को धोखे से बचाया जा सके।

—रजिस्ट्रार।

[उक्त विज्ञप्ति के विषय में निवेदन है कि हमने उक्त विज्ञप्ति में नामांकित संस्था का विज्ञापन कतिपय पत्रों में पढ़ा और उसके फार्म आदि संस्था के अधिष्ठाता से मंगायें। उन फार्मों में स्पष्ट उल्लेख है कि ५५.०० फीस लेकर ३ माह तक साप्ताहिक पाठ, प्रश्नपत्रादि भेजे जांयगे तथा पोस्ट से परीक्षा लेकर एम. ऐस-सी आयुर्वेदाचार्य की उपाधि दी जायगी तथा १०.०० रजिस्ट्रेशन फीस देने पर उनकी रजिस्ट्री इ०मैडीसिन बोर्ड से कराई जायगी। इन विवरणपत्र एवं फार्मों को पढ़कर रजिस्ट्रेशन के हजारों इच्छुक इस संस्था के चक्कर में फंसे होंगे यह संभव है तथा आगे भी फंसते रहेंगे। इस धोखे-धड़ी की ओर हमने बोर्ड के अध्यक्ष श्री दरबारीलाल जी शर्मा एवं उत्तर प्रदेश के उपस्वास्थ्य निर्देशक श्री माननीय मुकुन्दी लाल जी द्विवेदी का ध्यान आकर्षित किया। इसके परिणामस्वरूप उक्त विज्ञप्ति बोर्ड द्वारा प्रचारित की गई प्रतीत होती है। लेकिन हमको यह निवेदन करना है, कि क्या इस विज्ञप्ति मात्र से यह धोखा-धड़ी बन्द हो जायगी। बोर्ड ने एक बार २-४ पत्रों में विज्ञप्ति निकलवाई है, धोखा-धड़ी करने वाले अनेक पत्रों में धुआंधार प्रचार कर सकते हैं। विज्ञप्ति १०-२० हजार व्यक्तियों की निगाहों में पड़ेगी तो उनके विज्ञापन १०-२० लाख मनुष्य पढ़ेंगे। आवश्यक तो यह है कि इन संस्थाओं के विपरीत कानूनी कार्यवाही करके उचित दण्ड दिलवाया जाय जिससे कि ये इस प्रकार का अनैतिक कार्य न कर सकें तथा इसी प्रकार की अन्य अनेक संस्थाओं को भी भय हो। हमारी जानकारी में और भी इसी प्रकार की संस्थायें हैं जो निरर्थक सर्टिफिकेट या डिग्री देती या दिलाती हैं।

क्या हम आशा करें कि अधिकारी इस विषय में कड़ा कदम उठावेंगे ?

—सम्पादक ।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रति अन्याय

जयपुर। राजस्थान में यद्यपि एक आयुर्वेद मंत्री की नियुक्ति की गई है, किंतु आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के विकास व विस्तार की दिशा में कोई सराहनीय कार्य न हो सका।

दूसरी योजना में आयुर्वेद के लिये अड़तालीस लाख रुपये का प्राविधान किया गया था। जब कि एलोपैथी के लिये तीन करोड़ सैंतालीस लाख था। इस प्रकार आयुर्वेदिक चिकित्सा पर व्यय की जाने वाली राशि १३.८३ प्रतिशत थी, किंतु तीसरी योजना में यह प्रतिशत घटकर ८.४८ पर आ गया है। राज्य सरकार ने आयुर्वेद के लिये एक करोड़ एक लाख का प्रस्ताव किया था। योजना आयोग ने जहां अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति पर राज्य के मूल प्रस्ताव पांच करोड़ पच्चीस लाख को मान लिया, वहां आयुर्वेद संबन्धी प्रस्ताव में ३१ लाख की कटौती करदी।

इधर एलोपैथी का काफी विस्तार हुआ है। जैसा कि लक्ष्य था अलवर, उदयपुर, बीकानेर, अजमेर, जोधपुर, कोटा व जयपुर में नर्स व दाई के तथा अलवर, उदयपुर, जोधपुर व कोटा में कम्पाउण्डरी के प्रशिक्षण केन्द्र खोले जा चुके हैं। जयपुर, अलवर, भरतपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, बीकानेर और व्यावर में ७ टी० बी० अस्पताल खोल कर लक्ष्य पूरा कर लिया गया है। अजमेर व कोटा के अस्पतालों का स्तर बढ़ाया गया है। बाड़ी उदयपुर में २०० विस्तारों वाला एक आराजी टी० बी० सेनीटोरियम कायम किया गया है।

चिकित्सक परिषद् करहल (मैनपुरी)

करहल तहसील चिकित्सक परिषद् का सम्मेलन दिनांक २२-२-६१ को क्षेत्रीय विकास प्रदर्शनी के विशाल पंडाल में श्रीमान् पं० बद्रीविशाल जी त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य कानपुर, अध्यक्ष उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद सम्मेलन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें जिले तथा तहसील के अनेक वैद्य बन्धु पधारे। अध्यक्ष एवं अन्य विद्वानों के भाषण हुए जिसमें वैद्यों से अनुरोध किया गया कि वे शुद्ध आयुर्वेद प्रणाली को अपनावें तथा उन्नति करें। दूसरे सरकार से प्रार्थना की कि आयुर्वेद को भी समुन्नत बनाने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दें तथा वैद्यों पर जो अनावश्यक ड्रग एक्ट लगाये जा रहे हैं उन्हें समाप्त करें। —मंत्री

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का चुनाव सम्पन्न

जोधपुर (डाक से) आज दि. ५ अप्रैल १९६१ को रात्रि में ६ बजे श्री अम्बालाल जोशी की अध्यक्षता में श्री मा. आ. प्र. सभा की कार्य समिति का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। जिसमें नियमानुसार श्री अम्बालाल जोशी सर्वसम्मति से इस बार पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए। यह चुनाव श्री जोशी जी की लोकप्रियता का द्योतक है। आशा है श्री जोशी के नेतृत्व में यह सभा और प्रगति करेगी तथा इनके द्वारा अधिक ठोस सेवा कर सकेगी।

सूचना—

श्री रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी सूचित करते हैं कि जिन लोगों ने सहकारी औषधि भण्डार के नाम पर धन भेजा था वह चैक या मनीआर्डर से लौटा दिया है पर जिनको न मिला हो या शेष हो वे अपनी रसीदें, धन्वन्तरि कार्यालय की मार्फत भेज दें तथा यदि उनको पैसा नहीं लौटाया होगा तो लौटा दिया जायगा। यह संस्था बहुत कम लोगों के सहयोग के कारण खड़ी नहीं की जासकी तथा धन भी लौटा दिया गया था। जो ३० जून १९६१ तक नहीं भेजेंगे उनकी बाद की लिखा-पढ़ी व्यर्थ जावेगी।

रा. आ. यू. कम्पौण्डर संघ के मन्त्री

उ० प्र० के उपनिर्देशक से मिले

दिनांक १३-४-६१ को उ० प्र० रा० आ० यू० कम्पोण्डर संघ के मंत्री श्री राजवली सिंह जी लखनऊ पधारे और उन्होंने उत्तर प्रदेश आयुर्वेद विभाग के उपनिर्देशक महोदय से मिलकर कुछ बातें की, जिनका सारांश निम्न प्रकार है—

१—कम्पोण्डरी के कन्फरमेशन की व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र ही की जा रही है।

२—सरकार के पास ६ माह की ट्रेनिंग की स्कीम भेजी गई है। आदेश आने पर कार्य प्रारंभ कर दिया जावेगा।

३—एलोपैथिक कम्पोण्डरी के समान आयुर्वेद व यूनानी के कम्पाउण्डरों को वेतन देने के लिए विभाग की ओर से सरकार को लिखा गया है।

४—राजकीय कम्पोण्डरों को अपने ही जिले में रखने पर विचार हो रहा है।

५—दिनांक १६ व १७ मई को कम्पोण्डरी संघ का वार्षिक अधिवेशन करने के विषय में मौखिक स्वीकृति मिल गई है, लिखित सूचना अविलम्ब दी जावेगी।

समाचार-सार संग्रह

रोग निदान शिविर सम्पन्न

हरिद्वार। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर १० से १३ अप्रैल तक एक निःशुल्क रोग निदान शिविर में १५० रोगियों का निदान कर औषधि वितरण हुआ।

शिविर में पंचपुरी, गुरुकुल, ऋषिकुल के प्रतिष्ठित चिकित्सकों एवं गुरुकुल के बाहरी स्नातकों ने सहयोग दिया। शिविर का संयोजन प्रिंसिपल श्री निरंजनदेव जी एवं प्रो० रामनाथ वैद्य जी ने सपरिश्रम किया। —कार्यालय मंत्री।

भीलवाड़ा में आयुर्वेद चिकित्सा शिविर—

भीलवाड़ा। यहां अप्रैल मास में अर्श तथा श्वास रोगों का आयुर्वेदिक चिकित्सा शिविर प्रारम्भ हो रहा है। शिविर में राजस्थान के सुप्रसिद्ध चिकित्सक जो अर्श एवं श्वास रोग के विशेषज्ञ हैं रोगियों की चिकित्सा करेंगे। शिविर में ५० शैया अर्श व ५० शैया श्वास के रोगियों के लिए रखी गई हैं। यह कैम्प २० रोज चलेगा। अन्य रोगियों को अपने घर पर ले जाने हेतु औषधियां वितरण की जांयगी। शिविर की व्यवस्था के लिए नागरिकों की प्रबंध समिति का निर्वाचन किया गया है जिसके अध्यक्ष श्री रामचन्द्र जी वैद्य, तथा मन्त्री श्री दिलसुखराय अजमेर हैं। शिविर का उद्घाटन राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया करेंगे। इस अवसर पर भीलवाड़ा के ए क्लास राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के इनवार्ड का भी मुख्य मन्त्री उद्घाटन करेंगे। —प्रचार मन्त्री

नवीन स्तम्भ—

एलोपैथिक सफल औषधियां

'धन्वन्तरि' के अनेक पाठकों ने हम से आग्रह किया है कि धन्वन्तरि में उक्त शीर्षक स्तम्भ चालू किया जाय और इस स्तम्भ में एलोपैथिक औषधियों का सरल हिन्दी में वर्णन एवं विविध रोगों पर उनका सफल प्रयोग दर्शाया जाय जिससे कि आयुर्वेद समाज इन औषधियों का सामयिक ज्ञान प्राप्त करते हुए अपने चिकित्सा व्यवसाय में सफलता प्राप्त करते रहें।

विद्वान एवं अनुभवी लेखकों से निवेदन है कि वे इस स्तम्भ के लिये अपने लेख अवश्य भेजें। लेख भेजते समय ध्यान रखें।

१. लेख सरल हिन्दी में लिखें। आंग्ल शब्दों की भरमार न करें।

२. लेख संक्षेप में तथा सारपूर्ण होना चाहिए। अनावश्यक विस्तार नहीं करें।

उत्तम लेखों पर उचित पारिश्रमिक भी दिया जायगा।

—सम्पादक 'धन्वन्तरि'

शल्यकर्म में असावधानी करने पर सजा—

हाल ही का समाचार है कि बम्बई में म्युनिस्पल अस्पताल के एक डाक्टर सर्जन जिनके पास सर्जरी की उच्चतम उपाधि थी उन्हें ५ वर्ष के एक बच्चे का आपरेशन करते समय बेहोशी की दवा सुंघाने से मर जाने के अपराध में न्यायालय ने २०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपया जुर्माना और ६ मास के कारावास का दण्ड दिया है।

न्यायालय ने फैसले में कहा है कि बेहोशी की दवा गलत तरीके से सुंघाई गई। रोगी की त्वचा की गर्मी, आंखों के पलक, रक्त का दबाव, श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया तथा अन्य आवश्यक बातों का ध्यान न रखकर लापरवाही बरती गई जिससे कि उक्त बालक की मृत्यु हो गई।

लड़कियों की डाक्टरी शिक्षा से

मुख्य मन्त्री को असन्तोष

लखनऊ १३ अप्रैल। मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने आज विधान सभा के प्रश्नोत्तरकाल में एक पूरक प्रश्न के उत्तर में कहा कि प्रदेश की सरकार द्वारा लड़कियों को डाक्टरी शिक्षा देने पर अब तक किये गये धन का अधिकांश भाग व्यर्थ चला गया है क्योंकि डाक्टरी शिक्षा ग्रहण करने वाली अधिकांश लड़कियां शादी करने के उपरांत डाक्टरी पेशे का त्याग कर देती हैं। इस परिस्थिति ने सरकार को यह सोचने पर विवश किया है कि भविष्य में कुछ ऐसे उपाय किये जांय जिससे या तो डाक्टरी पढ़ी लिखी लड़कियां विवाह ही न करें और यदि करें भी तो अपने पति के साथ उन क्षेत्रों में रह कर चिकित्सा कार्य करें जहां उन्हें नियुक्त किया गया हो।

वाइस प्रिंसीपल का अवकाश ग्रहण—

८ अप्रैल को राजकीय आयुर्वेदिक कालेज पटना के वाइस प्रिंसीपल आचार्य पं० हजारीलाल शुक्ल एवं आचार्य पं. सिद्धेश्वर नाथ उपाध्याय के अवकाश ग्रहण करने के उपलक्ष्य में कालेज में एक सभा श्री प्रियव्रत शर्मा डिप्टी डायरेक्टर बिहार की अध्यक्षता में हुई जिसमें प्राध्यापक वर्ग और छात्रगण उपस्थित थे। सर्व प्रथम प्रो० वामदेव त्रिपाठी, श्री बिकूसिंह, मैनेजर स्टेट फार्मेसी, प्रो. सुखराम प्रसाद तथा श्री वैद्यनाथ शर्मा डिप्टी सुपरिन्टेण्डेन्ट आतुरालय आदि वक्ताओं ने शुक्ल जी और उपाध्याय जी के महाविद्यालय के ३५ वर्षों की सेवाओं पर प्रकाश डाला।

अन्त में अध्यक्ष महोदय ने बतलाया कि ये बिहार के आयुर्वेद के स्तम्भ हैं। इन्हें कालेज से अलग रहकर भी इसके लिये सोचना चाहिए। इन्हीं लोगों के प्रयत्नस्वरूप यह इतनी प्रगति कर सका है। दोनों आचार्यों को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया गया।

श्री लङ्का में आयुर्वेद का विकास

श्री लंका के उपस्वास्थ्य मंत्री ने दहली में कहा कि उनकी सरकार श्री पं० शिव शर्मा द्वारा की गई शिफारिशों पर विचार कर रही है। श्री पं० शिव शर्मा को दो वर्ष पूर्व श्री लंका के स्वास्थ्य सम्बंधी अध्ययन करने को आमन्त्रित किया गया था। सरकार का ऐसा विचार है कि प्राचीन तथा अर्वाचीन चिकित्सा प्रणाली का अध्ययन साथ साथ कराया जाय और उन स्थानों में जहां पर कि कोई चिकित्सकीय सुविधा उपलब्ध नहीं है आयुर्वेदिक अस्पताल खोले जांय। उन्होंने कहा कि हमारी सरकार आयुर्वेद तथा अन्य प्राचीन चिकित्सा प्रणालियों के विकास के लिए सतत प्रयत्नशील है।

गुजरात आयुर्वेद फैकल्टी के अध्यक्ष का त्यागपत्र

गुजरात का समाचार है कि फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडीसन आफ गुजरात के अध्यक्ष आचार्य श्री बल्लभराम विश्वनाथ वैद्य ने अध्यक्ष पद से इसलिये त्याग पत्र दे दिया है कि फैकल्टी में कुछ सदस्य फैकल्टी का उपयोग 'एम० बी० बी० एस०' स्नातक उत्पन्न करने के लिये करना चाहते थे।

एलोपैथी नहीं आयुर्वेदिक औषधालय

खोला जाय—

नाथनगर विकास खण्ड जिला बस्ती से सम्बन्धित ग्राम सभाओं के सभापतियों ने उ० प्र० के स्वास्थ्य मंत्री तथा विकास विभाग से मांग की है कि इस विकास खण्ड में जो औषधालय खुलने वाला है वह एलोपैथी नहीं, आयुर्वेद का पूर्ण साधन सम्पन्न औषधालय खोला जाये।

इन सभापतियों का कहना है कि एलोपैथ डाक्टरों के नाज-नखरों से हम सब भली-भांति परिचित हैं। अतः हमें डाक्टर नहीं वैद्य चाहिए, जिसे चीर-फाड़ करने के पूर्ण अधिकार हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोक समाचार

● पता चला है कि उ. प्र. वैद्य सम्मेलन के भू. पू. सभापति आयुर्वेद मार्तण्ड पं० रघुवरदयाल जी भट्ट का २२ अप्रैल को रात्रि के ६ बजे ८० वर्ष की आयु में देहावसान हो गया।

ईश्वर दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोक संतप्त परिवार को शांति प्रदान करे।

● सीतापुर के वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित वैद्य पं० मधुसूदन जी दीक्षित प्रधान जिला वैद्य परिषद् एवं सदस्य भारतीय चिकित्सा परिषद् का देहान्त दिनांक ६-१-६१ को हो गया। सीतापुर नगर वैद्यों की सभा में शोक प्रस्ताव किया गया।

● बीकानेर वैद्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष भारत के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद चिकित्सक पीयूषपाणि वैद्य श्री केवलराम जी महाराज का तीन माह की व्याधि के पश्चात् निधन हो गया।

आयुर्वेद विज्ञान वैद्य समाज और देश का यह दुर्भाग्य है कि ऐसे कुशल और प्रसिद्ध चिकित्सक क्रमशः छोड़ते हुए जा रहे हैं।

● असधना जिला कानपुर निवासी वैद्यराज पं०रामगुलाम द्विवेदी का निधन गत मार्च में कानपुर के आयुर्वेदिक कालेज कर्नलगंज में अचानक हो गया।

● सरदार शहर में आयुर्वेद विश्व भारत की स्थापना करने वाले गांधी विद्या मंदिर के अध्यक्ष सेठ श्री भंवरलाल जी दुगड़ का निधन हो गया। श्री दुगड़ आयुर्वेद विज्ञान के विकास की गहरी वेदनापूर्ण भावना अपने हृदय में छिपाये हमसे सदा के लिये अलग होगये।

पाठकों की शंकाएें

विद्वान आयुर्वेद मर्मज्ञ

विचार करें और उत्तर दें:—

आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर ही चिकित्सा का विधान है। लेकिन कुछ आचार्य—

वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला।
अन्तेश्लेष्मवतीज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥

इसके स्थान पर कुछ अन्य आचार्य—

वाताधिके भवेन्नाड़ी प्रव्यक्ता तर्जनी तले।
पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयांगुलिगा कफे॥

मानते हैं। जब सिद्धान्त में ही इतना अन्तर है तो इस वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद कैसे टिक सकेगा। आयुर्वेद मर्मज्ञ और अनुभवी सज्जन अपने विचार लिखें तथा सप्रमाण बताऐं कि कौनसा सिद्धान्त सही है और क्यों?

—श्री पं. शिवनन्दन जी मिश्र
सैदापुर पो० नरहर (गया)

साहित्य समाचार—

एलोपैथिक गाइड—डा० रामनाथ वर्मा कृत। पुस्तक का छठा संस्करण अभी-अभी तैयार होकर आगया है। इसकी प्रतीक्षा अनेकों पाठकों को थी इस संस्करण का मूल्य १०.०० है।

पंचकर्म विज्ञान—श्री शिवकुमार जी व्यास लिखित धन्वन्तरि में धारावाहिक रूप में जो लेख प्रकाशित हुआ था वह पुस्तक रूप में छप गया है। पुस्तक उपयोगी है। मूल्य ३.००

नवजन स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान—श्री. डा. मुकन्दस्वरूप लिखित छप गया है। मू. ८.००

भैषज्यरत्नावली (सम्पूर्ण हिन्दी टीका युक्त)—अम्बिकादत्त शास्त्री की टीका वाली का नवीन संस्करण छप गया है। मूल्य १५.०० के स्थान पर १६.०० होगया है।

—पुस्तक विभाग—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़, (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक रोगों में–

बिजली द्वारा चमत्कारिक लाभ

[मशीन व्यवहार करने वालों के संक्षिप्त में अनुभव]

१—श्री पं० होरीलाल शर्मा आयुर्वेदाचार्य लेंजाखार (कवर्धा)

नाम बंसुलाल साव आयु ४०। हाथ में अधिक पीड़ा, हाथ उठा भी नहीं सकता था। १५ दिन २-२ बार मशीन का प्रयोग किया, दवा नहीं दी। आराम।

नाम सलना बाई, आयु ५ वर्ष, रोग वातज शोथ दोनों पैर व घुटने सूज गये थे। १०२ डिग्री ज्वर था। योगराज गूगल सुबह शाम दिया। नारायण तैल की मालिश की और एक बार बिजली का प्रयोग, ३ दिन में आराम।

नाम फूलबाई, आयु ४५ वर्ष, रोग—कटिशूल ६ माह से, बिजली लगाया केवल एक बार। ज्वर हो गया, दिन में दो बार मृत्युंजय दिया। ज्वर २ दिन में ठीक हो गया, पूंछा पीड़ा बिल्कुल नहीं।

मेरी पत्नी रामबाई शर्मा, दोनों पैरों में पीड़ा थी। मैंने दवाई और इन्जेक्शन दे डाले पर पीड़ा बनी रही। बिजली का प्रयोग तीन बार किया बिलकुल आराम हो गया।

५ वर्ष की एक बच्ची वातज शोथ से पीड़ित थी। दोनों घुटने और पैर सूज गये थे और १०२ डिग्री बुखार था। मैंने योगराज गुग्गुल १/४ गोली सुबह-शाम, नारायण तैल की मालिश तथा आपकी बिजली की मशीन का प्रयोग किया। जो हिलडुल नहीं सकती थी वह तीन दिन में चलने लगी।

साधारण छोटे मोटे दर्द को तो ५ मिनट में जादू की तरह आराम होता है।

२—डा० विजयनारायण श्रीवास्तव, जमुवा (मिर्जापुर)

एक अहीर बालक गोपाल उम्र ७ वर्ष, दायां पैर फैला न सकता था, न खड़ा हो सकता था। अस्पताल कछवा के डाक्टर ने आपरेशन करने की सलाह दी। डर से भागकर वह अपने बच्चे को मेरे पास लाया। करीब एक सप्ताह में केवल आपकी बिजली की मशीन के प्रयोग से अच्छा हो गया।

एक मुसलमान बालक नेहरू उम्र ५ साल, सर्वाङ्ग शोथ तथा मन्द ज्वर से पीड़ित था। [औषधि]सेवन के साथ आपकी बिजली की मशीन का प्रयोग कराया। एक सप्ताह में पूर्णतः स्वस्थ हो गया।

३—डा० जीवनकुमार जैन, बक्सवाहा (छत्तरपुर)

आपकी भेजी हुई बिजली की मशीन आजकल बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। मैंने परीक्षा करके देख लिया है कि पसली के दर्द, वात व्याधि व सूजन पर यथास्थान २-४ मिनट तक फेरने से ही शीघ्र आराम हो जाता है। जिसमें पसली के दर्द की तो यह अपने समय की एक नई मशीन है।

४—वैद्य बुधनारायण शर्मा, उनियारा खुर्द

सुखदेव, जाति चमार उम्र ६० वष, लाम्बाखुर्द निवासी को २५ वर्ष से लकवा मार गया था। आपकी बिजली की मशीन का प्रयोग किया। अब ठीक चलने लग गया और स्वयं बहुत ही प्रसन्न है तथा बिजली चिकित्सा की तारीफ करता फिरता है।

५—श्री सुरेशदत्त वैद्य, जलालाबाद (मुजफ्फरनगर)—

कान बहना बन्द होगया—मशीन सुन्दर टिकाऊ है। आते ही मैंने अपने बहते हुए कान पर अनुभव किया। ४ दिन कान के चारों ओर कनक्शन लगाने से कान का बहना बन्द हो गया। औषधि कुछ नहीं की गई।

६—श्री शीतलाशंकर मिश्र वैद्य, पुरवा (उन्नाव)

एक मनुष्य गिरकर एकाएक बेहोश हो गया। मैं मशीन लेकर गया और तुरन्त चालू करके पोल रोगी के हाथ में दबाया। पोल लगते ही शरीर में जागृति पैदा हो गई। पोल बड़े जोरों से खींचे। मैंने बड़े बलपूर्वक छुड़ाकर उसके सिर के बालों पर फेरना शुरू किया। तत्काल रोगी होश में आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113418
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक स्त्री जिसे हिस्टेरिया का दौरा आता था बेहोश हालत में रात भर पड़ी रही। प्रातः मुझे बुलाया गया। मैंने ज्योंही मशीन लगाई होश में आ गई।

एक रोगी देहात में १२ दिन से ज्वर से पीड़ित था तथा तमाम शरीर में बहुत जोर का दर्द था। मैंने औषधि दी तथा मशीन का प्रयोग किया। रोगी को जोर का पसीना आया पसीना पौंछ दिया गया। ज्वर तथा दर्द तत्काल ठीक हो गए।

७—श्री सुरेन्द्रकुमार चमोली आयुर्वेदाचार्य, हिण्डोला खाल, पो० दुआधार (टिहरी गढ़वाल)

एक प्रौढ़ को ५ साल से बादी बवासीर थी तथा मस्से उग आए थे। नियमित रूप से ७ दिन तक मशीन के व्यवहार से मस्से शुष्क हो गए। साथ में औषधियां भी सेवन कराईं। अब पूर्ण स्वस्थ है।

एक औरत जिसकी आयु अड़तीस वर्ष है, ६-७ वर्ष से उसका पेट बढ़ गया था। साधारण तौर पर हर कोई उसे ७-८ मास की गर्भिणी समझता था। उस पर १२ दिन नियमित रूप से मशीन का प्रयोग किया अब पूर्ण स्वस्थ तथा प्रसन्न है।

८—वैद्य कविराज रघुबीर सिंह मलिक, L. A. M. S. मन्दानाकलां (रोहतक)

एक रोगिणी नाम दडका देवी आयु३५ वर्ष ७ वर्ष से गठिया से पीड़ित थी। कितने ही वैद्य डाक्टरों की चिकित्सा करा चुकी थी। मैंने भी कई योगों का प्रयोग किया लेकिन कोई लाभ न हुआ। उसको पुराना गठिया था तथा पैरों में हिलने डुलने की सामर्थ्य न थी परन्तु आपकी बिजली की मशीन ने कमाल कर दिया। इस बिजली की मशीन के प्रयोग से अब रोगिणी में इतनी शक्ति आ गई है कि वह चलने फिरने लगी है। इसी प्रकार छोटे छोटे वात वेदना के रोगियों को तो यह ५ मिनट में ही ठीक कर देती है। हर जगह बिजली की मशीन की तारीफ की जा रही है।

बिजली की मशीन से

१. व्यय नहीं के बराबर होता है।
२. अनेक रोगों में चमत्कारिक लाभ होता है।
३. रोगियों को आकर्षित करने के लिए उत्तम साधन है।

हमारी बनाई गई मशीन

१. बहुत दिनों तक काम देती है।
२. दो सैल या चार सैल से जैसे चाहें व्यवहार करें।
३. सुन्दर, प्रभावशाली, टिकाऊ एवं सर्वोत्तम है।

मूल्य--३५.०० रु०   पोस्ट व पैस्ट व पैकिङ्ग ४.०० रु०
आर्डर के साथ ५.०० रु० एडवांस अवश्य भेजें।

पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113418

चिकित्सा सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकें

इंजेक्शन – (षष्ठम संस्करण) आज के इस वैज्ञानिक युग में सूचीवेध विज्ञान चिकित्सा क्षेत्र में अपना प्रथम स्थान रखता है। इस पुस्तक के ४ खण्डों में—सूचीवेध की आवश्यकता, सूचीवेध सम्बन्धी वैज्ञानिक तत्वों के संग्रह इत्यादि से लेकर पूतीकरण (Sterilization) तथा समस्त सुई की औषधियों का वर्णन है। ग्रन्थिस्राव (Harmons therapy) तथा प्रस्तुत सभी चमत्कारिक औषधियों आदि, सद्यः लाभकारी इंजेक्शनों के बारे में विस्तारपूर्वक लिख दिया गया है। सुन्दर छपाई, कागज एवं २० चित्रों से परिपूर्ण इनमें नवीन आविष्कृत एलोपैथिक सभी इंजेक्शनों का वर्णन है। मू० १०.०० सजिल्द

एलोपैथिक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) हिन्दी जगत में चिकित्सा सम्बन्धी प्रथम अनूठी पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न ८ अध्यायों में लिखी गई है। 'शरीर विज्ञान' को संक्षिप्त रूप में, प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से बड़े ही स्पष्ट शब्दों में दिया गया है। नवीनतम चमत्कारिक औषधों से युक्त प्रस्तुत पुस्तक हर प्रकार के विषयों से परिपूर्ण एवं सांगोपांग है। उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत हो चुकी है। मू. सजि. १०.००

एलोपैथिक पाकेट गाइड (चतुर्थ संस्करण)—इस पुस्तक में आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रचलित चमत्कारिक औषधियों के नुस्खे, प्रमुख रोगों के संक्षिप्त परिचय एवं निदान के अनुसार वर्णन दिया गया है। परीक्षित नुस्खे के साथ-साथ इंजेक्शन और पेटेण्ट औषधियां भी दी गयी हैं। ३.०० मात्र।

मिक्चर (षष्ठम संस्करण)—चिकित्सा जगत् में जिस किसी एलोपैथ डाक्टर ने ख्याति प्राप्त की है, तो वह अपने रामबाण की तरह अचूक चलाने वाले मिक्श्चर के नुस्खे के बल पर ही। ऐसे ही एलोपैथी के अचूक नुस्खों को बड़ी मिहनत और बड़े खर्च से एकत्रित कर इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। १८४ रोगों पर चलने वाले ३५० अचूक नुस्खे इसमें हैं और अब थोड़े से पैसों में हरेक व्यक्ति इनसे लाभ उठा सकते हैं। २.५०

एलोपैथिक मैटेरिया मेडिका—एलोपैथी आज की सर्वाधिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति है। इसकी जानकारी बिना इसके मेटेरिया मेडिका (द्रव्य-गुण विज्ञान) के अध्ययन किये बिना नहीं होसकती। अतः हिन्दी भाषा में प्रस्तुत ग्रन्थ को लेखक ने लिखकर चिकित्सा जगत् की अपूर्व सेवा की है। पुस्तक पांच खण्डों में लिखी गयी है। पांच खण्डों में समूचा एलोपैथी विज्ञान भरा है। पृष्ठ संख्या १३००—चिकने कागज पर छपी हुई कपड़े की बाइंडिंग। १२.००।

सचित्र नेत्र-रोग विज्ञान (एलोपैथिक)—(उ० प्र० सरकार से पुरुष्कृत) २३ अध्यायों में नेत्र-रचना, उसकी कार्यक्षमता आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, जैसे निकट दृष्टिज्ञान, दूरदृष्टिज्ञान, उर्ध्वदृष्टिज्ञान आदि। इनकी परीक्षा किस प्रकार की जाती है, चित्र सहित सरल ढङ्ग से बतलाया गया है। विभिन्न संस्थानों के रोगों का नेत्र पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, उनके कारण कौन-सी बीमारी हो सकती है आदि का वर्णन है।
१३० चित्रों के साथ—८.०० मात्र।

एलोपैथिक सफल औषधियां (तृतीय संस्करण)—आज का युग वैज्ञानिक युग है। एलोपैथी चिकित्सा की जान कही जाने वाली सभी नयी सफल औषधियां (Chemotherapy)—जैसे—पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेरामाइसिन, औरियोमाइसिटीन, क्लोरोमाइसिटीन, बेसीट्रेसिन, गार्लीसिन, टायरोथ्राय-सीन, मैग्नेमाइसीन, पी० ए० एस० आदि का विस्तृत वर्णन दिया गया है ३.५० मात्र।

सामान्य शल्य विज्ञान—इसमें शल्य चिकित्सा का वृहत् विवेचन है शल्य सम्बन्धी सभी औजारों को भी सचित्र समझाया गया है। सैकड़ों चित्र, बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई कपड़े की जिल्द।
१२.०० मात्र।

मल-मूत्र रक्तादि परीक्षा (एलोपैथिक)—(तृतीय संस्करण)—भूमिका लेखक—डाक्टर शिवनाथ खन्ना एम. बी. बी. एस.। प्रस्तुत पुस्तक में बड़े ही सरल शब्दों में उपर्युक्त परीक्षाओं सम्बन्धी सभी बातों का स्पष्ट वर्णन दिया गया है। इसमें केवल मल, मूत्र रक्तादि की परीक्षाओं का ही वर्णन है बल्कि-स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि की भी परीक्षा विधि सरल ढंग से दी गयी है। २८ चित्रों के साथ।
३.०० केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यों के लिए आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखे। यह चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानून दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' जिनमें आवश्यक कालम(खाने)दिए हैं। मूल्य ३.५०

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिये प्रमाण पत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रङ्गों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू० १.०० मात्र। अंग्रेजी अथवा हिंदी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्गों में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुँचने पर उन्हें वे स्वस्थ हैं इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू० १.००, अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १.२५

रोगी व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिखकर रोगी को दे दीजिए। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आ जाएगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी। मू० ०.३७ प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मू० १.००

तापमापक चार्ट-(टेम्परेचर चार्ट)-इससे रोगियों का ताप मान अङ्कित करने में बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अङ्कित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मू० २५ चार्ट का १.०० रु० मात्र।

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गए हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में है।

नं० १-अस्थि पञ्जर—इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया गया है। हाथ, अंगुली, रीढ़ तथा छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आती हैं। मू. ५.००

नं० २-रक्त परिभ्रमण—इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्रकाशित रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त भ्रमण का पृथक चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई हैं। मूल्य ५.००

नं० ३-वातनाड़ी संस्थान—इस चित्र में सम्पूर्ण वातनाड़ी मण्डल (*Nervous System*) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वर्ग-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। मूल्य ५.००।

नं० ४-नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—इसमें पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १-दक्षिण चक्षु-इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २-पटलों और कोष्ठों को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिज काट ३-चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४-नेत्र चालिनी पेशियां ५-दृष्टिभेद (दर्शन-सामर्थ्य)। ६-साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५.००।

नोट—सादा-बिना कपड़ा-लकड़ी लगे चित्र शीशा में मढ़ने के लिए १ चित्र ४.००, चारों मंगाने पर १२.००। कपड़ा लकड़ी लगे चारों चित्र मंगाने पर मूल्य १६.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Co..ried
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar